जैन साहित्य एवं मंदिर उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मदिर में उपयोग हेतु उपकरण और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है !

शुध्द चांदी के उपकरण आर्डर पर निर्मित किये जातें है!

(पांडुशिला, सिंघासन ,छत्र ,चंवर प्रातिहार्य , जापमाला , मंगल कलश,पूजा बर्तन चंदोवा,तोरण,झारी)

नोट :- हमारे यहाँ घरो मे उपयोग हेतु , साधुओं के उपयोग हेतु, अनुष्ठानो मे उपयोग हेतु शुध्द देशी घी भी आर्डर पर उपलब्ध कराया जाता है !

Contact:-
Sourabh Sagar Indore
9993602663
7722983010
sourabhjn1989@gmail.com

जैन

जय जिनेन्द्र

गाय का शुद्ध देशी घी

शुद्धता पूर्वक बनाया गया देशी घी

साधु व्रती एवं धार्मिक अनुष्ठानो को ध्यान में रख कर बनाया गया शुद्ध देशी घी

घी ऐसा के दिल जीत जाये !

अब 1kg की पैकिंग में भी उपलब्ध

संपर्क सूत्र

Contact For Order

Sourabh Sagar Indore

Call & Whatsapp:

9993602663,7722983010

All India Home Delivery

विशद

स्तोत्र संग्रह

(शब्दार्थ एवं पद्यानुवाद सहित)

:: पद्यानुवादकर्ता ::

प. पू. साहित्य रत्नाकर, क्षमामूर्ति

आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज

कृति : **विशद आदर्श स्तोत्र** (शब्दार्थ एवं पद्यानुवाद सहित)

पद्यानुवादकर्ता : प. पू. साहित्य रत्नाकर, क्षमामूर्ति आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज

संस्करण : प्रथम-2018 * प्रतियाँ : 2000

संकलन : मुनि श्री विशालसागरजी महाराज,

सहयोग : आर्यिका श्री भक्तिभारती माताजी

सहयोगी : ऐलक विदक्षसागर जी, क्षु. श्री विसोमसागरजी, क्षु. श्री वात्सल्यभारती माताजी

संपादन : ब्र. ज्योति दीदी 9829076085, ब्र. आस्था दीदी 9953877155, ब्र. सपना दीदी 9829127533

संयोजन : ब्र. सोनू दीदी, ब्र. आरती दीदी

प्राप्ति स्थल :
1. सुरेश सेठी, 958 शांतिनगर रोड़ नं. 3 दुर्गापुरा जयपुर (राज.) 9413336017
2. विशद साहित्य केन्द्र
   श्री दिगम्बर जैन मंदिर कुआँ वाला जैनपुरी रेवाड़ी (हरियाणा), 9812502062, 09416888879
3. विशद साहित्य केन्द्र, हरीश जैन जय अरिहन्त ट्रेडर्स, 6561 नेहरू गली नियर लाल बत्ती चौक, गांधी नगर, दिल्ली मो. 09818115971,

मूल्य : 100/- रु. मात्र

-: अर्थ सौजन्य :-

श्रीमती नीता जैन धर्मपत्नी श्री प्रभुदयाल जैन (प्रधान)

1069/72, देवाराम पार्क, त्रिनगर, दिल्ली

श्रीमती आशा जैन धर्मपत्नी श्री अशोक कुमार जैन

1594/114, त्रिनगर, दिल्ली

मुद्रक : पारस प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली. फोन नं. : 09811374961, 09818394651
09811363613, E-mail : pkjainparas@gmail.com, kavijain1982@gmail.com

जिन भक्ति मुक्ति प्रदायिनी

एकापि समर्थेयं जिन भक्ति दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः।।

प.पू. आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने समाधि भक्ति में कहा है एक मात्र जिन भक्ति दुर्गति का निवारण करके पुण्य से पूरित करने वाली है तथा भव्य जीवों को मुक्ति श्री प्रदान करने वाली है।

आज के पूर्व भी आचार्यों ने अपने जीवन में शांति प्राप्त करने के लिए जिन भक्ति का सहारा लिया है और पूर्व में होने वाले आचार्यों की सहृदय भक्ति रही जिसके कारण अनेक चमत्कार हुए हैं चाहे आचार्य मानतुंग स्वामी की भगवान आदिनाथ के चरणों में भक्ति रही हो जिसमें **भक्तामर** काव्य की रचना हुई आचार्य कुमुदचन्द द्वारा **पार्श्वनाथ** की भक्ति की गई जिससे कल्याण मंदिर स्तोत्र रचा गया आचार्य समन्तभद्र द्वारा भक्ति से **स्वयंभू स्तोत्र** और वादिराज की भक्ति से **एकीभाव स्तोत्र** की रचना हुई तथा कई विद्वानों ने भी भक्ति को अपने जीवन का सहारा माना जिनमें कविराज धनञ्जय की भक्ति से विषापहार और कवि भूपाल, भागचन्द भागेन्दु आदि अनेक रहे हैं। जब-जब भी जैन धर्म या धर्मानुयायियों पर संकट आया जिसका निवारण दुःसाध्य हुआ तब-तब उन्होंने भगवान का सहारा लिया है।

यह सत्य है ज्ञानी जीव चमत्कार को नमस्कार नहीं करता उसके नमस्कार में चमत्कार होता है जो पुस्तक में आए श्लोक इस बात को प्रमाणित कर रहे हैं।

सन् 1996 में मड़ावरा वर्षायोग के अवसर पर मुनि विभवसागर जी के सहयोग से लघु कृति स्तोत्र भारती का समायोजन श्लोक और उनके अन्वयार्थ भावार्थ सहित किया था। जिनका 2 बार प्रकाशन हुआ पश्चात् मुनि विभव सागर जी एवं गुरुदेव आचार्य विराग सागर जी द्वारा स्तोत्र भारती नाम से पुस्तक का प्रकाशन हुआ जो पुस्तकें प्राप्त होने पर पं. अरविंद जी जैन 'आदर्श' के आग्रह पर पुनः **स्तोत्र भारती** का बृहद् रूप में प्रकाशन किया जा रहा है जो **'विशद आदर्श स्तोत्र'** के नाम से आपके पास प्रस्तुत है। इस कार्य में प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से जिनका सहयोग हमें प्राप्त हो रहा है वह सभी आशीर्वाद के पात्र हैं।

आचार्य विशद सागर
पावन वर्षायोग 2014 तिजारा

अनुक्रमणिका

मंगलाष्टक	5
सुप्रभात स्तोत्र	12
महावीराष्टक स्तोत्र- भागचंद भागेन्दु	22
भक्तामर स्तोत्र- आचार्य श्री मानतुंग	29
कल्याण मन्दिर स्तोत्र- श्री कुमुद चन्द्राचार्य जी	62
एकीभावस्तोत्रम्- आ. श्री वादिराज	95
विषापहार स्तोत्रम्- कवि धनञ्जय	118
दर्शन पाठ	149
अद्याष्टक स्तोत्र	155
दृष्टाष्टक स्तोत्र	161
गोम्मटेस-अष्टक	168
सरस्वती स्तोत्र	173
सरस्वती नाम स्तोत्र	179
गणधर वलय स्तोत्र	183
श्री पंच महागुरु भक्ति (प्राकृत)	191
वीतराग स्तोत्र	196
स्वयंभू स्तोत्र- लघु	202
सामायिक पाठ- लघु	216
परमानन्द स्तोत्र	235
श्री परमात्म स्वरूप स्तोत्र	240
जिन चतुर्विंशतिका स्तोत्र-	245
उवसग्गहरं स्तोत्र	266
परमेश्वर स्तोत्रम्	270
जिनेन्द्र शरण स्तोत्रम्	275
वैराग्याष्टक	280
अथ नवग्रह शांति स्तोत्रम्	286
वृहद्स्वयम्भू-स्तोत्रम्- आचार्य समन्तभद्र जी	290
अकलंक स्तोत्र	384
स्तुति	403

मंगलाष्टक

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र-महिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः॥
श्रीसिद्धान्त-सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः।
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्॥1॥

अन्वयार्थ-**इन्द्रमहिताः**-इन्द्रों द्वारा पूजित, **अर्हन्तः**-**भगवन्त**-अर्हन्त भगवान, **च**-और, **सिद्धीश्वराः**-सिद्धि के स्वामी, **सिद्धाः**-सिद्ध भगवान, **जिनशासनोन्नतिकराः**-जिनशासन को प्रकाशित करने वाले, **आचार्याः**-आचार्य परमेष्ठी, **श्री सिद्धांतसुपाठकाः**-श्री सिद्धांत को अच्छी तरह से पढ़ाने वाले, **पूज्या उपाध्यायकाः**-पूज्य उपाध्याय परमेष्ठी, **रत्नत्रयाराधकाः**-रत्नत्रय के आराधक साधु परमेष्ठी, **एते पंच**-ये पाँच, **परमेष्ठिनः**-परमेष्ठी, **प्रतिदिनं**-प्रतिदिन, ते **मंगलम्**-तुम्हारा मंगल, **कुर्वन्तु**-करें।

भावार्थ-इन्द्रों द्वारा जिनकी पूजा की गई, ऐसे अर्हन्त भगवान, सिद्धि के स्वामी ऐसे सिद्ध भगवान, जिन शासन को प्रकाशित करने वाले ऐसे आचार्य, सिद्धांत को सुव्यवस्थित पढ़ाने वाले ऐसे पूज्य उपाध्याय, रत्नत्रय के आराधक ऐसे साधु, ये पाँचों परमेष्ठी प्रतिदिन तुम्हारे पापों को नष्ट करें और तुम्हें सुखी करें।

पूजनीय इन्द्रों से अर्हत्, सिद्ध क्षेत्र सिद्धी स्वामी।
जिनशासन को उन्नत करते, सूरी मुक्ती पथगामी॥
उपाध्याय हैं ज्ञान प्रदायक, साधू रत्नत्रय धारी।
परमेष्ठी प्रतिदिन पापों के, नाशक हों मंगलकारी॥1॥

परमेष्ठी

श्रीमन्नम्र-सुरा-सुरेन्द्र-मुकुट, प्रद्योत-रत्नप्रभा-
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरुवः कुर्वन्तु, ते (वो) मंगलम्॥2॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-**श्रीमत्**-लक्ष्मी से संयुक्त, **नम्र-नम्रीभूत-सुरासुरेन्द्र**-देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के, **मुकुट प्रद्योत**-मुकुटों के चमकदार, **रत्नप्रभा भास्वत्**-रत्नों की कांति से भास्वत, **(येन)**-जिनके, **पादनखेन्दवः**-चरणों के नखरूपी चंद्रमा हैं, **प्रवचनाम्भोधीन्दवः**-जो प्रवचनरूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चंद्रमा के समान हैं, **स्थायिनः**-जो अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं, **योगिजनैः-स्तुत्या**-योगीजन जिनकी स्तुति करते हैं, **ये सर्वे**-ये सभी, **जिन सिद्ध**-अर्हन्त, सिद्ध, **सूर्यनुगताः**-आचार्य सहित, **पाठकाः**-उपाध्याय और, **साधवः**-साधु जन, **ते मंगलम्**-तुम्हारा मंगल, **कुर्वन्तु**-करें।

भावार्थ-शोभायुक्त और नमस्कार करते हुए देवेन्द्रों व सुरेन्द्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की कांति से जिनके श्री चरणों के नखरूपी चंद्रमा की ज्योति स्फुरायमान हो रही है। जो प्रवचन रूप सागर की वृद्धि करने के लिए स्थायी चंद्रमा हैं एवं योगीजन जिनकी स्तुति करते रहते हैं, ऐसे अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधू ये पाँचों परमेष्ठी तुम्हारे पापों को नष्ट करें और तुम्हें सुखी करें।

नमित सुरासुर के मुकुटों की, मणिमय कांती शुभ्र महान्।
प्रवचन सागर की वृद्धी को, प्रभु पद नख हैं चंद्र समान॥
योगी जिनकी स्तुति करते, गुण के सागर अनगारी।
परमेष्ठी प्रतिदिन पापों के, नाशक हों मंगलकारी॥2॥

धर्म मंगल

सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति - श्री-नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्॥3॥

अन्वयार्थ-**अमलम्**-निर्मल, **सम्यग्दर्शन**-सम्यग्दर्शन, **बोध वृत्तम्**-ज्ञान चारित्र रूप, **रत्नत्रयम् पावनम्**-पवित्र रत्नत्रय को, **मुक्तिश्री**-मुक्तिरूपी लक्ष्मी के, **नगराधिनाथ**-नगराधिपति, **जिनपति**-जिनेन्द्र देव ने, **अपवर्गप्रदः**-मोक्ष को देने वाला, **धर्मः उक्तः**-धर्म कहा है, **सूक्तिसुधा**-सूक्तिसुधा (जिनागम),

अखिलम् चैत्यम्-समस्त जिन प्रतिमा और, **श्रयालयं चैत्यालयं**-लक्ष्मी का आकारभूत जिन मंदिर, **धर्मः त्रिविधम्**-धर्म तीन प्रकार का, **प्रोक्तम्**-कहा है, च **अमी**-और ये, **चतुर्विधम्**-चार प्रकार का धर्म, **ते मंगलम्**-तुम्हारा मंगल, **कुर्वन्तु**-करें।

भावार्थ-निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह पवित्र रत्नत्रय है। श्री सम्पन्न मुक्तिनगर के स्वामी भगवान जिनदेव ने इसे अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाला धर्म कहा है। इस प्रकार जो यह तीन प्रकार का धर्म कहा गया है वह तथा इसके साथ जिनागम, जिन-प्रतिमा और जिनालय मिलाकर जो चार प्रकार का धर्म कहा गया है, वह तुम्हारे पापों का क्षय करे तथा तुम्हें सुखी करे।

सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण युत, निर्मल रत्नत्रयधारी।
मोक्ष नगर के स्वामी श्री जिन, मोक्ष प्रदाता उपकारी॥
जिन आगम जिन चैत्य हमारे, जिन चैत्यालय सुखकारी।
धर्म चतुर्विध पंच पाप के, नाशक हों मंगलकारी॥3॥

शलाका पुरुष

नाभेयादि जिनाःप्रशस्त-वदना, ख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लांगलधराः सप्तोत्तरा विंशतिस्।
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्त ते (वो)मंगलम्॥4॥

अन्वयार्थ-**त्रिभुवनख्याताः**-तीनों लोकों में विख्यात, **नाभेयादि**-ऋषभ आदि, **जिनाधिपाः**-जिन स्वामी, **चतुर्विंशतिः**-चौबीस तीर्थंकर, **श्रीमन्तः**-लक्ष्मीवान, **यः**-जो, **भरतेश्वरप्रभृतयः**-भरतेश्वर आदि, **द्वादशचक्रिणः**-बारह चक्रवर्ती, **यः विष्णु**-जो नारायण, **प्रतिविष्णु**- प्रतिनारायण, **लांगलधराः**-बलभद्र, **सप्तोत्तराविंशतिः**-सात अधिक बीस अर्थात् सत्ताईस, **त्रैकाल्ये**-तीनों कालों में, **प्रथिताः**-विस्तृत (मान्य), **त्रिषष्टि पुरुषाः**-त्रेसठ शलाका पुरुष, **ते मंगलम्**-तुम्हारा मंगल, **कुर्वन्तु**-करें।

भावार्थ-तीनों लोकों में विख्यात और बाह्य तथा आभ्यंतर लक्ष्मी सम्पन्न ऋषभनाथ भगवान आदि चौबीस तीर्थंकर श्रीमान् भरतेश्वर आदि बारह चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण और नव बलभद्र ये त्रेसठ शलाका

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

महापुरुष तुम्हारे पापों का क्षय करें और तुम्हें सुखी करें।

तीन लोक में ख्यात हुए हैं, ऋषभादिक चौबिस जिनदेव।
श्रीयुत द्वादश चक्रवर्ति हैं, नारायण नव हैं बलदेव॥
प्रति नारायण सहित तिरेसठ, महापुरुष महिमाधारी।
पुरुष शलाका पंच पाप के, नाशक हों मंगलकारी॥4॥

ऋद्धि मंगल

ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगताः पञ्च ये,
ये चाष्टांग-महानिमित्त-कुशलाश्, चाष्टौ वियच्चारिणः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि ऋद्धीश्वराः
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्॥5॥

अन्वयार्थ-यः-सुतपसः-जो अच्छे तप से, **वृद्धिंगताः**-वृद्धि को प्राप्त, **पञ्च**-पाँच, **सर्वौषधि ऋद्धयः**-सर्वौषधि ऋद्धियों के स्वामी, **च**-और, **यः अष्टांग**-जो अष्टांग, **महानिमित्तकुशला**-महानिमित्तों में कुशल, **च अष्टौ**-और आठ, **वियच्चारिणः**-चारण ऋद्धियों के धारक, **पंचज्ञानधराः**-पाँच प्रकार के ज्ञानधारी, **त्रयः अपि**-तीन प्रकार के, **बलिनः**-बल से युक्त, **यः बुद्धिऋद्धीश्वराः**-जो बुद्धि ऋद्धीश्वर, **ऐसे सप्त**-सात, **सकलार्चिता मुनिवराः**-सभी के द्वारा पूजित श्रेष्ठ मुनिजन, **ते**-तुम्हारा, **मंगलम्**-मंगल, **कुर्वन्तु**-करें।

भावार्थ-जो उत्तम तप से वृद्धि को प्राप्त हुई पाँच सर्वौषधि ऋद्धियों के स्वामी हैं, अष्टांग महानिमित्तों में कुशल हैं, आठ चारण ऋद्धियों के धारी हैं, पाँच प्रकार के ज्ञान से सम्पन्न हैं, तीन प्रकार के बल से युक्त हैं और बुद्धि आदि सात प्रकार की ऋद्धियों के अधिपति हैं, वे जगत्पूज्य मुनिवर (गणधर) तुम्हारा मंगल करें।

सुतप वृद्धि करके सर्वौषधि, ऋद्धीपाई पञ्च प्रकार।
वसु विधि महा निमित् के ज्ञाता, वसुविधि चारण ऋद्धीधार॥
पंचज्ञान तिय बल भी पाये, बुद्धि सप्त ऋद्धीधारी।
ये सब गण नायक पापों के नाशक हों मंगलकारी॥6॥

निर्वाण क्षेत्र

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।

शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्॥7॥

अन्वयार्थ-वृषभस्य-ऋषभदेव की, **निर्वृतिमही**-निर्वाण भूमि, **कैलासे**-कैलास पर्वत पर है, **वीरस्य**-महावीर स्वामी की, **पावापुरे**-पावापुर में है, **वसुपूज्य**-वासुपूज्य की, **चम्पायाम्**-चम्पापुर में है, **अर्हतः**-अर्हन्त, **नेमीश्वरस्य**-नेमिनाथ स्वामी की, **ऊर्जयन्त शिखरे**-ऊर्जयन्त पर्वत पर, **च**-और, **शेषाणामपि अर्हताम्**-शेष पूज्य तीर्थकरों की, **सम्मेदशैले**-सम्मेदशिखर पर, **प्रसिद्धविभवाः**-प्रसिद्ध है विभव जिनका, **निर्वाणावनयः**-वे निर्वाण भूमियाँ, **ते**-तुम्हारा, **मंगलम्**-मंगल, **कुर्वन्तु**-करें।

भावार्थ-भगवान ऋषभदेव की कैलास पर्वत, महावीर स्वामी की पावापुर, वासुपूज्य स्वामी की चंपापुर, नेमिनाथ की ऊर्जयन्त (गिरनार) शिखर और शेष बीस तीर्थंकर जिन भगवन्तों की निर्वाण भूमि सम्मेदशिखर है। वैभव सम्पन्न वे सभी निर्वाण भूमियाँ तुम सबका कल्याण करें।

आदिनाथ स्वामी अष्टापद, वासुपूज्य चंपापुर जी।
नेमिनाथ गिरनार सुगिरि से, महावीर पावापुर जी॥
बीस जिनेश सम्मेदशिखर से, मोक्ष विभव अतिशयकारी।
सिद्ध क्षेत्र पाँचों पापों के, नाशक हों मंगलकारी॥7॥

अकृत्रिम चैत्यालय

ज्योतिर्व्यन्तर भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थताः,
जम्बूशाल्मलि-चैत्य शाखिषु तथा वक्षार रूप्याद्रिषु।
इष्वाकार-गिरौ च कुण्डल-नगे द्वीपे चे नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्॥8॥

अन्वयार्थ-ज्योतिः-ज्योतिषी, **व्यन्तरः**-व्यन्तर, **भावनामर**-भवनवासी और वैमानिकों के, **गृहे**-निवास स्थान में, **मेरौ कुलाद्रौ स्थताः**- मेरुओं में, कुलाचलों में स्थित, **जम्बू**-वृक्षों, **शाल्मलि**-शाल्मलि वृक्षों, **चैत्य शाखिषु**-चैत्य वृक्षों की शाखाओं में, **तथा वक्षार**-तथा वक्षारगिरि, **रुप्याद्रिषु**-विजयार्द्धगिरि, **इष्वाकार**-इक्ष्वाकार पर्वत, **कुण्डलनगे**-कुण्डल पर्वत, **च नन्दीश्वरे**

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

द्वीपे-और नन्दीश्वर द्वीप में, **यः मुनजोत्तरे**-जो मानुषोत्तर, **शैले**-पर्वत पर, **जिनगृहाः**-जिन चैत्यालय हैं, वे, **ते मंगलम्**-तुम्हारा मंगल, **कुर्वन्तु**-करें।

भावार्थ-ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी और वैमानिकों के आवासों के, मेरुओं कुलाचलों, जम्बूवृक्षों और शाल्मलि वृक्षों, वक्षारों, विजयार्ध पर्वतों, इक्ष्वाकार पर्वतों, कुण्डल पर्वत, नन्दीश्वर द्वीप और मानुषोत्तर पर्वत (तथा रुचिकवर पर्वत) के सभी अकृत्रिम जिन चैत्यालय तुम्हारे पापों का क्षय करें, तुम्हें सुखी बनावें।

व्यंतर भवन विमान ज्योतिषी, मेरु कुलाचल इष्वाकार।
जंबू शाल्मलि चैत्य वृक्ष की, शाखा नंदीश्वर वक्षार॥
रूप्यादि कुण्डल मनुजोत्तर, में जिनगृह अतिशयकारी।
वे सब ही पाँचों पापों के, नाशक हों मंगलकारी॥8॥

पञ्च कल्याणक

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्य पुर प्रवेश महिमा संभावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते (वो) मंगलम्॥7॥

अन्वयार्थ-य भगवताम्-जो भगवानों के, **गर्भावतरोत्सवः**-गर्भकल्याणक उत्सव, **जन्माभिषेकोत्सवः**-जन्मकल्याणक उत्सव, **परिनिष्क्रमेण**-तपकल्याणक उत्सव, **केवलज्ञानभाक्**- केवलज्ञानकल्याणक, **विभवः**-वैभव या महोत्सव, **च**-और, **यः कैवल्यपुर**-जो कैवल्यपुर, **प्रवेश महिमा**-प्रवेश की महिमा अर्थात् निर्वाण कल्याणक, **स्वर्गिभिः**-देवों द्वारा, **संभावितः जातः**-सम्पन्न किए गए, **तानि पंच**-वे पाँचों, **कल्याणानि**-कल्याणक, **ते सततम्**-तुम्हारा हमेशा, **मंगलम् कुर्वन्तु**-मंगल करें।

भावार्थ-देवों ने समस्त तीर्थंकरों के जो गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण रूप पंचकल्याणकों के महोत्सव किए, वे पंचकल्याणक महोत्सव तुम सबका हमेशा मंगल करें।

तीर्थंकर जिन भगवंतों को, गर्भ जन्म के उत्सव में।
दीक्षा केवलज्ञान विभव अरु, मोक्ष प्रवेश महोत्सव में॥
कल्याणक को प्राप्त हुए तब, देव किए अतिशय भारी।
कल्याणक पाँचों पापों के, नाशक हों मंगलकारी॥9॥

सर्व मंगल कामना

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्य-संपत्प्रदं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थ कामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय रहिता निर्वाण लक्ष्मीरपि॥10॥

अन्वयार्थ-इत्थम्-इस प्रकार, **सौभाग्यसंपत्प्रदम्**-सौभाग्य रूप सम्पत्ति के प्रदाता, **श्री जिनमंगलाष्टकम्**-श्री जिन मंगलाष्टक को, **सुधियः तीर्थंकराणाम्**-सुधी तीर्थंकरों के, **कल्याणेषु महोत्सवेषु**-कल्याणक महोत्सवों में और, **उषः**-प्रातःकाल, **यः**-जो, **शृण्वन्ति च पठन्ति**-सुनते और पढ़ते हैं, **तैः सुजनैः**-उन सज्जनों के द्वारा, **धर्मार्थ कामान्विता**-धर्म, अर्थ और काम से सहित, **लक्ष्मीः आश्रयते**-लक्ष्मी प्राप्त की जाती है और, **व्यपायरहिता**-विनाश रहित अर्थात् विनश्वर, **निर्वाण लक्ष्मीः**-मोक्ष लक्ष्मी, **अपि आश्रयते**-भी प्राप्त करते हैं।

भावार्थ-सौभाग्य सम्पत्ति को प्रदान करने वाले इस श्री जिनेन्द्र मंगलाष्टक को जो सुधी तीर्थंकर के पंचकल्याण महोत्सवों के अवसर पर तथा प्रभात काल में भावपूर्वक सुनते और पढ़ते हैं, वे सज्जन धर्म, अर्थ और काम से समन्वित लक्ष्मी के आश्रय बनते हैं तथा अंत में अविनश्वर 'विशद' मोक्ष लक्ष्मी को भी प्राप्त करते हैं।

धन वैभव सौभाग्य प्रदायक, जिन मंगल अष्टक धारा।
सुप्रभात कल्याण महोत्सव, में सुनते-पढ़ते न्यारा॥
धर्म अर्थ अरु काम समन्वित लक्ष्मी हो आश्रयकारी।
मोक्ष लक्ष्मी 'विशद' प्राप्त कर, होते हैं मंगलकारी॥10॥

• • •

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

सुप्रभात स्तोत्र

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षा ग्रहणोत्सवे यदखिल, ज्ञानप्रकाशोत्सवे।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः,
संगीत स्तुति मंगलैः प्रसरतां, मे सुप्रभातोत्सवः॥1॥

अन्वयार्थ-जिनपतेः-जिनेन्द्र भगवान के, **यत् स्वर्गावतरोत्सवे**-जो स्वर्ग से गर्भ में आने के समय किये गये उत्सव में, **यत् जन्माभिषेकोत्सवे**-जो जन्माभिषेक के समय किये गये उत्सव में, **यत् दीक्षाग्रहणोत्सवे**-जो दीक्षाग्रहण के समय किये गये उत्सव में, **यत् अखिलज्ञान प्रकाशोत्सवे**-जो केवलज्ञान प्रकट होने के समय किये गये उत्सव में, **यत् निर्वाणगमोत्सवे**-जो मोक्ष प्राप्ति के समय किये गये उत्सव में, **पूजाद्भुतम्**-आश्चर्यकारी पूजा, (अभवत्-हुई थी), **तद्भवैःमंगलैः**-उसी प्रकार मंगलरूप, **संगीत स्तुति**-गायन स्तुति से, **मे सुप्रभातोत्सवः**-मेरा सुप्रभात का उत्सव, **प्रसरताम्**-फैले (प्राप्त हो)।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र देव! जिस प्रकार आपके गर्भ कल्याणक, जन्म कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, ज्ञान कल्याणक और मोक्ष कल्याणक के समय जो उत्सव हुए, आपकी आश्चर्यकारी पूजा हुई उसी प्रकार मेरा सुप्रभात भी मंगलमय होवे।

गर्भ जन्म के उत्सव में अरु, दीक्षा ग्रहण महोत्सव में।
अखिल ज्ञान कल्याणक में भी, मोक्ष गमन के उत्सव में॥
भक्ती गीत प्रार्थना मंगल, द्वारा अनुपम अतिशय हो।
जिनपद में हम शीश झुकाते, मम् प्रभात मंगलमय हो॥1॥

श्रीमन्नतामरकिरीट मणिप्रभाभि-
रालीढ पाद-युगदुर्धर-कर्मदूर।
श्रीनाभिनन्दन! जिनाजित! सम्भवाख्य,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥2॥

अन्वयार्थ-श्रीमत्-श्रीमान्, **नतामर**-नम्रीभूत हुए देवों के, **किरीटमणिप्रभाभिः-मुकुट**-मणियों की कान्ति से, **(यस्य)**-जिनके, **आलीढपादयुग**-दोनों चरण स्पर्श किये गये तथा, **दुर्धरकर्मदूर**-जिन्होंने दुर्धर कर्मों को दूर किया ऐसे, **श्रीनाभिनन्दन**-श्री नाभिराज के पुत्र (आदिनाथ), **जिनाजित**-अजितनाथ और, **सम्भवाख्य**-संभवनाथ जिन, **त्वद्**-आपके, **ध्यान**-ध्यान से, **मम**-मेरा, **सुप्रभातं**-सुप्रभात, **सततं**-हमेशा, **अस्तु**-हो।

भावार्थ-अणिमा आदि विभूति से युक्त नम्रीभूत हुए देवों के मुकुटों की मणियों की कान्ति से जिनके दोनों चरण स्पर्श किये गए हैं, तथा जिन्होंने अत्यन्त कठिनाई से दूर करने योग्य कर्मों को दूर किया है अर्थात् नष्ट किया है ऐसे हे! श्री आदिनाथ, अजितनाथ एवं संभवनाथ जिनेन्द्र! मेरा प्रातःकाल का समय हमेशा आपके धयान में (स्तुति में) व्यतीत हो।

नमते देवों के मुकुटों की, मणियों की कांती से युक्त।
चरण कमल द्वय शोभित होते, दुरित कर्म से हुए विमुक्त॥
नाभिनंदन अजितनाथ जिन, संभव जिन की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरंतर, मम् प्रभात मंगलमय हो॥2॥

छत्रत्रय-प्रचल-चामर वीज्यमान,
देवाभिनन्दन! मुने! सुमते जिनेन्द्र!।
पद्मप्रभारुण-मणिद्युतिभासुरांग,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातं॥3॥

अन्वयार्थ-प्रचल छत्रत्रय-चलायमान तीन छत्र और, **वीज्यमान चामर**-ढुरते हुए चँवरों से सुशोभित, **देवाभिनन्दन!**-हे अभिनन्दन देव!, **सुमते मुने!**-सुमतिनाथ भगवान! तथा, **अरुणमणिद्युति**-पद्मराग मणि की कान्ति के समान, **भासुरांग**-जिनके शरीर का तेज है ऐसे, **पद्मप्रभ जिनेन्द्र!**-हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र!, **त्वद् ध्यानतः**-आपके ध्यान से, **मम**-मेरा, **सुप्रभातं**-सुप्रभात, **अस्तु**-हो।

भावार्थ-जिनके मस्तक पर तीन छत्र सुशोभित होते हैं तथा जिनके दोनों ओर चौंसठ (64) चँवर ढुरते हैं ऐसे श्री अभिनन्दन और सुमतिनाथ

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भगवान तथा पद्मरागमणि की कान्ति के समान जिनका शरीर सुशोभित होता है, ऐसे हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र! मेरा प्रातःकाल का समय हमेशा आपके ध्यान में व्यतीत हो।

छत्र त्रय से शोभित होते, ढुरते हुए चँवर संयुक्त।
अभिनंदन जिन सुमतिनाथजी, स्वर्णमयी कांती से युक्त॥
अरुणमणि सम शोभित होते, पद्म प्रभु की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो॥3॥

अर्हन्! सुपार्श्व कदलीदलवर्ण गात्र,
प्रालेयतारगिरि - मौक्तिक - वर्णगौर।
चन्द्रप्रभ स्फटिक पाण्डुर पुष्पदन्त!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥4॥

अन्वयार्थ-कदलीदल-केले के पत्ते के समान, **वर्णगात्र**-शरीर के रंग वाले, **अर्हन् सुपार्श्व**-हे सुपार्श्वनाथ, **अर्हन्-प्रालेय**-रजतगिरि, **तारगिरि**-श्वेत, **मौक्तिक वर्णगौर**-मोती के समान सफेद रंग वाले, **चन्द्रप्रभ**-हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! **स्फटिक पाण्डुर**-स्फटिक के समान निर्मल सफेद, **पुष्पदन्त**-हे पुष्पदन्त जिनेन्द्र! **त्वद्**-आपके, **ध्यानतः**-ध्यान से, **मम**-मेरा, **सुप्रभातं**-सुप्रभात, **सततं**-हमेशा, **अस्तु**-हो।

भावार्थ-केले के पत्ते अथवा उगते हुए धान्य के अंकुर के रंग के समान हरित वर्ण वाले श्री सुपार्श्व जिन! रजतगिरि अथवा मोती के समान श्वेत वर्ण वाले हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! तथा स्फटिक के समान निर्मल श्वेत वर्ण के धारक हे पुष्पदन्त जिनेन्द्र! मेरा प्रातःकाल का समय हमेशा आपके ध्यान में व्यतीत हो।

कदली दल सम हरित वर्णमय, श्री सुपार्श्व जिनवर का रूप।
ढका हुआ ज्यों बर्फ से हिमगिरि, चन्द्रप्रभु का है स्वरूप॥
श्वेत वर्ण स्फटिक मणीसम, पुष्पदंत की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो॥4॥

सन्तप्त-काञ्चनरुचे जिन-शीतलाख्य
श्रेयान्विनष्ट-दुरिताष्ट-कलंकपंक।
बन्धूकबन्धुररुचे, जिनवासुपूज्य,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥5॥

अन्वयार्थ-सन्तप्त-तपाये हुए, **कांचनरुचे**-स्वर्ण के समान कान्ति के धारक, **जिनशीतलाख्य**-हे शीतलनाथ जिन! **विनष्टदुरित**-नष्ट किया है पाप स्वरूप, **अष्टकलंकपंक**-आठ कर्मरूपी कीचड़ को जिन्होंने ऐसे, **श्रेयान्**-हे श्रेयांसनाथ भगवन्!, **बन्धूक**-बन्धूक पुष्प के समान, **बन्धुररुचे**-जिनके शरीर की कान्ति सुन्दर है ऐसे, **जिनवासुपूज्य**-हे वासुपूज्य जिन!, **त्वद् ध्यानतः**-आपके ध्यान से, **मम**-मेरा, **सुप्रभातं**-सुप्रभात, **सततं**-हमेशा, अस्तु हो।

भावार्थ-तपाए हुए स्वर्ण के समान जिनके शरीर की कान्ति है ऐसे हे शीतलनाथ भगवन्! पापरूप अष्ट कर्मों की कीचड़ को नष्ट करने (धोने) वाले हे श्रेयांसनाथ भगवन्! तथा बन्धूक पुष्प के समान सुन्दर कांतियुक्त शरीर के धारक हे वासुपूज्य भगवन्! मेरा प्रातःकाल का समय हमेशा आपके ध्यान में व्यतीत हो।

तप्त स्वर्ण सम कांती वाले, श्री शीतल जिनवर स्वामी।
दुरित कर्म वसु नष्ट किए हैं, श्री श्रेयांस मोक्षगामी॥
बंधूक पुष्प सम अरुण मनोहर, वासुपूज्य की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो॥5॥

उद्दण्ड-दर्पकरिपो विमलामलांग,
स्थेमन्ननन्त-जिदनन्त सुखाम्बुराशे।
दुष्कर्म-कल्मष-विवर्जित धर्मनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥6॥

अन्वयार्थ-उद्दण्ड-उद्दण्ड है ऐसे, **दर्पकरिपो**-काम का नाश करने वाले, **विमलामलांग**-निर्मल शरीर के धारक हे विमलनाथ भगवन्! **अनन्त**-अनन्त,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

सुखाम्बुराशे-सुख के समुद्र, **स्थेमन्ननन्तजित**-धैर्यशाली ऐसे हे अनन्तनाथ भगवन्! **दुष्कर्मकल्मष**-दुष्टकर्मरूपी पापमल से, **विवर्जित**-रहित ऐसे, **धर्मनाथ**-हे धर्मनाथ जिनेन्द्र! **त्वद् ध्यानतः**-आपके ध्यान से, **मम सुप्रभातं**-मेरा सुप्रभात, **सततं**-हमेशा, **अस्तु**-हो।

भावार्थ-उद्दण्ड (अवश) काम के नाश करने वाले निर्मल शरीर के धारक श्री विमलनाथ भगवान, अनन्त सुखों के समुद्र स्वरूप श्री अनन्तनाथ भगवान एवं कर्मरूपी पापमल को दूर करने वाले हे धर्मनाथ जिनेन्द्र! मेरा प्रातःकाल का समय हमेशा आपके ध्यान में व्यतीत हो।

उद्दण्ड दर्पमय गज के मद को, विमलनाथ जिन नाश किए।
स्थिर मन करके अनंत जिन, सुख अनंत में वास किए॥
दुष्ट कर्म मल रहित जिनेश्वर, धर्मनाथ की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो॥6॥

देवामरी कुसुम-सन्निभ शांतिनाथ,
कुन्थो! दयागुणविभूषण भूषितांग।
देवाधिदेव भगवन्नर-तीर्थनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥7॥

अन्वयार्थ-अमरी कुसुम-अमरी नामक फूल के, **सन्निभ**-समान जिनके शरीर का रंग है ऐसे, **शान्तिनाथ देव!**-हे शान्तिनाथ भगवन्! **दयागुणविभूषण**-दयागुण रूपी भूषण से, **भूषितांग**-विभूषित है शरीर जिनका ऐसे, **कुन्थो!**-हे कुन्थुनाथ जिनेन्द्र!, **तीर्थनाथ**-तीर्थ के स्वामी, **देवाधिदेव**-देवाधिदेव, **भगवन् अर!**-अरनाथ भगवन्! **त्वद् ध्यानतः**-आपके ध्यान से, **मम सुप्रभातं**-मेरा सुप्रभात, **सततं अस्तु**-हमेशा हो।

भावार्थ-अमरी ( ) नामक फूल के समान अथवा तपाये हुए स्वर्ण के समान शरीर के वर्ण वाले श्री शान्तिनाथ भगवान, दयागुण रूपी भूषण से विभूषित श्री कुन्थुनाथ भगवान एवं तीर्थ के नायक देवाधिदेव हे अरनाथ जिनेन्द्र! मेरा प्रातःकाल का समय हमेशा आपके ध्यान में व्यतीत हो।

देवामरी वृक्ष के फूलों, जैसे शोभित शांतीनाथ।
दयारूप गुण के आभूषण, से भूषित श्री कुंथूनाथ॥
देवों के भी देव जिनेश्वर, अरहनाथ की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो॥7॥

यन्मोह-मल्ल-मद-भञ्जन-मल्लिनाथ,
क्षेमंकरावितथ शासनसुव्रताख्य।
सत्सम्पदा-प्रशमितो नमि-नामधेय,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥8॥

अन्वयार्थ-यत्-जो, **मोहमल्ल**-मोहरूपी मल्ल का, **मदभंजन**-मदनाश करने वाले हैं ऐसे, **मल्लिनाथ**-हे मल्लिनाथ भगवन्!, **क्षेमंकरा**-कल्याणकारी, **अवितथ**-सत्य, **शासन**-शासन है जिनका ऐसे, **सुव्रताख्य**-हे मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र! **सत्सम्पदा**-श्रेष्ठ सम्पत्ति से, **प्रशमितो**-परम शांत अवस्था को प्राप्त, **नमिनामधेय**-हे नमिनाथ भगवन्! **त्वद्ध्यानतः**-आपके ध्यान से, **मम सुप्रभातं**-मेरा सुप्रभात, **सततं अस्तु**-हमेशा हो।

भावार्थ-मोहरूपी मल्ल का नाश करने वाले हे मल्लिनाथ जिनेन्द्र! परम कल्याणकारी सत्यशासन है जिनका ऐसे मुनिसुव्रतनाथ भगवान! तथा रत्नत्रयरूप श्रेष्ठ सम्पदा से परम शान्त अवस्था को प्राप्त हे नमिनाथ जिनेन्द्र! मेरा प्रातःकाल का समय हमेशा आपके ध्यान में व्यतीत हो।

मोह मल्ल के मद का भंजन, करते हैं श्री मल्लीनाथ।
सत् शासन युत मुनिसुव्रतजी, झुका रहे हम चरणों माथ॥
त्यागा राज्य संपदा वैभव, नमीनाथ की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो॥8॥

तापिच्छ-गुच्छ-रुचिरोज्ज्वल नेमिनाथ,
घोरोपसर्ग विजयन् जिन! पार्श्वनाथ।
स्याद्वादसूक्ति मणिदर्पण वर्धमान,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥9॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-तापिच्छगुच्छ-तमालवृक्ष के समुदाय के समान, **रुचिरोज्ज्वल**-सुन्दर उज्ज्वल कान्ति के धारक, **नेमिनाथ**-हे नेमिनाथ भगवान, **घोरोपसर्ग**-भयंकर उपसर्ग को, **विजयन**-जीतने वाले, जिन! **पार्श्वनाथ**-हे पार्श्वनाथ जिन! तथा, **स्याद्वादसूक्ति**-स्याद्वाद सिद्धान्त रूपी, **मणिदर्पण**-मणि के लिये, दर्पण के समान, **वर्द्धमान**-हे वर्द्धमान जिनेन्द्र!, **त्वद्ध्यानतः**-आपके ध्यान से, **मम सुप्रभातं**-मेरा सुप्रभात, **सततं अस्तु**-हमेशा हो।

भावार्थ-तमालवृक्ष के समुदाय की सघन छाया के समान सुन्दर कान्ति के धारक श्री नेमिनाथ भगवान कमठ के द्वारा किये गए भयंकर उपसर्ग को जीतने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान एवं स्याद्वाद सिद्धान्त रूपी मणि के लिए दर्पण के समान हे वर्धमान जिनेन्द्र! मेरा प्रातःकाल का समय हमेशा आपके ध्यान में व्यतीत हो।

तरु तमाल के पुष्पों सम हैं, नेमिनाथ की कांति महान्।
जीते हैं उपसर्ग घोर अति, श्री जिन पार्श्वनाथ भगवान॥
स्याद्वाद सूक्ती मणि दर्पण, वर्द्धमान की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो॥9॥

प्रालेयनील हरितारुण पीतभासं,
यन्मूर्तिमव्यय सुखावसथं मुनीन्द्राः।
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥10॥

अन्वयार्थ-यत् मूर्तिम्-जिनके शरीर की कान्ति, **प्रालेय**-सफेद, **नील**-नीले, **हरितारुण**-हरे, लाल एवं, **पीतभासं**-पीतवर्ण से सुशोभित हैं, **अव्यय**-जो अविनाशी, **सुखावसथं**-सुख के स्थान हैं ऐसे, **सप्ततिशतं**-एक सौ सत्तर, **जिनवल्लभानां**-जिन तीर्थंकरों (का), **मुनीन्द्राः**-मुनिजन, **ध्यायन्ति**-ध्यान करते हैं (ऐसे हे भगवान), **त्वद्ध्यानतः**-आपके ध्यान से, **मम सुप्रभातं**-मेरा सुप्रभात, **सततं अस्तु**-हमेशा हो।

भावार्थ-जिनके शरीर की कान्ति सफेद, नीला, हरित, लाल और पीत (तपाये हुए स्वर्ण के समान) वर्ण वाली है, जो अविनाशी सुख के स्थान हैं, मुनिजन जिनका ध्यान करते हैं ऐसे 170 जिन तीर्थंकर भगवन्तों के ध्यान में मेरा प्रातःकाल का समय हमेशा व्यतीत हो।

धवल नील अरु हरित लाल रंग, पीले में शोभा पाते।
वीतराग अविनाशी सुखमय, गणधरादि जिनको ध्याते॥
एक सौ सत्तर एक काल के, तीर्थंकर की जय-जय हो।
ध्यान आपका रहे निरन्तर, मम् प्रभात मंगलमय हो॥10॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, मांगल्यं परिकीर्तितम्।
चतुर्विंशतितीर्थानां, सुप्रभातं दिने दिने॥11॥

अन्वयार्थ-दिने दिने-प्रत्येक दिन, **चतुर्विंशति**-चौबीस, **तीर्थानां**-तीर्थंकरों का, **सुप्रभातं**-प्रातःकाल का (स्तवन ध्यान), **सुप्रभातं**-सुप्रभात रूप, **सुनक्षत्रं**-उत्तम नक्षत्र रूप तथा, **मांगल्यं**-मंगलरूप, **परिकीर्तितम्**-कीर्तन करने योग्य है।

भावार्थ-प्रत्येक दिन चौबीस तीर्थंकर का प्रातःकाल (स्तवन ध्यान रूप) सुप्रभात उत्तम नक्षत्र तथा मंगलरूप कीर्तन करने योग्य है अर्थात् कीर्तन करने वाला भी गुणगान-कीर्तन को पा जाता है।

चौबीस तीर्थंकर जिनदेव, सुप्रभात नक्षत्र सुएव।
प्रतिदिन स्तुति मंगल सोय, मम् प्रभात मंगलमय होय॥11॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्।
देवता ऋषयः सिद्धाः, सुप्रभातं दिने दिने॥12॥

अन्वयार्थ-देवता-अर्हन्त देव, **ऋषयः**-मुनिजन, **(च)**-और, **सिद्धाः**-सिद्ध, **दिने-दिने**-प्रत्येक दिन, **सुप्रभातं**-सुप्रभात रूप हैं तथा वह, **सुप्रभातं**-सुप्रभात, **सुनक्षत्रं**-उत्तम नक्षत्र रूप तथा, **श्रेयः**-कल्याणकारी और, **प्रत्यभिनन्दितम्**-उत्तम मंगलरूप माना है।

भावार्थ-देवाधिदेव अर्हन्त भगवान, गणधरादि मुनिगण और सिद्ध प्रभु

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

प्रत्येक दिन के सुप्रभात रूप हैं और वह सुप्रभात उत्तम नक्षत्र तथा उत्तम मंगलरूप माना गया है।

परम सिद्ध ऋषिवर नवदेव, सुप्रभात नक्षत्र सुएव।
श्रेय से खुश करते हैं सोय, मम् प्रभात मंगलमय होय॥12॥

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः।
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्व सुखावहम्॥13॥

अन्वयार्थ-येन-जिन्होंने, **भव्यसत्त्व**-भव्य जीवों को, **सुखावहम्**-सुख देने वाले, **तीर्थं प्रवर्तितं**-तीर्थ को चलाया, **तवैकस्य**-उन अद्वितीय, **वृषभस्य महात्मनः**-महान आदिनाथ भगवान का, **सुप्रभातं**-प्रातःकाल उत्तम मानने योग्य हैं।

भावार्थ-जिन्होंने भव्य जीवों को सुख देने वाले तीर्थ को चलाया है ऐसे उन महात्मन् आदिनाथ भगवान का प्रातःकाल (स्मरण ध्यान) उत्तम मानने योग्य हैं।

धर्म के आप महात्मन् एक, करते तीर्थ प्रवर्तन नेक।
भविजन जिससे सुखमय होय, मम् प्रभात मंगलमय होय॥13॥

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलित चक्षुषाम।
अज्ञानतिमिरान्धानां, नित्यमस्तमितो रविः॥14॥

अन्वयार्थ-ज्ञानोन्मीलित-ज्ञान के द्वार खोल दिये हैं, **चक्षुषाम्**-दूसरे जीवों के नेत्र, **येन**-जिन्होंने ऐसे, **जिनेन्द्राणां**-जिनेन्द्र भगवान का, **सुप्रभातं**-सुप्रभात, **अज्ञान तिमिर**-अज्ञानरूपी अन्धकार से, **अन्धानां**-अन्धे पुरुषों को, **(शुभं भूयात्)**-शुभ हो, **नित्यमस्तमितः**-यह नित्य दिखने वाला, **रविः**-सूर्य तो अस्त स्वरूप है।

भावार्थ-जिन्होंने केवलज्ञान रूपी सूर्य के द्वारा अज्ञान अन्धकार से ग्रसित भव्य जीवों को सन्मार्ग दिखाया है, ऐसे उन जिनेन्द्र भगवान का सुप्रभात सभी के लिए मंगलमय हो, शुभ हो।

जीवों में छाया अज्ञान, देते जिनवर सम्यक्ज्ञान।
तम को जैसे सूरज खोय, मम् प्रभात मंगलमय होय॥14॥

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवीदग्धा, शुक्लध्यानोग्रवह्निना॥15॥

अन्वयार्थ-कमललोचनः-कमल के समान नेत्र वाले, **वीरः**-महावीर प्रभु, **येन**-जिन्होंने, **शुक्लध्यान**-शुक्लध्यानरूपी, **उग्रवह्निना**-तेज अग्नि के द्वारा, **कर्माटवीदग्धा**-कर्मरूपी जंगल को जला दिया, **जिनेन्द्रस्य**-ऐसे उन (वीर) जिनेन्द्र भगवान का, **सुप्रभातं**-सुप्रभात, **(भद्रं भूयात)**-कल्याणरूप हो।

भावार्थ-कमल के समान सुन्दर जिनके नेत्र हैं जिन्होंने शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा कर्मरूपी जंगल को जला दिया है ऐसे उन महावीर भगवान का सुप्रभात हम सबके लिये मंगलरूपी हो।

शुक्ल ध्यान की अग्नि माँय, कर्मों का वन दिये जलाय।
नयन कमल सम जिनके सोय, मम् प्रभात मंगलमय होय॥15॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमंगलम्।
त्रैलोक्यहितकर्त्तृणां, जिनानामेव शासनम्॥16॥

अन्वयार्थ-त्रैलोक्य-तीन लोक का, **हितकर्तृणा**-हित करने वाले, **जिनानाम्**-जिनेन्द्र भगवान का, **शासनम् एव**-शासन ही, **सुप्रभातं**-सुप्रभात रूप, **सुनक्षत्रं**-सुनक्षत्र रूप और, **सुकल्याणं**-सुकल्याण रूप और, **सुमंगलम्**-सुमंगलरूप है।

भावार्थ-इस संसार में तीनों लोकों का हित करने वाला श्री जिनेन्द्र भगवान का शासन ही सुप्रभात, सुनक्षत्र, सुकल्याण और 'विशद' सुमंगलरूप है।

सुनक्षत्र मंगल कल्याण, तीन लोक का करते त्राण।
शासन 'विशद' प्रभु का सोय, मम् प्रभात मंगलमय होय॥16॥

॥ इति सुप्रभातं ॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

महावीराष्टक स्तोत्र

ज्ञातादृष्टा

यदीये चैतन्ये मुकुर इव, भावाश्चिदचितः,
समं भांति ध्रौव्य व्यय जनि लसंतोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।१।।

अन्वयार्थ-यदीये-जिनके, **चैतन्ये**-चैतन्य रूप ज्ञान में, **ध्रौव्य-व्यय-जनि**-ध्रौव्य, व्यय और उत्पाद से युक्त, **लसन्तः**-शोभायमान्, **अन्तरहिताः**-अन्तरहित, **चिदचितः भावाः**-चेतन और अचेतन पदार्थ, **मुकुर इव**-दर्पण के समान, **समम् भान्ति**-एक साथ प्रतिबिम्बित होते हैं, **जगत्साक्षी**-जगत् के साक्षात्कार करने वाले, **भानुःइव**-सूर्य के समान, **यः**-जो मार्गप्रकटन **परः**-मोक्षमार्ग के प्रकाश हैं, **(सः) महावीर स्वामी**-वे महावीर स्वामी, **मे**-मेरे, **नयनपथगामी**-नेत्रों के मार्गगामी, **भवतु**-होवें।

भावार्थ-जिनके केलवज्ञान रूप दर्पण में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त अनन्त चेतन-अचेतन पदार्थ एक साथ झलकते हैं; जो संसार को प्रत्यक्ष करनेवाले सूर्य के समान मोक्षमार्ग बतलाने वाले हैं, ऐसे महावीर भगवान हमारे नयनों में हमेशा निवास करते रहें।

ज्ञानादर्श में युगपद दिखते जीवाजीव द्रव्य सारे।
व्यय, उत्पाद, धौव्य प्रतिभाषित, अंत रहित होते न्यारे॥
जग को मुक्ती पथ प्रकटाते रवि सम जिन अन्तर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम् नयनों के पथगामी॥1॥

प्रशान्त मुद्रावान

अताम्रं यच्चक्षुः कमल युगलं स्पन्दरहितम्,
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विमला,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।२।।

अन्वयार्थ-अताम्रम्-लालिमा रहित, **स्पन्दरहितम्**-परिस्पन्द रहित, **यच्चक्षुः**-जिनके नेत्र, **कमलयुगलं**-कमल युगल, **जनान्**-मनुष्यों को, **आभ्यन्तरम्**-भीतरी, **वा**-अथवा (बाह्य), **कोपाऽपायं**-क्रोध के अभाव को, **अपि**-भी, **प्रकटयति**-प्रकट करते हैं, **यस्य मूर्तिः**-जिनकी मुद्रा, **स्फुटम्**-स्पष्ट रूप से, **प्रशमितमयी**-परम शान्ति की धारक, **वा**-और, **अतिविमला**-अत्यन्त निर्मल है, **(सः)**-वे, **महावीर स्वामी**-महावीर स्वामी, **मे**-मेरे, **नयनपथगामी**-नेत्रों के मार्गगामी, **भवतु**-होवे।

भावार्थ-जिनके नेत्रकमल लालिमा से रहित होने से अन्तरंग में क्रोध के सर्वथा अभाव को प्रकट करते हैं तथा परिस्पंदन (टिमकार) रहित हैं। जिनकी मुद्रा परम शांत एवं अत्यंत निर्मल है, ऐसे महावीर भगवान हमारे नयनों में हमेशा निवास करते रहें।

नयन कमल झपते नहिं दोनों, क्रोध लालिमा से भी हीन।
जिनकी मुद्रा शांत विमल है, अंतर बाहर भाव विहीन॥
क्रोध भाव से रहित लोक में, प्रगटित हैं अन्तर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम् नयनों के पथगामी॥2॥

अत्यन्त शोभायमान

नमन्नाकेन्द्राली मुकुटमणि भाजालजटिलं,
लसत्पादाम्भोज द्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्वाला शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।३।।

अन्वयार्थ-यदीयं-जिनके, **पादाम्भोज द्वयम्**-दोनों चरण कमल, **नमन्नाकेन्द्राली**-नमन करते हुए स्वर्ग के देवों की पंक्ति के, **मुकुटमणि**-मुकुट मणियों की, **भाजाल जटिलं**-प्रभा-पुंज से प्राप्त, **लसत्**-सुशोभित, **इह**-इस जगत् में, **स्मृतम् अपि**-स्मरण मात्र भी, **तनुभृताम्**-संसारी जीवों के, **भवज्वाला**-संसार ज्वाला की, **शान्त्यै**-शान्ति के लिये, **जलं प्रभवति**-जल बन जाता है, **(सः)**-वे, **महावीर स्वामी**-महावीर स्वामी, **मे**-मेरे, **नयन-पथगामी**-नेत्रों के मार्गगामी, **भवतु**-होवें।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-जिनके दोनों चरण-कमल नमस्कार करते हुए देवेन्द्रों की मुकुट-मणियों की प्रभा से शोभायमान हैं। इस जगत् में जिनका स्मरण मात्र भी संसारी जीवों के संसार की ज्वाला की शान्ति के लिए जल बन जाता है, ऐसे महावीर भगवान हमारे नयनों में हमेशा निवास करते रहें।

नमित सुरों के मुकुट मणी की, आभा हुई है कांतीमान।
दोनों चरण कमल की भक्ती, भक्तजनों को नीर समान॥
दुखहर्ता सुखकर्ता जग में, जन-जन के अंतर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हो, मम् नयनों के पथगामी॥3॥

भक्ति का फल

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगण समृद्धः सुखनिधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुख समाजं किमुतदा,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।४।।

अन्वयार्थ-यदर्चा भावेन-जिनकी पूजा करने के भाव से, **प्रमुदित मनाः**-आनन्दित चित्त वाला, **दर्दुर**-मेंढक, **इह**-इस लोक में, **क्षणात्**-क्षण भर में ही, **गुण गण समृद्धः** गुण के समुदाय से सम्पन्न, **सुख निधिः**-सुख का निधान, **स्वर्गी आसीत्**-स्वर्ग में देव बना था, **तदा**-तब, **सद्भक्ताः**-जो सद्भक्त हैं वे, **शिवसुख समाजम्**-मोक्ष के सुख समूह को, **लभन्ते**-पाते हैं, **किमु तदा**-इसमें आश्चर्य क्या है, **(सः)**-वे, **महावीर स्वामी**-महावीर स्वामी, **मे**-मेरे, **नयन पथगामी**-नेत्रों के मार्गगामी, **भवतु**-होवें।

भावार्थ-जिनकी पूजा करने के भाव से हर्षित चित्त वाला, मेंढक क्षण भर में ही अणिमा-महिमा आदि गुणों के समूह से युक्त, सुख से भरपूर स्वर्ग में देव हो गया, तब जो सद्भक्त हैं वे आपकी भक्ति से मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं इसमें आश्चर्य की क्या बात है? ऐसे महावीर भगवान हमारे नयनों में हमेशाा निवास करते रहें।

हर्षित मन होकर मेंढक ने, जिन पूजा के भाव किए।
क्षण में मरकर गुण समूह युत, देवगति अवतार लिए॥
क्या अतिशय नर भक्ति आपकी, करके हो अंतर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम् नयनों के पथगामी॥4॥

विविध स्वरूप

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत तनुर्ज्ञान निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपति वर सिद्धार्थ तनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद् भुत गतिः,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।५।।

अन्वयार्थ-कनत्स्वर्णाभासः-अपि-चमकते हुए स्वर्ण के समान कान्तिमान होने पर भी, **अपगत तनुः**-शरीर रहित, **ज्ञान-निवहः**-ज्ञान समूह, **विचित्र आत्मा**-अनेक गुण होने से अनेक रूप, **अपि एक**-भी एक, **नृपति वर**-श्रेष्ठ राजा, **सिद्धार्थतनयः**-सिद्धार्थ के पुत्र, **अपि**-फिर भी, **अजन्म**-जन्म रहित, **श्रीमान् अपि**-लक्ष्मीवान फिर भी, **विगत भव राग**-सांसारिक राग से रहित, **अद्भुत गतिः**-ऐसे अद्भुत गति के धारक, **(सः)**-वे, **महावीर स्वामी**-महावीर स्वामी, **मे**-मेरे, **नयन पथगामी**-नेत्रों के मार्गगामी, **भवतु**-होवें।

भावार्थ-स्वर्ण के समान कान्ति वाले होने पर भी जो शरीर रहित हैं। ज्ञान के समूह अनेक गुणों से युक्त होने पर भी जो एक रूप हैं। श्रेष्ठ राजा सिद्धार्थ के पुत्र होकर भी जो जन्म रहित हैं तथा लक्ष्मीवान् होने पर भी जिनका संसार रूप राग निकल चुका है ऐसे अद्भुत (विचित्र) गति (अथवा मोक्षगति) को प्राप्त महावीर भगवान हमारे नयनों में हमेशा निवास करते रहें।

स्वर्ण समा तन को पाकर भी, तन से आप विहीन रहे।
पुत्र नृपति सिद्धारथ के हैं, फिर भी तन से हीन कहे॥
राग-द्वेष से रहित आप हैं, श्री युत हैं अंतर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम् नयनों के पथगामी॥5॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

जिनवाणी स्वरूप

यदीया वाग्गंगा विविधनय कल्लोल विमला,
वृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।६।।

अन्वयार्थ-यदीया-जिनकी, **या**-जो विविध **नयकल्लोल**-अनेक नयरूप तरंगों से, **विमला**-उज्ज्वल, **वाग्गंगा**-वाणी रूपी गंगा, **बृहज्**-विपुल, **ज्ञानाम्भोभिः**-ज्ञान रूप जल से, **जगति**-इस लोक में, **जनताम्**-प्राणियों को, **स्नपयति**-नहलाती है, **इदानीम् अपि**-आज भी, **एषा**-ऐसी यह जिनवाणी, **बुधजन-मरालैः**-विद्वज्जन रूपी हंसो से, **परिचिता**-परिचित हो रही है, **(सः)**-वे, **महावीर स्वामी**-महावीर स्वामी, **मे**-मेरे, **नयन पथगामी**-नेत्रों के मार्गगामी, **भवतु**-होंवे।

भावार्थ-विविध प्रकार के नयरूप तरंगों से युक्त जिनकी विमल दिव्यध्वनि रूपी गंगा जगत् के जीवों को विशिष्ट ज्ञान रूपी जल से नहलाती है और ज्ञानीजन रूपी हंसो से आज भी जानी जाती है ऐसे महावीर भगवान हमारे नयनों में हमेशा निवास करते रहें।

जिनके वचनों की गंगा शुभ, नाना नय कल्लोल विमल।
महत् ज्ञान जल से जन-जन को, प्रच्छालित कर करके अमल॥
बुधजन हंस सुपरिचित होकर, बन जाते अंतर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम् नयनों के पथगामी॥6॥

त्रिभुअव विजयी

अनिर्वारोद्रेकस् त्रिभुवनजयी कामसुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येनविजितः।
स्फुरन्नित्यानन्द प्रशमपद राज्याय स जिनः,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।७।।

अन्वयार्थ-येन-जिसने, **कुमारावस्थायाम्**-कुमार अवस्था में, **अपि**-भी, **स्फुरन्**-स्फुरायमान, **नित्यानन्द प्रशम**-नित्य आनन्द वाले प्रशान्त,

पदराज्याय-शिवपद के राज्य को पाने के लिए, **निजबलात्**-अपने आत्म बल से, **अनिर्वारोद्रेकः**-दुर्निवार उद्रेक वाले, **त्रिभुवनजयी**-त्रिभुवन विजेता, **कामसुभटः**-कामरूपी महान योद्धा को, **विजितः**-जीता है, **स**-वे, **जिनः**-जिनेन्द्र, **महावीरस्वामी**-महावीर स्वामी, **मे**-मेरे, **नयन पथगामी**-नेत्रों के मार्गगामी, **भवतु**-होवें।

भावार्थ-जिन्होंने स्फुरायमान नित्य आनन्द रूप प्रशान्त पद (मोक्ष) का राज्य पाने के लिए अपने आत्मबल से कुमार अवस्था में ही त्रिभुवनजयी दुर्निवार कामरूपी योद्धा को जीता है, ऐसे महावीर भगवान हमारे नयनों में हमेशा निवास करते रहें।

तीन लोक में कामबली पर, विजय प्राप्त करना मुश्किल।
लघु वय में अनुपम निज बल से, विजय प्राप्त कर हुए विमल॥
सुख शांती शिव पद को पाकर, आप हुए अंतर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम् नयनों के पथगामी॥7॥

त्रिलोक शरण

महामोहातंक प्रशमन पराकस्मिक्भिषङ्,
निरापेक्षो बन्धुर्विदित महिमा मंगलकरः।
शरण्यः साधूनां भवभय भृतामुत्तम गुणो,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।।८।।

अन्वयार्थ-महामोहातंक-महामोह रूपी रोग को, **प्रशमन**-शान्त करने में तत्पर, **परा आकस्मिकभिषक्**-आकस्मिक (अकारण) वैद्य, **निरापेक्षोबन्धुः**-अपेक्षा रहित बन्धु, **विदित महिमा**-जिनकी महिमा प्रकट है, **मंगलकरः**-मंगलकारी, **भव-भयभृताम**-संसार के भय से भरे हुए, **साधूनाम्**-साधुजनों को, **शरण्यः**-शरण देनेवाले, **उत्तमगुणः**-परमोत्कृष्ट गुणों से सम्पन्न, **(सः)**-वे, **महावीर स्वामी**-महावीर स्वामी, **मे**-मेरे, **नयन-पथगामी**-नेत्रों के मार्गगामी, **भवतु**-होवें।

भावार्थ-जो मोहरूपी रोग को शमन करने के लिए आकस्मिक वैद्य हैं, अपेक्षा रहित बन्धु हैं, जिनकी महानता प्रकट है, जो मंगल करने

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

वाले हैं तथा संसार से भयभीत साधु-सज्जन पुरुषों को शरणभूत हैं, ऐसे महावीर भगवान हमारे नयनों में हमेशा निवास करते रहें।

महामोह के शमन हेतु शुभ, कुशल वैद्य हो आप महान्।
निरापेक्ष बंधु हैं सुखकर, उत्तम गुण रत्नों की खान॥
भव भयशील साधुओं को हैं, शरण भूत अन्तर्यामी।
ऐसे श्री महावीर प्रभु हों, मम् नयनों के पथगामी॥8॥

अन्तिम मंगल

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
यः पठेच्छ्रणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम्।।९।।

अन्वयार्थ-भागेन्दुना-भागचन्द के द्वारा, **भक्त्या**-भक्तिपूर्व, **कृतम्**-रचित, **महावीराष्टकम्**-इस आठ श्लोक वाले (महावीराष्टक), **स्तोत्रम्**-स्तोत्र को, **यः**-जो, **पठेत्**-पढ़ेगा, **चः अपि**-और (अथवा), **शृणुयात्**-सुनेगा, **स**-वह, **परमाम्**-परम (शिव), **गतिम्**-गति को, **याति**-जाता है

भावार्थ-पं. भागचन्दजी द्वारा भक्ति से रचे गये इस महावीर स्वामी के आठ श्लोक के स्तोत्र (अष्टक) को जो भी पढ़ता और सुनता है वह 'विशद' मोक्षगति को प्राप्त होता है।

भागचंद भागेन्दु ने, भक्ति भाव के साथ।
महावीर अष्टक लिखा, झुका चरण में माथ॥
पढ़े सुने जो भाव से, श्रेष्ठ सुगति को पाय।
भाषा पढ़के काव्य की, 'विशद' वीर बन जाय॥9॥

॥इति भागेन्दु कृत महावीराष्टक-स्तोत्रम्॥

विषय रूप विष का विनाशकर, बहुभाषाओं के विनिवास।
इस संसार बाश के नाशी, दीप्ति लता का किए विकास॥
निज परिणामों के निवास रत, यश फैला हैं विशद दिगन्त।
शशि सम गाए हैं इस जग में, वर्धमान जिन हों जयवंत॥

भक्तामर स्तोत्र

भक्तामर-प्रणत मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकम्-दलित-पाप -तमो वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य-जिन-पाद -युगं-युगादा-
वालम्बनं - भवजले - पततां - जनानाम्।।१।।

अन्वयार्थ-भक्त-भजने वाले, **अमर**-देवों के, **प्रणत**-नम्रीभूत, **मौलि**-मुकुटों के, **मणि**-मणियों की, **प्रभाणाम्**-कांति को, **उद्योतकम्**-बढ़ाने वाले, **पाप**-पापरूपी, **तमः**-अंधकार के, **वितानम्**-समूह के, **दलित**-नाशक, **युगादा**-युग के आदि में, **भवजले**-संसार समुद्र में, **पतताम्**-गिरे हुए, **जनानाम्**-प्राणियों के, **आलम्बनं**-रक्षक, **जिनपाद युगं**-ऋषभदेव जिनवर के दोनों चरणों को, **सम्यक्**-सत्यता से, **प्रणम्य**-नमस्कार करूँगा'

भावार्थ-देवों के मुकटों में लगी मणि को कांतिमान करने वाले, पापसमूह के नाशक, कर्मयुग के प्रारम्भ में संसार समुद्र में डूबने वालों को जिनके दोनों चरण संसार से तिरने को आलम्बन हैं। मैं उन आदि प्रभु को नमस्कार करके स्तुति करूँगा।

भक्त चरण में झुकते आके, मुकुट मणी की कांति महान।
पाप तिमिर सब नाशनहारी, दिव्य दिवाकर सम्यक ज्ञान॥
भव समुद्र में पतित जनों को, देते हैं जो आलम्बन।
आदिनाथ के चरण कमल में, करते हम शत् शत् वन्दन॥1॥

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रैर् जगत्-त्रितय-चित्त-हरै-रुदारैः
स्तोष्ये किलाह-मपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।२।।

अन्वयार्थ-यः-जो ऋषभदेव भगवान, **सकल**-समस्त, **वाङ्मय**-द्वादशांग के, **तत्त्वबोधात्**-यथार्थ ज्ञान से, **उद्भूत**-उत्पन्न हुई, **बुद्धिपटुभिः**-विशिष्ट बुद्धि से चतुर, **सुरलोकनाथैः**-इन्द्रों के द्वारा, **जगत्-त्रितय**-तीनों लोकों

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

के प्राणियों के, **चित्त-हरैः**-चित्त को लुभाने वाले/हरने वाले, च-और, **उदारैः**-प्रशंसनीय, **स्तोत्रैः**-स्तोत्रों के द्वारा, **संस्तुतः**-स्तुति किये गये थे, **तम्**-उन, **प्रथमम्**-पहले, **जिनेन्द्रम्**-ऋषभनाथ जिनेन्द्र को/की, **अहम्**-मैं, **अपि**-भी, **किल**-निश्चय से, **स्तोष्ये**-स्तुति करूँगा।

भावार्थ-द्वादशांग वाणी व तत्त्वज्ञान में जो चतुर, ऐसे बृहस्पति द्वारा मनमोहक स्तोत्रों से जिनकी स्तुति की गई है, अतः मैं भी उन आदि प्रभु की निश्चय से स्तुति करूँगा।

सकल तत्त्व के ज्ञाता अनुपम, सकल बुद्धि पटु धी धारी।
इन्द्रराज भी स्तुति करता, नत होकर जन मन हारी॥
हैं स्तुत्य प्रथम जिन स्वामी, महिमा हम भी गाते हैं।
जयकारा करते हैं चरणों, सादर शीश झुकाते हैं॥2॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ,
स्तोतुं समुद्यत - मतिर् - विगत - त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थित-मिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम।।३।।

अन्वयार्थ-विबुधा-देवों के द्वारा, **अर्चित**-पूजित है, पाद पीठ-पैरों के रखने की चौकी ऐसे हे जिनेश! **विगतत्रपोः**-लज्जा रहित, **अहम्**-मैं, **बुद्ध्या विना**-बुद्धि के बिना, **अपि**-भी, **स्तोतुम्**-स्तुति करने के लिए, **समुद्यत मतिः**-तत्पर, प्रयत्नशील हो रहा हूँ, **यतः**-क्योंकि, **जल संस्थितम्**-जल में प्रतिबिम्बित, **इन्दुबिम्बम्**- चन्द्रमण्डल को, **सहसा**-बिना विचारे, **ग्रहीतुम्**-पकड़ने को, **बालम्**-बालक या अज्ञानी को, **विहाय**-छोड़कर, **अन्यः**-अन्य, **कः**-कौन, **जनः**-मुनष्य, **इच्छति**-इच्छा करता है अर्थात् कोई भी नहीं।

भावार्थ-हे स्वामी! आपकी सेवा देवों द्वारा की गयी है अतः मंदबुद्धि होते हुए भी आपकी भक्ति करता हूँ। मेरा यह प्रयास वैसा ही है जैसे-कोई बालक जल में पड़े चन्द्रबिंब को अल्प बुद्धि के कारण शीघ्र पकड़ने को दौड़ता है।

मन्द बुद्धि हम स्तुति करते, नहीं जरा भी शर्माते।
विज्ञ जनों से अर्चित हैं प्रभु, ज्ञानी आप कहे जाते॥
जल में चन्द्र बिम्ब की छाया, पाने बालक जिद् करता।
सत्य स्वरूप जानने वाला, ज्ञानी कर्मों से डरता॥3॥

वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र शशांक-कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - नक्र - चक्रं
को वा तरीतु - मल - मम्बु - निधिं भुजाभ्याम्।।४।।

अन्वयार्थ-गुणसमुद्र!-हे गुणों के सागर!, **ते**-आपके, **शशाङ्क कान्तान्**-चन्द्रमा की कांति के समान उज्ज्वल, **गुणान्**-गुणों को, **वक्तुम्**-कहने के लिए, **बुद्ध्या**-बुद्धि से, **सुरगुरुप्रतिमः**-बृहस्पति के समान, **अपि**-भी, **कः**-कौन पुरुष, **क्षमः**-समर्थ, **अस्ति**-है, **वा**-जैसे, **कल्पान्तकाल**-प्रलयकाल की प्रचण्ड, **पवनोद्धत**-वायु से कुपित, **नक्रचक्रम्**-मगरमच्छों से परिपूर्ण को, **अम्बुनिधिम्**-समुद्र को, **भुजाभ्याम्**-भुजाओं से, **तरीतुम्**-तैरने के लिये/पार करने मे, **कः**-कौन, **अलम्**-समर्थ, **अस्ति**-है? अर्थात् कोई भी नहीं।

भावार्थ-हे गुणसागर! चन्द्रकांति सम उज्ज्वल आपके गुणों को कहने में बृहस्पति के समान कौन सक्षम है? मैं तो बहुत तुच्छ बुद्धि का धारक हूँ वैसे ही प्रलयकाल में उद्धत पवन के साथ मगरमच्छ समूह से युक्त सागर को अपने हाथों से पार करने में कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं।

चन्द्र कांति से बढ़कर हे जिन! आप धवल कांती पाए।
हे गुण सागर! महिमा गाने में, सुरगुरु भी थक जाए॥
नक्र चक्र मगरादि होवें, प्रलय काल की चले बयार।
कौन भुजाओं से सागर को, कर सकता है बोलो पार॥4॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश,
कर्तुं स्तवं विगत-शक्ति-रपि प्रवृत्तः।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

प्रीत्यात्म-वीर्य-मवि-चार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परि-पाल-नार्थम्।।५।।

अन्वयार्थ-मुनीश!-हे मुनीश्वर!, **तथापि**-तो भी, **विगतशक्तिः अपि**-सामर्थ्यहीन होते हुए भी, **सःअहम्**-वह मैं अल्पज्ञ, **भक्ति वशात्**-भक्ति के वशीभूत होकर, **तव**-आपकी, **स्तवम्**-स्तुति को, **कर्तुम्**-करने के लिये, **प्रवृतः**-तैयार हुआ हूँ, **यथा**-जैसे, **मृगी**-हिरणी, **वीर्यम्**-अपनी शक्ति को, **अविचार्य**-नहीं विचार कर, **प्रीत्यात्म**-आत्म स्नेह से, **निजशिशोः**-अपने बच्चे की, **परिपालनार्थम्**-रक्षा के लिए, **किम्**-क्या, **मृगेन्द्रम**-सिंह के सामने, **न अभ्येति**-नहीं आती/अर्थात् आती है।

भावार्थ-हे मुनीश! जिस प्रकार कमजोर हिरणी पुत्र स्नेह के कारण अपने शिशु को बचाने के लिए शक्ति का ख्याल न करते हुए शेर से लड़ती है, उसी प्रकार मैं भी शक्ति रहित होते हुए भी आपकी स्तुति में प्रवृत्त हो रहा हूँ।

शक्ति नहीं भक्ती से प्रेरित, हो स्तुति करने आए।
नाथ! आपके दर्शन करके, मन ही मन में हर्षाए॥
निज शिशु की रक्षा हेतू मृगि, अहो! विचार कहाँ करती।
जाकर मृगपति के सम्मुख वह, रक्षा कर संकट हरती॥5॥

अल्प-श्रुतं श्रुत-वतां परिहास - धाम,
त्वद्-भक्ति-रेव मुखरी-कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल-मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र - चारु - कलिका - निकरैक - हेतु।।६।।

अन्वयार्थ-अल्पश्रुतं-अल्प शास्त्र का जाननेवाला, **श्रुतवतां**-विद्वानों की, **परिहासधाम**-हँसी का पात्र हो रहा हूँ, **माम्**-मुझको, **त्वद्भक्तिः**- आपकी भक्ति, **एव**-ही, **बलात्**-बलपूर्वक, **मुखरी कुरुते**-वाचाल/प्रेरित कर रही है, **यत्**-जो, **कोकिलः**-कोयल, **किल**-निश्चय से, **मधौ**-बसन्त ऋतु में, **मधुरं**-सुरीली आवाज में, **विरौति**-कुहकती/बोलती है, **तत् च**-उसमें, **आम्र**-आम की, **चारुकलिका**-सुन्दर-मंजरी का, **निकर**-समुदाय ही, **एकहेतु**-एक मात्र कारण है।

भावार्थ-आपकी स्तुति करने में मैं अल्पज्ञानी हूँ, विद्वानों के द्वारा हास्य का पात्र हूँ; लेकिन आपकी भक्ति मुझे बलात् वाचाल बना रही है। जैसे बसंत ऋतु में कोयल को गुंजन कराने के लिए निश्चय से सुन्दर आम्र मंजरी ही मुख्य कारण है।

अल्प ज्ञानि हम ज्ञानी जन से, हास्य कराते हैं इक मात्र।
भक्ति आपकी प्रेरित करती, अतः भक्ति के हैं हम पात्र॥
आम्र वृक्ष पर बौर आए तब, कोयल करे मधुर शुभगान।
नाथ! आपकी भक्ती करती, प्रेरित करने को गुणगान॥6॥

त्वत्-संस्तवेन भव सन्तति सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्-क्षय-मुपैति शरीर-भाजाम्।
आक्रान्त - लोक - मलि - नील - मशेष - माशु,
सूर्यांशु-भिन्न-मिव शार्वर-मन्ध-कारम्।।७।।

अन्वयार्थ-त्वत्संस्तवेन-आपके स्तवन से, **शरीरभाजाम्**-शरीरधारी प्राणियों के, **भवसन्तति**-अनेक भवों की परम्परा से, **सन्निबद्धम्**-बंधे हुए, **पापं**-पाप कर्म, **क्षणात्**-क्षणभर में, **क्षयम्**-क्षय को, **उपैति**-प्राप्त हो जाते हैं, **इव**-जैसे, **आक्रान्तलोकम्**-लोक में व्याप्त, **अलिनीलम्**-भौंरे के समान काला, **शार्वरम्**-रात्रि का **अशेषम्**-सम्पूर्ण, **अन्धकारम्**-अंधकार, **आशु**-शीघ्र, **सूर्यान्शु भिन्नम्**-सूर्य की किरणों से छिन्न-भिन्न हो जाता है।

भावार्थ-हे जिनेश! आपके सच्चे स्तवन से प्राणियों के भव-भव के अर्जित कर्म क्षण में क्षय हो जाते हैं सो ठीक ही है रात्रिभर रहने वाला अंधेरा सूर्य की एक किरण से ही क्षण में क्षय हो जाता है।

स्तुति से हे नाथ! आपकी, कट जाते चिर संचित पाप।
शीघ्र भाग जाते हैं क्षण में, जरा नहीं रहता संताप॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

तीन लोक में भ्रमर सरीखा, तम छाया भारी घन घोर।
पूर्ण नाश हो जाता क्षण में, सूर्योदय होते ही भोर॥7॥

मत्त्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता - फल - द्युति - मुपैति ननूद - बिन्दुः।।८।।

अन्वयार्थ-नाथ!-हे नाथ!, **इति मत्वा**-ऐसा मानकर, **मया तनुधिया**-मुझ अल्प बुद्धि के द्वारा, **अपि**-भी, **तव**-तुम्हारा, **इदम्**-यह, **संस्तवनम्**-स्तवन, **आरभ्यते**-आरम्भ किया जा रहा है, **तव**-आपके, **प्रभावात्**-प्रभाव से यह स्तवन, **सताम्**-सज्जनों के, **चेतः**-चित्त को, **हरिष्यति**-हरण करेगा/आकर्षित करेगा, **ननु**-निश्चय से, **उदबिन्दुः**-जल की बूँदें, **नलिनीदलेषु**-कमलनी के पत्तों पर, **मुक्ताफल**-मोती की, **द्युतिम्**-कांति/शोभा को, **उपैति**-प्राप्त होती हैं।

भावार्थ-जिस प्रकार कमल के पत्ते के प्रभाव के कारण पत्ते पर पड़ी जल की बूँद मोती सी लगती है वैसे ही मुझ अल्पज्ञ के द्वारा किया गया यह स्तवन सज्जनों के मन को आकर्षित करेगा तो इसमें आपका ही प्रभाव है।

हूँ मतिमान आपकी फिर भी, शुभ स्तुति आरम्भ करी।
चित्त हरण करती जन-जन का, भक्ति आपकी शांति भरी॥
कमल पत्र पर जल कण जैसे, मोती की उपमा पाए।
नाथ! आपकी स्तुति जग में, सज्जन का मन हर्षाए॥8॥

आस्तां तव स्तवन - मस्त - समस्त - दोषं,
त्वत्-संकथाऽपि जगतां दुरि-तानि हन्ति।
दूरे सहस्त्र - किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्मा-करेषु जलजानि विकास-भाञ्जि।।६।।

अन्वयार्थ-तव-तुम्हारा, **अस्त-समस्त-दोषं**-समस्त दोष से रहित/निर्दोष,

स्तवन-स्तवन तो, **दूरे**-दूर, **आस्ताम्**-रहे परन्तु, **त्वत् सङ्कथापि**-तुम्हारे नाम की पवित्र कथा भी, **जगतां**-संसारी प्राणियों के, **दुरितानि**-पापों को, **हन्ति**-नष्ट करती है, **सहस्रकिरण**- सूर्य, **दूरे आस्तां**-दूर ही रहे किन्तु उसकी, **प्रभैव**-कांति, एव-ही, **पद्माकरेषु**-सरोवरों मे, **जलजानि**-कमलों को, **विकासभांजि**- विकसित, **कुरुते**-कर देती है।

भावार्थ-सूर्य की तो बात ही क्या जब उसकी प्रभा से ही सरोवर में कमल खिल जाते हैं ठीक वैसे ही आपकी स्तुति तो दूर आपकी पवित्र कथा से ही प्राणियों के सभी पाप दूर हो जाते हैं।

प्रभु स्तोत्र आपका क्षण में, सारे दोष विनाश करे।
पुण्य कथा भी प्रभू आपकी, जन्म जन्म का पाप हरे॥
सहस रश्मि वाला सूरज ज्यों, गगन में रहता है अतिदूर।
सागर में कमलों को देता, सुरवि प्रभा अपनी भरपूर॥9॥

नात्यद् - भुतं भुवन - भूषण भूतनाथ!,
भूतैर्-गुणैर्-भुवि भवन्त-मभिष्टु-वन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्या-श्रितं य इह नात्म समं करोति।।१०।।

अन्वयार्थ-भुवन-भूषण!-हे तीन भुवन के आभूषण!, **भूतनाथ**-हे जगन्नाथ!, **भूतैः**-प्राणियों से, **गुणैः**-गुणों के द्वारा, **भवन्तम्**-आपकी, **अभिष्टुवन्तः**-स्तुति करने वाले पुरुष, **भुवि**-पृथ्वी पर, **भवतः**-आपके, **तुल्या**-समान, **भवन्ति**-हो जाते हैं, **इति**-यह बात, **अत्यद्भुतम्**-अति आश्चर्यकारक, **न**-नहीं, **वा**-अथवा, **ननु**-निश्चय से, **तेन**-उस स्वामी से, **किम्**-क्या लाभ है?, **यः**-जो, **इह**-इस लोक में, **आश्रितम्**-अपने आश्रित रहने वाले मनुष्य को, **भूति**-वैभव से/धन सम्पत्ति से, **आत्मसमम्**-अपने समान, न **करोति**-नहीं करता है।

भावार्थ-हे जगभूषण! प्राणियों के स्वामी! आपके यथार्थ गुणों की भक्ति करने वाले इस पृथ्वी पर आप जैसे ही हो जाते हैं, इसमें कोई अचरज

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

नहीं। सच्चा मालिक वही है, जो अपने आश्रित को स्वयं अपने जैसा बना ले।

त्रिभुवन तिलक आप हो स्वामी, सब जीवों के नाथ कहे।
सद्भक्तों को निज सम करते, इसमें क्या आश्चर्य रहे॥
धनी लोग स्वाश्रित को धन दे, कर लेते हैं स्वयं समान।
नहीं करे तो कौन कहेगा, स्वामी को हे नाथ! महान॥10॥

दृष्ट्वा भवन्त - मनि - मेष - विलोक - नीयम्,
नान्यत्र तोष - मुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर - द्युति - दुग्ध - सिन्धोः
क्षारं जलं जल - निधे - रसितुं क इच्छेत्।।११।।

अन्वयार्थ-**अनिमेष**-अपलक दृष्टि से/बिना पलक झपकाये, **विलोकनीयं**-देखने के योग्य **भवन्तम्**-आपको, **दृष्टवा**-देखकर, **जनस्य**-मनुष्य की, **चक्षुः**-आँखें, **अन्यत्र**-और कहीं पर/कुदेवादि में, **तोषम्**-संतोष को, **न उपयाति**-प्राप्त नही होती हैं, **शशिकर- द्युति**-चन्द्रमा की किरणों की कांति वाले, **दुग्ध-सिन्धोः**-क्षीरसागर के, **पयः**-जल को, **पीत्त्वा**-पीकर, **कः**-कौन मनुष्य, **जलनिधेः**-लवण समुद्र के, **क्षारम्**-खारे, **जलम्**-जल को, **रसितुम्**-पीने के लिए, **इच्छेत्**-इच्छा करेगा/अर्थात् कोई नहीं।

भावार्थ-हे जिनवर! अपलक देखने योग्य आपका रूप देखकर जो संतोष प्राप्त होता है वह अन्य देवों को देखकर नहीं होता। क्या क्षीरसागर का कांतिमय मिष्ठ जल पीने वाला, क्षारीय जल पीना चाहेगा? अर्थात् कोई नहीं।

नाथ! आपका दर्शन करके, भक्त हृदय में होता हर्ष।
और नहीं सन्तोष कहीं है, बिना आपके करके दर्श॥
क्षीर सिन्धु का चन्द्र किरण सम, जो मानव करता जलपान।
कालोदधि का खारा पानी, कौन पियेगा हो अज्ञान॥11॥

यैः शान्त - राग - रुचिभिः परमाणु - भिस्त्वं,
निर्मापितस् - त्रिभुवनैक - ललामभूत!।

तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्याम्,
यत्ते समान-मपरं न हि रूप - मस्ति।।१२।।

अन्वयार्थ-**त्रिभुवनैक**-हे त्रिभुवन में एकमात्र अद्वितीय, **ललामभूत**-सौन्दर्य धारक भगवन्, **यैः शांतराग**-जिन शान्त भावों को धारकर कांति वाले, **रुचिभिः**-सुन्दर, **परमाणुभिः**-परमाणुओं से, **त्वम्**-आप, **निर्मापितः**-बनाये गये हो, **ते**-वे, **अणवः**-परमाणु, **अपि**-भी, **खलु**-निश्चय से, **तावन्त**-उतने, **एव**-ही थे (जितने आपके शरीर में लग गये हैं), **यत्**-क्योंकि, **पृथिव्यां**-पृथ्वी पर, **ते समानम्**-आपके समान, **अपरं**-दूसरा, **रूपं**-रूप, **न हि**-निश्चय से नहीं, **अस्ति**-है।

भावार्थ-हे भगवन्! जितने संसार में वीतरागता के परमाणु थे वे सब आप में ही प्रयुक्त हो गए हैं, इसलिए आप जैसा कोई दूसरा रूप मिलता नहीं, तीन भुवन के अनुपम मुकुट आप ही हो।

हुआ आपके तन का स्वामी, जितने अणुओं से निर्माण।
उतने ही अणु थे धरती पर, शांत रागमय श्रेष्ठ महान॥
हे अद्वितीय शिरोमणि प्रभु, तीन लोक के आभूषण।
नहीं आपसा सुन्दर कोई, नहीं आपसा आकर्षण॥12॥

वक्त्रं क्व ते सुर - नरो - रग - नेत्र - हारि,
निःशेष - निर्जित - जगत् - त्रितयोप - मानम्।
बिम्बं कलंक - मलिनं क्व निशा - करस्य,
यद् - वासरे भवति पाण्डु - पलाश - कल्पम्।।१३।।

अन्वयार्थ-**सुर**-देव, **नर**-मनुष्य और, **उरग**-धरणेन्द्रों के, **नेत्र**-नेत्रों को, **हारि**-हरण करने वाला एवं, **निःशेष**-समस्त प्रकार से, **निर्जित**-जीत लिया है, **जगत्त्रितय**-तीनों जगत की, **उपमानम्**-उपमाओं को जिसने ऐसा, **ते**-आपका, **वक्त्रं**-मुखमण्डल, **क्व**-कहाँ? और, **कलंकमलिनम्**- कलंक से मलिन, **निशाकरस्य**-चन्द्रमा का, **बिम्बम्**- बिम्ब, **क्व**-कहाँ? **यत्**-जो कि, **वासरे**-दिन में, **पलाश-कल्पम्**-पलाश पुष्प के पत्र के समान/ ढाक पुष्प के पत्ते के समान, **पाण्डु**-फीका/पीला, **भवति**-हो जाता है।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-कहाँ आपका मुख, जो देवों-मानवों के नेत्र हरण करने वाला, तीनों लोक की उपमाओं को निष्प्रभ करने वाला और कहाँ वह कलंकी चन्द्रमा जो दिन में ढाक पुष्प के पत्ते जैसा निष्प्रभ हो जाता है।

सुन्दर अनुपम मुख वाले जिन, सुर नर नाग नेत्रहारी।
तीन लोक की उपमा जीते, हे निर्ग्रन्थ! भेष धारी॥
है कलंक से युक्त चंद्रमा, उस से तुलना कौन करे।
हो पलास सा फीका दिन में, वही चन्द्रमा दीन अरे!॥13॥

सम्पूर्ण - मण्डल -शशांक - कला - कलाप,
शुभ्रा - गुणास् - त्रिभुवनं तव लंघयन्ति।
ये संश्रितास् - त्रिजगदीश्वर नाथ - मेकम्,
कस्तान् निवारयति संचरतो यथेष्टम्।।१४।।

अन्वयार्थ-त्रिजगदीश्वर!-हे तीनों जगत् के ईश्वर!, **तव**-आपके, **सम्पूर्ण**-मण्डल, **शशांक**-पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल की, **कला-कलाप**-कला समूह के समान, **शुभ्रा**-उज्ज्वल, **गुणाः**-गुण, **त्रिभुवनम्**-तीनों लोकों को, **लंघयन्ति**-उल्लंघन करते हैं, **ये**-जिन्होंने, **एकम्**-एकमात्र, **नाथम्**-आप जैसे स्वामी का, **संश्रिताः**-आश्रय लिया है, **तान्**-उन्हें, **यथेष्टम्**-स्वेच्छानुसार, **संचरतः**-विचरण करने से, **कः**-कौन, **निवारयति**-रोक सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

भावार्थ-हे त्रिलोकीनाथ! जिस प्रकार राजा के आधीन रहने वालों को घूमने से कौन रोक सकता है? उसी प्रकार आपके आधीन रहने वाले प्राणियों को संसार में इच्छानुसार विचरने से कौन रोक सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

कला कलाओं से बढ़के है, पूर्ण चन्द्रमा कांतीमान।
तीन लोक में व्याप रहे हैं, प्रभु के गुण भी पूर्ण महान॥
जिन गुण विचरें तीन लोक में, जगन्नाथ का पा आधार।
कौन रोक सकता है उनको, किसको है इतना अधिकार॥14॥

चित्रं कि - मत्र यदि ते त्रिदशांग - नाभिर्
नीतं मना - गपि मनो न विकार - मार्गम्।

कल्पान्त-काल-मरुता चलिता - चलेन,
किं मन्द - राद्रि - शिखरं चलितं कदाचित्।।१५।।

अन्वयार्थ-यदि-यदि, **ते**-आपका, **मनः**-मन, **त्रिदशांगनाभिः**- देवांगनाओं के द्वारा, **मनाक्**-जरा सा/लेशमात्र, **अपि**-भी, **विकारमार्गम्**-विकारी भावों को, **न नीतम्**-नहीं प्राप्त हुआ हो, **अत्र**-इसमें, **चित्रम् किं**-आश्चर्य ही क्या है?, **चलिताचलेन**-पर्वतों को चलायमान करने वाले, **कल्पान्तकाल**-प्रलयकाल की, **मरुता**-पवन से/वायु के द्वारा, **किम्**-क्या, **कदाचित्**-कभी, **मन्दराद्रि शिखरम्**-सुमेरु पर्वत का शिखर/चोटी, **चलितम्**-चलायमान हुआ है/हिलाया गया है? अर्थात् नहीं हिलाया गया।

भावार्थ-हे नाथ! प्रचण्ड पवन के द्वारा भी क्या मेरु पर्वत हिलाया जा सका? नहीं। उसी प्रकार आपको देवांगनाओं के द्वारा चलायमान नहीं किया जा सका। आपकी शक्ति अतुल है।

नहीं डिगा पाईं प्रभु का मन, हुई देवियाँ भी लाचार।
इसमें क्या आश्चर्य है कोई, कामदेव ने मानी हार॥
प्रलय काल की वायू चलती, पर्वत भी गिर-गिर जाते।
हिलता नहीं सुमेरू फिर भी, ऐसी अचल शक्ति पाते॥15॥

निर्धूम - वर्ति - रप - वर्जित - तैल - पूरः
कृत्स्नं जगत्-त्रय-मिदं प्रकटी-करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता-चलानाम्,
दीपोऽपरस्त्व-मसि नाथ! जगत्-प्रकाशः।।१६।।

अन्वयार्थ-नाथ!-हे नाथ!, **त्वम्**-आप, **निर्धूमवर्तिः**-धुँआ और बाती से रहित, **अपवर्जित-तैलपूरः**-तैल के पूर से रहित हो, फिर भी, **इदं**-इस, **कृत्स्नम्**-समस्त, **जगत्त्रयम्**-तीनों जगत् को, **प्रकटीकरोषि**-प्रकाशित करते हो तथा, **चलिताचलानाम्**-अचल पर्वतों को चलायमान करने वाली, **मरुतां**-वायु से भी, **जातु**-कदाचित् भी, **गम्यः**-बुझने योग्य, **न**-नहीं हो, **जगत्प्रकाशः**-अतः आप जगत् प्रकाशक, **अपरः**-अपूर्व, **दीपः**-दीपक, **असि**-हो।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-हे नाथ! तेल-बाती, धूम से रहित होते हुए भी तीनों लोक को प्रकाशित करने वाले आप अपूर्व दीप हो जिसे प्रलयकाल की हवाएँ भी बुझा नहीं पातीं।

धुँआ तेल बाती बिन दीपक, नाथ! आप कहलाते हो।
तीनों लोक प्रकाशित करते, शिव पथ आप दिखाते हो॥
वायु ऐसी तेज चले कि, सुगिरि शिखर उड़-उड़ जाए।
एक अलौकिक दीप आप हो, कोई नहीं बुझा पाए॥16॥

नास्तं कदाचि - दुप - यासि न राहु - गम्यः
स्पष्टी - करोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भो - धरो - दर - निरुद्ध महा - प्रभावः
सूर्याति - शायि - महि - मासि मुनीन्द्र! लोके।।१७।।

अन्वयार्थ-मुनीन्द्र!-हे मुनियों के इन्द्र! **त्वम्**-तुम, **कदाचित्**-कभी, **न अस्तम् उपयासि**-न अस्त को प्राप्त होते हो, **न राहुगम्यः**-न राहु के द्वारा ग्रसे जाते हो, **न अम्भोधरोदर**-न मेघ के माध्यम से, **निरुद्ध**-छिपा गया है, **महाप्रभावः**-महान् तेज जिसका ऐसे भी नहीं हो तथा, **युगपत्**-एक साथ, **जगन्ति**-तीनों लोकों को, **सहसा**-शीघ्र ही, **स्पष्टीकरोषि**-प्रकाशित करते हो, **इति**-इस तरह आप, **लोके**-इस संसार में, **सूर्य**-सूर्य से, **अतिशायि**-अधिक, महिमा **असि**-महिमा वाले हो।

भावार्थ-हे मुनीन्द्र! न आप अस्त होते हो, न आप राहु से ग्रसित होते हो, न आप बादलों से ढके जाते हो; लेकिन फिर भी तीनों लोक को प्रकाशित करते हो, आपका प्रभाव तीनों लोक में अद्वितीय महिमा वाला है।

उदय अस्त न होता जिसको, और न राहू ग्रस पाए।
तीनों लोक का ज्ञान आपका, एक साथ सब दिखलाए॥
घने मेघ ढक सकें कभी न, न प्रभाव कम हो पाता।
महिमाशाली दिनकर चरणों, स्वयं आपके झुक जाता॥17॥

नित्यो-दयं दलित-मोह-महान्ध-कारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारि-दानाम्
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्प-कान्ति,
विद्यो- तयज्- जगद पूर्व- शशांक- बिम्बम्।।१८।।

अन्वयार्थ-तव-आपका, **मुखाब्जम्**-मुख कमल, **नित्योदयम्**-सदा काल उदित रहने वाला है/नित्य उदित रहने वाला है, **दलित**-नष्ट कर दिया है, **मोह**-मोहरूपी, **महान्धकारम्**-महान् अन्धकार को जिसने ऐसा तथा, **अनल्पकान्ति**-अत्यधिक कान्ति से युक्त है, **न**-नहीं **राहुवदनस्य**-राहु के मुख के द्वारा, **गम्यम्**-समर्थ है/नहीं ग्रसा जाता है, **न वारिदानाम्**-न मेघों के, **जगत्**-जगत को, **विद्योतयत्**-प्रकाशित करता हुआ, **अपूर्व शशांक बिम्बम्**-अद्वितीय चन्द्र बिम्ब के समान, **विभ्राजते**-सुशोभित होता है।

भावार्थ-हे भगवान! हमेशा उदित, मोहांधकार का नाशक, राहु को, बादलों से तिरस्कृत करने वाला आपका मुख कमल तीनों लोक में अपूर्व कान्ति के लिए चन्द्र मण्डल सा सुशोभित होता है।

मोहमहातम के नाशक प्रभु, सदा उदित रहते स्वामी।
राहु गम्य न मेघ से ढकते, हे शिव पथ! के अनुगामी॥
अतुल कांतिमय रूप आपका, मुख मण्डल भी दमक रहा।
जगत शिरोमणि हे शशांक! जिन, तुमसे जग ये चमक रहा॥18॥

किं शर्वरीषु शशि-नाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्-मुखेन्दु-दलितेषु तमःसु नाथ!।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज् - जलधरैर् - जलभार - नम्रैः।।१९।।

अन्वयार्थ-नाथ!-हे नाथ!, **तमः सु**-समस्त अंधकार, **युष्मन्मुखेन्दु**-आपके मुखचन्द्र द्वारा, **दलितेषु**-नष्ट कर दिये जाने पर, **शर्वरीषु**-रात्रि में, **शशिना**-चन्द्रमा से, **किम्**-क्या प्रयोजन है?, **वा**-और, **अन्हि**-दिन में, **विवस्वता**-सूर्य से, **किम्**-क्या प्रयोजन है?, **जीवलोके**-संसार में, **निष्पन्नशालि वन शालिनि**-खेतों

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

में धान्य के पक जाने पर, **जलभारनम्रैः**-जल के भार से झुके हुए, **जलधरैः**-मेघों से, **कियत्**-क्या, **कार्यम्**-काम अर्थात् कुछ नहीं।

भावार्थ-हे नाथ! खेत में धान्य पक जाने पर बादलों का वर्षा के लिए झुकने से क्या लाभ? वैसे ही आपके मुख कमल से सभी अन्धकार मिट गया तो अब दिन में रवि, रात्रि में शशि से क्या लाभ? अर्थात् कुछ नहीं।

मुख मण्डल जिन दिव्य तेजमय, अन्धकार का करे विनाश।
दिन में सूर्य और रात्री में, चन्द्र बिम्ब की फिर क्या आस॥
धान्य खेत में पके हुए शुभ, लहराएँ अतिशय अभिराम।
जल से भरे सधन मेघों का, रहा बताओ फिर क्या काम॥19॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृताव-काशं,
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच - शकले किरणा - कुलेऽपि।।२०।।

अन्वयार्थ-कृतावकाशं-पूर्ण रूप से विकसित, **ज्ञानं**-ज्ञान, **यथा**-जैसा, **त्वयि**-आप में, **विभाति**-सुशोभित हो रहा है, **एवं**-वैसा ज्ञान, हरि **हरादिषु**-ब्रह्मा, विष्णु हरिहर महेशादि, **नायकेषु**-देवों में, **न**-सुशोभित नहीं होता, यथा-जैसा, **तेजः**-तेज, **महामणिषु**-प्रकाश महामणियों में, **महत्त्वम्**-महत्त्व को, **याति**-प्राप्त होता है, **तु**-निश्चय से, **तथा**-वैसा महत्त्व, किरणाकुले **अपि**-सूर्य की किरणों से चमकते हुए भी, **काचशकले**-काँच के टुकड़ों में, **न एवं विभाति**-नहीं शोभित होता है।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! जो ज्ञान आप में शोभित है ऐसा हरि हरादिक देवों में नहीं दिखता, ठीक उसी तरह जो शोभा महामणियों में प्राप्त होती है, वह काँच के टुकड़ों में नहीं।

शोभित होता प्रभू आपका, स्वपर प्रकाशी केवल ज्ञान।
हरिहरादि देवों में वैसा, प्रकट नहीं हो सके प्रधान॥

महारत्न ज्योतिर्मय किरणों, वाला शुभ देखा जाता।
किरणाकुलित काँच क्या वैसी, उत्तम आभा को पाता॥20॥

मन्ये वरं हरि-हरादय एवं दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोष-मेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन् मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि।।२१।।

अन्वयार्थ-नाथ!-हे भगवान! मैंने, **हरिहरादयः**-हरि, हर आदि देवों को, **दृष्टा**-देखा, **एव**-वे ही, **वरं**-उत्तम हैं, **मन्ये**-ऐसा मैं मानता था, **येषु**-क्योंकि उनके, **दृष्टेषु**-देख लेने पर भी, **हृदयम्**-हृदय को, **त्वयि**-आप में, **तोषम्**-संतोष, **एति**-प्राप्त होता है, अथवा **भवता**-आपको, **वीक्षितेनः**-देखने से, **किम्**-क्या, **येन**-जिससे कि, **भुवि**-भूमण्डल पर, **अन्यः**-अन्य, **कश्चित्**-कोई देव, **भवान्तरे**-जन्मान्तर में, **अपि**-भी, **मनः**-मेरे मन को, **न हरति**-हरण नहीं कर सकता है।

भावार्थ-हे गणनाथ! आपके दर्शन कर लेने के बाद अन्य हरिहर देवादि के दर्शन करने से हृदय संतोषित नहीं होता, किंचित् मन उनको देखने के लिए भी नहीं होता है ये आपके स्वरूप का आकर्षण ही है।

हरिहरादि देवों का हमनें, माना उत्तम अवलोकन।
नहिं सन्तोष प्राप्त करता है, बिना आपको देखे मन॥
तुम्हें देखने से हे स्वामी!, लाभ हुआ मुझको भारी।
भूला भटका चंचल मेरा, चित्त हुआ है अविकारी॥21॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्व-दुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिम्,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुर-दंशु-जालम्।।२२।।

अन्वयार्थ-शतानि-सैकड़ों, **स्त्रीणाम**-स्त्रियाँ, **शतशोः**-सैकड़ों, **पुत्रान्**-पुत्रों को, **जनयन्ति**-जन्म देती हैं परन्तु, **अन्या**-अन्य कोई, **जननी**-माता,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

त्वदुपमम्-आप जैसे, **सुतं**-पुत्र को, **न प्रसूता**-जन्म नहीं दे सकी, **सर्वा**-सभी, **दिशः**-दिशाएँ, **भानि**-ताराओं को, **दधति**-धारण करती हैं, **किन्तु स्फुरत्**-दैदीप्यमान, **अंशुजालम्**-किरणों के समूह वाले, **सहस्ररश्मिं**-सूर्य को, **प्राची**-एक पूर्व, **दिक् एव**-दिशा ही, **जनयति**-उत्पन्न करती है।

भावार्थ-हे प्रभु! सूर्य को केवल पूर्व दिशा ही प्रगट कर पाती है अन्य दिशाएँ नहीं, वैसे ही अन्य सैकड़ों स्त्रियाँ, सैकड़ों पुत्र उत्पन्न कर सकती हैं, लेकिन आप जैसा लाल केवल आपकी माँ को ही प्राप्त हुआ है।

जहाँ सैकड़ों सुत को जनने, वाली सौ-सौ माताएँ।
मगर आपको जनने का, सौभाग्य श्रेष्ठ जननी पाएँ॥
सर्व दिशाएँ नक्षत्रों को, पाती ना कोई खाली।
पूर्ण प्रतापी सूरज को बस, पूर्व दिशा जनने वाली॥22॥

त्वा-मा-मनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्ण-ममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वा-मेव सम्य-गुप-लभ्य जयन्ति मृत्युम्,
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः।।२३।।

अन्वयार्थ-मुनीन्द्र!-हे मुनीश्वर! **मुनयः**-मुनिजन, **त्वाम्**-आपको, **आदित्य-वर्णम्**-सूर्य के समान तेजस्वी, **अमलम्**-निर्मल, तमसः **पुरस्तात्**-अंधकार से रहित, **परमम्**-सर्वश्रेष्ठ, **पुमांसम्**-पुरुष, **आमनन्ति**-मानते हैं और, **त्वाम् एवं**-आपको ही, **सम्यक्**-भलीभाँति, **उपलभ्य**-प्राप्त करके, **मृत्युम्**-मृत्यु को, **जयन्ति**-जीतते हैं अतः आपके बिना, **शिव-पदस्य**-मोक्ष पद का, **अन्यः**-दूसरा, **शिवः**- कल्याणकारी, **पन्थाः**-मार्ग, **न अस्ति**-नहीं है।

भावार्थ-हे प्रभु! तपस्वी जन आपको सूर्य के समान निर्मल मानते हुए आपको हृदय में पाकर मृत्यु पर विजय पा लेते हैं इसके अलावा दूसरा मोक्षपथ का कोई रास्ता नहीं है।

हे मुनियों के नाथ आपका, परम पुरुष करते गुणगान।
सूर्यकान्त सम तेजवंत हो, मृत्युंजय मेरे भगवान॥
नाथ! आपको छोड़ कोई ना, शिवमारग दिखलाता है।
'विशद' आपको ध्याने वाला, मृत्युंजय हो जाता है॥23॥

त्वामव्ययं विभु - मचिन्त्य - मसंख्य - माद्यं,
ब्रह्माण मीश्वर - मनन्त - मनंग - केतुम्।
योगीश्वरं विदित - योग - मनेक - मेकं
ज्ञान - स्वरूप - ममलं प्रवदन्ति सन्तः।।२४।।

अन्वयार्थ-सन्तः-सन्त/सज्जन पुरुष, **त्वाम्**-आपको, **अव्ययम्**-अक्षय, **विभुम्**-ज्ञान रूप से व्यापक, **अचिन्त्यम्**-चिंतन में नहीं आने वाले, **असंख्यम्**-असंख्य गुणों से युक्त, **आद्यम्**-प्रथम, **ब्रह्माणम्**-ब्रह्मा/ईश्वर, **अनन्तम्**-अनन्त, **अनंगकेतुम्**-काम विनाशक (कामरूपी बाण को नष्ट करने वाले) **योगीश्वरम्**-योगियों के ईश्वर, **विदित-योगम्**-योग के ज्ञायक, **अनेकम्**-गुण पर्याय के अपेक्षा अनेक रूप, **एकम्**-जीवद्रव्य की अपेक्षा एकरूप, **ज्ञानस्वरूपम्**-केवलज्ञानस्वरूप, **अमलं**-कर्ममल से रहित/निर्मल, **प्रवदन्ति**-कहते हैं।

भावार्थ-हे जिनेश्वर! सज्जन लोग आपको, अव्यय, विभु, अचिन्त्य, आदि, ब्रह्मा, ईश्वर, अनंत, अनंगकेतु, योगीश्वर, विदितयोग, अनेक, एक, ज्ञानस्वरूप और निर्मल कहते हैं।

आदिब्रह्म ईश्वर जगदीश्वर, एकानेक अनन्त मुनीश!।
विजित योग अक्षय मकरध्वज, विमलज्ञान मय हे जगदीश!॥
जगन्नाथ जगतीपति आदिक, कहलाते हो हे वागीश!।
इत्यादिक नामों के द्वारा, जाने जाते हे जगदीश!॥24॥

बुद्धस्त्व - मेव विबुधार्चित - बुद्धि - बोधात्,
त्वं शंकरोऽसि भुवन - त्रय - शंकरत्वात्।
धातासि धीर! शिव-मार्ग विधेर्-विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि।।२५।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-**विबुध**-देवताओं के द्वारा, **अर्चित**-पूजित, **बुद्धि-बोधात्**-केवलज्ञानी होने से, **त्वम् एव**-आप ही, **बुद्धः**-बुद्ध हो, **भुवनत्रय**-तीनों भुवनों में, **शंकरत्वात्**-सुख शांति करने से, **त्वम्**-तुम ही, **शंकरः**-शंकर, **असि**-हो, **धीर**-हे धीर वीर! **शिवमार्ग**-मोक्षमार्ग की, **विधेः विधानात्**-विधि के विधान करने से, **त्वं धातासि**-तुम ही विधाता/ब्रह्मा, **असि**-हो इस प्रकार, **भगवन्**-हे भगवन्!, **व्यक्तं**-स्पष्ट रूप से, **त्वम् एव**-आप ही, **पुरुषोत्तमः**-पुरुषोत्तम/विष्णु, **असि**-हो।

भावार्थ-हे भगवान! केवलज्ञान होने से आप ही बुद्ध हो। सुख-शांति देने वाले होने से आप ही शंकर हो। सत्य पथ देने के कारण आप ही ब्रह्मा हो। निर्मोह व परम अहिंसक होने से आप ही पुरुषोत्तम हो।

केवल ज्ञान बोधि को पाने, वाले आप कहाए बुद्ध।
त्रय लोकों के शोक हरणहर, शंकर आप कहाते शुद्ध॥
मोक्ष मार्ग दर्शाने वाले, आप विधाता कहे जिनेश!।
धर्म प्रवर्तक हे पुरुषोत्तम!, और कौन होंगे अखिलेश॥25॥

तुभ्यं नमस् - त्रिभुव - नार्ति - हराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्-त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि-शोषणाय।।२६।।

अन्वयार्थ-**नाथ!**-हे स्वामिन्!, **त्रिभुवन**-तीनों भुवनों की, **आर्तिहराय**-पीड़ा को नष्ट करने वाले, **तुभ्यं**-आपको, **नमः**-नमस्कार हो, **क्षितितल**-पृथ्वीतल के, **अमल-भूषणाय**-निर्मल आभूषण, **तुभ्यं**- आपको, **नमः**-नमस्कार हो, **त्रिजगतः**-तीनों जगत के, **परमेश्वराय**- परमेश्वर, **तुभ्यं**-आपको, **नमः**-नमस्कार हो, **जिन**-हे जिनेन्द्र!, **भवोदधि**-संसार सागर को, **शोषणाय**-सुखाने वाले, **तुभ्यं**-आपको, **नमः**-नमस्कार हो।

भावार्थ-हे महादेव! आप त्रयलोक की विपत्तिनाशक हो, महीतल के विमल आभूषण हो, त्रिभुवन के स्वामी हो एवं संसार समुद्र को सुखाने वाले हो, अतः आपके लिए मेरा नमस्कार होवे।

तीन लोक के दुखहर्त्ता हे, आदि जिनेश्वर्! तुम्हें नमन्।
भूमण्डल के आभूषण प्रभु, हे परमेश्वर! तुम्हें नमन्॥
अखिलेश्वर हे तीन लोक के!, तव पद बारम्बार नमन्।
भव सिन्धु के शोषक अनुपम, भविजीवों का चरण नमन्॥26॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणै-रशेषैस्,
त्वं संश्रितो निरवकाश-तया मुनीश!
दोषै - रुपात्त - विविधाश्रय - जात - गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि।।२७।।

अन्वयार्थ-**मुनीश!**-हे मुनियों के ईश्वर!, **यदि नाम**-यदि नाम के होने पर, **त्वम्**-आप, **निरवकाश तया**-निरन्तर आने वाले, **अशेषैः**-समस्त, **गुणैः**-गुणों के द्वारा, **संश्रितः**-आश्रय को प्राप्त हुए तो, **अत्र**-इसमें, **कः**-कौन सा, **विस्मयः**-आश्चर्य है?, **उपात्त**-प्राप्त किया है, **विविध**-अनेक पुरुषों का, **आश्रयजात**-आश्रय जिन्होंने, अतएव, **गर्वैः**-अहंकार को प्राप्त, **दोषैः**-दोषों के द्वारा, **कदाचित् अपि**-कभी भी, **स्वप्नान्तरे अपि**-स्वप्न दशा में भी, **न ईक्षितः असि**-नहीं देखे गए हों, **अत्रापि कः विस्मयः**-इसमें भी क्या आश्चर्य है? अर्थात् कोई आश्चर्य नहीं है।

भावार्थ-हे नाथ! गुणों को उत्तम स्थान कहीं न मिला इसलिए वे सभी आपके पास आकर समा गए और दोषों को आपके पास कोई स्थान न मिला अतः स्वप्न में भी दोषों ने आपको नहीं छुआ, यह आपका बहुत अद्भुत् दृश्य है।

गुण सारे एकत्रित होकर, तुममें आन समाए हैं।
इसमें क्या आश्चर्य है कोई, आश्रय अन्य न पाए हैं॥
खोटे देवों के आश्रय से, गर्वित होकर रहते दोष।
नहीं आपकी ओर झाँकते, कभी स्वप्न में हे गुणकोष!॥27॥

उच्चै - रशोक - तरु - संश्रित - मुन्मयूख
माभाति रूप-ममलं भवतो नितान्तम्।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

स्पष्टोल्लसत् - किरण - मस्त - तमो - वितानं,
बिम्बं रवे-रिव पयोधर - पार्श्व - वर्ति।।२८।।

अन्वयार्थ-**उच्चैः**-ऊँचे, **अशोक तरु**-अशोक वृक्ष के नीचे, **संश्रितम्**-विराजमान, **उन्मयूखम्**-जिसकी किरणें ऊपर की ओर जा रही हैं ऐसा, **भवतः**-आपका, **नितान्तम्**-अत्यन्त, **अमलम्**-निर्मल, **रूपम्**-स्वरूप, **स्पष्ट**-स्पष्ट रूप से, **उल्लसत्**-चमकती हुई, **किरणम्**-किरणों वाले तथा, **अस्त तमोवितानम्**-अंधकार के विस्तार को नाश करने वाले, **पयोधर**-मेघों के, **पार्श्ववर्ति**-समीपवर्ती, **रवेःबिम्बम्**-सूर्य के बिम्ब के, **इव**-समान, **आभाति**-शोभायमान हो रहा है।

भावार्थ-हे आदिप्रभो! ऊँचे, हरे-भरे अशोक वृक्ष के नीचे आपका सोने जैसा तन ऐसा लगता है मानो काले मेघों के बीच दमदमाता सूर्य ही निकल आया हो।

तरु अशोक उन्नत है निर्मल, रत्न रश्मियाँ बिखराए।
सुन्दर रूप आपका मनहर, तरुवर का आश्रय पाए॥
ऊर्ध्वमुखी किरणें अम्बर में, तम को दूर भगाती हैं।
नीलांचल पर्वत से मानो, भव्य आरती गाती हैं॥28॥

सिंहासने मणि - मयूख - शिखा - विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनका-वदातम्।
बिम्बं वियद् - विलस - दंशु - लता - वितानम्,
तुंगो - दयाद्रि - शिर-सीव सहस्र-रश्मेः।।२६।।

अन्वयार्थ-**मणि मयूख**-मणियों की किरणों के, **शिखा विचित्रे**-अग्रभाग की पंक्ति से शोभित, **सिंहासने**-सिंहासन पर, **तव**-आपका, **कनकावदातम्**-स्वर्ण के समान स्वच्छ, **वपुः**-शरीर, **तुंगोदयाद्रि**-ऊँचे उदयाचल के, **शिरसि**-शिखर पर, **वियद् विलसत्**-आकाश में शोभित, **अंशुलता वितानम्**-किरण रूप लता समूह वाले, **सहस्ररश्मेः**-सूर्य के, **बिम्बम्**-बिम्ब के, इव समान, **विभ्राजते**-अत्यधिक शोभायमान हो रहा है।

भावार्थ-हे प्रभो! उदयाचल की चोटी पर सूर्य बिम्ब जैसा लगता है वैसा आपका मनोहर शरीर सिंहासन पर सोने जैसा सुशोभित होता है।

रंग बिरंगी किरणों वाला, सिंहासन अद्भुत छविमान।
उस पर कंचन काया वाले, शोभा पाते हैं भगवान॥
उच्च शिखर से उदयाचल के, सूर्य रश्मियाँ बिखराए॥
किरण जाल का श्रेष्ठ चँदोवा, मानो आभा फैलाए॥29॥

कुन्दा - वदात - चल - चामर - चारु - शोभम्,
विभ्राजते तव वपुः कल - धौत - कान्तम्।
उद्यच्छशांक - शुचि - निर्झर - वारिधार,
मुच्चैस्तटं - सुरगिरे - रिव शात-कौम्भम्।।३०।।

अन्वयार्थ-**कुंदावदात**-कुन्द पुष्प के समान निर्मल श्वेत, **चल-चामर**-हिले हुए चँवर की, **चारुशोभम्**-सुन्दर शोभा से युक्त, **कलधौत**-सुवर्ण के समान, **कान्तम्**-कांतिवाला, **तव**-आपका, **वपुः**-शरीर, **उद्यच्छशांक**-उदय होते हुए चन्द्रमा के समान, **शुचि निर्झर**-निर्मल झरनों की, **वारिधारम्**-जलधारा से युक्त, **सुरगिरेः**-सुमेरु पर्वत के, **शातकौम्भम्**-सुवर्णमयी, **उच्चैस्तटम्**-ऊँचे तट के, **इव**-समान, **विभ्राजते**-सुशोभित हो रहा है।

भावार्थ-हे प्रभु! आपकी स्वर्णमयी काया पर श्वेत सुन्दर चँवर ढोरे जा रहे हैं ऐसा लगता है कि मेरु पर्वत पर कोई चन्द्रकांति सा जल का झरना ऊपर से गिर रहा हो।

शुभ्र चँवर ढुरते हैं अनुपम, कुन्द पुष्प सम आभावान।
दिव्य देह शोभा पाती है, स्वर्णाभासी कांतीमान॥
कनकाचल के उच्च शिखर से, मानों झरना झरता है॥
अपनी शुभ्र प्रभा के द्वारा, मन मधुकर को हरता है॥30॥

छत्र-त्रयं तव विभाति शशांक-कान्त-
मुच्चै-स्थितं स्थगित-भानुकर-प्रतापम्।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

मुक्ताफल - प्रकर - जाल - विवृद्ध - शोभम्,
प्रख्या-पयत् त्रिजगतः परमेश्वर- त्वम्।।३१।।

अन्वयार्थ-उच्चै-स्थितम्-ऊपर स्थित, **शशांक कान्तम्**-चन्द्रमा के समान कान्ति वाले, **स्थगित**-रोक दिया, **भानुकर**-सूर्य की किरणों के, **प्रतापम्**-प्रचण्डताप को जिन्होंने ऐसे तथा, **मुक्ताफल**-मोतियों के, **प्रकरजाल**-समूह वाली झालरसे, **विवृद्धशोभम्**-बढ़ रही है शोभा जिनकी ऐसे, **छत्रत्रयम्**-तीन छत्र, **तव**-आपके, **त्रिजगतः**-तीनों जगत की, **परमेश्वरत्वम्**-परमेश्वरता को, **प्रख्यापयत्**-प्रकट करते हुए, **विभाति**-शोभायमान हो रहे हैं।

भावार्थ-हे नाथ! चन्द्रकांति के समान तीन छत्र आपके ऊपर सूर्यताप रोकते हुए शोभित हो रहे हैं। मोतियों के समूह से खचित छत्र तीनों लोक की ईश्वरता को प्रकट कर रहे हैं।

चन्द्र कांति सम छत्र त्रय हैं, मणिमुक्ता वाले अभिराम।
सिर पर शोभित होते अनुपम, अतिशय दीप्तीमान ललाम॥
सूर्य रश्मियों का प्रताप जो, रोक रहे होके छविमान।
तीन लोक के ईश्वर अनुपम, कहे गये हो आप महान॥31॥

गम्भीर - तार - रव - पूरित - दिग्विभागस्
त्रैलोक्य - लोक - शुभ - संगम - भूति - दक्षः।
सद् - धर्मराज - जय - घोषण - घोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्-ध्वनति ते यशसः प्रवादी।।३२।।

अन्वयार्थ-गम्भीर-गम्भीर, **तार-रव-पूरित**-उच्च सघन शब्द से पूर दिये हैं, **दिग्विभागः**-दिशाओं के विभाग को जिसने ऐसा, **त्रैलोक्य**-तीनों लोकों के, **लोक**-प्राणियों को, **शुभ**-शुभ, **संगम**-समागम की, **भूति**-विभूति देने में, **दक्षः**-कुशल, **सद्धर्म**-तीर्थदेव की, जय **घोषणा**-जय घोषणा को, **घोषकः**-घोषित करने वाला, **दुन्दुभिः**-दुन्दुभि वाद्य (नगाड़ा), **ते**-आपके, **यशसः**-यश को, **प्रवादी**-सब ओर कोलाहल करता, **सन्**-हुआ, **खे**-आकाश में, **ध्वनति**-शब्द कर रहा है।

भावार्थ-हे प्रभो! शुभ समाचार प्रदात्री दिशाओं को गुँजाने वाली, सत्यधर्म व आपकी सुरक्षा प्रकट करने वाली दुन्दुभि, आपकी जय बोलती हुई प्रतीत होती है।

उच्च स्वरों में बजने वाली, करती सर्व दिशा में नाद।
तीन लोकवर्ती जीवों के, मन में लाती है आह्लाद॥
डंका पीट रही है अनुपम, हो सद्धर्म की जय-जयकार।
गगन मध्य भेरी बजती है, यश गाती है अपरम्पार॥32॥

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारि - जात
सन्तान - कादि - कुसुमोत्कर - वृष्टि - रुद्धा।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्-प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां तति र्वा।।३३।।

अन्वयार्थ-गन्धोदबिन्दु-सुगंधित जल बिन्दुओं से युक्त, **शुभमन्द**-शुभ **मन्द**-मन्द, **मरूत्प्रपाता**-वायु के साथ गिरती हुई, **उद्धा**-श्रेष्ठ (ऊर्ध्वमुखी), **दिव्या**-दिव्य, **मन्दार**-मन्दार जाति के, **सुन्दर**-सुन्दर जाति के **नमेरु**-नमेरु जाति के, **सुपारिजात**-पारिजात जाति के, **सन्तानकादि**-और सन्तानक आदि जाति के, **कुसुमोत्कर-वृष्टिः**- कल्पवृक्षों के पुष्पों के समूह की वर्षा, **ते**-आपके, (वचसां=वचनों की) ऊपर, **वयसां**-पक्षियों की, **ततिःवा**-पंक्ति के समान, **दिवः**-आकाश से, **पतति**-पड़ती है/गिरती है।

भावार्थ-हे प्रभु! सुगंधित पुष्पों की वर्षा सुगंधित जल से मिलकर मनहारी ऐसी लगती है मानो कोई पक्षियों की कतार आकाश से उतर रही हो अथवा भगवान के वचनों की पंक्ति आकाश से गिर रही हो।

गंधोदक की वृष्टी करते, देव चलाते मंद पवन।
संतानक मंदार नमेरू, कल्पतरु के श्रेष्ठ सुमन॥
सुन्दर पारिजात आदिक के, ऊर्ध्वमुखी होकर गिरते।
पंक्तीबद्ध आदि जिनके ही, मानो दिव्य वचन खिरते॥33॥

शुम्भत्-प्रभा-वलय-भूरि-विभा-विभोस्ते,
लोक-त्रये द्युतिमतां द्युति-माक्षिपन्ती।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

प्रोद्यद्-दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशा-मपि सोम-सौम्याम्।।३४।।

अन्वयार्थ-**लोकत्रये**-तीनों लोकों में, **द्युतिमतां**-सभी कांति वाले पदार्थों की, **द्युतिम**-कांति को, **आक्षिपन्ति**-तिरस्कार करती हुई, **ते विभोः**-आपके, **शुम्भत्**-प्रकाशमान, **प्रभावलय**-भामण्डल का, **भूरि विभाः**-अतिशय प्रभाव, **प्रोद्यद् दिवाकर**-उदित होते हुए सूर्य की, **निरन्तर**-निरन्तर, **भूरिसंख्या**-भारी संख्या वाले तथा, **सोम सौम्याम्**-चन्द्र के समान शोभायमान और अपनी, **दीप्त्या अपि**-कांति से, **निशाम् अपि**-रात्रि को भी, **जयति**-जीत रहा है।

भावार्थ-हे प्रभो! तीनों लोकों की कांति को तिरस्कृत करता हुआ, सात भवों को स्पष्ट दिखाता हुआ, चन्द्रकांति सम शीतलदायी आपका भामण्डल प्रचुर शोभा को प्राप्त हो रहा है जो अद्‌भुत कान्ति लिये हुये है।

तीन लोकवर्ती उपमाएँ, जो कहने में आती हैं।
तन भामण्डल के आगे वह, सब फीकी पड़ जाती हैं॥
कोटि सूर्य सम प्रखर दीप्ति है, फिर भी नहीं जरा आताप।
शीतल चन्द्र प्रभू के आगे, प्रभाहीन हों अपने आप॥34॥

स्वर्गा - पवर्ग - गम - मार्ग - विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्, त्रिलोक्याः।
दिव्यध्वनिर् - भवति ते विशदार्थ - सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः।।३५।।

अन्वयार्थ-**स्वर्ग**-स्वर्ग के और, **अपवर्ग**-मोक्ष के, **गम-मार्ग**-जाने के मार्ग को, **विमार्गणेष्टः**-अन्वेषण करने में अभीष्ट, **त्रिलोक्या**-तीनों लोकों को/त्रिलोकवर्ती प्राणियों को, **सद्धर्मतत्त्व**-समीचीन धर्म के तत्त्व को, **कथनैकपटुः**-कथन करने में अत्यंत समर्थ, **विशदार्थ**-विशद अर्थ और, **सर्वभाषा**-सभी भाषाओं के, **स्वभावपरिणाम**-स्वभाव में परिणत होने से, **गुणैः**-गुणों से, **प्रयोज्यः**-युक्त ऐसी, **ते दिव्यध्वनि**-आपकी, दिव्य-ध्वनि, **भवति**-होती है।

भावार्थ-हे प्रभु! सभी को स्वर्ग व मोक्ष का उपदेश देने में समर्थ एवं सभी भाषाओं वाली आपकी ओंकार रूपी दिव्य-ध्वनि स्वभाव से ही परिणमन करने वाली होती है।

स्वर्ग मोक्ष के दिग्दर्शक हैं, हे जिनेन्द्र! तव दिव्य वचन।
तीन लोक में सत्य धर्म को, प्रगटाएँ सम्यक् दर्शन॥
दिव्य देशना सुनकर करते, भव्य जीव अपना उद्धार।
सुनकर 'विशद' समझ लेते हैं, निज निज भाषा के अनुसार॥35॥

उन्निद्र-हेम नव - पंकज - पुंज - कान्ति,
पर्युल् - लसन्-नख-मयूख शिखाभि-रामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परि-कल्प-यन्ति।।३६।।

अन्वयार्थ-**उन्निद्र**-खिले हुए, **हेम**-स्वर्ण के, **नव**-नवीन, **पंकज**-कमलों के, **पुंज**-समूह के समान, **कांति**-कांति वाले, **पर्युल्लसन्**-सर्व ओर फैलने वाली, **नखमयूख**-नखों के किरणों की, **शिखाभिरामौ**-अग्रभाग से सुन्दर, **जिनेन्द्र!**-जिनेन्द्र, **तव**-आपके, **पादौ**-चरण, **यत्र**-जहाँ पर, **पदानि**-कदम, **धत्तः**-रखते हैं, **तत्र**-वहाँ पर, **विबुधाः**-देवगण, **पद्मानि**-कमलों की, **परिकल्पयन्ति**-संरचना करते जाते हैं।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र देव! भव्य जीवों के सौभाग्य से अनिच्छित जब आपका विहार होता है तो देवगण आपके चरणों के नीचे खिले स्वर्ण कमल बिछा देते हैं जो अति सुन्दर लगते हैं।

चरणाम्बुज नख शोभित होते, नभ में जैसे स्वर्ण कमल।
कुमुद मुदित होकर सागर में, शोभा पाते चरण युगल॥
अभिवन्दन के योग्य चरण शुभ, प्रभुवर जहाँ-जहाँ धरते।
उनके पग तल दिव्य कमल की, देव श्रेष्ठ रचना करते॥36॥

इत्थं यथा तव विभूति - रभूज्-जिनेन्द्र!
धर्मोप-देशन - विधौ न तथा परस्य।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि।।३७।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र!-हे प्रभो!, **तव**-आपके, **धर्मोपदेशनविधौ**-धर्मोपदेश देने के समय, **इत्थं**-इस प्रकार, **यथा**-जैसी आठ प्रातिहार्य रूप, **विभूतिः-सम्पत्ति**-ऐश्वर्य, **अभूत**-हुई थी, **तथा**-वैसी, **परस्य**-अन्य किसी देव की, **न**-नहीं हुई, **प्रहतान्धकारा**-अंधकार को नाश करने वाली, **यादृक्**-जैसी, **प्रभा**-प्रभा, **दिनकृतः**-सूर्य की होती है, **तादृक्**-वैसी, **विकासिनः**-चमकते हुए, **अपि**-भी, **ग्रहगणस्य**-तारागणों की, **कुतः**-कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती।

भावार्थ-हे प्रभु! धर्मोपदेश के समय में समवशरण जैसी विभूति आपके अलावा अन्य कोई देवों में नहीं दिखती, सो ठीक है क्या सूर्य जैसी कांति नक्षत्रों में होती है? नहीं।

धर्म देशना की बेला में, वैभव पाते जो तीर्थेश।
अन्य कुदेवों में वैसा कुछ, देखा गया नहीं लवलेश॥
घोर तिमिर का नाशक रवि जो, दिव्य रोशनी को पाता।
वैसा दिव्य प्रकाश नक्षत्रों, में भी क्या देखा जाता॥37॥

श्च्योतन्-मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त - भ्रमद् - भ्रमर - नाद विवृद्ध-कोपम्।
ऐरा - वताभ - मिभ - मुद्धत - मा - पतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भव-दाश्रितानाम्।।३८।।

अन्वयार्थ-श्च्योतन्-झरते हुए, **मदाविल**-मद के मलिन, **विलोल**-चंचल, **कपोलमूल**-गण्डस्थल पर, **मत्त**-उन्मत्त, **भ्रमद्**-परिभ्रमण करते हुए, **भ्रमर**-भौरों के, **नाद**-शब्द से, **विवृद्धकोपम्**-जिसका क्रोध बढ़ रहा है, ऐसे **ऐरावताभम्**-ऐरावत (हाथी) के समानविशाल, **आपतन्तम्**-सामने आते हुए, **उद्धतम्**-अभिमानी, **इभम्**-हाथी को, **दृष्ट्वा**-देखकर, **भवदाश्रितानाम्**-आपके आश्रित जनों को, **भयम्**-भय, **नो**-नहीं, **भवति**-होता है।

भावार्थ-हे भगवन्! उन्हें मद व क्रोध से उन्मत्त हुआ हाथी भी नहीं डरा पाता जो मनुष्य आपका आश्रय ले लेते हैं।

महामत्त गज के गालों से, बहे निरन्तर मद की धार।
जिस पर भौरों का समूह भी, करता हो अतिशय गुंजार॥
क्रोधासक्त दौड़ता हाथी, जिसका रूप दिखे विकराल।
कभी नहीं कर सकता है प्रभु, तव भक्तों को वह बेहाल॥38॥

भिन्नेभ - कुम्भ-गल-दुज्ज्वल - शोणि ताक्त,
मुक्ताफल - प्रकर - भूषित - भूमिभागः।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणा - धिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम-युगा-चल-संश्रितं ते।।३६।।

अन्वयार्थ-भिन्नेभ-विदारण किये गये हाथी के, **कुम्भगलत्**-मस्तक से झरते हुए, **उज्ज्वल**-उज्ज्वल वर्ण वाले, **शोणिताक्त**-रक्त से सने हुए, **मुक्ताफल**-मोतियों के, **प्रकर**-समूह से, **भूषित**-सुशोभित किया है, **भूमिभागः**-भूमिभाग को जिसने ऐसा, **हरिणाधिपः अपि**-मृगराज (सिंह) भी, **क्रमगतं**-पंजों के मध्य में पड़े हुए किन्तु, **ते**-आपके, **क्रमयुगाचल**-चरण युगल रूपी पर्वत के, **संश्रितम्**-आश्रित पुरुष पर, **बद्धक्रमः**-बंधे हुए पैरों वाला जैसा होकर, न **आक्रामति**-आक्रमण नहीं करता है।

भावार्थ-हे प्रभु! शिकार के आवेग से भरा वह शेर भी उसका शिकार नहीं कर पाता जो आपके द्वय चरण की शरण ले लेता है।

तीक्ष्ण नखों से फाड़ दिए हैं, गज के उन्नत गण्डस्थल।
गज मुक्ताओं द्वारा जिसने, पाट दिया हो अवनीतल॥
ऐसा सिंह भयानक होकर, कभी नहीं कर सकता वार।
चरण कमल का प्रभू आपके, जिसने बना लिया आधार॥39॥

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पम्,
दावानलं ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्स्फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्सु-मिव सम्मुख-मापतन्तं,
त्वन्नाम - कीर्तन - जलं शमयत्य-शेषम्।।४०।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-**कल्पान्तकाल**-प्रलयकाल के, **पवनोद्धत**-पवन के उत्तेजित, **वह्निकल्पम्**-अग्नि के **सदृश्य**-**दावानलं**-जंगल की आग, **ज्वलितम्**-जलती हुई, **उज्ज्वलम्**-उज्ज्वल और, **उत्फुलिंगम्**-ऊपर को फुलिंगें उड़ानेवाली, **इव**-मानो, **विश्वम्**-समस्त संसार को, **जिघत्सुम्**-दावाग्नि को (जंगल की अग्नि को), **सम्मुखम्**-**आपतन्तम्**- सामने आती हुई त्वन्नाम कीर्तन **जलम्**-आपका नामोच्चारण रूप जल, **अशेषम्**-पूर्ण रूप से, **शमयाति**-शान्त कर देता है।

भावार्थ-हे भगवन! भयभीत करने वाली प्रलय काल की प्रचण्ड अग्नि यदि सामने आती हुई हो तो आपके नाम रूपी जल से तुरन्त नष्ट हो जाती है।

प्रलयंकारी आँधी उठकर, फैल रही हो चारों ओर।
उठे फुलिंगे अंगारों की, वायू का भी होवे जोर॥
भुवनत्रय का भक्षण कर ले, आग सामने आती है।
प्रभू नाम के मंत्र नीर से, क्षण भर में बुझ जाती है॥40॥

रक्तेक्षणं समद - कोकिल - कण्ठ - नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिन - मुत्फण - मा - पतन्तम्।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्त - शंकस्-
त्वन्नाम-नाग-दमनी-हृदि यस्य पुंसः।।४१।।

अन्वयार्थ-**यस्य**-जिस, **पुंसः**-पुरुष के, **हृदि**-हृदय में, **त्वन्नाम**-आपके नाम रूपी, **नागदमनी**-नाग के विष को दमन करने वाली जड़ी बूटी है ऐसे पुरुष, **निरस्तशंकः**-शंका से रहित होकर, **रक्तेक्षणम्**-लाल नेत्रों वाले, **आपतन्तम्**-सामने आते हुए, **समद**-**कोकिल**-मदयुक्त कोयल के, **कण्ठनीलम्**-कण्ठ के समान काले, **क्रोधोद्धतम्**-क्रोध से फुसकारते हुए और, **उत्फणम्**-ऊपर को फण उठाये, **आपतन्तम्**-आते हुए, **फणिनम्**-साँप को, **क्रमयुगेण**-दोनों पैरों से, **आक्रामति**-लाँघ जाता है।

भावार्थ-हे भगवन्! मद व क्रोध से भरा अति भयंकर साँप आपको स्मरण करनेवाले मनुष्य के सामने आ जाए तो भी कुछ नहीं बिगाड़ पाता है।

क्रोधित कोकिल कण्ठ के जैसा, फण फैलाए काला नाग।
लाल नेत्र कर दौड़ रहा हो, मुख से निकल रहा हो झाग॥
ऐसे नाग के सिर पर चढ़कर, भी आगे बढ़ जाता है।
नाम जाप करने वाले का, नाग न कुछ कर पाता है॥41॥

वल्गत्तुरंग - गज - गर्जित - भीमनाद-,
माजौ बलं बलवता-मपि भूपतीनाम्।
उद्यद् - दिवाकर - मयूख - शिखा - पविद्धम्,
त्वत्-कीर्तना-त्तम इवाशु भिदा-मुपैति।।४२।।

अन्वयार्थ-**आजौ**-युद्ध के मैदान में, **त्वत्कीर्तनात्**-आपके नाम का कीर्तन करने से, **बलवताम्**-बलशाली, **भूपतिनाम्** (**शत्रु**)-राजाओं के, **वल्गत्**-उछलते हुए, **तुरङ्ग**-घोड़ों और, **गज**-**गर्जित**-हाथियों की गर्जना से, **भीमनादम्**-भयंकर है शब्द जिसमें ऐसी, **बलम्**-सेना, **अपि**-भी, **उद्यद्दिवाकर**-उदित होते हुए सूर्य की, **मयूख शिखा**-किरणों की शिखा, **अपविद्धम्**-नष्ट हुये, **तमःइव**-अंधकार के समान, **आशु**-शीघ्र ही, **भिदाम्**-छिन्न-भिन्न, **उपैति**-हो जाती है।

भावार्थ-हे महाविभु! सूर्य की किरणों से जैसे अँधेरा नष्ट हो जाता है। वैसे ही आपका यशोगान करने वालों से बड़े-बड़े राजाओं की सेनाएँ भी हार जाती हैं।

जहाँ अश्व गज गर्वित होकर, गरज रहे हों चारों ओर।
बलशाली राजा की सेना, चीत्कार करती हो घोर॥
शक्ति हीन नर वहाँ अकेला, जपने वाला प्रभु का नाम।
बलशाली सेना को भी वह, नष्ट करे क्षण में अविराम॥42॥

कुन्ताग्र-भिन्न-गज - शोणित - वारि-वाह-
वेगा-वतार-तरणा - तुर - योध-भीमे।
युद्धे जयं विजित - दुर्जय-जेय-पक्षास्-
त्वत्पाद-पंकज-वना-श्रयिणो लभन्ते।।४३।।

अन्वयार्थ-**कुन्ताग्र**-भालों के अग्र भाग से, **भिन्न**-छिन्न-भिन्न हुए, **गज**-हाथियों के, **शोणित**-रक्तरूपी, **वारिवाह**-जल के प्रवाह में, **वेगावतार**-वेग से उतरे और, **तरणातुर**-तैरने के लिए आतुर, **योधभीमे**-योद्धाओं के कारण भयंकर, युद्धे-युद्ध में, **त्वत्पादपंकज**- आपके चरण कमल रूपी, **वनाश्रयिणः**-वन का आश्रय लेने वाले पुरुष, **विजित दुर्जय**-जिसको जीतना कठिन है ऐसे, **जेय पक्षाः**-शत्रु पक्ष को पराजित करके, **जयम्**-विजय, **लभन्ते**-प्राप्त करते हैं।

भावार्थ-हे भगवन्! जिसे जीतना बहुत मुश्किल हो उसको भी सहजता से वो जीत लेते हैं-जो आपके चरण कमल के आश्रय को प्राप्त हो जाते हैं।

बर्छी भालों से आहत गज, तन से बहे रक्त की धार।
योद्धा लड़ने को तत्पर है, लहू की सरिता करके पार॥
समरांगण में भक्त आपका, शत्रु सैन्य से पाए न हार।
आश्रय पाये जो तव पद का, पाए विजय श्री उपहार॥43॥

अम्भो-निधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-
पाठीन-पीठ - भय-दोल्वण-वाड्-वाग्नौ।
रंग - त्तरंग - शिखर - स्थित - यान - पात्रास्-
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति।।४४।।

अन्वयार्थ-**क्षुभित**-क्षोभयुक्त, **भीषण**-भयंकर, **नक्र चक्र**-मगरमच्छों के समूह और, **पाठीन-पीठ**-मछलियों की पीठ की टक्कर से, **भयदोल्वण**-भय को उत्पन्न करने वाले एवं भयानक, **वाड्वाग्नौ**-बड़वानल से युक्त/पानी की अग्नि से युक्त, **अम्भोनिधौ**-समुद्र में, **रंगत्तरंग**-लहराती हुई लहरों के, शिखर **स्थित**-अग्रभाग पर डगमगाते हुए, **यानपात्राः**-जहाज वाले प्राणी, **स्मरणात्**-स्मरण से, **त्रासं**-घबराहट को, **विहाय**-छोड़कर, व्रजन्ति **(किनारे)**-चले जाते हैं।

भावार्थ-हे भगवन! बड़वानल की अग्नि व समुद्र में तूफान हो तो भी आपका स्मरण करने वाले निडर होकर यात्रा करते हुए सागर को पार कर लेते हैं।

लहरें क्षोभित हों सिन्धू की, शिखर से जाकर टकराएँ।
नक्र चक्र घडियाल भयंकर, बड़वानल भी जल जाएँ॥
सागर में तूफान विकट हो, फँसा हुआ जिसमें जलयान।
छुटकारा पा जाए क्षण में, करे आपका जो भी ध्यान॥44॥

उद्भूत - भीषण - जलोदर - भार - भुग्नाः,
शोच्यां दशा-मुप-गताश्च्युत-जीवि-ताशाः।
त्वत्-पाद-पंकज-रजोऽमृत-दिग्ध-देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्य-रूपाः।।४५।।

अन्वयार्थ-**उद्भूत**-उत्पन्न हुये, **भीषण**-भयंकर, **जलोदर**-जलोधर के, **भारभुग्नाः**-भार से पीड़ित, **शोच्यां**-शोचनीय, **दशाम्**-दशा को, **उपगताः**-प्राप्त हुए, **च्युत जीविताशा**-छोड़ दी है जीने की आशा जिन्होंने ऐसे, **मर्त्या**-मनुष्य, **त्वत्पादपंकज**-आपके **चरण**-कमलों की, **रजः अमृत**-रजरूपी अमृत से, **दिग्धदेहा**-देह को लिप्त करके, **मकरध्वज**-कामदेव के, **तुल्यरूपाः**-समान रूप वाले, **भवन्ति**-हो जाते हैं।

भावार्थ-हे प्रभु! जिस जलोदर रोग के होने पर जिन्दा रहने की आशा नहीं रह जाती है, वह रोगी भी आपके चरणों की रज से कामदेव सा सुन्दर हो जाता है, जलोदर रोग मिट जाता है।

भीषण रोगों से पीड़ित हो, और जलोदर का हो भार।
जीवन की आशा तज दी हो, भय से आकुल होय अपार॥
तव पद पंकज की रज पाकर, तन की मिट जाए सब पीर।
कामदेव के जैसा सुन्दर, भक्त आपका पाए शरीर॥45॥

आपाद कण्ठ - मुरु - श्रृंखल - वेष्टितांगा,
गाढ़ं बृहन्-निगड - कोटि-निघृष्ट-जंघाः।
त्वन्-नाम-मन्त्र-मनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति।।४६।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-**आपादकण्ठम्**-पैरों से लेकर कण्ठ तक, **उरुश्रृंखल**-बड़ी-बड़ी सांकलों से/जंजीरों से, **वेष्टितांगा**-वेष्टित शरीर वाले, **गाढम्**-अत्यन्त कसकर बांधी गयी, **बृहन्निगडकोटि**-बड़ी बेड़ियों के किनारों से, **निघृष्टजङ्घा**-जिनकी जंघाएँ घिस गई हैं, **मनुजाः**-ऐसे मनुष्य, **त्वन्नाम-मंत्रम्**-आपके नामरूपी मंत्र को, **अनिशम्**-निरन्तर, **स्मरंतः**-स्मरण करते हुये, **सद्यः**-शीघ्र ही, विगत **बन्धभया**-बन्ध के भय से रहित, **भवन्ति**-हो जाते हैं।

भावार्थ-हे भगवन! जिन बेड़ियों की रगड़ से खून निकलने लगा हो, उसकी ऐसी मोटी बेड़ी भी शीघ्र टूट जाती है जो हमेशा आपका स्मरण करते रहते हैं।

पग से सिर तक जंजीरों से, जकड़ी हुई है जिसकी देह।
छिले हुए घुटने जंघाएँ, पीड़ाकारी निःसन्देह॥
ऐसे दुस्तर बन्दीजन भी, करके प्रभू नाम का जाप।
कट जाते हैं बन्धन सारे, उनके क्षण में अपने आप॥46॥

मत्त - द्विपेन्द्र - मृगराज - दवान - लाहि-
संग्राम - वारिधि - महोदर - बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाश-मुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तव-मिमं मतिमा-नधीते।।४७।।

अन्वयार्थ-**यः**-जो, **मतिमान्**-बुद्धिमान, **तावकम्**-आपके, **इमं**-इस, **स्तवं**-स्तोत्र को, **अधीते**-पढ़ता है, **तस्य**-उसका, **मत्तद्विपेन्द्र**-मत्त गजराज, **मृगराज**-सिंह, **दवानल**-दावाग्नि, **अहि**-साँप, **संग्राम**-युद्ध, **वारिधि**-समुद्र, **महोदर**-जलोदर और, **बन्धनोत्थम्**-बेड़ी बंधन से उत्पन्न हुआ, **भयम्**-भय, **भिय**-डर से, **एव**-ही, **आशु**-शीघ्र, **नाशम्**-नाश को, **उपयाति**-प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ-हे प्रभु! जो बुद्धिमान आपके इस स्तोत्र को पढ़ता है उसके दुनियाँ में जितने भी तरह के भय व रोगादि हैं वो सभी आपकी स्तुति को पढ़ने मात्र से मिट जाते हैं, जो आपकी स्तुति से न मिटे वह भय या रोग हो ही नहीं सकता?

सिंह गजेन्द्र नाग रणस्थल, दावानल हो रोग अपार।
सिंधू भय अतिभीषण दुख से, क्षण भर में पा जाए पार॥
गुण स्तवन वन्दन करता है, विश्वेश्वर का जो धीमान।
भय भी भय से आकुल होकर, करता है उसका सम्मान॥47॥

स्तोत्र स्रजं तव जिनेन्द्र! गुणैर् निबद्धां,
भक्त्या मया विविध-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गता-मजस्रम्,
तं ''मानतुंग''-मवशा समुपैति लक्ष्मीः।।४८।।

अन्वयार्थ-**इह**-इस लोक में, **भक्त्या**-भक्तिपूर्वक, **जिनेन्द्र!**-हे जिनेन्द्र!, **मया**-मेरे द्वारा, **तव**-आपके, **गुणैः**-गुणों से, **निबद्धाम**- रची हुई, **विविध**-नाना, **वर्ण**-अक्षर ही हैं, **विचित्र**-रंगबिरंगे, **पुष्पाम्**-पुष्प जिसमें ऐसी, **स्तोत्र-स्रजम्**-स्तुतिरूपी माला को, **य जनः**-जो मनुष्य, **अजस्रं**-निरन्तर, **कण्ठगताम्**-कण्ठ में, **धत्ते**-धारण करता है, **तम्**-उस, **मानतुंग**-स्वाभिमानी अथवा मानतुंग पुरुष को, **अवशा**-विवश होकर, **लक्ष्मीः**-सर्व प्रकार की लौकिक और पारलौकिक लक्ष्मी, **समुपैति**-प्राप्त होती है।

भावार्थ-हे जिनदेव! नाना रुचि, अलंकार पुष्पों से गूँथा गया आपका यह पावन स्तोत्र जो व्यक्ति हमेशा भक्तिपूर्वक पढ़ता है, गाता है, याद करता है उसे नियम से भविष्य में 'विशद' मोक्षलक्ष्मी प्राप्त होती है।

गुण उपवन से प्रभू आपके, भांति-भांति वर्णों के फूल।
चुनकर लाए भक्ति माल को, गूँथे जो रुचि के अनुकूल॥
भव्य जीव जो सुमनावलि से, अपना कण्ठ सजाते हैं।
'मानतुंग' सम गुण के सागर, 'विशद' मुक्ति पद पाते हैं॥48॥

आदिनाथ जिनवर तथा मानतुंग मुनिराज।
अर्चा करते आपकी विशद भाव से आज॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

कल्याण मन्दिर स्तोत्र

कल्याणमन्दिर - मुदार - मवद्य - भेदि,
भीता - भय-प्रदम - निन्दित - मङ्घ्रिपद्मं।
संसार सागर निमज्जद-शेष जन्तु,
पोतायमान मभिनम्य जिनेश्वरस्य।।१।।

यस्य स्वयं सुरगुरुर्-गरिमाम्बुराशेः,
स्तोत्रं सुविस्तृत-मतिर्-न विभुर्विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय धूमकेतोस्,
तस्याह - मेष किल संस्तवनं करिष्ये।।२।।

अन्वयार्थ-कल्याणमन्दिरम्-कल्याणों के मन्दिर, **उदारम्**-उदार, (सज्जन) **अवद्यभेदि**-पापों को नष्ट करने वाले, **भीताभयप्रदम्**-संसार से डरे हुए जीवों को अभयपद देने वाले, **अनिन्दितम्**-प्रशंसनीय और **संसारसागरनिमज्ज- दशेषजन्तुपोतायमानम्**-संसाररूपी समुद्र में डूबते हुए समस्त जीवों के लिए जहाज के समान, **जिनेश्वरस्य**-जिनेन्द्र भगवान के, **अङ्घ्रिपद्मम्**-चरणकमल को, **अभिनम्य**-नमस्कार करके, **गरिमाम्बुराशेः**-गौरव के समुद्रस्वरूप, **यस्य**-जिन पार्श्वनाथ की, **स्तोत्रम् विधातुम्**-स्तुति करने के लिए, **स्वयं सुविस्तृतमतिः**-खुद `विस्तृत बुद्धिवाले, **सुरगुरुः**-बृहस्पति भी, **विभुः**-समर्थ, **न अस्ति**-नहीं है, **कमठस्मयधूमकेतोः**-कमठ का मान भस्म करने के लिए अग्निस्वरूप, **तस्य तीर्थेश्वरस्य**-उन भगवान् पार्श्वनाथ की, **किल**-आश्चर्य है कि, **एषः अहम्**-मैं, **संस्तवनम् करिष्ये**-स्तुति करूँगा।

भावार्थ-जिनेन्द्र भगवान के चरण-कमलों को नमस्कार कर मैं उन पार्श्वनाथ स्वामी की स्तुति करता हूँ, जो गुरुता के समुद्र थे, और कमठ का मानमर्दन करने वाले थे तथा बृहस्पति भी जिनकी स्तुति करने के लिए समर्थ नहीं हो सका था॥1-2॥

(शम्भू छन्द)

हे कल्याण धाम! पापों के, नाशक तुम हो प्रभो! उदार।
भयाक्रान्त जीवों में भय का, नाश किए हो तुम उपकार॥
पारावार में डूब रहे जो, जीवों को प्रभु पोत समान।
ऐसे श्री जिन पार्श्वनाथ का, करते भाव सहित गुणगान॥1॥

गुण गौरव सागर सा जिन का, शब्दों में ना होवे व्यक्त।
बृहस्पति भी गुण गा के हारे, बने आपका अतिशय भक्त॥
कमठासुर के मान भंग को, अग्नि सिखा सम हो जिनदेव।
नाथ! आपकी स्तुति करते, विस्मय पूर्वक भक्त सदैव॥2॥

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-,
मस्मादृशाः कथमधीश! भवन्त्यधीशाः।
घृष्टोऽपि सामान्तोऽ कौशिक शिशुर्-यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः।।३।।

अन्वयार्थ-अधीश!-हे स्वामिन!, **सामान्यतः** अपि-साधारण रीति से भी, **तव**-तुम्हारे, **स्वरूपम्**-स्वरूप को, **वर्णयितुम्**-वर्णन करने के लिए, **अस्मादृशाः**-मुझ जैसे मनुष्य, **कथम्**-कैसे, **अधीशाः**-समर्थ, **भवन्ति**- हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते।, **यदि वा**-अथवा, **दिवान्धः**-दिन में अंधा रहने वाला, **कौशिकशिशुः**-उलूक का बच्चा, **धृष्ट अपि 'सन'**-ढीठ होता हुआ भी, **किम्**-क्या, **घर्मरश्मेः**-सूर्य के, **रूपम्**-रूप का, **प्ररूपयति किल**-प्ररूपण कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता।

भावार्थ-हे प्रभो! जिस तरह उलूक का बालक सूर्य के रूप का वर्णन नहीं कर सकता; क्योंकि जब तक सूर्य रहता है, तब तक वह अन्धा रहता है, इसी तरह मैं आपके सामान्य स्वरूप का भी वर्णन नहीं कर सकता हूँ, क्योंकि मैं भी मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धा होकर आपके दर्शन से वञ्चित रहा हूँ॥3॥

नाथ! आपका रूप सलौना, कैसे करें स्वरूप बखान।
मन्द बुद्धि असमर्थ रहे हम, करने में प्रभु तव गुणगान॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

प्रखर सूर्य की दिव्य कांति में, निज स्वरूप ना लखे उलूक।
वर्णन कैसे कर पाएगा, बैठेगा वह होके मूक॥3॥

मोह-क्षयादनुभवन्नपि नाथ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत्।
कल्पान्त-वान्त-पयसः प्रकटोऽपि यस्मान्,
मीयेत केन जलधेर्-ननु रत्नराशिः।।४।।

अन्वयार्थ-नाथ!-हे नाथ!, **मर्त्यः**-मनुष्य, **मोहक्षयात्**-मोहनीयकर्म के क्षय से, **अनुभवनम् अपि**-अनुभव करता हआ भी, **तव**-आपके, **गुणान्**-गुणों को, **गणयितुम्**-गिनने के लिये, **नूनम्**-निश्चय करके, **न क्षमेत**-समर्थ नहीं हो सकता है। **यस्मात्**-क्योंकि, **कल्पांतवांतपयसः**-प्रलयकाल के समय जिसका पानी बाहर हो गया है, **ऐसे जलधेः**-समुद्र की, **प्रकटःअपि**-प्रकट हुई भी, **रत्नराशिः**-रत्नों की राशि, **ननु केन मीयेत?**-किसके द्वारा गिनी जा सकती है? अर्थात् किसी के द्वारा नहीं।

भावार्थ-हे प्रभो! जिस तरह प्रलयकाल में पानी न होने से साफ-साफ दिखनेवाले समुद्र के रत्नों को कोई नहीं गिन पाता, उसी तरह मिथ्यात्व के अभाव से साफ-साफ दिखनेवाले आपके गुणों को कोई नहीं गिन सकता। क्योंकि वे अनन्तानन्त हैं॥4॥

मोह कर्म का हो विनाश तब, निज अनुभव करते हैं लोग।
शक्ति भले कितनी हो उनकी, गुण वर्णन का पाते योग॥
प्रलय काल होने पर सागर, का जल बाहर तक जावे।
ढेर दिखे रत्नों का भारी, कोई ना जिनको गिन पावे॥4॥

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य-गुणाकरस्य।
बालोऽपि किं न निज- बाहु-युगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः।।५।।

अन्वयार्थ-नाथ!-हे स्वामिन्!, **जडाशयः अपि 'अहम्'**-मैं मूर्ख भी, **लसदसंख्यगुणाकरस्य**-शोभायमान असंख्यात गुणों की खानि स्वरूप, **तव**-आपके, **स्तवम् कर्तुम्**-स्तवन करने के लिये, **अभ्युद्यतः अस्मि**-तैयार हुआ हूँ। क्योंकि, **बालःअपि**-बालक भी, **स्वधिया**-अपनी बुद्धि के अनुसार, **निजबाहुयुगम्**-अपने दोनों हाथों को, **वितत्य**-फैलाकर, **किम्**-क्या, **अम्बुराशेः**-समुद्र के, **विस्तीर्णताम्**-विस्तार को, **न कथयति**-नहीं कहता? अर्थात कहता है।

भावार्थ-हे नाथ! जैसे बालक शक्ति न रहते हुए भी समुद्र का विस्तार (वर्णन) करने के लिए तैयार रहता है, वैसे ही मैं भी आपकी स्तुति करने के लिए तैयार हूँ।

मैं मतिहीन आप हैं ज्ञानी, गुण रत्नों के हो आगार।
स्तुति करते नाथ! आपकी, अपनी बुद्धी के अनुसार॥
यथा मंदबुद्धी का बालक, अपनी दोनों भुजा पसार।
उत्सुक होकर बतलाता है, कितना सागर का आकार॥5॥

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश!,
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः।
जाता तदेव-मसमीक्षित-कारितेयं।
जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि ।।६ ।।

अन्वयार्थ-ईश-हे प्रभो! **तव**-आपके, **ये गुणाः**-जो गुण, **योगिनाम् अपि**-योगियों को भी, **वक्तुम्**-कहने के लिए, **न यान्ति**-नहीं प्राप्त होते अर्थात् जिनका कथन योगीजन भी नहीं कर सकते, **तेषु**-उनमें, **मम्**-मेरा, **अवकाशः**-अवकाश, **कथम् भवति**-कैसे हो सकता है? अर्थात् मैं उन्हें कैसे वर्णन कर सकता हूँ? **तत्**-इसलिए, **एवम्**-इस प्रकार, **इयम्**-मेरा यह, **असमीक्षितकारितजाता**-बिना विचारे काम करता हुआ, **वा**-अथवा **पक्षिणः अपि**-पक्षी भी, **निजगिरा**-अपनी वाणी से, **जल्पन्ति ननु**-बोला करते हैं।

भावार्थ-हे प्रभो! आपका स्तवन आरम्भ करने के पहले मैंने इस बात का विचार नहीं किया कि आपके जिन गुणों का वर्णन बड़े-बड़े योगी भी नहीं कर सकते हैं, उनका वर्णन मैं कैसे करूँ? इसलिए हमारी

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

यह प्रवृत्ति बिना विचारे हुई है।।6।।

नाथ! आपके गुण हैं अनुपम, योगी कहने में असमर्थ।
अज्ञानी मुझसा अबोध क्या, कहने में हो सके समर्थ।।
फिर भी निज भक्ती से प्रेरित, हो गुण गाते बिना विचार।
पक्षी ज्यों बातें करते हैं, निज-निज भाषा के अनुसार।।6।।

आस्तामचिन्त्य-महिमा जिन! संस्तवस्ते,
नामापि पाति भवतो - भवतो जगन्ति।
तीव्राऽऽतपो-पहत-पान्थ-जनान्निदाघे,
प्रीणाति पद्म-सरसः स-रसोऽनिलोऽपि।।७।।

अन्वयार्थ-जिन!-हे जिनेन्द्र! **अचिन्त्यमहिम**-अचिंत्य है माहात्म्य जिसका ऐसा, **ते**-आपका, **संस्तवः**-स्तवन, **आस्ताम्**-दूर रहे, **भवतः**-आपका, **नाम अपि**-नाम भी, **जगन्ति**-जीवों को, **भवतः**-संसार से, **पाति**-बचा लेता है। क्योंकि **निदाघे**-ग्रीष्मकाल में, **तीव्रातपोपहतपान्थजनान्**-तीव्र घाम से सताये हुए पथिक जनों को, **पद्मसरसः**-कमलों के सरोवरों का, सरसः-**सरस**-शीतल, **अनिलः अपि**-पवन भी, प्रीणाति-संतुष्ट करता हैं।

भावार्थ-हे देव! आपके स्तवन की तो अचिन्त्य महिमा है ही, पर आपका नाममात्र भी जीवों को संसार के दु:खों से बचा लेता है। जैसे ग्रीष्मऋतु में घाम से पीड़ित मनुष्यों को, कमलयुक्त सरोवर तो सुख पहुँचाते ही हैं, पर उन सरोवरों की शीतल हवा भी सुख पहुँचाती है।।7।।

है अचिन्त्य महिमा स्तुति की, हे जिन! करे कौन गुणगान।
मात्र आपका नाम जीव को, भव दुख से देता है त्राण।।
ग्रीष्म ऋतू में तीव्र ताप से, पीड़ित होकर होय अधीर।
पद्म सरोवर का क्या कहना, सुख पहुँचाए सरस समीर।।7।।

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली भवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्म-बन्धाः।
सद्यो भुजङ्गम-मया इव मध्य-भाग-,
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य ।।८।।

अन्वयार्थ-विभो-हे स्वामिन!, **त्वयि**-आपके, **हृद्वर्तिनि 'सति'**-हृदय में मौजूद रहते हुए, **जन्तोः**-जीवों के, **निबिडा अपि**-सघन भी, **कर्मबन्धाः**-कर्मों के बन्धन, **क्षणेन**-क्षणभर में, **वनशिखण्डिनि**-वन मयूर के, **चन्दनस्य मध्यभागम् अभ्यागते 'सति'**-चन्दन तरु के बीच में आने पर, **भुजङ्गममया इव**-सर्पों की कुण्डलियों के समान, **सद्यः**-शीघ्र ही, **शिथिलीभवन्ति**-ढीले हो जाते हैं।

भावार्थ-हे भगवान! जिस तरह मयूर के आते ही चन्दन के वृक्ष में लिपटे हुए साँप ढीले पड़ जाते हैं, उसी तरह जीवों के हृदय में आपके आने पर उनके कर्मबन्धन ढीले पड़ जाते हैं।।8।।

मन मंदिर में वास करें जब, श्री जिन पार्श्वनाथ भगवन्।
ढीले पड़ जाते कर्मों के, दृढ़तर कर्मों के बन्धन।।
चन्दन तरु पर लिपट रहे हों, काले नाग जहाँ विकराल।
वन में आते ही मयूर के, बन्धन ढीले हों तत्काल।।8।।

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र!
रौद्रै-रुपद्रव-शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि।
गो-स्वामिनि स्फुरित-तेजसि दृष्टमात्रे,
चौरैरिवाऽऽशु पशवः प्रपलायमानैः।।६।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र!-हे जिनदेव/, **स्फुरिततेजसि**-पराक्रमी, **गोस्वामिनि**-राजा के, **दृष्टमात्रे**-दिखते ही, **आशु**-शीघ्र ही, **प्रपलायमानैः**-भागते हुए, **चौरैः**-चोरों के द्वारा, **पशवः इव**-पशुओं की तरह, **त्वयि वीक्षिते अपि**-आपके दिखते ही आपके दर्शन करते ही, **मनुजाः**-मनुष्य, **रौद्रैः**-भयंकर, **उपद्रवशतैः**-सैकड़ों उपद्रवों के द्वारा, **सहसा एव**-शीघ्र ही, **मुच्यन्त**-छोड़ दिये जाते हैं।

भावार्थ-हे नाथ! जिस तरह तेजस्वी राजा के दिखते ही चोर चुराई गई गायों को छोड़कर शीघ्र ही भाग जाते हैं, उसी तरह आपके दर्शन होते ही भयंकर उपद्रव (रोगादिक) मनुष्यों को छोड़कर भाग जाते हैं।।9।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

हे जिनेन्द्र! तव दर्शन करके, विपदाओं का होय विनाश।
अन्धकार भग जाता जैसे, उदित सूर्य का होय प्रकाश॥
पशुओं को रात्री में जैसे, आकर घेर रहे हों चोर।
गौ स्वामी को देख भागते, डर के कारण होते भोर॥9॥

त्वं तारको जिन! कथं भविनां त एव,
त्वामुद्वहन्ति - हृदयेन - यदुत्तरन्तः।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जल - मेष - नून-,
मन्तर्गतस्यऽमरुतः स किलानुभावः।।१०।।

अन्वयार्थ-जिन!-हे जिनेन्द्र देव!, **त्वम् भविनाम् तारकः कथम्**-आप संसारीजीवों को तारने वाले कैसे हो सकते हैं? **यत्**-क्योंकि, **उत्तरन्तः**-संसार-समुद्र से पार होते हुए, **ते एव**-वेसंसारी जीव ही, **हृदयेन**-हृदय से, **त्वाम्**-आपको, **उद्वहन्ति**-तिरा ले जाते हैं, **यद्वा**-अथवा ठीक है कि, **दृतिः**-मसक, **यत्**-जो, **जलम् तरति**-पानी में तैरती है, **सः एषः**-वह, **नूनम्**-निश्चय से, अन्तर्गतस्य, भीतर स्थित, **मरुतः**-हवा का ही, **अनुभावः किल**-प्रभाव है।

भावार्थ-हे प्रभो! जिस तरह भीतर भरी हुई वायु के प्रभाव से मसक पानी में तैरती है, उसी तरह आपको हृदय में धारण करने वाले (मन से आपका चिन्तवन करनेवाले) पुरुष आपके ही प्रभाव से संसार-समुद्र से तिरते हैं॥10॥

तुमको हृदय बसाने वाला, हो जाता है भव से पार।
भवि जीवों के लिए आप हो, चिन्तन का अनुपम आधार॥
वायू पूरित मसक तैरकर, हो जाती है सागर पार।
मन मंदिर में तुम्हें बसाने, से जीवों का हो उद्धार॥10॥

यस्मिन् हर-प्रभृतयोऽपि हत-प्रभावाः,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन।।११।।

अन्वयार्थ-यस्मिन्-जिसके विषय में, **हरप्रभृतयः अपि**-महादेव आदि भी, **हतप्रभावाः जाताः**-प्रभाव रहित हो गये हैं, **सः**-वह, **रतिपतिः अपि**-कामदेव भी, **त्वया**-आपके द्वारा, **क्षणेन**-क्षणमात्र में, **क्षपितः**-नष्ट कर दिया गया, **अथ**-अथवा ठीक है कि, **येन पयसा**-जिस जल ने, **हुतभुजः-विध्यापिताः**-अग्नि का बुझाया है, **तत् अपि**-वह जल भी, **दुर्धरवाडवेन**-प्रचण्ड बड़वानल के द्वारा, **किम्**-क्या, **न पीतम्**-नहीं पिया गया? अर्थात् पिया गया।

भावार्थ-जिस काम ने हरि, हर ब्रह्मा आदि महापुरुषों को पराजित कर दिया था, उस काम को भी आपने पराजित कर दिया, यह आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि जो जल संसार की समस्त अग्नि को नष्ट करता है, उस जल को भी बड़वानल नामक समुद्र की अग्नि नष्ट कर डालती है॥11॥

हरि-हर आदिक महापुरुष भी, कामदेव से हारे हैं।
कामदेव के बाण आपने, क्षण में जीते सारे हैं॥
दावानल का पानी जैसे, कर देता है पूर्ण विनाश।
उसी नीर का क्रोधित होकर, बड़वानल कर देता नाश॥11॥

स्वामिन्ननल्प-गरिमाणमपि प्रपन्नास्-,
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः।।१२।।

अन्वयार्थ-स्वामिन्!-हे प्रभो, **अहो**-आश्चर्य है कि, **अनल्पगरिमाणम् अपि**-अधिक गौरव से युक्त भी विरोध पक्ष में-अत्यन्त वजनदार, **त्वाम्**-आपको, **प्रपन्नाः**-प्राप्त हो, **हृदये दधानाः**-हृदय में धारण करनेवाले, **जन्तवः**-प्राणी, **जन्मोदधिम्**-संसार-समुद्र को, **अतिलाघवेन**-बहुत ही लघुता से, **कथम्**-कैसे, **लघु**-शीघ्र, **तरन्ति**-तर जाते हैं। **यदि वा**-अथवा, **हन्त**-हर्ष है कि, **महताम्**-महापुरुषों का, **प्रभावः**-प्रभाव, **चिन्त्यः**-चिन्तवन के योग्य, **न 'भवति'**-नहीं होता है।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-श्लोक में आये हुए 'अनल्पगरिमाणम्' पद के 'अधिक वजनदार' और 'अत्यन्त गौरव से युक्त'-श्रेष्ठ इस तरह दो अर्थ होते हैं। उनमें से आचार्य ने प्रथम अर्थ को लेकर विरोध बतलाते हुए आश्चर्य प्रकट किया है, और दूसरे अर्थ को लेकर उस विरोध का परिहार किया है।।12।।

अन्य किसी से जिनकी तुलना, करना सम्भव नहीं अरे!।
ऐसे प्रभु के गुण अनन्त का, कैसे कोइ गुणगान करे॥
प्रभु को हृदय बसाते हैं जो, भवसागर तिर जाते हैं।
है अचिन्त्य महिमा श्री जिन की, चिन्तन में न आते हैं॥12॥

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी।।१३।।

अन्वयार्थ-विभो-हे स्वामिन्!, **यदि**-यदि, **त्वया**-आपके द्वारा, **क्रोधः**-क्रोध, **प्रथमम्**-पहले से, **निरस्तः**-नष्ट कर दिया गया था, **तदा**-तो फिर, **वद**-कहिये कि आपने, **कर्मचौराः**-कर्मरूपी चोर, **कथम्**-कैसे, **ध्वस्ताः किल**-नष्ट किये? **यदि वा**-अथवा, **अमूत्र लोके**-इस लोक में, **हिमानी अपि**-बर्फ-तुषार ठण्डा होने पर भी, **किम्**-क्या, **नीलद्रुमाणि**-हरे हरे है। वृक्ष जिनमें ऐसे, **विपिनानि**-वनों को, **न प्लोषति**-नहीं जला देता है! अर्थात् जला देता है-मुरझा देता है।

भावार्थ-लोक में ऐसा देखा जाता है कि क्रोधी मनुष्य ही शत्रुओं को जीतते हैं, पर भगवन्! आपने क्रोध को तो नवमें गुणस्थान में ही जीत लिया था। फिर क्रोध के अभाव में कर्मरूपी शत्रुओं को कैसे जीता? आचार्य ने इस लोकविरुद्ध बात पर पहले आश्चर्य प्रगट किया, पर जब बाद में उन्हें ख्याल आता है कि ठण्डा तुषार बड़े-बड़े वनों को क्षणभर में जला देता है, अर्थात् क्षमा से भी शत्रु जीते जा सकते हैं, तब वे अपने आश्चर्य का स्वयं समाधान कर लेते हैं।।13।।

सबसे पहले प्रभू आपने, क्रोध शत्रु का नाश किया।
क्रोध बिना फिर कहो आपने, कैसे कर्म विनाश किया॥
बर्फ लोक में ठण्डा होकर, रक्षा कर झुलसाता है।
क्षमाजयी प्रभु तुमरे द्वारा, बैरी जीता जाता है॥13॥

त्वां योगिनो जिन! सदा परमात्मरूप-,
मन्वेष-यन्ति हृदयाम्बुज कोष-देशे।
पूतस्य निर्मल-रुचेर्-यदि वा किमन्य,
दक्षस्य संभव-पदं ननु कर्णिकायाः।।१४।।

अन्वयार्थ-जिन!-हे जिनेन्द्र। **योगिनः**-ध्यान करने वाले मुनीश्वर, **सदा**-हमेशा, **परमात्मरूपम्**-परमात्मास्वरूप, **त्वाम्**-आपको, **हृदयाम्बुजकोषदेशे**-अपने हृदयरूप कमल के मध्यभाग में, **अन्वेषयन्ति**-खोजते हैं, **यदि वा**-अथवा ठीक है कि पूतस्य-पवित्र और **निर्मलरुचेः**-निर्मल कान्तिवाले, **अक्षस्य**-कमल के बीच का अथवा शुद्धात्मा का, **सम्भवपदम्**-उत्पत्ति स्थान अथवा खोज करने का स्थान, **कर्णिकायाः अन्यत्**-कमल की कर्णिका **हृदय**-कमल की कर्णिका को छोड़कर, **अन्यत् किम् ननु**-दूसरा क्या हो सकता है?

भावार्थ-बड़े-बड़े योगीश्वर ध्यान करते समय अपने हृदय कमल में आपको खोजते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि जैसे कमल बीज की उत्पत्ति कमल कर्णिका में ही होती है, उसी तरह शुद्धात्मस्वरूप आपका सद्भाव भी हृदयकमल की कर्णिका में ही होगा। श्लोक में आये हुए अक्ष शब्द केक 'कमलबीज कमलगटा' और आत्मा (अक्ष्णाति-जानातीत्यक्षः आत्मा) इस तरह दो अर्थ होते हैं।।14।।

श्रेष्ठ महर्षी प्रभू आपकी, महिमा अनुपम गाते हैं।
हृदय कमल में ज्ञान नेत्र से, अन्वेषण कर ध्याते हैं॥
कमल कर्णिका श्रेष्ठ बीज का, है पवित्र उत्पत्ति स्थान।
हृदय कमल के मध्य भाग में, शुद्धातम का होता ध्यान॥14॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

ध्यानाज्जिनेश! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपल-भावमपास्य लोके,
चामीकरत्वमचिरादिव धातु-भेदाः।।१५।।

अन्वयार्थ-जिनेश!-हे जिनेन्द्र!, **लोके**-लोक में, **तीव्रानलात्**-तीव्र अग्नि के सम्बन्ध से, **धातुभेदाः**-अनेक धातुएँ, **उपलभावम्**-पत्थर रूप पूर्वपर्याय को, **अपास्य विहाय**-छोड़कर, **अचिरात्**-शीघ्र ही, **चामीकरत्वम् इव**-जिस तरह सुवर्णपर्याय को प्राप्त हो जाती हैं, उसी तरह **भविनः**-संसार के प्राणी, **भवतः**-आपके, **ध्यानात्**-ध्यान से, **देहम्**-शरीर को छोड़कर, **क्षणेन**-क्षण भर में, **परमात्मदशाम्**- परमात्मा की अवस्था को, **व्रजन्ति**-प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ-जो जीव आपका ध्यान करते हैं, वे थोड़े ही समय में शरीर छोड़कर आत्म स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं।।15।।

धातु शिला अग्नी को पाकर, तजती किट्ट कालिमा रूप।
पत्थर की पर्याय छोड़कर, हो जाता है स्वर्ण स्वरूप।।
ऐसे ही संसारी प्राणी, करें आपका निश्चल ध्यान।
परमातम पद पाने वाले, बनें वीतरागी विज्ञान।।15।।

अंतः सदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वं,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्।
एतत्स्वरूपमथ मध्य-विवर्तिनो हि,
यद् दिग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः।।१६।।

अन्वयार्थ-जिन!-हे जिनेन्द्र!, **भव्यैः**-भव्य जीवों के द्वारा, **यस्य**-जिस शरीर के, **अन्तः**-भीतर, **त्वम्**-आप, **सदैव**-हमेशा, **विभाव्यसे**-ध्याये जाते हों, **तत्**-उस, **शरीरम् अपि**-शरीर को भी आप, **कथम्**-क्यों, **नाशयसे**-नष्ट करा देते हैं? **अथ**-अथवा, **एतत्स्वरूपम्**-यह स्वभाव ही है, **यत्**-कि, **मध्यविवर्तिनः-मध्यस्थ**-बीच में रहने वाले और राग-द्वेष से रहित, **महानुभावाः**-महापुरुष, **विग्रहम्**-विग्रह शरीर और द्वेष को, **प्रशमयन्ति**-शान्त करते हैं।

भावार्थ-लोक में रीति प्रचलित है कि जो जहाँ रहता है, वह उस जगह का विनाश नहीं करता। पर भगवन्! आप भव्य जीवों के जिस शरीर में हमेशा सम्मानपूर्वक ध्याये जाते हैं, आप उन्हें उसी विग्रह (शरीर) को नष्ट करने का उपदेश देते हैं। श्लोक में आये हुए विग्रह शब्द के दो अर्थ हैं-एक 'शरीर' और दूसरा 'द्वेष' इसी तरह 'मध्यविवर्तिनः' शब्द के भी दो अर्थ हैं-एक 'बीच में रहने वाला' और दूसरा 'रागद्वेष से रहित समताभावी'।।16।।

जिस शरीर के मध्य बिठाकर, भविजन तुमको ध्याते हैं।
उस शरीर को आप जिनेश्वर, फिर क्यों नाश कराते हैं।।
राग-द्वेष से रहित जीव का, विग्रह ही स्वभाव रहा।
राग-द्वेष को शमित किया है, सत्पुरुषों ने पूर्ण अहा।।16।।

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेद-बुद्ध्या,
ध्यातो जिनेन्द्र! भवतीह भवत्प्रभावः।
पानीय - मप्यमृत - मित्यनु-चिन्त्यमानं,
किं नाम नो विष-विकारमपा-करोति।।१७।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र!-हे जिनेन्द्र! **मनीषिभिः**-बुद्धिमानों के द्वारा, **त्वदभेदबुद्ध्या**-'आपसे अभिन्न है' ऐसी बुद्धि से, **ध्यातः**-ध्यान से किया गया, **अयम् आत्मा**-यह आत्मा, **भवत्प्रभाव**-आप ही के समान प्रभाववाला, **भवति**-हो जाता है। **अमृतम् इति अनुचिन्त्यमानम्**-यह अमृत है, इस तरह निरन्तर चिन्तवन किया जानेवाला, **पानीयम् अपि**-पानी भी, **किम्**-क्या, **विषविकारम्**-विष के विकार को, **नो अपाकरोति नाम**-दूर नहीं करता? अर्थात् करता है।

भावार्थ-"भगवन्! जैसी विशुद्ध आत्मा निश्चय नय से हमारी भी है, किन्तु वर्तमान में कर्मोदय से अशुद्ध हो रही है। यदि मैं भी आपके रास्ते पर चलने का प्रयत्न करूँ, तो मेरी आत्मा भी शुद्ध हो जावेगी।" ऐसा सोचकर जो शुद्ध होने का प्रयत्न करता है, वह आपके ही समान शुद्ध हो जाता

है जैसे कि यह अमृत है, इस प्रकार निरन्तर चिन्तवन किया गया पानी मन्त्रादि के संयोग से अमृतरूप हो जाता है और विष के विकार को दूर करने लगता है।।17।।

जब अभेद बुद्धी के द्वारा, योगी करें आपका ध्यान।
है प्रभाव यह प्रभू आपका, हो जाते हैं आप समान।।
यह अमृत है ऐसी श्रद्धा, करके जल पीते जो लोग।
विष विकार में मंत्रित जल से, होता है क्या नहीं वियोग।।17।।

त्वामेव वीत - तमसं परवादिनोऽपि,
नूनं विभो! हरि - हरादि धिया प्रपन्नाः।
किं काच - कामलिभिरीश सितोऽपि शंखो,
नोगृह्यते विविध - वर्ण - विपर्ययेण।।१८।।

अन्वयार्थ-विभो!-हे स्वामिन्!, **परवादिनः अपि**-अन्यमतावलम्बी पुरुष भी, **वीततमसम्**-अज्ञान अन्धकार से रहित, **त्वाम् एव**-आपको ही, **नूनम्**-निश्चय से, **हरिहरादिधिया**-विष्णु, महादेव आदि की कल्पना से, **प्रपन्नाः**-प्राप्त होते हैं-पूजते हैं। **किम्**-क्या, **ईश!**-हे विभो!, **काचकामलिभिः**-जिनकी आँख पर रंगदार चश्मा है, अथवा जिन्हें पीलिया रोग हो गया है, ऐसे पुरुषों के द्वारा, **शंक सितः अपि**-शंख सफेद होने पर भी, **विविधवर्णविपर्येण**-तरह-तरह के विपरीत वर्णों से, **नो गृह्यते**-नहीं ग्रहण किया जाता? अर्थात् किया जाता है।

भावार्थ-हे भगवन्! जिस तरह कामला (पीलिया) रोग वाला मनुष्य सफेद शंख को नाना प्रकार से ग्रहण करता है, उसी मिथ्यात्व के उदय से अन्य मतावलम्बी पुरुष आपको ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि मानकर पूजते हैं।।18।

अज्ञानी प्राणी कहते हैं, तुमको ब्रह्मा विष्णु महेश।
अन्यमतावलम्बी पूजा शुभ, करें आपकी श्रेष्ठ जिनेश।।
निश्चित मानो प्यारे भाई, जिनको हुआ पीलिया रोग।
श्वेत शंख भी पीला दिखता, उस बीमारी के संयोग।।18।।

धर्मोपदेश-समये सविधानुभावा-,
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि,
किं वा विबोधमुपयाति न जीव-लोकः।।१६।।

अन्वयार्थ-धर्मोपदेशसमय-धर्मोपदेश के समय, **ते**-आपकी, **सविधानुभावात्**-समीपता के प्रभाव से, **जनः आस्ताम्**-मनुष्य तो दूर रहे, **तरुः अपि**-वृक्ष भी, **अशोकः**-शोक रहित, **भवति**-हो जाता है, **वा**-अथवा, **दिनपतौ अभ्युद्गते 'सति'**-सूर्य के उदित होने पर, **समहीरुहः अपि जीवलोकः**-वृक्षों सहित समस्त जीवलोक, **किम्**-क्या, **विबोधम्-विकाश**-विशेष ज्ञान को, **न उपयाति**-प्राप्त नहीं होते? अर्थात् होते हैं।

भावार्थ-इस श्लोक में अशोक शब्द के दो अर्थ होते हैं-एक अशोक वृक्ष और दूसरा शोक रहित। इसी तरह विबोध शब्द के भी दो अर्थ हैं-एक विशेष ज्ञान और दूसरा हराभरा तथा प्रफुल्लित होना। हे भगवन्! जब आपके पास में रहने वाला वृक्ष भी अशोक हो जाता है, तब आपके पास रहने वाला मनुष्य अशोक=शोक रहित हो जावे तो इसमें क्या आश्चर्य है? यह 'अशोक वृक्ष' प्रातिहार्य का वर्णन है।।19।।

धर्म देशना के अवसर पर, जो आ जाए तुमरे पास।
मानव की क्या बात शोक तरु, हो अशोक का पूर्ण विनाश।।
सूर्योदय होने पर केवल, मानव ही ना पाते बोध।
वनस्पति भी निद्रा को तजकर, पा लेती है पूर्ण विवोध।।19।।

चित्रं विभो! कथमवाङ्मुख-वृन्तमेव,
विष्वक्पतत्य विरला सुर-पुष्प-वृष्टिः।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश!
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि।।२०।।

अन्वयार्थ-विभो!-हे प्रभो!, **चित्रम्**-आश्चर्य है कि, **विश्वक्**-सब ओर **अविरला**-व्यवधान रहित, **सुरपुष्पवृष्टिः**-देवों के द्वारा की हुई फूलों की

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

वर्षा, **वाङ्मुखवृन्तम्**-एवं, **यथा स्थातथा**-नीचे का बन्धन करके ही, **कथम्**-क्यों, पतति-पड़ती है? **यदि वा**-अथवा ठीक है कि, **मुनीश!**-हे मुनियों के नाथ! **त्वद्गोचरे**-आपके समीप, **सुमनसाम्**- पुष्पों अथवा विद्वानों के, **बन्धनानि**-डंठल अथवा कर्मों के बन्धन, **नूनम् हि**-निश्चय से, **अधः एव गच्छन्ति**-नीचे हो जाते हैं।

भावार्थ-इस श्लोक में सुमनसाम् शब्द के दो अर्थ हैं-एक फूल और दूसरा विद्वान् या देव। इसी तरह बन्धन शब्द के भी दो अर्थ हैं-एक फूल का बन्धन-डण्ठल और दूसरा कर्मों के प्रकृति आदि चार तरह के बन्ध। हे भगवन् जो आपके पास रहता है, उसके कर्मों के बन्धन नीचे चले जाते हैं-नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए तो आपके ऊपर जो फूलों की वर्षा होती है, उनमें फूलों के बन्धन नीचे होते हैं और पाँखुरी ऊपर। यह 'पुष्पवृष्टि' प्रातिहार्य का वर्णन॥20॥

सघन पुष्प वृष्टी की जाती, देवों द्वारा अपरम्पार।
डण्ठल नीचे ऊर्ध्व पांखुड़ी, होती पुष्पों की शुभकार॥
मानो डण्ठल सूचित करते, आते हैं जो तुमरे पास॥
कर्मों के बन्धन भव्यों के, हो जाते हैं पूर्ण विनाश॥20॥

स्थाने गभीर-हृदयोदधि-सम्भवायाः,
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।
पीत्वाः यतः परम-सम्मद-संग-भाजो,
भव्याव्रजन्ति तरसाप्य-जरा-मरत्त्वम्।।२१।।

अन्वयार्थ-गभीरहृदयोदधिसंभवायाः-गम्भीर हृदयरूपी समुद्र में पैदा हुई, **तव**-आपकी, **गिरः?ः**-वाणी के, **पीयूषताम्**-अमृतपने को लोग, **स्थाने**-ठीक ही, **समुदीरयन्ति**-प्रकट करते हैं। **यतः**-क्योंकि, **भव्याः**-भव्य जीव, **'ताम्' पीत्व**-उसे पीकर, **परमसंमदसंगभाजः 'सन्त'**-परम सुख के भागी होते हुए, **तरसा अपि**-बहुत ही शीघ्र, **अजरामरत्वम्**-अजर-अमरपने को, **व्रजन्ति**-प्राप्त होते हैं।

भावार्थ-लोक में प्रचलित है कि अमृत गहरे समुद्र से निकला था और उसका पान करने से देव लोग आनन्दित होते हुए अजर-(बुढ़ापा) रहित तथा अमर मृत्यु रहित हो गये थे। भगवन्! आपकी वाणी भी आपके गंभीर हृदयरूपी समुद्र से पैदा हुई है और उसके सेवन करने से लोग परम सुखी हो अजर-अमर हो जाते हैं ऐसी हालत में लोग यदि यह कहें कि आपकी वाणी अमृत है, तो ठीक ही कहते हैं। यह 'दिव्यध्वनि 'प्रातिहार्य का वर्णन है॥21॥

प्रभु गम्भीर हृदय के सागर, से मुखरित हैं दिव्य वचन।
सच है सुधा समान मानते, तीन लोक में सारे जन॥
अमृतवाणी पीके प्राणी, अक्षय सुख पा जाते हैं।
आकुलता को तजने वाले, अजर-अमर पद पाते हैं॥21॥

स्वामिन्सुदूर-मवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्येवदन्ति शुचयः सुर-चामरौघाः।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि-पुंगवाय,
ते-नून-मूर्ध्व-गतयः खलु शुद्ध-भावाः।।२२।।

अन्वयार्थ-स्वामिन्-हे प्रभो!, **मन्ये**-मैं मानता हूँ कि, **सुदूरम्**-नीचे को बहुत दूर तक, **अवनम्य**-नम्रीभूत होकर, **समुत्पतन्तः**-ऊपर को आते हुए, **शुचयः**-पवित्र, **सुरचामरौघाः**-देवों के चमर-समूह, **वदन्ति**- लोगों से कह रहे हैं कि **ये**-जो, **अस्मै मुनिपुंगवाय**-इन श्रेष्ठ मुनि को, **नतिम्**-नमस्कार, **विदधते**-करते हैं, **ते**-वे, **नूनम्**-निश्चय से, **शुद्धभावाः**-विशुद्ध परिणाम वाले होकर, **ऊर्ध्वगतयः**-ऊर्ध्वगति वाले, **'भवन्ति' खलु**-हो जाते हैं, **अर्थात् स्वर्ग**-मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ-हे भगवन्! जब देव लोग आप पर चँवर ढोरते हैं, तब वे चँवर पहले नीचे की ओर झुकते हैं और बाद में ऊपर को जाते हैं, सो मानों लोगों से यह कहते हैं कि भगवान को झुककर नमस्कार करने वाले पुरुष हमारे समान ही ऊपर हो जाते हैं, अर्थात् स्वर्ग मोक्ष को पाते हैं। यह 'चमर' प्रातिहार्य का वर्णन है॥22॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

चँवर ढुराते देव तो पहले, नीचे फिर ऊपर जाते।
मानो जग जीवों को झुककर, विनय शीलता सिखलाते॥
'विशद' भाव से करते हैं जो, श्री जिनेन्द्र के चरण नमन।
कर्म नाशकर के वह प्राणी, जाते हैं फिर मोक्ष सदन॥22॥

श्यामं गभीर-गिरमुज्ज्वल-हेम-रत्न,
सिंहासनस्थमिह भव्य-शिखण्डिनस्त्वाम्।
आलोकयन्ति-रभसेन नदन्तमुच्चैश्-,
चामीकराद्रि-शिरसीव नवाम्बुवाहम्।।२३।।

अन्वयार्थ-इह-इस लोक में, **श्यामम्**-श्याम वर्ण, **गभीरगिर**-गम्भीर दिव्यध्वनि युक्त और **उज्ज्वलहेमरत्नसिंहासनस्थम्**-निर्मल सुवर्ण के बने हुए रत्नजड़ित सिंहासन पर स्थित, **त्वाम्**-आपको, **भव्यशिखण्डिनः**-भव्य जीवरूपी मयूर, **चामीकराद्रिशिरसि**-सुवर्णमय मेरुपर्वत की शिखर पर, **उच्चैः नदन्तम्**-जोर से गरजते हुए, **नवाम्बुवाहम् इव**-नूतन मेघ की तरह, **रभसेन**-उत्कण्ठापूर्वक, **आलोकयन्ति**-देखते हैं।

भावार्थ-हे प्रभो! जिस तरह सुवर्णमय मेरु पर्वत पर उमड़े हुए गर्जना करने वाले काले मेघ को देखकर मयूरों को बहुत ही आनंद होता है, उसी तरह दिव्यध्वनि करते हुए तथा सोने के सिंहासन पर विराजमान श्यामवर्ण वाले आपके दर्शन कर भव्यजीवों को अत्यन्त आनन्द होता है। उनका मन मयूर की तरह नाचने लगता है। यह 'सिंहासन' प्रातिहार्य का वर्णन है।।23।।

सिंहासन स्वर्णिम कंचनमय, पर स्थित हैं श्री जिनेश।
दिव्य ध्वनि प्रगटाते अनुपम, श्यामल तन में प्रभा विशेष॥
होता स्वर्ण सुमेरू पर ज्यों, काले मेघों का गर्जन।
हर्षित होकर भव्य मोर ज्यों, करें आपका अवलोकन॥23॥

उद्गच्छता तव शिति-द्युति-मण्डलेन,
लुप्त-च्छदच्छवि-रशोक - तरुर्बभूव।

सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग,
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि।।२४।।

अन्वयार्थ-उद्गच्छता-स्फुरायमान,**तव**-आपके, **शितिद्युतिमण्डलेन**-प्रभामण्डल के द्वारा, **अशोकतरुः**-अशोकवृक्ष, **लुप्तच्छदच्छविः**-कान्तिहीन पत्रोंवाला, **बभूव**-हो गया, **यदि वा**-अथवा, **वीतराग!**-हे राग-द्वेष रहित देव!, **तव सान्निध्यतः अपि**-आपकी समीपता मात्र से ही, **कः सचेतनः अपि**-कौन पुरुष सचेतन होकर भी, **नीरागताम्**-राग से रहितपने अथवा अनुराग के अभाव को, **न व्रजति**-नहीं प्राप्त होता? अर्थात् प्राप्त होता है।

भावार्थ-यह भामण्डल प्रातिहार्य का वर्णन है। हे भगवन्! आपकी श्यामल कान्ति के संसर्ग से अशोक वृक्ष की लालिमा दब गई, सो ठीक ही है वीतराग (ललाई सहित, दूसरे पक्ष में स्नेह पक्ष में स्नेह रहित) नहीं हो जाता? अर्थात् सभी हो जाते हैं। इस श्लोक में राग पद दो अर्थों वाला है-अनुराग-प्रेम-स्नेह और दूसरा लालिमा-ललाई।।24।।

भामण्डल दैदीप्यमान शुभ, सुर तरु की छवि लुप्त करे।
स्वयं अचेतन होकर भी जो, प्रभा दिखाए श्रेष्ठ अरे!॥
भव्य जीव हे नाथ! आपकी, स्वयं निकटता में आवे।
वीतराग हो भव्य जीव वह, मोक्ष निकेतन को पावे॥24॥

भो - भोः! - प्रमादमवधूय भजध्वमेन-,
मागत्य निर्वृति-पुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन् नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते।।२५।।

अन्वयार्थ-देव!-हे देव!, मन्ये-मैं समझता हूँ कि, **अभिनभः**-आकाश में सब ओर, **नदन्**-शब्द करती हुई, **ते**-आपकी, **सुरदुन्दुभिः**-देवों के द्वारा बजाई गई दुन्दुभि, **जगत्त्रयाय**-तीन लोकों के जीवों को, **एतत् निवेदयति**-यह सूचित कर रही है कि **भो भोः**-रे रे प्राणियो!, **प्रमादम् अवधूय**-प्रमाद को छोड़कर, **निर्वृतिपुरीम् प्रति सार्थवाहम्**-मोक्षपुरी को ले जाने में अगुवा, **एवं**-इन भगवान् को, **आगत्य**-आकर, **भजध्वम्**-भजो।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-हे प्रभो! आकाश में जो देवों का नगाड़ा बज रहा है, वह मानों तीन लोक के जीवों को चिल्ला-चिल्लाकर सचेत कर रहा है कि जो मोक्षनगरी की यात्रा के लिए जाना चाहते हैं, वे प्रमाद छोड़कर भगवान् पार्श्वनाथ की सेवा करें। यह ''दुन्दुभि'' प्रातिहार्य का वर्णन है।।25।।

(रोला छन्द)

दुन्दुभि नाद गगन में होवे देवों द्वारा।
मानो चिल्लाकर कहती लो चरण सहारा।।
मोक्षपुरी जाना चाहो तो प्रभु को ध्याओ।
तज प्रमाद हे प्राणी! तुम भी शिवपद पाओ।।25।।

उद्योतितेषु भवता भुवनेषुनाथ!,
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ता-कलाप-कलितोरु-सितातपत्रा-,
व्याजात्त्रिधा धृत-तनुर्ध्रुवमभ्युपेतः।।२६।।

अन्वयार्थ-नाथ!-हे स्वामिन्!, **भवता भुवनेषु उद्योतितेषु 'सत्सु'**-आपके द्वारा तीनों लोकों के प्रकाशित होने पर, **विहताधिकारः**-अपने अधिकार से भ्रष्ट तथा, **मुक्ताकलापकलितोरुसितातपत्र- व्याजात्**-मोतियों के समूह से सहित अतएव शोभायमान सफेद छत्र के छल से, **तारान्वितः**-ताराओं से वेष्टित, **अयम् विधुः**-यह चन्द्रमा, **त्रिधा धृततनुः**-तीन-तीन शरीर धारण कर, **ध्रुवम**-निश्चय से, **'त्वाम्' अभ्युपेतः**-आपकी सेवाओं में प्राप्त हुआ है।

भावार्थ-हे प्रभो! जब आपने अपनी कांति व ज्ञान से तीनों लोकों को प्रकाशित कर दिया तब मानों चन्द्रमा का प्रकाश करने रूप अधिकार छीन लिया गया। इसलिए वह तीन छत्र का वेष धरकर आपकी सेवा में अपना अधिकार वापिस चाहने के लिए उपस्थित हुआ है। छत्रों में जो मोती लगे हुए हैं, वे मानों चन्द्रमा के परिवार-स्वरूप तारागण हैं। यह 'छत्रत्रय' प्रातिहार्य का वर्णन है।।26।।

तीन छत्र त्रिभुवन के नाथ! बताने वाले।
तारा गण की छवी युक्त हैं श्रेष्ठ निराले।।
त्रिविध रूप धारण कर जैसे चाँद दिखावे।
होकर भाव विभोर प्रभू सेवा को आवे।।26।।

स्वेनप्रपूरित - जगत्त्रय - पिण्डितेन,
कान्ति-प्रताप-यशसामिव संचयेन।
माणिक्य - हेम - रजत - प्रविनिर्मितेन,
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि।।२७।।

अन्वयार्थ-भगवन्-हे भगवन्! आप, **अभितः**-चहुँ ओर, **प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन**-भरे हुए जगत्रय के पिण्ड अवस्था को प्राप्त, **स्वेन कान्तिसञ्चयेन इव**-अपने कान्ति प्रताप और यश के समूह के समान शोभायमान, **माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन**-माणिक्य, सुवर्ण और चाँदी से बने हुए। **सालत्रयेण**-तीनों कोटों से, **विभासि**-शोभायमान होते हो।

भावार्थ-हे भगवन्! समवसरण भूमि में जो आपके चारों ओर माणिक्य, सुवर्ण और चाँदी के बने हुए तीन कोट हैं, वे मानों आपकी कान्ति, प्रताप और यश का समूह हैं, जो कि तीनों जगत् में फैलकर पिण्डरूप हो गया है।।27।।

सोना चाँदी माणिक से त्रय, कोट बनाए।
तीन लोक के पिण्ड सम्पदा, युक्त कहाए।।
कान्ति कीर्ति व तेज पुञ्ज का, वर्तुल गाया।
पार्श्व प्रभू का समवशरण जगती पर आया।।27।।

दिव्य-स्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपाना-,
मुत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलि-बन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र,
त्वत्संगमे सुमनसो न रमन्त एव।।२८।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-**जिन**-हे जिनेन्द्र!, **दिव्यस्रजः**-दिव्य पुरुषों की मालाएँ, **नमत्त्रिदशाधिपानाम्**-नमस्कार करते हुए इन्द्रों के, **रत्नरचितान् अपि मौलिबन्धान्**-रत्नों से बने हुए मुकुटों को भी, **विहाय**-छोड़कर, **भवतः पादौ श्रयन्ति**-आपके चरणों का आश्रय लेती हैं। **यदि वा**-अथवा ठीक है कि **त्वत्संगमे 'सति'**-आपका समागम होने पर, **सुमनसः**-पुष्प अथवा विद्वान् पुरुष, **अपरत्र**-किसी दूसरी जगह, **न एव रमन्ते**-नहीं रमण करते हैं।

भावार्थ-श्लोक में आये हुए सुमनस् शब्द के दो अर्थ हैं-एक पुष्प और दूसरा विद्वान् पुरुष। हे भगवन्! नमस्कार करते समय देवों के मुकुटों में लगी हुई फूलों की मालाएँ जो आपके चरणों में गिर जाती हैं, मानों वे पुष्प-मालाएँ आपसे इतना अधिक प्रेम करती हैं, कि उनके पीछे देवों के रत्नों से बने हुए मुकुटों को छोड़ देती हैं। सुमनस्-फूलों का आपमें अगाध प्रेम होना उचित ही है। तात्पर्य यह है कि आपके लिए बड़े-बड़े इन्द्र भी नमस्कार करते हैं।।28।।

इन्द्रों के मुकुटों की दिव्य सुमन मालाएँ।
नमस्कार के समय चरण में जो गिर जाएँ।।
मानो वह तव चरणों में शुभ जगह बनाएँ।
पाद पद्म को छोड़ और अब कहीं न जाएँ।।28।।

त्वं नाथ! जन्म जलधेर् विपराङ्मुखोऽपि,
यत्तारयस्य सुमतो निज-पृष्ठ-लग्नान्।
युक्तं हि पार्थिव-निपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो! यदसि कर्म-विपाक-शून्यः।।२६।।

अन्वयार्थ-**नाथ!**-हे स्वामिन्!, **त्वम्**-आप, **जन्म-जलधेः**-संसाररूप समुद्र से विपराङ्मुखः **अपि सन्**-परांगमुख होते हुए भी, **यत्**-जो, **निजपृष्ठलग्नान्**-अपने पीछे लगे हुए अनुयायी, **असुमतः**-जीवों को, **तारयसि**-तार देते हो, **'तत्'**-वह, **पार्थिवनृपस्य सतः**-राजाधिराज अथवा मिट्टी के पके हुए घड़े की तरह परिणमन करने वाला, **तव**-आपको, **युक्तम् एव**-उचित ही है। **परन्तु विभो!**-हे प्रभो!, **तत् चित्रम्**-यह

आश्चर्य की बात है, **यत्**-जो आप, **कर्मविपाक**-शून्यः **असि**-कर्मो के उदयरूप पाक क्रिया से रहित हो।

भावार्थ-जिस तरह घड़ा पानी में अधोमुख होकर अपनी पीठ पर स्थित लोगों को नदी-नाले आदि से पार कर देता है। उसी तरह आप यद्यपि राग न होने से संसार-समुद्र से परांगमुख रहते हैं, तथापि अपने अनुयायियों को उससे पार लगा देते हैं-मोक्ष प्राप्त करा देते हैं। किन्तु आप पाक रहित हो, यह आश्चर्य की बात है। उसका परिहार यह है कि आप कर्मो के उदय से रहित हैं।।29।।

हुआ अधोमुख पक्व घड़ा सागर में जावे।
गहन जलाशय से मानव को पार करावे।।
भव सिंधू से हुए विमुख हैं संत निराले।
भव्यों को भव तारक अतिशय महिमा वाले।।29।।

विश्वेश्वरोऽपि जन-पालक दुर्गतस्त्वं,
किं वाऽक्षर-प्रकृतिरप्य लिपिस्त्वमीश!
अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-विकास-हेतुः।।३०।।

अन्वयार्थ-**जनपालक**-हे जीवों के रक्षक!, **त्वम्**-आप, **विश्वेश्वरः अपि दुर्गतः**-तीन लोक के स्वामी होकर भी दरिद्र हैं, **किं वा**-और, **अक्षरप्रकृतिः अपि त्वम् अलिपिः**-अक्षरस्वभाव होकर भी लेखनक्रिया से रहित हैं। **ईश**-हे स्वामिन्!, **कथंचित्**-किसी प्रकार से, **अज्ञानवति अपि त्वयि**-अज्ञानवान् होने पर भी आप में, **विश्वविकासहेतु ज्ञानम् सदा एव स्फुरति**-सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला ज्ञान हमेशा स्फुरायमान रहता है।

भावार्थ-इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है। विरोधाभास अलंकार में शब्द के सुनते समय तो विरोध मालूम होता है पर अर्थ विचारने पर बाद में उसका परिहार हो जाता है। जहाँ से इस अलंकार का मूल श्लेष होता है, वहाँ बहुत ही अधिक चमत्कार पैदा हो जाता है।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

देखिये–भगवन्! आप विश्वेश्वर होकर भी दुर्गत हैं। यह पूरा विरोध है। भला, जो जगत् का ईश्वर है, वह दरिद्र कैसे हो सकता है? विश्वेश्वर होकर भी दुर्गत–कठिनाई से जाने जा सकते हैं। इसी तरह आप अक्षरप्रकृति–अक्षर स्वभाव वाले होकर भी अलिपि लिखे नहीं जा सकते। यह विरोध है। जो क, ख आदि अक्षरों जैसा है, वह लिखा क्यों न जावेगा? परन्तु दोनों शब्दों का श्लेष विरोध को दूर कर देता है। आप अक्षरप्रकृति–अविनश्वर स्वभाव वाले होकर भी अलिपि–आकार रहित हैं–निराकार हैं। इसी प्रकार अज्ञानवति अपि–अज्ञान युक्त होने पर भी आप में विश्वविकासी ज्ञानं स्फुरित संसार के सब पदार्थों को जानने वाला ज्ञान स्फुरायमान होता है, यह विरोध है। जो अज्ञानयुक्त है, उसे पदार्थों का ज्ञान कैसा? पर इसका भी नीचे लिखे अनुसार परिहार हो जाता है–अज्ञान अवति–अपि त्वयि–अज्ञानी मनुष्यों की रक्षा करने वाले आप में हमेशा केवलज्ञान जगमगाता रहता है।।30।।

तीन लोक के नाथ आप निर्धन कहलाए।
तीन काल के ज्ञाता हो अज्ञानी गाए।।
तुम अक्षर स्वभावी कोई लिख न पाए।
सर्व चराचर के ज्ञाता प्रभु आप कहाए।।30।।

प्राग्भार-संभृत-नभांसि-रजांसि रोषा-,
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस्तव न नाथ! हता हताशो।
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा।।३१।।

अन्वयार्थ–नाथ!–हे स्वामिन्!, **शठेन कमठेन**–दुष्ट कमठ के द्वारा, **रोषात्**–क्रोध से, **प्राग्भारसम्भृतनभांसि**–सम्पूर्ण रूप से आकाश को व्याप्त करने वाली, **यानि**–जो, **रजांसि**–धूल, **उत्थापितानि**–आपके ऊपर उड़ाई गई थी, **तैः तु**–उससे तो, **तव**–आपकी, **छाया अपि**–छाया भी, **न हता**–नहीं नष्ट हुई थी, **परम्**–किन्तु, **अयमेव दुरात्मा**–यही दुष्ट, **हताशः**–हताश हो, **अमीभिः**–कर्मरूप रजों से, **ग्रस्तः**–जकड़ा गया था।

भावार्थ–जब भगवान् पार्श्वनाथ तपस्या कर रहे थे, तब उनके पूर्वभव के बैरी कमठ के जीव ने उन पर धूल उड़ाकर भारी उपसर्ग किया था। लोक में यह देखा जाता है कि जो सूर्य पर धूल फेंकता है, उससे सूर्य की जरा भी कान्ति नष्ट नहीं होती, पर वही धूलि फेंकने वाले के ऊपर गिरती है। श्लोक में आये हुए रज शब्द के दो अर्थ हैं-एक धूलि, दूसरा कर्म। कमठ के जीव ने भगवान् पर उपसर्ग कर कर्मों का बन्ध किया था, इस बात को कवि ने लोक-प्रचलित उक्त उदाहरण से स्पष्ट किया है।।31।।

कुपित कमठ ने नभ मण्डल में धूल गिराई।
तव तन की छाया को भी वह छू न पाई।।
तिरस्कार की दृष्टी से जो कार्य कराया।
विफल मनोरथ हुआ कर्म का बन्धन पाया।।31।।

यद्गर्जदूर्जित - घनौघमदभ्र - भीम -,
भ्रश्यत्तडिन् मुसल-मांसल-घोरधारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर-वारिदध्रे,
तेनैव तस्य जिन! दुस्तर-वारि कृत्त्यम्।।३२।।

अन्वयार्थ–अथ–और, **जिन**–हे जिनेश्वर, **दैत्येन**–उस कमठ ने, **गर्जदूर्जितघनौघम्**–खूब गर्ज रहे हैं **बलिष्ठ–मेघ**–समूह जिसमें, **भ्रश्यत्तडित्**–गिर रही है बिजली जिसमें और **मुसलमांसलघोरधारम्**–मूसल के समान है बड़ी मोटी धार जिसमें ऐसा तथा **अदभ्रभीमम्**–अत्यन्त भयंकर, **यत्**–जो, **दुस्तरवारि**–अथाह जल, **युक्तम्**–वर्षाया था, **तेन**–उस जलवृष्टि से, **तस्य एव**–कमठ ने ही अपने लिये, **दुस्तरवारिकृत्त्यम्**–तीक्ष्ण तलवार का काम अर्थात् व्रण (घाव) कर लिया था।

भावार्थ–हे भगवन्! आप पर मूसलाधार पानी वर्षा कर कमठ के जीव ने उपसर्ग किया था, उससे आपका क्या बिगड़ा? परन्तु उसी ने अपने लिये 'दुस्तरवारिकृत्ये' दुष्ट तलवार का कार्य अर्थात् घाव कर लिया-ऐसे कर्मों का बंध किया जो तलवार के समान दुःखदायी हुए थे। श्लोक में 'दुस्तरवारि' शब्द दो बार आया है, उनमें से पहले का अर्थ कठिनाई से तरने योग्य जल है, और दूसरे का अर्थ दुष्ट तरवारि-तलवार है।।32।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

गरजे मेघ चमकती बिजली खूब दिखाई।
जल की वृष्टी महा भयंकर वहाँ कराई॥
फिर भी पार्श्व प्रभू का वह कुछ न कर पाया।
अपने हाथों निज पद मानो खड्ग चलाया॥32॥

ध्वस्तोर्ध्व-केश-विकृताकृति-मर्त्य-मुण्ड-,
प्रालम्बभृद्-भयदवक्त्र-विनिर्यदग्निः।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः,
सोऽस्याभवत्प्रति भवं भव-दुःख-हेतुः।।३३।।

अन्वयार्थ-तेन अनुसरेण-उस असुर के द्वारा, **ध्वस्तोर्ध्वकेश-विकृताकृति-मर्त्यमुण्डप्रालम्बभृद्**-मुंडे हुए तथा विकृत आकृतिवाले नर कपालों की माला को धारण करने वाला और **भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः**-जिसके भयंकर मुख से अग्नि निकल रही है, **ऐसा यः**-जो, **प्रेतव्रजः**-पिशाचों का समूह, **भवन्तम् प्रति**-आपके प्रति, **ईरितः**-प्रेरित किया गया था-दौड़ाया गया था, **सः**-वह, **अस्य**-उस असुर को, **प्रतिभवम्**-प्रत्येक भव में, **भवदुःखहेतुः**-संसार के दुःखों का कारण, **अभवत्**-हुआ था।

भावार्थ-हे भगवन्! कमठ के जीव ने आपको तपस्या से विचलित करने के लिये जो पिशाच दौड़ाये थे, उनसे आपका कुछ भी बिगाड़ नहीं हुआ, परंतु उस पिशाच को ही भारी कर्मबंध हुआ, जिससे उसे अनेक भवों में दुःख उठाने पड़े॥33॥

महा भयानक नर मुण्डन की धारी माला।
और वदन से निकल रही थी अग्नी ज्वाला॥
भंग तपस्या करने भूत-प्रेत दौड़ाए।
प्रभु का कुछ न बिगड़ा कर्म का बन्ध उपाए॥33॥

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसंध्य-,
माराधयन्ति विधिवद् - विधुतान्य - कृत्याः।
भक्त्योल्लसत्पुलक-पक्ष्मल-देह-देशाः,
पाद-द्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः।।३४।।

अन्वयार्थ-भुवनाधिप-हे तीनों लोक के नाथ!, **ये**-जो, **जन्मभाजः**-प्राणी, **विधुतान्यकृत्याः**-जिन्होंने अन्य काम छोड़ दिये हैं और **भक्त्या**-भक्ति से, **उल्लसत् पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः**-प्रकट हुए रोमांचों से जिनके शरीर का प्रत्येक अवयव व्याप्त है, **ऐसे सन्तः**-होते हुए, **विधिवत्**- विधिपूर्वक, **त्रिसन्ध्यम्**-तीनों कालों में, **तव**-आपके, **पादद्वयम् आराधयन्ति-चरण**-युगल की आराधना करते हैं। **विभो**-हे स्वामिन्! **भुवि**-संसार में, **ते एव**-वे ही, **धन्याः**-धन्य हैं।

भावार्थ-हे भगवन्! संसार में उन्हीं का जन्म सफल है, जो भक्तिपूर्वक आपके चरणों की आराधना करते हैं॥34॥

पुलकित होकर चरण शरण प्रभु का पा जाते।
तजकर माया जाल तीन कालों में आते॥
विधिवत् करें अर्चना हे जगतीपति! तेरी।
होगा जीवन धन्य मिटे भव-भव की फेरी॥34॥

अस्मिन्न पार-भव-वारि-निधौ मुनीश!
मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र-मंत्रे,
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति।।३५।।

अन्वयार्थ-मुनीश-मुनीन्द्र!, **मन्ये**-मैं समझता हूँ कि आप, **अस्मिन्अपार-भववारिनिधौ**-इस अपार संसाररूप समुद्र में कभी भी, **मे**-मेरे, **कर्णगोचरताम् न गतः असि**-कानों की विषयता को प्राप्त नहीं हुए हो। क्योंकि **तू**-निश्चय से, **तव गोत्रपवित्रमन्त्रे**-आपके नामरूपी मन्त्र के, **आकर्णिते 'सति'**-सुने जाने पर, **विपद्विषधरी**-विपत्तिरूपी नागिन, **किम् वा**-क्या, **सविधम्**-समीप, **समेति**-आती? अर्थात् नहीं।

भावार्थ-हे प्रभो! जो मैं संसार में अनेक दुःख उठा रहा हूँ, उससे विश्वास होता है कि मैंने कभी भी आपका पवित्र नाम नहीं सुना॥35॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

(शम्भू छन्द)

हे मुनीन्द्र! हम कई जन्मों से, दुःख उठाते आए हैं।
कानों से हम नाम आपका, फिर भी न सुन पाए हैं॥
मंत्रोच्चार पूर्वक स्वामी, सुने आपका जो भी नाम।
विपदा रूपी नागिन से वह, पा लेते क्षण में विश्राम॥35॥

जन्मान्तरेऽपि तव-पाद-युगं न देव!,
मन्ये मया महितमीहित-दान-दक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां,
जातो निकेतन महं मथिताशयानाम्।।३६।।

अन्वयार्थ-**देव**-हे देव!, **मन्ये**-मैं मानता हूँ कि मैंने, **जन्मान्तरे अपि**-दूसरे जन्म में भी, **ईहित दानदक्षम्**-इच्छित फल देने में समर्थ, **तव पादयुगम्**-आपके चरण युगल, **न महितम्**-नहीं पूजे, **तेन**-उसी से, **इह जन्मनि**-इस भव में, **मुनीश**-हे मुनीश! **अहम्**-मैं, **मथिताशयानाम्**-हृदयभेदी, **पराभवानाम्**-तिरस्कारों का, **निकेतनम्**-घर, **जातः**-हुआ हूँ।

भावार्थ-हे भगवन्! जो मैं तरह-तरह के तिरस्कारों का पात्र हो रहा हूँ, उससे स्पष्ट है कि मैंने आपके चरणों की पूजा नहीं की। क्योंकि आपके चरणों के पुजारियों का कभी किसी जगह भी तिरस्कार नहीं होता।।36।।

चरण कमल में नाथ! आपके, कई जन्मों से ना आए।
मनवांछित फल देने वाले, पूजा तव न कर पाए॥
इसीलिए इस जग के प्राणी, करते हिय भेदी अपमान।
शरण आपकी पाई मैंने, पाएँगे हम फिर सम्मान॥36॥

नूनं न मोह-तिमिरावृतलोचनेन,
पूर्वं विभो! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि।
मर्मा विधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्ध-गतयः कथमन्यथैते।।३७।।

अन्वयार्थ-विभो-हे स्वामिन्! **मोहतिमिरावृतलोचनेन**-मोहरूपी अंधकार से ढँके हुए हैं नेत्र जिनके ऐसे, **मया**-मेरे द्वारा आप, **पूर्वम्**-पहले कभी, **सकृद अपि**-एक बार भी, **नूनम्**-निश्चय से, **प्रविलोकितः न असि**-अच्छी तरह अवलोकित नहीं हुए हो-अर्थात् मैंने आपके दर्शन नहीं किये। अन्यथा हि-नहीं जो, **प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः**-जिनमें कर्मबन्ध की गति बढ़ रही है ऐसे, **ऐते**-ये, **मर्माविधः**-मर्मभेदी, **अनर्थाः**-अनर्थ, **माम्**-मुझे, **कथम्**-क्यों, **विधुरयन्ति**-दुःखी करते?

भावार्थ-भगवन्! मैंने मिथ्यात्व के उदय से अंधे होकर कभी भी आपके दर्शन नहीं किये। यदि दर्शन किये होते तो आज ये दुःख मुझे दुःखी कैसे करते? क्योंकि आपके दर्शन करने वालों को कभी कोई भी अनर्थ दुःख नहीं पहुँचा सकते।।37।।

मोह महातम से आच्छादित, खोल सके न ज्ञान नयन।
निश्चय पूर्वक एक बार भी, किए आपके न दर्शन।
दुःख मर्म भेदी हे स्वामी! इसीलिए बहु सता रहे।
किये दर्श न पूर्व जन्म में, अतः कर्म के घात सहे॥37॥

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन-जन-बान्धव! दुःखपात्रं,
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-शून्याः।।३८।।

अन्वयार्थ-अथवा **जनबान्धव**-हे जगत्बन्धो! **मया**-मेरे द्वारा आप भी, **आकर्णितः अपि**-आकर्णित भी हुए हैं, **महितः अपि**-पूजित भी हुए हैं, और **निरीक्षितः अपि**-अवलोकित भी हुए हैं, अर्थात् मैंने आपका नाम भी सुना है, पूजा भी की है और दर्शन भी किये हैं, फिर भी **नूनम्**-निश्चय है कि, **भक्त्या**-भक्तिपूर्वक, **चेतसि**-चित्त में, **न विधृतः असि**-धारण नहीं किये गये हो, **तेन**-उसी से, **दुःखपात्रम् जातः अस्मि**-दुःखों का पात्र हो रहा हूँ, **यस्मात्**-क्योंकि, **भावशून्याः**-भाव रहित, **क्रियाः**-क्रियाएँ, **न प्रतिफलन्ति**-सफल नहीं होतीं।

भावार्थ-इस श्लोक में पक्षान्तररूप से कहते हैं कि मैंने आपका नाम

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भी सुना, पूजा भी की और दर्शन भी किये, फिर भी दु:ख मेरा पिण्ड नहीं छोड़ते, उसका कारण सिर्फ यही मालूम होता है, कि मैंने भक्तिपूर्वक आपका ध्यान नहीं किया। केवल आडम्बर रूप से ही उन कामों को किया है न कि भावपूर्वक भी। यदि भाव से करता तो कभी दु:ख नहीं उठाने पड़ते।।38।।

प्रभू आपके चरणों की हम, दर्शन पूजन को आए।
यह निश्चय प्रभु नहीं आपको, हृदय में धारण कर पाए॥
भाव शून्य भक्ती करने से, हमने भारी दु:ख सहे।
क्रिया भाव से रहित लोक में, फलदायी न कभी रहे॥38॥

त्वं नाथ! दु:खि जन-वत्सल! हे शरण्य!,
कारुण्य-पुण्य-वसते! वशिनां वरेण्य!।
भक्त्या नते मयि महेश! दयां विधाय,
दु:खांकुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि।।३९।।

अन्वयार्थ-नाथ-हे नाथ!, **दु:खिजनवत्सल**-हे दुखियों पर प्रेम करने वाले! **हे शरण्य**-हे शरणागत प्रतिपालक!, **कारुण्यपुण्यवसते**-हे दया की पवित्र भूमि!, **वशिनाम् वरेण्य!**-हे जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ! और **महेश**-हे महेश्वर!, **भक्त्या**-भक्ति में, **नते-मयि**-नम्रीभूत मुझ पर, **दयाम् विधाय**-दया करके, **दु:खांकुरोद्दलनतत्परताम्**-मेरे दु:खांकर के नाश करने में **तत्परता**-तल्लीनता, **विधेहि**-कीजिये।

भावार्थ-आप शरणागत प्रतिपालक हैं, दयालु हैं, जितेन्द्रिय हैं, और समर्थ भी हैं। इसलिए हे महेश्वर! आप से विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे दु:खों को दूर करने के लिए तत्पर हूजिये मेरा कल्याण कीजिए।।39।।

नाथ! दुखी जन के वत्सल हे!, शरणागत को एक शरण।
करुणाकर हे इन्द्रिय जेता, योगीश्वर तव दोय चरण॥
हे महेश! हम भक्ती पूर्वक, झुका रहे हैं पद में शीश।
दूर करो मेरे दुख सारे, यही प्रार्थना दो आशीष॥39॥

नि:संख्य-सार-शरणं शरणं शरण्य!,
मासाद्य सादित-रिपु प्रथितावदानम्।
त्वत्पाद-पंकजमपि प्रणिधान-वन्ध्यो,
वन्ध्योऽस्मि चेद्भुवन पावन हा हतोऽस्मि।।४०।।

अन्वयार्थ-भुवनपावन-हे संसार को पवित्र करने वाले भगवन्!, **नि:संख्यसारशरणम्**-असंख्यात् श्रेष्ठ पदार्थों के घर की, **शरणम्**-रक्षा करने वाले, **शरण्यम्**-शरणागत प्रतिपालक और **सादितरिपुप्रथितावदानम्**-कर्मशत्रुओं के नाश से प्रसिद्ध है, पराक्रम जिनका ऐसे **त्वत्पादपंकजम्**- आपके चरण-कमलों को, **आसाद्य अपि**-पा कर भी, **प्रणिधानवन्ध्य:**-उनके ध्यान से रहित हुआ मैं, **वन्ध्य: अस्मि**-अभागा-फलहीन हूँ, और **तत्**-उससे, **हा**-खेद है कि मैं, **हत:-अस्मि**-नष्ट हुआ जा रहा हूँ। अर्थात् कर्म मुझे दु:खी कर रहे हैं।

भावार्थ-हे भगवन्! आपके पवित्र और दयालु चरणों को पाकर भी जो मैं उनका ध्यान नहीं कर रहा हूँ, उससे मेरा जन्म निष्फल जा रहा है। और मैं कर्मों द्वारा दु:खी किया जा रहा हूँ।।40।।

अशरण-शरण शरण-प्रतिपालक, जगपती जगती के ईश।
गुण अनन्त के धारी भगवन्, कर्म विजेता हे जगदीश!॥
तव पद पंकज में रहकर भी, ध्यान से हम प्रभु रहित रहे।
इसीलिए हे प्रभुवर! हमने, कर्मों के घनघात सहे॥40॥

देवेन्द्र-वन्द्य! विदिताखिल- वस्तुसार!
संसार-तारक विभो! भुवनाधिनाथ!।
त्रायस्व देव! करुणा-हृद! मां पुनीहि,
सीदन्तमद्य भयद-व्यसनाम्बु-राशे:।।४१।।

अन्वयार्थ-देवेन्द्रवंद्य-हे इन्द्रों के वन्दनीय!, **विदिताखिलवस्तुसार**-हे सब पदार्थों के रहस्य को जानने वाले!, **संसारतारक**-हे संसार-समुद्र से तारनेवाले!, **विभो**-हे प्रभो!, **भुवनाधिनाथ**-हे तीनों लोक के स्वामिन्!, **करुणाहृद**-हे दया के सरोवर!, **देव**-देव!, **अद्य**-आज **सीदन्तम्**-तड़पते हुए, **माम्**-मुझको, **भयदव्यसनाम्बुराशे:**-भयंकर दु:खों के समुद्र से,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

त्रायस्व-बचाओ, और **पुनाहि**-पवित्र करो।

भावार्थ-हे भगवन्! आप हर एक तरह से समर्थ हैं, इसलिए आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे इस संसार सागर के दुःख-समुद्र में डूबने से बचाइये और हमेशा के लिए कर्म-मैल से रहित कर दीजिये।।41।।

अखिल विश्व के ज्ञाता दृष्टा, वन्दनीय इन्द्रों से नाथ!।
भव तारक हे प्रभू! आप हो, करुणाकर त्रैलोकी नाथ!॥
करुणा सागर हे जिनेन्द्र! प्रभु, दुखिया का उद्धार करो।
महा भयानक दुख सागर से, मुझको भी प्रभु पार करो॥41॥

यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रि-सरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि सन्तत-सञ्चितायाः।
तन्मेत्वदेक-शरणस्य शरण्य! भूयाः,
स्वामी! त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि।।४२।।

अन्वयार्थ-नाथ-हे नाथ! **त्वदेकशरणस्य मे**-केवल आप ही की है शरण किसका ऐसे मुझे **सन्ततसञ्चितायाः**-चिरकाल से संचित-एकत्रित हुई, **भवदङ्घ्रिसरोरुहाणाम्**-आपके चरण-कमलों को, **भक्तेः**-भक्ति का, **यदि**-यदि, **किमपि फलम् अस्ति**-कुछ फल हो, **तत्**-तो उससे, **शरण**-हे शरणागत प्रतिपालक! **त्वम् एव**-आप ही, **अत्र भुवने**- इस लोक में और **भवान्तरे अपि**-परलोक में भी, **स्वामी**-मेरे स्वामी, **भूयाः**-होवें।

भावार्थ-हे भगवन्! स्तुति कर मैं आपसे अन्य किसी फल की चाह नहीं रखता। सिर्फ यह चाहता हूँ कि आप ही मेरे हमेशा स्वामी रहें। अर्थात् जब तक मुझे मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ है, तब तक आप ही मेरे स्वामी रहें। ''तुम होहु भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहूँ''।।42।।

हे शरणागत के प्रतिपालक, शरण आपकी हम आए।
किंचित पुण्य कमाया हमने, भक्ति चरण की जो पाए॥
यही चाहते हम भव-भव में, स्वामी मेरे आप रहो।
हम बन सकें आपके जैसे, बनो मेरे आदर्श अहो॥42॥

इत्थं समाहित-धियो विधिवज्जिनेन्द्र!,
सान्द्रोल्लसत्पुलक - कंचुकितांगभागाः।
त्वद्बिम्ब-निर्मल-मुखाम्बुज-बद्ध-लक्ष्या,
ये संस्तवं तव विभो! रचयन्ति भव्याः।।४३।।

जन नयन 'कुमुदचन्द्र'-प्रभास्वराः स्वर्ग-संपदो भुक्त्वा।
ते विगलित-मल-निचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते।।४४।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र विभो!-हे जिनेन्द्र देव!, **ये भव्याः**-जो भव्यजन, **इत्थम्**-इस तरह, **समाहितधियः**-सावधान बुद्धि से युक्त हो, **त्वद्बिम्बनिर्मलसुखाम्बु- जबद्धलक्ष्याः**-आपके निर्मल मुख-कमल पर बाँधा है लक्ष्य जिन्होंने ऐसे तथा **सान्द्रोल्लसत्पुलककंचुकितांग-भागाः**-सघन रूप से उठे हुए रोमांचों से व्याप्त है शरीर के अवयव जिनके ऐसे, **सन्तः**-होते हुए, **विधिवत्**-विधिपूर्वक, **तव**-आपका, **संस्तवम्**-स्तवन, **रचयन्ति**-रचते हैं, **ते**-वे, **जननयनकुमुदचन्द्र**-हे प्राणियों के नेत्ररूपी कुमुदों-कमलों को विकसित करने के लिये चन्द्रमा की तरह शोभायमान देव!, **प्रभास्वराः**-देदीप्यमान, **स्वर्गसम्पदः**-स्वर्ग की सम्पत्तियों को, **भुक्त्वा**-भोगकर, **विगलितमलनिचयाः सन्तः**-कर्मरूपी मल-समूह से रहित हो, **अचिरात्**-शीघ्र ही, **मोक्षम् प्रपद्यन्ते**-मुक्ति को पाते हैं।

भावार्थ-हे भगवन्! जो भक्ति से गद्गद् चित्त हो आपकी स्तुति करते हैं, वे स्वर्ग के सुख भोग कर बहुत जल्दी आठ कर्मों का नाशकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।।43-44।।

विशेषार्थ-यहाँ आचार्य श्री कुमुद चंद जी ने भगवत् भक्ति को खोटे कर्मों की निर्जरा एवं पुण्य के फल को देने वाली माना है भक्ति द्वारा संचित किया गया पुण्य परम्परा से मोक्ष का कारण होता है जो रत्नत्रय की प्राप्ति में कारण बनता है। रत्नत्रय की प्राप्ति वही भव्य जीव कर पाते हैं जिन ने पूर्व भव में जिन भक्ति का आलम्बन लिया है। कहा भी है। भक्ति 'विशद' मुक्ति दायिनी है।

हे जिनेन्द्र! सावधान बुद्धि से, भव्य पुरुष जो भी आते।
रोमांचित हो मुख अम्बुज के, लक्ष्य बना दर्शन पाते॥
विधी पूर्वक संस्तव रचना, करते हैं जो 'विशद' महान॥
स्वर्गों के सुख पाने वाले, अतिशीघ्र पाते निर्वाण॥43॥

जन-जन के शुभ नयन कमल को, विकसाने वाले चन्द्रेश।
स्वर्ग सम्पदा पाने हेतू, करते सहसा स्वर्ग प्रवेश॥
किंचित् काल भोग करके, नर मानव गति में आते हैं।
कर्म श्रृंखला शीघ्र नाशकर, मोक्ष निकेतन पाते हैं॥44॥

पार्श्वनाथ स्तोत्र

ॐ नमः पार्श्वनाथाय विश्वचिन्तामणियुते।
ह्रीं धरणेन्द्र वैरोट्या पद्मावती युतायुते॥1॥

शान्ति तुष्टि महापुष्टि धृति-कीर्ति विधापिते।
ॐ ह्रीं दिङ्व्याल वेताल, सर्वाधि-व्याधिनाशिने॥2॥

जया तिजाख्या विजयाख्या-ऽपराजितयान्वित।
दिशापाले ग्रहैर्यक्षेर्विद्यादेवीभि - रन्वित॥3॥

ॐ असिआउसाय नमस्, तत्र त्रैलोक्यनाथताम्।
चतुः षष्ठि सुरेन्द्रास्ते, भासन्ते छत्रचामरै॥4॥

श्रीशंखेश्वरमण्डन् पार्श्वजिन! प्रणतकल्पतरू।
कल्प चूरय दुष्ट व्रातं, पूरय मे वांछित नाथ!॥5॥

ऽ ऽ ऽ

एकीभावस्तोत्रम्

(श्रीमद्वादिराजसूरिरचित)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्म-बन्धो,
घोरं दुःखं भव-भव गतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिन-रवे भक्तिरुन्मुक्तये चेत्,
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽवरस्ताप हेतुः॥१॥

अन्वयार्थ-हे जिनरवे-हे जिनसूर्य! **मया-सह**-मेरी आत्मा के साथ, स्वयं अपने आप, **एकीभावं**-तन्मयता को, **गत इव**-प्राप्त हुए की तरह, **दुर्निवार**-बड़ी कठिनाई से दूर करने योग्य, **यः**-जो, **कर्मबंध**-ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार का अथवा प्रकृति स्थिति-अनुभाग और प्रदेश के भेद से होने वाला चार प्रकार का कर्मबंध, **भव-भवगतः (सन्)** प्रत्येक पर्याय में साथ जाता हुआ, **घोरम्**-भयानक, **दुःखम्**-दुःख को, **करोति**-करता है। **त्वयि**-आपके विषय में होने वाली, **भक्ति**-भक्ति अनुरागविशेष, **चेत्**-यदि, **तस्यापि अस्य**-उस कर्मबंध और इस दुःख के भी, **उन्मुक्तये**-छुड़ाने-दूर करने के लिये है, **तर्हि**-तो फिर, **तया**-उस भक्ति के द्वारा, **अपरः**-दूसरा, **कः**-कौन, **तापहेतुः**-सन्ताप का कारण, **जेतुं शक्यः न भवति**-जीता नहीं जा सकता? अर्थात् अवश्य जीता जा सकता है।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र जब आपकी समीचीन भक्ति के द्वारा चिरपरिचित और अत्यंत दुखदायी एवं आत्मा के साथ दूध पानी की तरह मिले हुए कर्मबंधन भी दूर किये जाते हैं तब दूसरा ऐसा कौन सा सन्ताप का कारण है जो कि उस भक्ति के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता अर्थात् दुःख के सभी कारण नष्ट किये जा सकते हैं॥1॥

एकीभाव को प्राप्त हुए सम, भव-भव में चलने का साथ।
कर्मबन्ध दुख देने वाला, उससे मुक्ति हेतु हे नाथ!॥
हे जिनसूर्य! आपकी भक्ती, से कर्मों का होय विनाश।
तन का हो संताप दूर यदि, क्या आश्चर्य है इसमें खास॥1॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

ज्योतिरूपं दुरित-निवह-ध्वान्त-विध्वंस-हेतुं,
त्वामेवाहु-र्जिनवर चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः।
चेतोवासे भवसि च मम स्फार-मुद्भासमानस्,
तस्मिन्नंहः-कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे।।२।।

अन्वयार्थ-हे जिनवर-कर्म शत्रुओं को जीतने वालों में श्रेष्ठ हे जिनेन्द्र जबकि **तत्त्वविद्याभियुक्ताः**-तत्त्वज्ञानी गणधरादिदेव, **चिरं**-चिरकाल से, **त्वाम्एव**-आपकी ही, **दुरितनिवहध्वांतविध्वंसहेतुं**-पापसमूहरूपी अन्धकार के नाश करने के कारणभूत, **ज्योतिरूपं**-तेजरूप ज्ञानस्वरूप, **आहुः**-कहते हैं। **च**-और आप, **मम**-मेरे, हमारे, **चेतोवासे**-मनरूपी मन्दिर में, **स्फारं**-अत्यन्त रूप से निरन्तर, **उद्भासमानः**-प्रकाशमान, **भवसि**-हो रहे हो तब, **तस्मिन्**-उस मन्दिर में, **वस्तुतो**-निश्चय से, **अंहः तमः**-पापरूपी अन्धकार, **वस्तुं**-निवास करने के लिए-ठहरने के लिए, **कथमिव**-किस तरह, **ईष्टे**-समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

भावार्थ-हे नाथ! जबकि आपको, अतिशय बुद्धि के धारक गणधरादि देवों ने पापरूपी अन्धकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान कहा है और आप मेरे मन-मन्दिर में अच्छी तरह से प्रकाशमान भी हो रहे हैं, तब उसमें पापरूपी अन्धकार कैसे ठहर सकता है? अर्थात् जो आपको अपने हृदय में धारण करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।।2।।

सघन पाप तम के विनाश को, हे प्रभु! आप हो ज्योती रूप।
तत्त्व ज्ञान के ज्ञाता ऋषिवर, विशद जानते तव स्वरूप॥
ध्यान करे जो प्रभो! आपका, उसके कर्मों का हो नाश।
अन्धकार का नाश करे ज्यों, दीपक जब भी करे प्रकाश॥2॥

आनन्दाश्रु-स्नपित-वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्,
यश्चायेत त्वयि दृढ़-मनाः स्तोत्र-मन्त्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह-वल्मीक-मध्यान्,
निष्कास्यन्ते विविध-विषम-व्याधयः काद्रवेयाः।।३।।

अन्वयार्थ-हे जिनेन्द्र! **आनन्दाश्रु स्नपितवदनं च गद्गदं**-आनन्दाश्रु-हर्षरूपी आँसुओं से मुख को प्रक्षालित करता हुआ अव्यक्त ध्वनि से, **अभिजल्पन्**-स्तुति करता हुआ, **यः**-जो मनुष्य, **स्वयं**-आप में, **दृढ़मनाः**-स्थिर चित्त होकर, **स्तोत्रंमंत्रै**-स्तवनरूप मंत्रों से, **भवन्तम्**-आपको, **अयेत्**-पूजता है-स्तुति करता है। **तस्य**-उसके, **सुचिरम्**-चिरकाल से, **अभ्यस्तात अपि**-परिचित भी, **देह-बल्मीक- मध्यात्**-शरीररूपी वामी के मध्य से-बीच से, **विविधविषमव्याधयः**-अनेक प्रकार के कठिन रोगरूपी, **काद्रवेयाः**-साँप, **निष्कास्यन्ते**-बाहर निकाल दिये जाते हैं।

भावार्थ-जिस प्रकार समीचीन मंत्रों की सामर्थ्य से वामी के मध्य भाग से साँप बाहर निकाल दिये जाते हैं, ठीक उसी प्रकार जिनेन्द्र के स्तवनरूप मंत्रों से, स्तवन-पूजन करने वाले भव्य पुरुषों की विषम विषयरूप व्याधियाँ भी दूर कर दी जाती हैं। अर्थात् जो मनुष्य भक्ति पूर्वक-श्रद्धा से सम्पन्न होकर एकाग्रचित से जिनेन्द्र भगवान् का पवित्र स्तवन करता है उसके पुरातन विषय रोग भी दूर हो जाते हैं और उसका शरीर निरोग हो जाता है।।3।।

स्थिर चित्त हर्ष के आँसू से, मुख धोए हुए समान।
गद्गद् वाणी से पढ़ता है, स्तोत्र रूप जो मंत्र महान॥
देह रूप वामी में रहते, चिर परिचित रोगों के नाग।
हे प्रभु! शुद्ध चित्त से भजने, से वह जाते बाहर भाग॥3॥

प्रागेवेह त्रिदिव भवनादेष्यता-भव्य-पुण्यात्,
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्।
ध्यान-द्वारं मम रुचिकरं स्वान्त-गेहं प्रविष्टस्,
तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णी करोषि।।४।।

अन्वयार्थ-हे देव!-हे भगवन्, **भव्यपुण्यात्**-भव्य जीवों के पुण्य के द्वारा, **इह**-यहाँ पर, **त्रिदिवभवनात्**-स्वर्गलोक से माता के गर्भ में, **एष्यता**-आने वाले, **त्वया**-आपके द्वारा, **प्राक्एव**-पहले ही जब, **इदम्**-यह, **पृथ्वीचक्रम**-भूमण्डल-पृथ्वी मण्डल, **कनकमयतां**- सुवर्णमयता को, **निन्ये**-प्राप्त कराया गया था। तब **हे जिन**-हे जिनेन्द्र! **ध्यानद्वारं**-ध्यानरूपी

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

दरवाजे से युक्त, **मम**-मेरे (हमारे), **रुचिकरम्**-सुन्दर, **स्वान्तगेहं**-मनरूपमन्दिर में, **प्रविष्टं**-प्रविष्ट हुए, **इदं वपुः**-इस शरीर को-कुष्ठ रोग से पीड़ित मेरे इस शरीर को, **यत्**-जो, **सुवर्णीकरोषि**-सुवर्णमय कर रहे हो, **तत्किंचित्रम्**-उसमें क्या आश्चर्य है? अर्थात् कुछ नहीं।

भावार्थ-जबकि स्वर्गलोक से माता के गर्भ में आने के छह महीने पहले ही आपने इस पृथ्वी मण्डल को स्वर्णमय बना दिया, तो फिर ध्यान के द्वारा मेरे मनोहर अंतःकरणरूप मन्दिर में प्रविष्ट हुए कुष्ठरोग से पीड़ित मेरे इस शरीर को यदि स्वर्णमय बना दें तो इसमें क्या आश्चर्य है अर्थात् कुछ नहीं।।4।।

भव्यों के पुण्योदय से प्रभु, स्वर्ग लोक से किया प्रयाण।
छह महीने पहिले भूमण्डल, किया सुरों ने स्वर्ण समान॥
हे जिनेन्द्र! यदि मन के गृह में, ध्यान द्वार से हुए प्रविष्ट।
क्या आश्चर्य है कंचन काया, प्राप्त करे जो मन को इष्ट॥4॥

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धुस्,
त्वय्येवासौ सकल-विषया शक्ति-रप्रत्यनीका।
भक्ति-स्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्त-शय्यां,
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेश-यूथं सहेथाः।।५।।

अन्वयार्थ-हे भगवन!-हे भगवन! जब **त्वम्**-आप, **लोकस्य**-संसार के प्राणियों के, **निर्निमित्तेन**-स्वार्थ रहित-बिना किसी प्रयोजन के, **एकः**-अद्वितीय, **बन्धु असि**-बन्धुहित करने वाले हो। और **असौ**-यह, **सकलविषयाशक्तिः**-सब पदार्थों को विषय करने वाली शक्ति भी **त्वयि**-आप में ही, **अप्रत्यनीका**-बाधारहित है। **ततः**-तब, **भक्तिस्फीताम्**-भक्ति के द्वारा विस्तृत, **मामिकां**-मेरी हमारी, **चित्तशय्याम्**-मनरूपी पवित्र शय्या पर, **अधिवसन्**-निवास करने वाले आप, **मयि उत्पन्नम्**-मुझ में उत्पन्न हुए, **क्लेशयूथं**-दुःख समूह को, **कथमिव**-कैसे, **सहेथाः**-सहन करोगे अर्थात् नहीं करोगे।

भावार्थ-हे नाथ! आप संसारी जीवों के अकारण बन्धु हैं और आपकी सकल पदार्थ विषयक यह अपूर्व एवं अनन्तशक्ति प्रतिपक्षी कर्मों के

प्रतिघात से रहित है, क्योंकि वह कर्म के क्षय से उत्पन्न हुई है। फिर आप चिरकाल तक हमारे पवित्र मन-मन्दिर में निवास करते हुए भी क्या दुःखों का नाश नहीं करेंगे अर्थात् अवश्य करेंगे। जो भद्र मानव आपका भक्तिपूर्वक निरन्तर ध्यान एवं चिन्तन करता है उसके दुःख दूर होना तो सहज ही है किन्तु उसके जटिल कर्मों का बन्धन भी ढीला पड़ कर नष्ट हो जाता है और आत्मा विकसित होता हुआ परमात्मा पद को प्राप्त कर लेता है।।5।।

निष्कारण बन्धू हे भगवन्!, लोक हितैषी परम प्रधान।
सर्व विषयगत शक्ति आप में, निराबाध है श्रेष्ठ महान॥
भक्ती से विस्तृत मनरूपी, शैया पर जब किए निवास॥
तो मुझमें फिर दुख समूह का, सहन करोगे कैसे वास॥5॥

जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा,
प्राप्तैवेयं तव नय-कथा स्फार-पीयूष-वापी।
तस्या मध्ये हिमकर-हिम-व्यूह-शीते नितान्तं,
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख दावोपतापाः।।६।।

अन्वयार्थ-हे देव!-हे स्वामिन्! **मया**-मेरे द्वारा, **जन्माटव्यां**-संसाररूपी अटवी में दीर्घं-बहुत काल तक, **भ्रमित्वा**-घूमकर अथवा घूमने के बाद, **तव**-आपकी, **इयम्**-यह, **नयकथा**-स्याद्वाद नय कथारूपी, **स्फारपीयूषवापी**-बड़ी भारी अमृत रस से भरी हुई बावड़ी, **कथमपि**-किसी तरह बड़े कष्ट से, **प्राप्ताएव**-प्राप्त कर ली गई है। फिर भी, **हिमकरहिमव्यूहशीते**-चन्द्रमा और बर्फ के समूह से भी शीतल, **तस्याः**-उसके, **मध्ये**-बीच में, **नितान्तम्**-अत्यन्त रूप से, **निर्मग्नं**-डूबे हुए, **माम्**-मुझको, **दुःखदावोपतापाः**-दुःखरूपी दावानल के सन्ताप को, **कथं न जहति**-क्यों नहीं छोड़ते हैं।

भावार्थ-हे स्वामिन्! मुझे इस संसाररूप विषम अटवी में भ्रमण करते हुए और दुःखों को सहते हुए अनन्तकाल बीत गया है। अब मुझे बड़े भारी भाग्योदय से यह आपकी स्याद्वादमय रूप अमृतरस से भरी हुई वापिका-बावड़ी प्राप्त हुई है जो चन्द्रमा और बर्फ से भी अत्यन्त

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

शीतल है। ऐसी वापिका में उन्मज्जन करते हुए मेरे क्या थोड़े से दुख-सन्ताप दूर न होंगे? किन्तु अवश्य ही दूर होंगे।।6।।

रहा घूमता बहुत समय तक, भवरूपी वन में हे देव!।
नय गाथा की सुधा बावड़ी, किसी तरह जब मिली स्वमेव॥
बर्फ चन्द्रमा के समूह सम, शीतल है जो अतिशयवान।
दुखरूपी संताप यहाँ से, क्यों न छोड़ेगा स्थान॥6॥

पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं,
हेमाभासो भवति सुरभिः श्री निवासश्च पद्मः।
सर्वांगेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे,
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर् - यन्नमामभ्युपैति।।७।।

अन्वयार्थ-हे जिनेन्द्र! **यात्रया**-विहार के द्वारा, **त्रिलोकीम्**-तीनों लोकों को, **पुनतः**-पवित्र करने वाले, **ते**-आपके, **पादन्यासादपि**-चरणों के रखने मात्र से ही जब **पद्म**-कमल, **हेमाभासः**-सुवर्ण-सी कान्ति वाला, **सुरभिः**-सुगन्धित, **च**-और, **श्रीनिवासः**-लक्ष्मी का गृहशोभा का स्थान हो जाता है। तब **हे भगवन्!**-हे स्वामिन्, **त्वयि**-आपके, **मे**-मेरे, **अशेषम्**-समस्त, **मनः**-मन को, **सर्वांगेण**-सर्व अंगों के द्वारा, **स्पृशति**-स्पर्श करने पर, **तत्**-वह, **किंश्रेयः**-कौन-सा कल्याण है? **यत्**-जो, **माम्**-मुझे, **अहरहः**-प्रतिदिन, **स्वयं**-अपने आप, **न अभ्युपैति**-प्राप्त नहीं होता है।

भावार्थ-सकल परमात्मा अर्हंत जब जीवन्मुक्तरूप सयोगकेवली अवस्था में विहार करते हैं तब उनके विहार से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं; और देवगण उनके पवित्र चरणों के नीचे कमलों की रचना कर दिया करते हैं और वे कमल जब जिनेन्द्र देव के चरणों के स्पर्श से सुवर्ण-सी कान्ति वाले सुगन्धित एवं लक्ष्मी के निवास बन जाते हैं। तब मेरा मन आपको सर्वांग रूप से स्पर्श कर रहा है अर्थात् मेरे मन मन्दिर में चैतन्य जिन प्रतिमा का सर्वांग रूप से स्पर्श कर रहा है अर्थात् मेरे मन मन्दिर में चैतन्य जिन प्रतिमा का सर्वांग रूप से स्पर्श हो रहा है। अतएव मुझे कल्याणकों का प्राप्त होना उचित ही है। जो भव्यप्राणी जिनेन्द्र भगवान का निष्कपट रूप से भक्तिपूर्वक

स्मरण, चिंतवन एवं ध्यान करता है उसे सर्व सुख प्राप्त होते ही हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।।7।।

कमल पावड़े बिछते जाते, श्री विहार में स्वर्ण समान।
वह पवित्र हो जाते मानो, सोने जैसे कांतिमान।।
भक्ती करते समय आपका, सर्वांगों से हो स्पर्श।
प्रतिदिन हे कल्याण! श्रेष्ठ जो, मुझे प्राप्त ना होय सहर्ष॥7॥

पश्यन्तं त्वद् वचनममृतं भक्ति-पात्र्या पिबन्तं,
कर्मारण्यात् - पुरुषमसमानन्द-धाम-प्रविष्टम्।
त्वां दुर्वार-स्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं,
क्रूराकाराः कथमिव रुजा कण्टका निर्लुठन्ति।।८।।

अन्वयार्थ-हे नाथ!, **कर्मारण्यात्**-कर्मरूपी वन से, **असमानन्दधामप्रविष्टम्**-अनुपम सुख के स्थान मोक्ष में प्रविष्ट हुए तथा **दुर्वारस्मरमदहरं**-दुर्जय कामदेव के मद को हरण करने वाले आपको, **पश्यन्तम्**-देखने वाले और, **भक्तिपात्र्या**-भक्तिरूपी कटोरों से, **त्वद्वचनममृतम्**-आपकी प्रसन्नता के स्थानभूत पुरुष को, **क्रूराकाराः**-भयंकर आकार वाले, **रुजाकण्टकाः**-रोगरूपी काँटे, **कथमिव?**-किस तरह, **निर्लुठन्ति**-सता सकते हैं-पीड़ा दे सकते हैं? अर्थात् नहीं दे सकते। **भावार्थ**-हे भगवन्! कर्मरूपी वन से निकल कर आपने अनुपम अनंत सुखस्वरूप आनन्दधाम को प्राप्त किया है तथा आप दुर्जय कामदेव के मद को हरण करने वाले हैं आपको देखने वाले और भक्तिरूपी पात्र से आपके अमृतरूपी वचनों को पीने वाले भव्य पुरुषों को फिर क्रूर आकार वाले रोगरूपीमयी काँटे कैसे पीड़ा दे सकते हैं? अर्थात् नहीं दे सकते।।8।।

काम के मद को हरने वाले, दर्श आपका रहा महान।
भक्ती रूपी पात्र के द्वारा, वचनामृत का करके पान॥
कर्मरूप वन से बाहर हो, निजानन्द गृह में कर वास।
रोग रूप काँटों के दुख का, कहाँ रहेगा वहाँ निवास॥8॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्न-मूर्ति-,
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्न-वर्गः।
दृष्टि-प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां,
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति-हेतुः।।६।।

अन्वयार्थ–हे देव! **पाषाणात्मा**–पत्थररूप, **मानस्तम्भः**–मानस्तम्भ, **तदित-रसमः**–दूसरे पत्थरों के समान ही है, **केवलम्**–सिर्फ, **रत्नमूर्तिः**–रत्नमयी है परन्तु, **परःरत्नवर्गः**–दूसरे रत्नों का समूह वैसा ही है–ऐसा होने पर, **यदि**–यदि, **तस्य**–उस मानस्तंभ की, **तच्छक्तिहेतुः**–वैसी शक्ति में कारणस्वरूप, **भवतः**–आपकी?, **प्रत्यासत्तिः**–निकटता न होती तो, **सः**–वह मानस्तम्भ, **दृष्टिप्राप्तः**–देखने मात्र से ही, **नराणाम्**–मनुष्यों के, **मानरोगं-मान**–अहंकाररूपी रोग को, **कथं हरति?**–कैसे हर सकता है? अर्थात् नहीं हर सकता।

भावार्थ–पत्थर का बना हुआ मानस्तम्भ भी दूसरे साधारण पत्थरों के समान ही है। रत्नमय होना उसकी कोई विशेषता नहीं कही जा सकती; क्योंकि उसके समान और भी रत्न होते हैं परन्तु उसमें मानहरण करने की शक्ति नहीं होती, इस कारण से मानस्तम्भ में मनुष्यों के मान हरण की शक्ति का अस्तित्त्व मालूम नहीं होता। अतएव यह स्पष्ट है कि उसकी ऐसी शक्ति में आपकी समीपता ही कारण है। यदि आपकी समीपता न होती तो गौतम जैसे महामानी विद्वानों का अभिमान कैसे दूर होता? इस कारण उस रत्नमयी मानस्तम्भ में यह अपूर्वशक्ति आपके प्रसाद से ही प्राप्त हुई जान पड़ती है।।9।।

मानस्तम्भ बना पत्थर से, अन्य लोष्ठ स्तंभ समान।
मानस्तम्भ रत्नमय है तो, अन्य कई भी रहे महान॥
अहंकार रूपी रोगों को, फिर कैसे वह करे हरण।
यदि समीपता नहीं आपकी, भक्त कोई न करे वरण॥9॥

हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्ति-शैलोपवाही;
सद्यः पुंसां निरवधि-रुजा-धूलिबंधं धुनोति।

ध्यानाहूतो हृदय-कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्,
तस्याशक्यःक इह भुवने देव लोकोपकारः।।१०।।

अन्वयार्थ-हे देव!–हे स्वामिन्! जब **भवन्मूर्तिशैलोपवाही**–आपके शरीररूपी पर्वत के पास से बहने वाली, **हृद्यः**–मनोहर, **मरुद्अपि**–हवा भी, **प्राप्तः (सन्)** प्राप्त होती हुई, **पुंसां**–पुरुषों के, **निरबधिरुजां धूलिबन्धम्**–मर्यादारहित रोगरूपी धूली के संसर्गको, **सद्यः**–शीघ्र ही, **धुनोति**–दूर कर देती है। **तु**–तब, **ध्यानाहूतः**–ध्यान के द्वारा बुलाये गये, **त्वम्**–आप, **यस्य**–जिसके, **हृदयकमलं**–हृदयरूपी कमल में, **प्रविष्टः**–प्रविष्ट हुए हैं, **तस्य**–उस पुरुष को, **इहभुवने**–इस संसार में, **कः**–कौन सा, **लोकोपकारः**–लोगों का उपकार, **अशक्यः**–अशक्य है–नहीं करने योग्य है अर्थात् कोई भी नहीं।

भावार्थ–हे नाथ! जबकि आपके शरीर के पास से बहने वाली वायु भी, लोगों के तरह–तरह के रोग दूर कर देती है। तब आप जिस भव्य पुरुष के हृदय में विराजमान हो जाते हैं वह संसार के प्राणियों का कौन–सा उपकार नहीं कर सकता। अर्थात् सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

बहने वाली पवन आपके, कायागिरि का कर स्पर्श।
रोग नाशती है मानव के, जीवन में पाए उत्कर्ष॥
आसन जिसमें हृदय आपका, उसके रोगों का हो नाश।
हो कल्याण शीघ्र ही उसका, आश्चर्य क्या इसमें खास॥10॥

जानासि त्वं मम भव-भवे यच्च यादृक्च दुःखं,
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या,
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम्।।११।।

अन्वयार्थ-हे देव!–हे भगवन्!, **मम**–मुझे, **भवभवे**–प्रत्येक पर्याय में, **यत् च यादृक् च**–जो और जैसा–जिस तरह का, **दुःखम्**–दुःख कष्ट, **जातम्**–प्राप्त हुआ है, **तत् त्वं जानासि**–उसको आप जानते ही हैं। और **यस्य**–जिसका, **स्मरणमपि**–स्मरण भी, **मे**–मेरे लिये, **शस्त्रवत्**–शस्त्र के समान–तलवार आदि अस्त्र के घात समान, **निष्पिनष्टि**–दुःख देता हुआ और हे नाथ!, **त्वम्**–आप, **सर्वेशः**–सबके स्वामी, **च**–और, **सकृपः**–दया

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

से युक्त हैं-दयालु हैं। **इति**-इसलिये, **भक्त्या**-भक्तिपूर्वक, **त्वाम् उपेतः अस्मि**-आप के पास आया हूँ-आपकी शरण को प्राप्त हुआ हूँ। अतः अब **इह विषये**-इस विषय में, **यत्कर्तव्यं**-जो करना चाहिए उसमें **देव एवं प्रमाणम्**-आप ही प्रमाण हैं।

भावार्थ-हे भगवन्! इस चतुर्गतिरूप संसार में अनादिकाल से भ्रमण करते हुए मैंने जो घोर दुःख भोगे हैं और भोग रहा हूँ। जिनका स्मरण करना भी शस्त्र घात के समान दुखदाई है। उनको आप अच्छी तरह से जानते ही हैं। आप सिर्फ जानते ही नहीं हैं किन्तु सबके अकारण बन्धु और दयालु हैं। इसीलिये मैं भक्तिपूर्वक आपकी शरण में आया हूँ। ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिए, यह आप ही समझ सकते हैं। मैंने अपनी दशा आपके सामने प्रकट कर दी है।

जन्म-जन्म में दुःख सहे जो, संस्मरण उनके हे देव!।
भाले की भाँती चुभते हैं, दयासिन्धु वह मुझे सदैव॥
नाथ! आप हो सबके स्वामी, अतः भक्ति से आया पास।
करो आप जो है प्रमाण वह, पूर्ण होय तव चरणों आस॥11॥

प्रापद्दैवं तव नुति-पदैर्जीवकेनोपदिष्टैः,
पापाचारी मरण समये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः सन्देहो यदुपलभते वासव-श्री प्रभुत्वं,
जल्पञ्जाप्यै-र्मणिभि-रमलैस्त्वन्नमस्कार-चक्रम्।।१२।।

अन्वयार्थ-वे जिनेन्द्र! जबकि **मरण समये**-मृत्यु के समय में, **जीवकेन**-सत्यंधर राजा के पुत्र जीवंधर कुमार के द्वारा, **उपदिष्टैः**-बताते गये, **तव**-आपके, **नुतिपदैः**-नमस्कार मंत्र के पदों के स्मरण एवं चिन्तन से, **पापाचारी**-पापरूप प्रवृत्ति करनेवाला, **सारमेयः अपि**-कुत्ता भी, **दैवं**-देव-स्वर्गलोक सम्बन्धी, **सौख्यम्**-सुख को, **प्रापत्**-प्राप्त हुआ है तब, **अमलैः**-निर्मल, **जाप्यैः**-जपने योग्य वाले को, **मणिभिः**-मनकाओं के द्वारा, **त्वन्नमस्कारचक्रम्**-आपके नमस्कार मंत्र को, **जल्पन्**-जपता हुआ मनुष्य, **यत्**-जो, **वासवश्रीप्रभुत्वम्**-इन्द्र की विभूति के अधिपतित्त्व को-स्वामी पने को, **लभते**-प्राप्त होता है। इस विषय में **कः सन्देहः**-क्या सन्देह है? अर्थात् इसमें कोई सन्देह नहीं है।

भावार्थ-जब एक पापी कुत्ता भी मृत्यु के समय जो कि जीवनभर पाप करने वाला जीवन्धर कुमार द्वारा बताए हुए मंत्राक्षरों के ध्यान से यक्षों का स्वामी यक्षेन्द्र हो सकता है तब निर्मल मणियों के द्वारा आपके नमस्कार मंत्र का ध्यान करने वाला भद्र मानव यदि इन्द्र की विभूति को प्राप्त कर ले तो इसमें क्या आश्चर्य है अर्थात् कुछ नहीं।।12।।

बुरा आचरण करने वाला, कुत्ता भी जब मरणासन्न।
महामंत्र सुन जीवंधर से, हुआ देवगति में उत्पन्न॥
मणि मालाओं के द्वारा जो, महामंत्र पढ़ता नवकार।
क्या संदेह इन्द्र का वैभव, पाता है जो अपरम्पार॥12॥

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधि सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो,
मुक्ति-द्वारं परिदृढ़-महामोह-मुद्रा-कवाटम्।।१३।।

अन्वयार्थ-हे नाथ! **शुद्ध ज्ञाने**-शुद्ध ज्ञान और **शुचिनिचरिते**-निर्मल चारित्र के, **सत्यपि**-रहते हुए भी, **चेत्**-यदि, **त्वयि**-आपके विषय में होने वाली, **इयम्**-यह, **अनीचा भक्ति**-उत्कृष्ट भक्तिरूपी, **अनवधिसुखावंचिका**-अमर्यादित सुखों की कारण, **कुंचिका- कुंजी**-ताली, **नो चेत्**-नहीं होवे तो **(हि)**-सचमुच में, **मुक्तिकामस्य पुंसः**-मोक्ष के अभिलाषी पुरुष को, **परिदृढ़महामोहमुद्राकवाटम्**-अत्यन्त मजबूत महा-मोहरूपी मुहरबन्द, **ताले**-से युक्त हैं किवाड़ जिसमें ऐसे, **मुक्तिद्वारम्**-मोक्ष के द्वार को, **कथम्?**-किस तरह, **शक्योद्घाटम्**-खोला जा सकता है? अर्थात् नहीं खोला जा सकता।

भावार्थ-विशुद्धज्ञान और निर्मल चारित्र के रहते हुए भी यदि जिनेन्द्र की भक्तिमय अथवा सम्यग्दर्शनरूप-कुंजी नहीं है तो फिर महा मिथ्यात्वरूप मुद्रा में अंकित मोक्षमन्दिर का द्वार कैसे खोला जा सकता है? अर्थात् भक्तिरूपी कुंचिका के बिना मुक्तिद्वार का खुलना नितान्त कठिन है।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

परन्तु जिस भद्र मानव के पास जिनेन्द्र की भक्तिरूपी अथवा सम्यग्दर्शनरूपी कुंजी है वह बहुत जल्दी ही मुक्ति को प्राप्त कर सकता है, क्योंकि सम्यग्दर्शन मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र भी मिथ्या कहलाते हैं। अतः मुक्ति के इच्छुक पुरुषों को सबसे पहले सम्यग्दर्शन को प्राप्त करना श्रेयस्कर है।।13।।

शुद्ध ज्ञान चारित्र सहित भी, है कोई भक्ती से हीन।
बन्द कपाट मोह का ताला, कैसे खोले कुंजि विहीन॥
सौख्य प्राप्त क्या कर पाएगा, मानव मोक्ष की आशावान।
भक्ति हीन मानव का भव से, 'विशद' नहीं होगा उत्थान॥13॥

प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरन्धकारैः समन्तात्,
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पदःक्लेश-गर्तैरगाधैः।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी,
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद् भारती रत्न-दीपः।।१४।।

अन्वयार्थ-हे देव!-हे स्वामिन्! **खलु**-निश्चय से, **अयम्**-यह, **मुक्तेः**-मोक्ष का, **पंथाः**-मार्ग, **अघमयैः**-पापरूपी, **अन्धकारैः**-अन्धकार के द्वारा, **समन्तात्**-सब ओर से, **प्रच्छन्नः**-ढका हुआ है और **अगाधै**-गहरे, **क्लेशगर्तैः**-दुखरूपी गड्ढों से, **स्थपुटितपदः**-विषम है-दुष्प्रवेश है ऐसी अवस्था में, **यदि**-अगर, **तत्त्वावभासी**-सचाई बतलाने वाला अथवा सप्त तत्त्वों के द्वारा मोक्षमार्ग का निरूपण करने वाला, **भवद्भारतीरत्नदीपः**-आपकी वाणीरूपी दीपक का प्रकाश, **अग्रे-अग्रे**-आगे-आगे, **न भवति**-न होता, **तत्**-तो, **तेन**-उस मार्ग से, **कः**-कौन मनुष्य, **सुखतः**-सुखपूर्वक, **व्रजति**-गमन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

भावार्थ-हे देव! मुक्ति का मार्ग मिथ्यात्वरूप अज्ञान अंधकार से व्याप्त है, आच्छादित है। और अगाध दुःखरूप गड्ढों से विषम है, दुष्प्रवेश है। ऐसा होने पर भी यदि सप्त तत्त्वों के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला अथवा सप्त तत्त्वों के द्वारा मोक्ष-मार्ग का निरूपण करने वाला आपकी पवित्र दिव्य ध्वनि रूप वाणीरूपी दीपक का प्रकाश आगे-आगे नहीं होता, तो ऐसा कौन पुरुष है जो आपकी वाणीरूपी दीपक के

प्रकाश के बिना ही उस कंटकाकीर्ण विषम मार्ग से सुखपूर्वक गमन कर सकता है? और अपने इष्टस्थान को सुगमता से प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। अर्थात् कोई नहीं। अस्तु हे नाथ!

मोह तिमिर से ढका हुआ है, मोक्षमार्ग चारों ही ओर।
ऊबड़-खाबड़ दुख के गड्ढों, से आच्छादित है जो घोर॥
तत्त्व देशना रूपी रत्नों, के दीपक शुभ हैं जिनदेव।
आगे-आगे नहीं चलें तो, मार्ग मिले कैसे स्वमेव॥14॥

आत्म - ज्योति - र्निधिर - नवधिर्दृष्टुरानन्द - हेतुः,
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनति चिरतस्तं भवद् भक्ति भाजः,
स्तोत्रैर्बद्ध-प्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः।।१५।।

अन्वयार्थ-हे जिनेन्द्र! **आत्मज्योतिर्निधिः**-यह आत्मा-ज्ञानरूप, सम्पत्ति, **कर्मक्षोणीपटल पिहितः**-ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप पटलों से आच्छादित है-ढकी हुई है और **यः द्रष्टुः आनन्दहेतुः**-जो ज्ञानी पुरुष को आनन्द का कारण है इसलिये **परेषां अनवाप्यः**-मिथ्यादृष्टियों के द्वारा अप्राप्त है उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती। किन्तु **भवद्भक्तिभाज**- आपकी भक्ति करनेवाले भव्य पुरुष, **तं**-उस आत्मज्ञानरूप सम्पत्ति को, **बद्धप्रकृतिपरुषोद्दामधात्री खनित्रैः स्तोत्रैः**-प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेशबंधरूप अत्यन्त कठोर भूमि को खोदने के लिए कुदाली स्वरूप आपके स्तवनों के द्वारा, **अनतिचिरतः**-शीघ्र ही, **हस्ते कुर्वन्ति**-अपने हाथ में कर लेते हैं-उसे प्राप्त कर लेते हैं।

भावार्थ-जिस प्रकार पृथ्वी में गड़े हुए धन को कुदाल से कठोर भूमि को खोद कर निकाल लेते हैं। ठीक उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप पुद्गल पिण्डों से आच्छादित अपनी ज्ञानादिरूप आत्मसम्पदा को आपके पवित्र स्तवनरूप कुदाल से कर्मबन्धनरूप अतिशय कठोर भूमि को खोद कर निकाल लेते हैं परन्तु मिथ्यादृष्टियों को वह नहीं प्राप्त होती।।15।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

आत्मज्ञान का कोष असीमित, सुख का कारण रहा महान।
कर्म पटल से ढका हुआ है, मिथ्यात्वी न पावे आन॥
पढ़कर के स्तोत्र भक्ति से, मानव बंध प्रकृति स्वरूप।
खोद कठोर भूमि को क्षण में, कर लेता है निज अनुरूप॥15॥

प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरेरायता चामृताब्धेः,
या देव त्वत्पद-कमलयोः संगता भक्ति गंगा।
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः,
कल्माषं यद् भवति किमियं देव सन्देह-भूमिः।।१६।।

अन्वयार्थ-हे देव!-हे नाथ! **नयहिमगिरिः**-स्याद्वाद-नयरूप हिमालय पर्वत से, **प्रत्युत्पन्ना**-उत्पन्न हुई, **च**-और, **अमृताब्धः**-मोक्षरूप समुद्र तक, **आयाता**-लम्बी, **या**-जो यह, **त्वत्पदकमलयोः**-आपके चरणकमल सम्बन्धी, **भक्तिगंगा**-भक्ति रूपी गंगानदी, **संगता**-प्राप्त हुई है, **तस्यां**-उसमें, **रुचिवशात्**-प्रेम के वश, **आप्लुतम्**-डूबा हुआ, **मम**-मेरा, हमारा, **चेतः**-मन, **यत्**-जो, **क्षालितांहः- कल्माषं**-जिसकी पापरूपी कालिमा धुल गई है ऐसा पापरूपी रज से रहित, **भवति**-हो जाता है। **देव!**-हे नाथ, **इयम्**-यह, **किम्**-क्या कोई, **सन्देह भूमि**-सन्देह का स्थान है? अर्थात् नहीं।

भावार्थ-हे नाथ! स्याद्वादनयरूप हिमालय से निकली और मोक्षरूपी समुद्र तक लम्बी यह आपकी भक्तिरूपी गंगा मुझे बड़े भारी भाग्योदय से प्राप्त हुई है, गंगा में स्नान करने से जिस तरह शरीर का बाह्य मैल धुल जाता है और वह स्वच्छ हो जाता है। उसी प्रकार आपकी भक्तिरूपीगंगा में स्नान करने से उसमें गोता लगाने से यदि मेरे अन्तःकरण की पापरूप कालिमा धुल कर मेरा मन पवित्र राग-द्वेषादि विभाव भावों से रहित निर्विकार हो जाये, तो इसमें क्या सन्देह है? अर्थात् कुछ नहीं॥16॥

नयरूपी हिमगिरि से निकली, गंगा भक्ती रूप महान।
मोक्षरूप सागर में जाए, श्रद्धा से करना स्नान॥
मेरे मन में पाप रूप मल, साफ हुआ है अपरम्पार।
संशय का स्थान कहाँ है, हे जिन! इसमें किसी प्रकार॥16॥

प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुख त्वामनुध्यायतो मे,
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्तिमभ्रेषरूपां,
दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वत्प्रसादाद् भवन्ति।।१७।।

अन्वयार्थ-हे देव! **प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख!**-प्रगट हुआ है मोक्ष का निश्चल सुख जिन को ऐसे, हे वीतरागदेव, **त्वामनुध्यायतः मे**-आपका बार-बार ध्यान करते हुए मेरे हृदय में, **त्वयि**-आपमें अथवा आपके विषय में, **अहं सः एव**-जो आप हैं वही मैं हूँ। **इति**-ऐसा जो, **निर्विकल्प**-विकल्प रहित, **मतिः**-बुद्धि, **उत्पद्यते**-उत्पन्न होती है यद्यपि, **इयम् मिथ्या एव**-यह बुद्धि असत्य ही है, **तदपि**-तो भी, **अभ्रेषरूपां तृप्तिं**-निश्चल अविनाशी सन्तोष सुख को, **तनुते**-विस्तृत करती है। सच है **त्वत्प्रसादात्**-आपके प्रसाद से, **दोषात्मानः अपि**-सदोषी पुरुष भी, **अभिमतफलाः भवन्ति**-अभिमत फल को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् जिनका आत्मा सदोषी है, पापकर्मरूप कालिमा से लिप्त है ऐसे मानव भी आपके प्रसाद से अभिमत फल को प्राप्त करते ही हैं।

भावार्थ-हे नाथ! आपके पवित्र ज्ञानादि अनंत गुणों का ध्यान एवं चिन्तन करते-करते जो परमात्मा है सो मैं हूँ और जो मैं हूँ, सो परमात्मा है जब ऐसी निर्विकल्पात्म अभेद बुद्धि उत्पन्न हो जाती है सो यद्यपि यह मिथ्या है तो भी निश्चल आनन्द को प्रकट करती है। बहुत कहने से क्यालाभ, सदोषी पतितात्मा पुरुष भी आपके सामीप्य एवं प्रसाद से अभिमत फल को प्राप्त करते ही हैं॥17॥

शाश्वत सुख प्रगटाने वाले, हे जिनेन्द्र! तव करके ध्यान।
मैं भी वही आप हैं जो प्रभु, हो जाता ऐसा श्रद्धान॥
यद्यपि झूठ बुद्धि है फिर भी, अविनश्वर हो तृप्ति महान।
तव अनुकंपा से दोषी जन, इच्छित फल पाते हैं आन॥17॥

मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्त-भंगी-तरंगैर्-
वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेत सैवाचलेन,
व्यातन्वन्तः सुचिरममृतासेवयातृप्नुवन्ति।।१८।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-हे स्वामिन्! **सप्तभंगीतरंगैः**-स्यादस्ति-स्यान्नास्ति,स्यादस्ति नास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यादस्तिनास्तिअवक्तव्य इन सप्तभंग रूप लहरों के द्वारा **मिथ्यावादं-मलं**-सर्वथा एकान्त कदाग्रहरूप-मिथ्यात्व मल को अथवा शरीरादि परवस्तु में आत्मत्वबुद्धि रूप विपरीताभिनिवेश के सम्बन्ध से होने वाले अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यामल को, **अपनुदन्**-दूर करने वाला, **ते**-आपका, **यः**-जो, **वागम्भोधिः**-वचनरूपी समुद्र है सो, **अखिलं भुवनं**-समस्त संसार को, **पर्येति**-घेरे हुए है-समस्त संसार में व्याप्त है।

भावार्थ-हे नाथ! सप्तभंग रूप तरंगों से अथवा अनेकान्त के माहात्म्य से शरीरादि बाह्य पदार्थों में आत्मत्वरूपीजीव के विपरीताभिनिवेश को दूर करने वाले आपके वचन समुद्र का जो भव्य प्राणी निरन्तर अभ्यास-मनन एवं परिशीलन करता है अर्थात् आगमोक्त विधि से अभ्यास कर चित्त की निश्चलता रूप परम समाधि को प्राप्त करता है वह शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है और अनन्त काल तक यहाँ सुख में मग्न रहता है। यह सब आपके वचन समुद्र का ही माहात्म्य है।।18।।

दिव्य देशना के सागर में, सप्त भंग मय लहरें नाथ!।
सर्व लोक को वेष्टित करता, मिथ्यावाद हटाए साथ॥
मनरूपी मंदार सुगिरि से, किया गया सागर मंथन।
अमृतपान करे जो मानव, मोक्षमार्ग में होय गमन॥18॥

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वांगेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां,
तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरु-दस्त्रैः।।१६।।

अन्वयार्थ-हे भगवन्! **यः**-जो, **स्वाभावात्**-स्वभाव से, **अहृद्यः स्यात्**-अमनोज्ञ-कुरूप होता है, **स एव**-वह ही, **आहार्येभ्यः**-वस्त्राभूषणादि के द्वारा शरीर को अलंकृत करने की, **स्पृहयति**-इच्छा करता है। **च**-और, **यः**-जो, **वैरिणा**-शत्रु के द्वारा, **शक्यः**-जीतने योग्य होता है वही, **शस्त्रग्राही भवति**-शस्त्रों को ग्रहण करने वाला होता है हे भगवन्! **त्वम्**-आप,

सर्वांगेषु सुभगः असिः-सर्वांग रूप से सुन्दर हो, और **त्वं परेषां न शक्यः**-तुम्हें शत्रु भी नहीं जीत सकते, **तत्**-इस कारण, **तव**-आपको, **भूषावसन कुसुमैः**-आभूषण-वस्त्र आदि फूलों से-विविध आभूषणों, सुन्दर वस्त्रों और मनोज्ञ सुगन्धित पुष्पों से, **च**-और, **उदस्त्रैः अस्त्रैः**-पैने-तीक्ष्ण धार वाले नुकीले हथियारों से, **किं**-क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ नहीं।

भावार्थ-आचार्य वादिराज इस श्लोक में सच्चे देव का यथार्थ स्वरूप दिखलाते हुए कहते हैं जो स्वभाव से ही कांतिहीन एवं अमनोज्ञ हैं। और अनेक प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित हैं अथवा बहुमूल्य वस्त्राभूषण और स्त्री, गदा आदि अस्त्रों (हथियारों) से जिनकी पहिचान होती है। जो नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से शरीर को अलंकृत करने की इच्छा करते हैं। जिन्हें शत्रुओं से सदा भय बना रहता है अतएव गदा, त्रिशूल आदि अस्त्रों को धारण किये हुए हैं, जैनधर्म ऐसे भेषी-रागी-द्वेषी पुरुषों को देव नहीं कहता, और न उनमें देवत्व का वास्तविक लक्षण ही घटित होता है। परन्तु जिनेन्द्र भगवान् स्वभाव से ही मनोज्ञ हैं-कान्तिवान् हैं। अतः ये कृत्रिम वस्त्राभूषणों से शरीर को अलंकृत नहीं करते हैं। उन्होंने देह-भोगों का खुशी-खुशी त्याग किया है और मोह शत्रु पर विजय प्राप्त की है। इसके सिवाय, उन्हें किसी शत्रु आदि का कोई भय नहीं है और न संसार में उनका कोई शत्रु, मित्र ही है, वे सबको समान दृष्टि से देखते हैं, चाहे पूजक और निंदक कोई भी क्यों न हो, किसी से भी उनका राग-द्वेष नहीं है। उनके आत्मतेज या तपश्चरण विशेष की सामर्थ्य से कट्टर बैरी भी अपने बैर-विरोध को छोड़कर शान्त हो जाते हैं। अतः ऐसे पूर्ण अहिंसक परम वीतराग और क्षीणमोही परमात्मा को सुन्दर वस्त्राभूषणों और अस्त्र-शस्त्रों से क्या प्रयोजन हो सकता है? अर्थात् कुछ नहीं।।19।।

गहने वस्त्र चाहते हैं वह, जो स्वभाव से रहे कुरूप।
अस्त्र-शस्त्र धारण करते वह, जिनमें शत्रू हैं कोई भूप॥
सुन्दर हो सर्वांग आप ना, शत्रु से जीते जाते।
अतः पुष्प वस्त्र आभूषण, अस्त्र-शस्त्र प्रभु न पाते॥19॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते,
तस्यैवेयं भव-लय-करी श्लाघ्यतामातनोति।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं,
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्र-मित्थम्।।२०।।

अन्वयार्थ-हे जिनेन्द्र! **इन्द्रः**-इन्द्र देवराज, **तव**-तुम्हारी, आपकी, **सेवाम्**-पूजा-स्तुति-वंदना आदि सेवा को, **सुकुरुताम्**-अच्छी तरह से करे, परन्तु **तया**-उसके द्वारा, **ते**-आपकी, **किं श्लाघनं**-क्या प्रशंसा है? किन्तु **भवलयकरी**-संसार परिभ्रमण का नाश करने वाली, **इयम्**-यह सेवा तो **तस्य एव**-उस इन्द्र की ही, **श्लाघ्यताम्**-प्रशंसा को, **आतनोति**-विस्तृत करती है-बढ़ती है। किन्तु **त्वं**-आप, **जननजलधेः**-संसार समुद्र से, **निस्तारी**-तरने और तारने वाले हैं, तथा **त्वं**-आप, **सिद्धिकान्तापतिः**-मुक्तिरूपी स्त्री के स्वामी हैं और **त्वं**-आप, **लोकानां प्रभुः**-संसार के समस्त प्राणियों के पति हैं, **इत्थम्**-इस तरह से, **तव**-आपका यह, **स्तोत्रम्**-स्तोत्र-स्तवन, **श्लाघ्यते**-प्रशंसित किया जा सकता है।

भावार्थ-हे नाथ! इन्द्र आपकी सेवा, वन्दना, पूजा, स्तुति आदि करता है, केवल इसी से आपकी कोई महत्ता और प्रशंसा नहीं हो सकती है, क्योंकि इन्द्र तो आपकी समीचीन भक्ति एवं स्तुति, पूजादि से महान् पुण्य का संचय करता है और वह भक्ति उसके लिए संसार का नाश करने वाली होती है। इसी से वह एक भवावतारी हो जाता है।

इन्द्र आपकी सेवा करता, कहाँ प्रशंसा का यह कार्य।
नाश करे संसार वास का, होय प्रशंसा का विस्तार॥
भव सिन्धू के तारणहारे, मुक्ति रमा के तुम हो ईश।
अनुग्रह कर्त्ता तीन लोक में, प्रशंसनीय तुम हो जगदीश॥20॥

वृत्तिर्वाचामपर-सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्ति-पीयूष-पुष्टा-,
स्ते भव्यानामभिमत-फलाः पारिजाता भवन्ति।।२१।।

अन्वयार्थ-भगवन्-हे स्वामिन्!, **वाचांवृत्तिः**-हमारे वचनों की प्रवृत्ति, **अपरसदृशी**-दूसरे अल्पज्ञ मनुष्यों के समान है-जैसे अन्य अल्पज्ञ मनुष्यों की वाणी होती है वैसी ही हमारी भी है, परन्तु **त्वं**-आप, **अन्येन न तुल्यः**-दूसरे पुरुषों के समान नहीं हो, इसीलिए आप की तुलना अन्य संसारी अल्पज्ञ प्राणियों के साथ नहीं की जा सकती, क्योंकि आप अनुपम हैं। **ततः**-इसलिये, **नः**-हमारे अभी, **स्तुत्युद्गाराः**-ये स्तुतिरूपी उद्गार, **त्वयि**-आप एक, **कथमिव**-किस तरह, **क्रमन्ते**-पहुँच सकते हैं-प्राप्त हो सकते हैं अथवा एवं **मा अभूवन्**-ऐसे मत हो-अर्थात् हमारे वचन आपतक न भी पहुँचे, तदपि-तो भी, **भक्तिपीयूषपुष्टाः**-भक्तिरूपी अमृत से परिपुष्ट हुए, **ते**-वे स्तुतिरूप उद्गार, **भव्यानाम्**-भव्यजीवों के लिए, **अभिमताफलाः**-इच्छित फल देनेवाले, **पारिजाताः**-कल्पवृक्ष, **भवन्ति**-होते हैं।

भावार्थ-हे नाथ! हमारे वचनों की प्रवृत्ति अन्य अल्पज्ञ जीवों के समान ही है। परन्तु आप राग-द्वेषादि शत्रुओं पर विजयप्राप्त कर चुके हैं अतः आपकी तुलना अन्य अल्पज्ञ संसारी जीवों से नहीं की जा सकती है, क्योंकि आप सच्चिदानन्द, परमब्रह्म परमात्मा हैं। यद्यपि हमारे स्तुतिरूपी उद्गार आपके समीप तक नहीं पहुँचते हैं, तो भी आपकी समीचीन भक्तिरूप-अमृत से पुष्ट हुए ये स्तुतिरूप उद्गार भव्य जीवों के लिए कल्पवृक्ष के समान इच्छित फल के देने वाले होते हैं।।21।।

वचन प्रवृत्ती अन्य रूप है, आप अन्य चेतन चित्वान।
कैसे संगत हो पाएँगे, स्तुति वाक्य मेरे भगवान॥
भक्ति सुधा से पुष्ट हुए जो, मेरे स्तुति के उद्गार।
भव्यों को इच्छित फलदाई, कल्पतरु मानो मनहार॥21॥

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव प्रसादो,
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवान पेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधिबैर-हारी,
क्वैवं भूतं भुवनं-तिलकं प्राभवं त्वत्परेषु।।२२।।

अन्वयार्थ-हे देव!-हे नाथ!, **तव**-आपका, **क्वापि**-किसी पर भी, **कोपावेशः**-क्रोध भाव, **न अस्ति**-नहीं है और, **न तव**-न आपकी,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

क्वापि-किसी पर प्रसादो प्रसन्नता है, **हि**-निश्चय से, **अनपेक्षम्**-स्वार्थ रहित, **तव**-आपका, **चेतः**-मन, **परमोपेक्षया एव**-अत्यन्त उदासीनता से, **व्याप्तं**-व्याप्त है, **तदपि**-फिर भी, **भुवनं**-संसार, **आज्ञावश्यं**-आपकी आज्ञा के अधीन है, और आपकी **सन्निधिः**-समीपता-निकटता, **बैरहारी**-परस्पर के बैर-विरोध को हरने वाली है। और इस तरह **भुवनतिलक!**-तीनों लोकों में श्रेष्ठ हे देव! **एवम्भूतं**-ऐसा, **प्रभावं**-प्रभाव कहाँ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

भावार्थ-हे नाथ! आपको न किसी से राग है और न द्वेष, आप न किसी पर प्रसन्न ही होते हैं और न किसी को अपने क्रोध का भाजन बनाते हैं, क्योंकि आप परम वीतरागी हैं, राग-द्वेषादि के अभावरूप परम उपेक्षा भाव को अंगीकार किये हुए हैं। परन्तु फिर भी, आपकी आज्ञा त्रैलोक्यवर्ती जीवों के द्वारा मान्य है तथा आपकी समीपता बैर-विरोध का नाश करने वाली है। साथ ही, आपकी प्रशांत मुद्रा मुमुक्षु जीवों के लिए साक्षात् मोक्षमार्ग को प्रकट करती है। उसके ध्यान एवं चिंतन से भव्यात्मा वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान करते हैं। और उसी तरह चैतन्य जिनप्रतिमा बनने का अभ्यास करते हैं, अतएव जैसा प्रभाव आपका है वैसा अन्य हरिहरादिक देवों का कहाँ हो सकता है? क्योंकि वे रागी-द्वेषी हैं-अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर अनुग्रह करते हैं और निंदकों पर रुष्ट होते हैं-उन्हें शाप दे देते हैं। परन्तु हे देव! ये सब बातें आप में नहीं हैं, पूजक और निंदकों पर आपका समान भाव रहता है क्योंकि आप जिन हैं, इन सब विकारों को जीत चुके हैं। अतः आप जैसा प्रभाव अन्य किसी भी देवी-देवता का नहीं हो सकता है।।22।।

नहीं किसी पर हो प्रसन्न तुम, नहीं किसी पर करते रोष।
उदासीन है चित्त आपका, रहित अपेक्षा से निर्दोष॥
आशा के आधीन जगत यह, शत्रु निकटता से हो दूर।
नाथ! कहाँ स्वामित्व आप से, मिले हमें ऐसा भरपूर॥22॥

देव! स्तोतुं त्रिदिव गणिका-मण्डली-गीत-कीर्तिं,
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिं जनो यः।

तस्य क्षेमं न पद मटतो जातु जाहूर्ति पन्थास्,
तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः।।२३।।

अन्वयार्थ-देव!-हे देव!, **यः जनः**-जो मनुष्य, **त्रिदिवगणिकामण्डली -गीतकीर्तिम्**-देवांगनाओं के समूह द्वारा गाई गई है कीर्ति जिसकी ऐसे तथा **सकलविषयज्ञानमूर्तिम्**-समस्तपदार्थों के विषय करनेवाले ज्ञानस्वरूप, **त्वां**-आपका **स्तोतुम**-स्तवन करने के लिए, **तोतूर्तिः**-शीघ्रता करता है, **क्षेमम् पदम्**-कल्याणकारी स्थान अर्थात् मोक्ष को, **अटतः**-जाते हुए, **तस्य**-उस मनुष्य का, **पन्थाः**-मार्ग, **जातु**-कभी न, **न जाहूर्ति**-टेढ़ा नहीं होता और **न एषः मर्त्यः**-न यह मनुष्य, **तत्त्वग्रन्थ-स्मरणविषये**- तत्त्वग्रन्थों के स्मरण के विषय में, **मोमूर्ति**-मूर्च्छित होता है-मोह को प्राप्त होता है।

भावार्थ-हे भगवन्! जो भद्र मानव आपकी समीचीन भक्ति करता है और आपके पवित्र अनन्तज्ञानादि गुणों की स्तुति करता है, उनका चिन्तवन और मनन करता है-वह शीघ्र ही कर्मबन्धन को काटकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है और कर्मबन्ध के विनाश से पूर्णज्ञानी होता हुआ फिर कभी भी अज्ञान को प्राप्त नहीं होता है।।23।।

स्वर्ग लोक से आने वाली, श्रेष्ठ अप्सराएँ शुभकार।
नाथ! आपका करें, स्तवन, सकल द्रव्य के जाननहार॥
मोक्षमार्ग न कुटिल कभी हो, हो सिद्धांत शास्त्र ज्ञाता।
निराबाध वह मुक्ती पथ में, 'विशद' शीघ्र ही बढ़ जाता॥23॥

चित्ते कुर्वन्निरवधि-सुख-ज्ञान-दृग्वीर्य-रूपं,
देव! त्वां यः समय-नियमादाऽऽदरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्ग स खलु सुकृति तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषयः पंचधा पञ्चितानाम्।।२४।।

अन्वयार्थ-देव-हे जिनेन्द्र!, **निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपम्**-अनंतसुख, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तवीर्यस्वरूप, **त्वाम्**-आपको, **चित्ते कुर्वन**-हृदय में धारण करता हुआ, **यः**-जो मनुष्य, **समनियमात्**-समय के नियम से अर्थात् त्रिकाल में, **आदरेण**-विनयपूर्वक, **स्तवीति**-आपकी स्तुति करता है। **खलु**-निश्चय से **सः**-वह मनुष्य, **तावता**-उतने ही

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

से-स्तवन करने मात्र से ही-**श्रेयोमार्गः**-मोक्षमार्ग को, **पूरयित्वा**-पूर्ण करके, **पंचधा पंचितानाम्**-पंच प्रकार से विस्तृत, **कल्याणानाम्**-कल्याणकों का-गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण रूप पंच कल्याणकों का-**विषयः भवति**-पात्र होता है।

भावार्थ-अनन्तचतुष्टयस्वरूप हे नाथ! जो भव्य पुरुष आपका आदर भक्ति से स्तवन करता है वह पुण्यआत्मा पंच कल्याणकों का पात्र होता हुआ मोक्षमार्ग का नेता होता है।।24।।

नाथ! चतुष्टय रूप आपका, जिसने भी मन में धारा।
आदरपूर्वक समयसार युत, स्तुति को भी उच्चारा।।
भव्य जीव स्तवन मात्र से, मोक्षमार्ग को करता पूर्ण।
कल्याणक पाँचों पाता है, भव्य जीव अतिशय परिपूर्ण।।24।।

भक्ति-प्रह्व-महेन्द्र-पूजित-पद त्वत्कीर्त्तने न क्षमाः
सूक्ष्मज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिःस्तवन-च्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते,
स्वात्माधीन सुखैषिणां स खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः।।२५।।

अन्वयार्थ-**भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद!**-भक्ति से नम्र हुए देवेन्द्र के द्वारा पूजित हैं चरण जिनके ऐसे हे जिनेन्द्र! जबकि **त्वत्कीर्तने**-आपकी प्रशंसा करने में, **सूक्ष्मज्ञानदृशः**-सूक्ष्मज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले, **संयमभृतः अपि**-तपस्वी भी अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानादि के धारक संयमी योगीश्वर भी-**न क्षमाः**-समर्थ नहीं हैं तब **हन्तः**-खेद है कि, **वयं मन्दाः के**-हम जैसे मन्दबुद्धि पुरुष आपकी स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? तथापि **स्तवनच्छलेन**-स्तवन के छल से, **अस्माभिः**-हमारे द्वारा, **तु**-तो सिर्फ, **त्वयि**-आपके विषय में, **परः**-उत्कृष्ट, **आदरः**-आदर-प्रेम ही, **तन्यते**-विस्तृत किया जाता है। और **खलु**-निश्चय से, **सः**-वह आदर ही, **स्वात्माधीनसुखैषिणां**-आत्मसुख के इच्छुक, **नः**-हम लोगों के लिये, **कल्याणकल्पद्रुमः**-कल्याण करने वाला कल्पवृक्ष होवे।

भावार्थ-हे नाथ! आप जैसे परमयोगीन्द्र की, जब द्वादशांग का पाठी

इन्द्र भक्तिपूर्वक स्तुति करता है और चार ज्ञान के धारक गणधरादिक भी आपको अपनी स्तुति का विषय बनाते हैं तथा अनेक ऋद्धियों के धारक क्षीणकाय मुनिपुंगव भी जब आपके गुणों की स्तुति करते हैं। तो भी वह पूर्णतया आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हो पाते। ऐसी अवस्था में आचार्य वादिराज अपनी लघुता प्रकट करते हुए कहते हैं कि तब मुझ जैसा मन्दमति पुरुष आप जैसे जगद्वन्द्य परमात्मा की स्तुति करने में कैसे समर्थ होसकता है? अस्तु, आपके गुणों में जो अनुराग प्रकट किया है-भक्ति से इस स्तवनरूप पुष्पमाला को गूँथा है-सो उक्त गुणानुराग ही आत्महितैषी मोक्ष के इच्छुक हम जैसे पुरुषों का कल्याण करने वाला हो अथवा मेरी आत्मोन्नति में सहायक हो।।25।।

नम्रीभूत हुए इन्द्रों से, पूजित जिनके अपरम्पार।
गुण गाने में न समर्थ हैं, ऋषी मुनी कोई अनगार।।
मंदबुद्धि हम स्तुति करके, आदर का पाते अधिकार।
आतम सुख के लिए कल्पतरू, भक्ति आपकी है शुभकार।।25।।

वादिराज मनु शाब्दिक लोको, वादिराज मनु तार्किक सिंहः।
वादिराज मनु काव्य कृतस्ते, वादिराजमनु भव्य सहायः।।२६।।

अन्वयार्थ-**लोको**-इस लोक में, **शाब्दिक मनु**-शब्दशास्त्र के ज्ञाता, **वादिराज**-वादिराज है, **तार्किक सिंह मनु**-तार्किकसिंह भी, **वादिराज**-वादिराज हैं, **काव्यकृतः**-काव्य कर्त्ता, **तेमनु**-वे हैं, **वादिराज**-वादिराज, **भव्य सहायः**-भव्य जनों के सहायरूप, **वादिराज**-वादिराज मुनि माने गये हैं।

अर्थ-वैयाकरण-व्याकरण शास्त्र के वेत्ता वादिराज से हीन हैं श्रेष्ठ न्यायिक वादिराज से हीन हैं प्रसिद्ध कवि लोग वादिराज से हीन हैं और 'विशद सज्जन गण भी वादिराज से हीन हैं।

शब्द शास्त्र के ज्ञाता सारे, वादिराज के आगे हीन।
तार्किक सिंह सभी पड़ जाते, वादिराज के आगे दीन।।
जो प्रसिद्ध कवि रहे लोक में, वादिराज के आगे आन।
हो जाते असहाय पूर्णतः, सज्जन गण जो 'विशद' महान्।।26।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अकलंक-स्तोत्रम्

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

त्रैलाक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितम्
साक्षाद्येन तथा स्वयं करतले रेखात्रयं साङ्गुली।
रागद्वेषभयामयान्तक जरा लोलत्वलोभादयो
नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वन्द्यते॥1॥

अन्वयार्थ-**(येन)**-जिनके द्वारा **(साङ्गुली)**-अङ्गुलियों के साथ **(स्वयं करतले)**-अपने हाथ की हथेली में रहने वाली **(रेखात्रयं)**-तीन रेखाओं के (यथा) समान **(सालोकम् त्रैलोक्यं)**-अलोकाकाश सहित तीनों लोकों को **(सकलं)**-समस्त (त्रिकाल विषयं) त्रिकालवर्ती पदार्थों को **(साक्षात्)**-प्रत्यक्ष रूप से **(आलोकितम्)**-देख लिया गया है, **(यत् पदलंघनाय)**-जिनके पद को उल्लंघन करने के लिये **(राग-द्वेष भयामयान्तजरालोलत्वलोभादयः)**-राग, द्वेष, भय, रोग, यम, जरा, बुढ़ापा, चञ्चलता, लोभ, मोह आदि कोई भी **(अलं)**-समर्थ **(न)**-नहीं **(अस्ति)**-है **(महादेवः)**-महादेव **(स)**-वह **(मया)**-मेरे द्वारा **(वन्द्यते)**-वन्दित किया जाता है।

भावार्थ-संसार में जिस प्रकार नेत्रवान व्यक्ति को अपने करतल (हाथ में) स्थित तीन रेखाएँ अंगुली सहित स्पष्ट दिखाई देती हैं। उसी प्रकार जिनके केवलज्ञान में अलोक सहित त्रैलोक्य के त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष (करतल में स्थित रेखात्रय की तरह) दिखाई देते हैं वे ही मुझ अकलंक के वन्दना योग्य महादेव हैं। अन्य लौकिक महादेव मेरा सच्चा महादेव नहीं है। राग-द्वेष, भय, रोग, यम, जरा, चञ्चलता, मोह आदि कोई भी विकृतियाँ जिन्हें अपने पद से चलायमान करने में समर्थ नहीं हैं वह ही महादेव मेरे द्वारा वन्दना के योग्य हैं, अन्य रागी-द्वेषी महादेव मेरे द्वारा कभी भी वन्दनीय नहीं है।

जिनने अंगुली सहित हथेली, में रेखाएँ तीन समान।
तीन लोक आलोक काल तिय, आलोकित प्रत्यक्ष प्रमाण॥

राग-द्वेष भय रोग जरामय, लोभादिक पद से हैं हीन।
महादेव वह मेरे द्वारा, वन्दित सन्ध्याओं में तीन॥1॥

दग्धं येन पुरत्रयं शरभुवा तीव्रार्चिषा वह्निना
यो वा नृत्यति मत्तवत् पितृवने यस्यात्मजो वा गुहः।
सोऽयं किं मम शङ्करो भय तृषा रोषार्ति मोहक्षयं
कृत्वा यः स तु सर्ववित्तनुभृतां क्षेमङ्करः शङ्करः॥2॥

अन्वयार्थ-**(येन)** जिसने **(शरभुवा)** कामरूप वाणों से उत्पन्न हुई **(तीव्रार्चिषा)** भयंकर ज्वालाओं वाली (वह्निना) अग्नि के द्वारा **(पुरत्रयं)** तीन नगरों को **(दग्धं)** जलाया **(वा)** और **(यः)** जो **(मत्तवत्)** उन्मत्त पुरुष के समान **(पितृवने)** श्मशान में **(नृत्यति)** नृत्य करता है **(वा)** और **(यस्य)** जिसका **(आत्मज)** पुत्र **(गुहः)** कार्तिकेय **(अस्ति)** है **(किम्)** क्या **(सः)** वह **(अयम्)** यह **(मम)** मेरा **(शङ्करः)** शङ्कर **(स्यात्)** हो सकता है? नहीं। **(तु)** किन्तु **(यः)** जो **(भयतृषारोषार्ति-मोहक्षयं कृत्त्वा)** भय, तृषा, क्रोध, दुःख, मोह को क्षय करके **(सर्ववित्)** सर्वज्ञ हुआ है **(तनुभृतां क्षेमङ्करः)** जीवों का कल्याण करने वाला है **(स)** वह **(शङ्करः)** शंकर **(अस्ति)** है।

भावार्थ-लोक में शंकर उसे माना है जिसने कामरूप बाणों से उत्पन्न हुई भयंकर ज्वालाओं वाली अग्नि के द्वारा तीनों लोक को जला दिया है अर्थात् जो काम के वशीभूत है, जो श्मशान भूमि में पागल पुरुष की तरह नाचता है तथा जिसका पुत्र कार्तिकेय है। आचार्यश्री अकलंक स्वामी कहते हैं, जिसकी वासनाओं का अन्त नहीं हुआ है वह मेरा आलौकिक शंकर कभी नहीं हो सकता है, मेरा शंकर तो वही है जो भय, तृषा, क्रोध, दुःख, मोह को क्षय करके सर्वज्ञता को प्राप्त कर चुका है तथा जो प्राणीमात्र का कल्याण करने वाला है। वही मेरा **शं** याने शान्ति **कर** याने करने वाला, शान्ति प्रदान करने वाला शंकर है। इनसे भिन्न अन्य कोई नहीं।

काम बाण की ज्वालाओं से, तीन लोक को जला दिया।
पागल सम श्मशान घाट में, जिसने खुलकर नृत्य किया॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

तृषा क्रोध भय दुःख मोह के, क्षायक जग के क्षेमंकर।
कार्तिकेय के पिता नहीं, सर्वज्ञ रहे मेरे शंकर॥2॥

यत्नाद्येन विदारितं कररुहैर्दैत्येन्द्र वक्षस्थलं
सारथ्येन धनञ्जयस्य समरे यो मारयत्कौरवान्।
नासौ विष्णुरनेक काल विषयं यज्ज्ञानमव्याहतं
विश्वं व्याप्य विजृम्भते स तु महाविष्णु सदेष्टो मम॥3॥

अन्वयार्थ-**(येन)** जिसने **(यत्नात्)** प्रयत्न से **(कररुहैः)** नाखूनों के द्वारा **(दैत्येन्द्र वक्षस्थलम्)** दैत्यराज हिरण्यकश्यप के वक्षस्थल/सीने को **(विदारितम्)** छिन्न-भिन्न कर दिया और (यः) जिसने **(समरे)** युद्ध में **(धनञ्जयस्य)** धनञ्जय/अर्जुन का **(सारथ्येन)** सारथी होकर **(कौरवान्)** कौरवों को **(अमारयत्)** मरवाया **(असौ)** वह **(विष्णुः)** विष्णु **(न)** नहीं **(भवेत्)** हो सकता (किन्तु) **(यज्ज्ञानं)** जिसका ज्ञान **(अव्याहत)** बाधा रहित, निरावरण **(विश्वं)** तीन लोक को **(व्याप्यं)** व्याप्त करके **(विजृम्भते)** वृद्धि को प्राप्त हुआ है **(सः)** वही **(महाविष्णुः)** महाविष्णु **(मम)** मुझ अकलंक को **(सदा)** सदा/हमेशा **(इष्टा)** इष्ट है, मान्य है।

भावार्थ-जिसने बहुत प्रयत्न से अपने हाथ के नाखूनों के द्वारा दैत्यराज हिरण्यकश्यप के सीने को छिन्न-भिन्न कर दिया, जिसने अर्जुन का सारथी बनकर युद्ध में कौरवों को मरवाया, ऐसा वह दयाहीन अवतार सबका रक्षक विष्णु कैसे हो सकता है अर्थात् विष्णु नहीं है। विष्णु कौन है? **आचार्यश्री अकलंक स्वामी** लिखते हैं कि जिसका ज्ञान बाधा रहित है, आवरण रहित है, रुकावट रहित है, तथा तीन लोक व्याप्त करके वृद्धि को प्राप्त हुआ है प्राणीमात्र को हित का उपदेश देने से हितोपदेशी/ प्राणी-मात्र का रक्षक अरहन्त ही मेरा महाविष्णु मुझे सदा मान्य है/इष्ट है। एक में सारथी कोई अन्य जन संहारक विष्णु नहीं हो सकता है।

दैत्यराज का सीना जिसने, नाखूनों से ध्वस्त किया।
अर्जुन का सारथी बन रण में, कौरव को विध्वस्त किया॥

नहीं विष्णु वह महाविष्णु मम्, अव्याबाध है जिसका ज्ञान।
विश्व व्याप्त कर वृद्धी करता, मुझे इष्ट वह है भगवान॥3॥

उर्वश्यामुदपादिरागबहुलं चेतो यदीयं पुनः
पात्रीदण्डकमण्डलु प्रभृतयो यस्याकृतार्थ स्थिति
माविर्भावयितुं भवन्ति सकथं ब्रह्माभवेन्मादृशां
क्षुत्तृष्णा श्रमरागरोगरहितो ब्रह्माकृतार्थोऽस्तु नः॥4॥

अन्वयार्थ-**(यदीयं)** जिसके **(चेतः)** चित्तने **(उर्वश्याम्)** उर्वशी नाम की देवाङ्गना में **(रागबहुलम्)** राग की अधिकता को अर्थात् कामवासना की तीव्रता को **(उपपादि)** उत्पन्न किया **(पुनः)** और **(पात्रीदण्डकमण्डलुप्रभृतयः)** पात्र, दण्ड, कमण्डलु आदि बाह्य परिग्रहरूप पदार्थ **(यस्य)** जिसकी **(अकृतार्थस्थितिम्)** अकृतकृत्य दशा को **(आविर्भावयितुम्)** प्रकट करने में **(भवन्ति)** समर्थ हैं **(सः)** वह **(मादृशाम्)** मुझ जैसों का **(ब्रह्मा)** ब्रह्मा **(कथं)** कैसे **(भवेत्)** हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। किन्तु **(क्षुत्तृष्णाश्रमरागरोगरहितः)** क्षुधा, तृषा, थकावट, राग, पीड़ा/व्याधि रहित **(कृतार्थ)** कृतकृत्य **(सः)** वही **(नः)** हमारा **(ब्रह्मा)** ब्रह्मा **(भवेत्)** हो सकता है।

भावार्थ-जिसके चित्त ने कुचेष्टाओं के द्वारा उर्वशी नाम की देवाङ्गना में तीव्र काम-वासना को उत्पन्न किया है। जो अकृतकृत्य है। अकृतार्थ अन्तरंग दशा के कारण ही जो बाह्य में पात्र, दण्ड, कमण्डलु आदि धारण करता है ऐसा अकृतकृत्य मुझ अकलंक का वन्दनीय ब्रह्मा कैसे हो सकता है? कभी नहीं। हमारा ब्रह्मा कौन है- जो पूर्ण कृतकृत्य है, जिसे संसार में अब कुछ करना शेष नहीं रह गया है, जो कुछ भी करना था वह कर चुका है अतः कृतार्थ है, क्षुधा, तृषा, थकावट, राग-आधि-व्याधि आदि सर्व दोषों से मुक्त निर्दोष ही हमारा ब्रह्मा हो सकता है इससे भिन्न अन्य कोई लौकिक ब्रह्मा हमें मान्य नहीं है।

जिसके चित्त में उर्वशि ने भी, काम वासना उपजाई।
दण्ड कमण्डल पात्र आदि अरु, अकृत कृत्यता प्रगटाई॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

वह ब्रह्मा कैसे मेरा हो, मम् ब्रह्मा कृतकृत्य अहा।
क्षुधा तृषा श्रम राग रोग बिन, मम् ब्रह्मा तो नित्य रहा॥4॥

यो जग्ध्वा पिशितं समत्स्यकवलम् जीवं च शून्यं वदन्
कर्ता कर्मफलं न भुंक्त इति योवक्ता स बुद्धः कथम्।
यज्ज्ञानं क्षणवर्ति वस्तु सकलं ज्ञातुं न शक्तं सदा
यो जानन्युगपज्जगत्त्रयमिदं साक्षात् स बुद्धो मम॥5॥

अन्वयार्थ-**(यः)** जो **(समत्स्य कवलम्)** मगरमच्छों के ग्रास वाले **(पिशितं)** मांस को **(जग्ध्वा)** खाता है **(च)** और **(यः)** जो जीव को **(शून्यम्)** शून्य **(वदन्)** कहता है। **(च)** और **(कर्त्ता)** कर्म को करने वाला **(कर्मफलं)** कर्मफल को **(न)** नहीं **(भुंक्त)** भोगता **(इति)** इस प्रकार **(यः)** जो **(वक्ता)** कहता है **(च)** और **(यज्ज्ञानं)** जिसका ज्ञान **(क्षणवर्ती)** क्षणिक है अतः **(यः)** जो **(सकलं वस्तु)** सम्पूर्ण पदार्थों को **(ज्ञातुम्)** जानने के लिये **(शक्तम्)** समर्थ **(न)** नहीं है **(सः)** वह **(बुद्धः)** बुद्ध **(कथम्)** कैसे **(भवेत्)** हो सकता है, कभी नहीं। किन्तु **(यः)** जो **(सदा)** निरन्तर **(युगपत्)** एकसाथ **(इदम्)** इस **(जगत्त्रयं)** तीन जगत् को **(साक्षात्)** प्रत्यक्ष **(जानन्)** जानता है **(स)** वह **(मम)** मेरा **(बुद्ध)** बुद्ध है।

भावार्थ-लोक में जो मगरमच्छों के ग्रास वाले माँस पिण्ड को खाता है, जीव को शून्य देह कहता है। जो यह कहता है कि जीव कर्म को करता तो है पर उसके फल को भोगता नहीं है तथा जिसका ज्ञान भी क्षणध्वंशी है। क्षण-क्षण में परिवर्तनशील है इस कारण जो सम्पूर्ण पदार्थों को जानने में समर्थ नहीं है वह मुझ अकलंक का "बुद्ध" कैसे हो सकता है। आचार्यश्री अकलंक स्वामी लिखते हैं-मेरे द्वारा पूज्य मेरा बुद्ध वही है-जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को एकसाथ प्रत्यक्ष जानने में समर्थ है। अथवा जिसका ज्ञान त्रिकाल-त्रिगत् के पदार्थों को युगपत् प्रत्यक्ष जानता है। अन्य कोई लौकिक बुद्ध मुझे इष्ट नहीं है।

मगरमच्छ के माँस को खाता, कहता जीव है शून्य वदन।
कर्म करे फल न पावे वह, क्षणिक ज्ञान का करे कथन॥

सर्व द्रव्य को जान न पावे, फिर कैसे कहलाए बुद्ध।
तीन लोक को युगपद जाने, वह मेरा है ज्ञानी बुद्ध॥5॥

(स्रग्धरा छन्द)

ईशः किं छिन्नलिङ्गो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात्
नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं साङ्गनः सात्मजश्च॥
आर्द्राजः किन्त्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायं।
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोऽत्र धीमानुपास्ते॥6॥

अन्वयार्थ-**(यदि)** यदि महादेव **(ईशः)** ईश है, स्वामी या परमेश्वर है तो **(छिन्नलिङ्ग)** छिन्न लिंग वाला **(किम्)** क्यों है? **(यदि)** यदि **(सः)** वह **(विगतभयः)** भयरहित **(अस्ति)** है **(तर्हि)** तो **(शूलपाणि)** त्रिशूल है हाथ में जिसके अर्थात् त्रिशूलधारी **(कथं)** कैसे **(स्यात्)** हो सकता है? यदि वह **(नाथः)** नाथ है, स्वामी है **(तर्हि)** तो **(भैक्ष्यचारी)** भिक्षाभोजी **(किम्)** क्यों **(अस्ति)** है? यदि **(सः)** वह **(यति)** साधु या मुनि **(अस्ति)** है **(तर्हि)** तो **(सः)** वह **(साङ्गनः)** अंगना (स्त्री) सहित **(कथं)** कैसे **(स्यात्)** हो सकता है? **(च)** और **(सात्मजः)** आत्मज, पुत्र सहित, पुत्रवान् **(कथं)** कैसे **(स्यात्)** हो सकता है? **(यदि)** यदि **(सः)** वह **(आर्द्राजः)** आर्द्रा से उत्पन्न हुआ है **(तर्हि)** तो **(अजन्मा)** जन्म रहित **(किम्)** क्यों **(अस्ति)** है। यदि **(सः)** वह **(सकलवित्)** सभी पदार्थों को जानने वाला है **(तर्हि)** तो **(आत्मान्तरायम्)** अपनी आत्मा की भीतरी दशा को **(किम्)** क्यों **(न)** नहीं **(वेत्ति)** जानता है **(संक्षेपात्)** संक्षेप रूप से **(सम्यक्)** भले प्रकार **(उत्तम्)** कहे गये **(पशुपतिम्)** पशुपति को अर्थात् अज्ञानी की **(कः)** कौन **(अपशुः)** ज्ञानी/बुद्धिमान **(अत्र)** यहाँ/इस संसार में **(उपास्ते)** उपासना-आराधना- पूजा करेगा अर्थात् कोई नहीं।

भावार्थ-आचार्यश्री अकलंक स्वामी महादेव के भक्तों से पूछ रहे हैं-तर्क की कसौटी पर कसकर वे समस्या का हल माँग रहे हैं। यदि हमें प्रश्नों का उत्तर सत्य दे सकते हैं तब तो आपका श्रद्धान ठीक है अन्यथा आपकी महादेव के प्रति उपासना एक अन्धविश्वास मात्र है।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

सारांश यही कि ईश्वर होकर जो छिन्न लिंगवाला है, निर्भय होकर त्रिशूल धारण करता है, वही स्वामी होकर भिक्षा-भोजी है। साधु होकर स्त्री में आसक्त है, पुत्रवान् है, अजन्मा होकर आर्द्रा से उत्पन्न है, सर्वज्ञ होकर भी जो स्वयं की आत्मा की भीतरी दशा को जानने में असमर्थ है वह सचमुच अज्ञानी ही है। ऐसे अज्ञानी की आराधना कोई भी बुद्धिमान् हेयोपादेय बुद्धि का ज्ञाता कभी भी नहीं करेगा। ऐसा महादेव मुझ अकलंक का उपास्य हो ही नहीं सकता है।

मेरा सच्चा महादेव वही है जो ईश्वर है; छिन्नलिंग रहित है, निर्भय होने से शस्त्रादि जिसके हाथों में नहीं है, सबका स्वामी त्रिभुवननाथ है, तृप्त होने से भोजन की इच्छा से भी रहित है अर्थात् कवलाहार से रहित है। पूर्ण ब्रह्मचर्य का धारक होने से स्त्री-पुत्रादि से रहित, जन्म-मरण के दुःखों से दूर त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों को जानता हुआ अपनी आत्मा के अन्तरंग वैभव में लीन है। वही ज्ञानियों के द्वारा उपास्य है।

महादेव यदि ईश विगतभय, छिन्न लिंग क्यों ले त्रिशूल।
स्वामी को शिक्षा साधू को, सुत पत्नी क्या है अनुकूल॥
यदी अजन्मा सकल ज्ञानवित्, आर्दासुत क्यों कहा अनात्म।
सत् संक्षेप कथन से पशु वह, ज्ञानी कौन कहे परमात्म॥6॥

ब्रह्मा चर्माक्षसूत्री सुरयुवति रसावेशविभ्रान्त चेताः
शम्भू खट्वाङ्गधारी गिरिपतितनयापाङ्गलीलानुविद्धा।
विष्णुश्चक्राधिप सन् दुहितरमगमद गोपनाथस्य मोहा-
दर्हन् विध्वस्त रागोजितसकलभयः कोऽयमेष्वाप्तनाथः॥7॥

अन्वयार्थ-(**ब्रह्मा**) ब्रह्मा (**चर्माक्षसूत्री**) चमड़ा और अक्षमाला को रखते हैं, (तथा) (**सुरयुवति रसावेशविभ्रान्त-चेताः**) जिनका चित्त देवाङ्गनाओं के प्रेम से विभ्रान्त हो रहा है। (**शम्भु**) महादेव जी (**खट्वाङ्गधारी**) चारपाई पर सोने वाले, (**गिरिपतितनयापाङ्गलीलानुविद्ध**) हिमालय की पुत्री पार्वती के कामचेष्टा से पीड़ित हैं (**विष्णुः**) विष्णुजी (**चक्राधिः**) सुदर्शन चक्ररत्न के स्वामी (**सन्**) होते हुए (**गोपनाथस्य**)

ग्वालों के राजा की (**दुहितरम्**) पुत्री को (**अगमत्**) सेवन करने वाले हैं (**एषु**) इन ब्रह्मा, महादेव और विष्णुमें (**विध्वस्तरागः**) राग का नाश करने वाले/वीतरागी (**जितसकलभयः**) समस्त प्रकार के भय को जीतने वाला (**अयम्**) यह (**आप्तनाथ**) वीतरागी सर्वज्ञ हितोपदेशी तीन लोक का स्वामी (**अर्हन्**) अरिहन्त (**कः**) कौन (**अस्ति**) है? अर्थात् कोई नहीं है।

भावार्थ-1. लोक में जिसे ब्रह्मा कहा जाता है वह जीवों का कलेवर चमड़ा और अक्षमाला रखता है। स्त्री राग में उन्मत्त हो रहा है। देवाङ्गनाओं के हास-विलास में उसका चित्त चलायमान हो चुका है। 2. जिसे शम्भु/शंकर कहते हैं वह स्वयं वासना लम्पटी हो चारपाई पर सोता है, पार्वती के राग में अन्धा हो स्वको जानता ही नहीं है। 3. लौकिक विष्णु जिन्हें कृष्ण के नाम से पुकारते हैं, त्रिखण्ड होते हुए भी ग्वालों की पुत्रियों में परस्त्री लम्पटी हुए।

इन ब्रह्मा-शंकर और विष्णु में पूर्ण वीतरागी, निर्भय/सकल भयों को जीतने वाला वीतरागी-सर्वज्ञ-हितोपदेशी कहलाने योग्य, घातिया कर्मो का क्षय करने वाला कोई भी नजर नहीं आता। सब संसार की उलझन में फँसे राग-द्वेष आदि दोषों से युक्त हैं अरहन्त कहलाने योग्य कोई नहीं है। मुझ अकलंक का ब्रह्मा-अरिहन्त हैं, शम्भु-अरहन्त हैं तथा विष्णु भी अरिहन्त ही हैं अन्य कोई नहीं॥7॥

चर्म अक्षमाला युत ब्रह्मा, चित्त देवियों में विभ्रान्त।
महादेव खटिया पर सोते, पार्वती के मोह में क्लान्त॥
ग्वाल सुता का सेवन करते, विष्णु चक्ररत्न धारी।
इनमें राग के नाशक निर्भय, अर्हत् आप्त ज्ञानधारी॥7॥

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

एको नृत्यति विप्रसार्य ककुभां चक्रेसहस्त्रंभुजा
नेकः शेष भुजङ्ग भोगशयने व्यादाय निद्रायते।
दृष्टं चारु तिलोत्तमा मुखमगादेकश्चतुर्वक्त्रता-
मेतेमुक्तिपथं वदन्ति विदुषामित्येतदत्यद्भुतम्॥8॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-(**एकः**) शिवजी (**ककुभाम्**) दिशाओं के (**चक्रे**) चक्र-मण्डल में (**सहस्त्रं**) हजारों (**भुजान्**) भुजाओं को (**विप्रसार्य**) फैलाकर (**नृत्यति**) नृत्य करते हैं। (**एकः**) विष्णुजी (**शेषभुजङ्गभोगशयने**) शेषनाग के शरीररूप शय्या पर (**व्यादाय**) मुख को खोलकर (**निद्रायते**) सोते हैं (**एकः**) श्रीब्रह्माजी (**चारुतिलोत्तमा मुखम्**) सुन्दर तिलोत्तमा के मुख को (**दृष्टम्**) देखने के लिये (**चतुर्वक्त्रताम्**) चार मुखपना को (**अगात्**) प्राप्त हुए (**एते**) ये शिव, विष्णु और ब्रह्मा (**विदुषाम्**) विद्वानों को (**मुक्तिपथम्**) मोक्षमार्ग को (**वदन्ति**) कहते हैं (**इति**) इस प्रकार (**एतत्**) यह (**अति**) बड़े (**अद्‌भुतम्**) आश्चर्य की बात है।

भावार्थ-शिवाजी अपनी हजारों भुजाओं को फैलाकर दिशाओं के चक्रमण्डल में नाचते हैं। विष्णुजी प्रमादी बनकर शेषनाग के शरीररूप शय्या पर मुँह खोलकर सोते हैं और ब्रह्माजी ने सुन्दर तिलोत्तमा के रूप को देखने के लिये चार मुख बनाये हैं ऐसे रागी जीवों को अहो! आश्चर्य है कि विद्वान उन्हें मुक्ति-पथ का उपदेश देने वाले कहते हैं बड़े आश्चर्य की बात है। भला विचार कीजिये जिन्हें अपनी अतृप्त वासनाओं की तृप्ति से फुर्सत नहीं है वे मोक्षमार्ग का उपदेश कैसे दे सकते हैं? फिर भी यदि उन्हें मोक्षमार्ग के उपदेशक माना जा रहा है तो यह अति आश्चर्यकारी है, कलिकाल का ही प्रभाव है।।8।।

सहस भुजाओं को फैलाकर, शिव करते चउदिश में नृत्य।
विष्णू शेष नाग शैया पर, सोते सुमुख खोलकर कृत्य।।
ब्रह्म तिलोत्तमा के मुख दर्शन, हेतू सुमुख बनाए चार।
विद्वत मोक्ष मार्ग ये कहते, यह आश्चर्य भरा संसार।।8।।

(स्रग्धरा छन्द)

यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेभङ्गिनः पारदृश्वा
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमम् निष्कलङ्कं यदीयम्।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तम्
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलं निलयं केशवं वा शिवं वा।।9।।

अन्वयार्थ-(**यः**) जो (**वेद्यम्**) जानने योग्य (**विश्वम्**) विश्व को (**वेद**) जानता है और जो (**भङ्गिनः**) नाना प्रकार के राग-द्वेष-शोक-भय-पीड़ादि (**जननजलनिधेः**) संसारसमुद्र के (**पारदृश्वा**) पार को देख चुके हैं (**यदीयम्**) जिनका (**वचनम्**) वचन (**अनुपमम्**) उपमा रहित, (**निष्कलङ्कम्**) निर्दोष (**पौर्वापर्याविरुद्धम्**) पूर्वापरविरोध से रहित है (**सकलगुणनिधिम्**) समस्त गुणों के स्वामी (**ध्वस्तदोषद्विषन्तम्**) नष्ट कर दिये हैं राग-द्वेषादि दोषों को जिन्होंने (**साधुवन्द्यम्**) ऋषिमुनियों के द्वारा वन्दनीय (**तं**) उन महान् परमात्मा की (**अहम्**) मैं (**वन्दे**) वन्दना करता हूँ वह (**बुद्धं वा**) चाहे बुद्ध हो, (**वर्द्धमानंवा**) चाहे वर्द्धमान हो (**वा शतदलनिलयम्**) चाहे ब्रह्मा हो (**वा केशवम्**) चाहे विष्णु हो (**वा शिवम्**) अथवा महादेव हो।

भावार्थ-जो जानने योग्य सर्व विश्व को जानते हैं, राग-द्वेषादि अठारह दोषों से रहित हैं, संसारसमुद्र से पार हो चुके हैं, जिनके वचन निर्दोष, उपमा रहित, पूर्वापर विरोध से रहित हैं ऐसे समस्त गुणों के स्वामी, बड़े-बड़े मुनियों से वन्दनीय परमात्मा मुझ अकलंक के लिये वन्दनीय हैं। वे नाम से ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, वर्द्धमान कोई भी हों। गुणों की पूजा जैनशासन में है, व्यक्ति या नाम की नहीं।।9।।

विश्व जानने योग्य जानते, रागादिक भवदधि के पार।
पूर्वापर के रोध हीन, निरुपम निर्दोष वचन संसार।।
साधु बन्ध रागादि नाशक, सर्वगुणों के स्वामी नाथ।
नाम कोई ब्रह्मा विष्णु शिव, बुद्ध वीर के चरणों माथ।।9।।

माया नास्ति जटां कपालमुकुटं चन्द्रो न मूर्धावली
खट्वाङ्गं न च वासुकिर्न च धनुः शूलं न चोग्रं मुखं।
कामो यस्य न कामिनी न च वृषोगीतं न नृत्यं पुनः
सोऽस्मान् पातु निरञ्जनो जिनपतिः सर्वत्रसूक्ष्मः शिवः।।10।।

अन्वयार्थ-(**यस्य**) जिसके (**माया**) नाना प्रकार के रूप स्वांग बनाना (**न अस्ति**) नहीं है (**यस्य**) जिसके (**जटा**) जटा (**कपालमुकुटं**) कपालमुकुट (**चन्द्रः**) चन्द्रमा (**मूर्द्धावली**) मूर्द्धावली (**खट्वाङ्गम्**)

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

खट्वांग अस्त्र विशेष/हथियार **(न)** नहीं है **(वासुकिः)** वासुकि-सर्प **(च)** और **(धनुः)** धनुष **(शूलम्)** शूल **(न)** नहीं है **(च)** और **(उग्रम् मुखम्)** भयावना मुखम् **(न)** नहीं है **(यस्य)** जिसके **(कामः)** काम **(च)** और **(कामिनी)** स्त्री **(न)** नहीं है **(च)** और **(यस्य)** जिसके **(वृषः)** बैल **(गीतम्)** गीत-गाना **(पुनः)** और **(नृत्यम्)** नृत्य करना **(न अस्ति)** नहीं है **(सः)** वह **(निरञ्जनः)** कर्ममल रहित, **(सूक्ष्मः)** सूक्ष्म **(शिवः)** शिव **(जिनपतिः)** जिनेन्द्रदेव **(सर्वत्र)** सब जगह तीनों लोकों में **(अस्मान्)** हम सबकी **(पातु)** रक्षा करें।

भावार्थ-आचार्यश्री अपने पूज्य देवाधिदेव अरहन्त जिनेन्द्र की महिमा बताते हुए यहाँ लिखते हैं-जिसके पास स्वाँगरचना रूप माया, जटा, कपाल-मुकुट, चन्द्रमा, मूर्द्धावली, हथियार, त्रिशूल, धनुष, सर्प आदि नहीं हैं। जिनका मुख उग्र/भयानक न होकर पूर्ण वीतरागता के रस से भींगा हुआ है। जिसके पास न काम है, न स्त्री है, न बैल, गीत, नृत्य आदि कार्य नहीं हैं, जो नित्य निरञ्जन निर्विकार समता कुल देवी में सतत लीन है, कर्ममल से रहित है, निरञ्जन है, सूक्ष्म है, शिव है, सूक्ष्म है वह विश्वव्याप्य तीन लोक का स्वामी सब जगह हमारी रक्षा करें।।10।।

जटा मुकुट माया कपाल अरु, मूर्धावली न है खटवांग।
धनुष सर्प न शूल उग्रमुख, काम कामिनी न मालांग॥
नृत्य गीत अरु बैल नहीं है, सूक्ष्म निरञ्जन शिव आकार।
हम सबकी सब जगह जिनेश्वर, रक्षा करो करो भवपार॥10॥

नो ब्रह्माङ्कित भूतलं न च हरेः शम्भोर्न-मुद्राङ्कितं
नो चन्द्रार्क कराङ्कितं सुरपतेर्वज्राङ्कितं नैव च।
षड्वक्त्राङ्कित बौद्धदेव हुतभुग्यक्षोरगैर्नाङ्कितं
नग्नं पश्यत वादिनो जगादिदं जैनेन्द्रमुद्राङ्कितम्॥11॥

अन्वयार्थ-**(वादिनः)** हे वादियों **(इदं)** इस **(जगत्)** संसार को **(ब्रह्माङ्कित भूतलं)** ब्रह्मा से व्याप्त भूमिवाला **(नो)** नहीं **(पश्यत)** देखो। च और **(हरेः)** श्रीकृष्ण की **(मुद्राङ्कितम्)** मुद्रा से व्याप्त **(शम्भोः)** महादेव जी की **(मुद्राङ्कितम्)** मुद्रा से व्याप्त

(चन्द्रार्कशङ्कितम्) चन्द्रमा और सूर्य की किरणों से व्याप्त **(सुरपतेः)** सुरपति/इन्द्र के **(वज्राङ्कितम्)** वज्र से व्याप्त **(च)** और **(षड्वक्त्राङ्कितबौद्धदेवहुतभुग्यक्षोरगैः)** गणेश, बौद्धदेव, अग्नि, यक्ष और शेषनाग से व्याप्त **(नो)** नहीं **(पश्यत)** देखो। अपितु **(वादिनः)** हे वादियों! तुम लोग **(इदम्)** इस **(जगत्)** संसार को **(नग्नं)** दिगम्बर **(जैनेन्द्रमुद्राङ्कितम्)** वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी श्रीजिनेन्द्रदेव की मुद्रा से अंकित **(पश्यत)** देखो।

भावार्थ-ईश्वर के स्वरूप में विवाद करने वाले वादी लोग इस संसार को विभिन्न रूपों में देखते हैं उसका निराकरण करते हुए आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी वादियों को पुकार कर कहते हैं-हे वादियों, यह संसार ब्रह्मा से व्याप्त भूमिवाला, कृष्ण की मुद्रा से व्याप्त, महादेव की मुद्रा से व्याप्त, चन्द्रमा और सूर्य की किरणों से व्याप्त, सुरपति के वज्र से व्याप्त और गणेश, बुद्ध, अग्नि, यक्ष तथा शेषनाग भी व्याप्त नहीं है अतः तुम इस संसार को उस रूप मत देखो। यह संसार तो वास्तव में दिगम्बर वीतराग-सर्वज्ञ-हितोपदेशी जिनेन्द्रदेव की मुद्रा से व्याप्त है अतः इसे जिनेन्द्रमुद्रांकित देखो। त्रिकालदर्शी जिनदेव के ज्ञान में सर्व चराचर लोक दर्पणवत् स्पष्ट झलक रहा है, उनके ज्ञान के बाहर अगुमात्र भी नहीं है अतः तुम इस लोक को दिगम्बर जिनमुद्रा से व्याप्त देखो।

जग को ब्रह्मा व्याप्त भू वाला, हरि शिव मुद्रा से भी व्याप्त।
चन्द्र सूर्य किरणों से सुरपति, वज्रांकित हे वादि! न आप्त॥
गणपति बौद्ध यक्ष अरु अग्नी, शेषनाग से देखो न व्याप्त।
वीतराग इस जग को वादी, देखो पूर्ण दिगम्बर आप्त॥11॥

मौञ्जीदण्डकमण्डलु प्रभृतयो नो लाञ्छनं ब्रह्मणो
रुद्रस्यापि जटाकपालमुकुटं कौपीनखट्वाङ्गना।
विष्णोश्चक्र गदादि शङ्खमतुलं बुद्धस्यरक्ताम्बरं
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्राङ्कितम॥12॥

अन्वयार्थ-**(मौञ्जीदण्डकमण्डलुप्रभतयः)** मूँज की बनी हुई रस्सी **(कमर बन्ध)** दण्ड कमण्डलु **(जलपात्र)** आदि **(ब्रह्मणः)** ब्रह्मा के **(लाञ्छनं)** चिह्न **(नो)** नहीं **(अस्ति)** हैं। **(जटाकपालमुकुटं)**

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

(जटाजूट-कपाल-मुकुट कौपीनखट्वाङ्गना) लँगोटी, खट्वाङ्ग/अस्त्रविशेष अंगना/स्त्री/पार्वती **(रुद्रस्य)** रुद्र/महादेव का **(लाञ्छनम्)** चिह्न **(नो)** नहीं **(अस्ति)** है। **(अतुलं)** उपमारहित **(चक्रगदादिशंखम्)** सुदर्शन चक्र, शंख और गदा आदि **(विष्णोः)** विष्णु का **(लाञ्छनम्)** चिह्न **(नो)** नहीं **(अस्ति)** है **(रक्ताम्बरम्)** रक्त वस्त्र धारण करना **(बुद्धस्य)** बुद्ध का **(लाञ्छनम्)** चिह्न **(नो)** नहीं **(अस्ति)** है। **(वादिनः)** हे वादियों **(जैनेन्द्रमुद्राङ्कितम्)** श्रीजिनेन्द्रदेव की परम शान्त वीतराग मुद्रा से चिह्नित **(नग्नम्)** दिगम्बरत्वम् ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, बुद्ध का यथार्थ चिह्न है अतः **(इदं जगत्)** इस जगत् को **(जैनेन्द्रमुद्राङ्कितम्)** जिनेन्द्र मुद्रा से व्याप्त **(पश्यत)** देखो।

भावार्थ-अन्य लौकिक जन ब्रह्मा-विष्णु-महादेव का भिन्न-भिन्न रूप मानते हुए कहते हैं कि जो कमर में मूँज की रस्सी बाँधे हैं, हाथ में दण्ड, कमलण्डु लिये हैं वह ब्रह्मा हैं, जो सिर में जटा-जूट धारण किये हैं, लंगोटी लगाते हैं, अस्त्र/हथियार लिये हैं तथा पार्वती को अपने साथ (अर्द्धाङ्ग) में रखते हैं वे महादेव/रुद्र हैं तथा जिनके पास चक्र, शंख व गदा रहती है वे विष्णु हैं और लाल वस्त्र को धारण करते हैं वे बुद्ध हैं। यहाँ श्री अकलंक स्वामी-लिखते हैं-इस प्रकार की जो मिथ्या श्रद्धा है वह असत्यार्थ है। ब्रह्मा-विष्णु-महादेव के ऐसे असत्यार्थ प्रतिपादक चिह्न बताना असत्यार्थ ही है क्योंकि सत्यार्थ ब्रह्मा, विष्णु आदि के ये लक्षण कभी नहीं हो सकते हैं।

आचार्यश्री वादियों को पुकार कर कह हैं- हे वादियो! जो नग्न दिगम्बर हो, वीतराग जिनेन्द्र मुद्रा से युक्त हो, अपने आत्मस्वरूप में रमण करते हैं ऐसे अरहंत ही ब्रह्मा हैं। वे अरहंत देव तीन लोक में शांति प्रदान करने से शंकर हैं/ महादेव हैं, वे अरहंत देव ही विष्णु हैं तथा ज्ञानियों के द्वारा अर्चित होने से अरहंत ही बुद्ध हैं, अन्य कोई ब्रह्मा, विष्णु, शंकर बुद्ध नहीं हो सकता। जो स्वयं दुखी है, जो स्वयं कामी हो, स्त्री को साथ रखता है, जो स्वयं डरपोक हो, हथियार हाथ में लिये है वह हमारा महादेव शंकर कैसे हो सकता है।।12।।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात् त्वंशङ्करोऽसिभुवनत्रय शंकरत्वात्।।
धातासि धीर शिवमार्ग विधेर्विधानात् व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि।।

मौजी दण्ड कमण्डल आदिक, ब्रह्मा बौद्ध का रक्तांबर।
गदा शंख चक्रादि विष्णु का, चिन्ह नहीं कहते जिनवर।।
जटा कपाल मुकुट खटवांगा, स्त्री रुद्र का चिन्ह नहीं।
हे वादी! देखो इस जग में, जिन मुद्रा तो नग्न रही।।12।।

नाहङ्कार वशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलम्
नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्य बुद्धया मया।
राज्ञः श्री हिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो
बौद्धोघान् सकलान् विजित्यसघटः पादेन विस्फालितः।।13।।

अन्वयार्थ-(मया) मुझ अकलंक ने **(अहङ्कारवशीकृतेन)** मान के वश में किये गये **(मनसा)** मन से **(न)** नहीं। **(द्वेषिणा)** द्वेष से भरे हुए **(अपितु) (केवलम्)** सिर्फ/मात्र **(नैरात्म्यं)** आत्मा के शून्यत्व को **(प्रतिपद्य)** जानकर/स्वीकार करके **(जने)** लोगों के **(नश्यति)** मोक्षमार्ग से भ्रष्ट होने पर **(कारुण्य बुद्धया)** करुणामय बुद्धि से ही **(राज्ञः)** राजा **(श्रीहिमशीतलस्य)** श्री हिमशीतल की **(सदसि)** सभा में **(सकलान्)** सभी **(विदग्धात्मनो)** गर्वीले मूढ़ आत्माओं को **(बौद्धोधान्)** बौद्ध भक्तों को **(विजित्य)** जीत करके **(सः)** उस **(घटः)** घड़े को **(पादेन)** पैर से **(विस्फालितः)** फोड़ दिया।

भावार्थ-राजा हिमशीतल की सभा में अकलंकदेव का बौद्धों के साथ बहुत लम्बे समय तक विवाद चलता रहा। अकलंकदेव की तार्किक विद्या के सामने सभी बौद्ध विवाद में असफल रहे। तब उन्होंने मायाजाल रचा। तारादेवी को घट में स्थापित कर दिया और परदे की ओट में विवाद शुरू हुआ। तारादेवी के साथ 6 माह तक अकलंकदेव का वाद चलता रहा। एक दिन अचानक आचार्यदेव के मस्तिष्क में सत्यार्थ का प्रकाशन हुआ। उन्होंने सोचा इन बौद्धों में ऐसा कोई विद्वान् नजर नहीं आता जो मुझ स्याद्वादी के सामने 6 माह तक टिक सके। अवश्य यह कोई मायाजाल है। उन्होंने पर्दे को हटाया। वहाँ देखा वाद करने वाला कोई व्यक्ति वहाँ नहीं था। तुरन्त वे समझ गये ये सब

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

देवमाया है। उन्होंने तुरन्त ही उस घड़े को अपने पैर से फोड़ दिया। तारादेवी उसमें से तुरन्त भाग निकली। इसी घटना का चित्रण करते हुए अकलंकदेव लिखते हैं-

मुझ अकलंक ने सर्वथा आत्मा के अभाव की बात करने वाले, शून्यवाद का ढोंग रचाकर, मोक्षमार्ग से पतित होने वाले लोगों को अनन्त संसार परिभ्रमण से बचाने के लिये करुणाबुद्धि से अहंकार में मदमाते क्षणिकवादियों, समस्त बौद्धों के भक्तों को हिमशीतल राजा की सभा में जीतकर उस तारादेवी के घड़े को पैर से फोड़ दिया था।

दिगम्बर सन्त वीतरागी होते हैं उन्हें ऐसा कार्य नहीं करना था यदि ऐसी शंका करें तो आचार्यश्री कहते हैं-मैंने यह कार्य किसी "अहं" के वश या बौद्धों से द्वेषवश नहीं किया है अपितु अनन्त ज्ञानमय पिटारा परम तू ही आत्मा है उसके प्रति उनकी जो भूल है नैरात्म्यवाद/शून्यवाद जिसके आश्रय से जीवों का मोक्षमार्ग भ्रष्ट होता है उससे बचकर उन्हें मोक्ष-पथ पर ले जाने के लिये "कारुयमयी" बुद्धि से यह मैंने कार्य किया है। मेरा किसी प्राणी से द्वेष नहीं है, न ही मुझे अहंकार है। सत्य-पथ का प्रदर्शन, मिथ्यामत/मिथ्या-पथ का कदर्थन मेरा कर्त्तव्य है वही मैंने किया है।

द्वेष भाव कुछ भी न मन में, मात्र करुण बुद्धी से युक्त।
मोक्ष मार्ग से भ्रष्ट हुए जो, आत्म शून्यता से संयुक्त॥
सभा लगी हिमशीतल नृप की, मानी हो करने को वाद।
मूढ़ बौद्ध भक्तों को जीता, घट को फोड़ा मार के लात॥13॥

(स्रग्धरा छन्द)

खट्वाङ्गं नेव हस्ते न च हृदि रचिता लम्बते मुण्डमाला
भस्माङ्गं नैव शूलं न च गिरि नैव हस्ते कपालं।
चन्द्रार्द्धं नैव मूर्धन्यपि वृषगमनं नैव कण्ठे फणीन्द्र द्रहिताः
तं वन्दे त्यक्तदोषं भवभयमथनं चेश्वरं देवदेवम्॥14॥

अन्वयार्थ-(**यस्य**) जिसके (**हस्ते**) हाथ में (**खट्वांगं**) हथियार विशेष (**न अस्ति**) नहीं है (**यस्य**) जिसके (**हृदि**) वक्षस्थल पर (**रचिता**) गूंथी हुई (**मुण्डमाला**) मुण्डमाला (**न**) नहीं (**लम्बते**) लटक रही है (**यस्य**) जिसके (**भस्माङ्गम**) शरीर पर राख नहीं है (**च**) और (**शूलम्**) शूल (**न अस्ति**) नहीं है (**यस्य**) जिसके साथ (**गिरि दुहिता**) हिमालय की पुत्री पार्वती (**न**) नहीं है (**यस्य हस्ते**) जिसके हाथ में (**कपालं**) कपाल नर खोपड़ी (**न**) नहीं (**अस्ति**) है (**यस्य**) जिसके (**मूर्धनि**) मस्तक पर (**चन्द्रार्द्धम्**) अर्द्धचन्द्र (**न**) नहीं (**अस्ति**) है (**कंठे**) कण्ठ में (**फणीदं**) सर्प (**नैव**) नहीं ही (**अस्ति**) है (**तम्**) उस (**देवदेवम्**) देवाधिदेव अरहन्त देव महादेव को (**वन्दे**) मैं वन्दन, नमस्सकार करता हूँ (**यः**) जो (**त्यक्तदोषम्**) राग-द्वेष व क्षुधादि दोषों से रहित है (**भवभयमथनम्**) संसार के भय का विनाशक है (**च**) और (**ईश्वरं**) तीन लोक का स्वामी है त्रिलोकाधिपति है।

भावार्थ-प्रस्तुत श्लोक में आचर्यश्री अकलंक स्वामी ने बताया है कि मेरे द्वारा वन्दनीय मेरा महादेव कौन है?

जिसके हाथों हथियार नहीं है, वक्षस्थल पर मुण्डमाला नहीं लटक रही है, शरीर भस्म से युक्त नहीं है, शूल से रहित है, वैरागी होने से जितेन्द्रिय निष्कामी जिसके साथ स्त्री कभी नहीं रहती है। जिसके हाथ में नर कपाल नहीं रहता, जिसके मस्तक पर अर्द्धचन्द्र नहीं है, कण्ठ में सर्प नहीं है जो वीतरागी सर्व दोषों से रहित संसार भय का विनाशक है, देवों का देव देवाधिदेव/महादेव है, तीनों लोकों का एकमात्र स्वामी है वही त्रिलोकाधिपति देवाधिदेव अरहन्त देव मेरे द्वारा वन्दनीय है। मैं उनकी वन्दना करता हूँ। इससे भिन्न अन्य कोई लौकिक देव महादेव नहीं है।

हाथों में खट्वांग हृदय पर, रचित मुण्डमाला न होय।
तन पर भस्म शूल गिरि दुहिता, नहिं कपाल हाथों में कोय॥
चन्द्रावली शीश नहि कंठे, सर्प नहीं देवों का देव।
दोष मुक्त ईश्वर को बन्दूँ, जो त्रिलोकपति रहे सदैव॥14॥

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

किं वाद्योभगवानमेयमहिमा देवाऽकलंकः कलौ
काले यो जनता सुधर्म निहितो देवाऽकलंको जिनः।

यस्य स्फार विवेकमुद्रलहरी जाले प्रमेयाकुला
निर्मग्ना तनुतेतरा भगवती ताराशिरः कम्पनम्॥15॥

अन्वयार्थ-(यस्य) जिन **(भगवान्)** भगवान् भट्टाकलंक स्वामी **(स्फारविवेकमुद्रलहरीजाले)** विशाल सम्यक्ज्ञान रूप समुद्र की तरंगों के समूह में **(निर्मग्ना)** डूबी हुई अतएव **(प्रमेयाकुला)** अपार प्रमेय-पदार्थों से व्याप्त **(भगवती)** भगवती श्रुत देवी ने **(ताराशिरः कम्पनम्)** तारा देवी के मस्तक को हिलाने की क्रिया को **(तनुतेतराम्)** विस्तारा और **(यः)** जिन अकलंक देव ने **(कलौ काले)** पञ्चमकाल में **(जनताः सुधर्मनिहितः)** जनता को उत्तम श्रेष्ठ जिन-धर्म में लगाया **(सः)** वह **(अकलंक)** मिथ्यात्वादि कलंक से रहित अकलंक **(जिनः)** मिथ्यात्व विजेता **(देवः)** अकलंक देव **(यः)** जो **(भगवान्)** तत्त्वज्ञान वेत्ता हैं **(अमेयमहिमा)** अतुल रत्नत्रय की गरिमा से माहात्म्यवान हैं **(किम्)** क्या **(वाद्यः)** शास्त्रार्थ करने योग्य हैं अर्थात् नहीं।

भावार्थ-भट्टाकलंकदेव की विशाल बुद्धि व तार्किक शक्ति थी। उनका विशाल ज्ञान समुद्र अपरिमित प्रमेय से व्याप्त था उनको अपूर्व तत्त्वज्ञान शक्ति युक्त भगवती सरस्वती देवी तारा देवी के मस्तक को हिलाकर पञ्चमकाल में जिनधर्म की अपूर्व प्रभावना की है जिन्होंने कलिकाल में मिथ्याभिमान से चूर मिथ्यात्वियों का मद दूर कर जनता को उत्तम जैनधर्म में लगाया, जो मिथ्यात्व के कलंक से दूर अकलंक थे ऐसे असीम ज्ञानधारा के पुञ्ज यथार्थ तत्त्ववेत्ता के साथ कौन वाद करेगा अर्थात् कोई नहीं। अमेय महिमा अर्थात् रत्नत्रय के धनी चारित्र के शिखर को प्राप्त क्या अकलंकदेव सामान्य जीवों के वाद/शास्त्रार्थ करने के योग्य हो सकते हैं कभी नहीं। अर्थात् ऐसे तार्किक, लोकोत्तर ज्ञानी के साथ कौन अल्पज्ञानी वाद करने की हिम्मत करेगा अर्थात् कोई नहीं।

सम्यक् श्रुत सागर की लहरों, से आकुल भगवति भगवान।
तारा का मस्तक विकृत कर, जिसने सहज जगाया ज्ञान॥
कलयुग में सत् पथ दिखलाए, जीते मिथ्यात्वादि कलंक।
रत्नत्रय के धारी ज्ञानी, वाद योग्य हैं क्या अकलंक॥15॥

सा तारा खलु देवता भगवतीमन्यापि मन्यामहे
षण्मासावधि जाड्य सांख्यमगमद्भट्टाकलंक प्रभोः।
वाक्कल्लोल-परम्पराभि-रमते नूनं मनो मज्जन
व्यापारं सहते स्म विस्मित मतिः सन्ताडितेतस्ततः॥16॥

अन्वयार्थ-(भगवतीमन्यापि) अपने को भगवती श्रैष्ठज्ञानयुक्त मानने वाली **(सा)** वह (तारा) नाम की (देवता) देवी **(खलु)** निश्चय से ऐतिहासिक घटना के अनुसार भगवान् श्री भट्टाकलंक के साथ **(षण्मासावधि)** छह मास तक निरन्तर शास्त्रार्थ करती रही तथापि **(भट्टाकलंक प्रभोः)** भगवान् भट्टाकलंक स्वामी के **(वाक्कल्लोपरम्पराभिः)** युक्ति-युक्त तार्किक वचन रूप महातरंगों की परम्परा से **(सन्ताडिता)** पराजय को प्राप्त हुई अतः **(जाड्यसांख्यम्)** अज्ञानियों की गणना को **(अगमत्)** प्राप्त हुई। अपनी पराजय से लज्जित हो **(विस्मितमतिः)** आश्चर्यान्वित हो **(नूनम्)** निश्चय से शर्मिन्दा हुई के समान **(अमते)** मिथ्या वस्तु स्वरूप के प्रतिपादक बौद्धों के एकान्तमत में ही **(इतस्ततः)** इधर-उधर **(मनो मज्जन)** मन को स्थिर करने की कठिनाईयों को **(सहते स्म)** सहने लगी **(एवम्)** ऐसा **(वयम्)** हम **(मन्यामहे)** मानते हैं।

भावार्थ-ऐतिहासिक घटना के अनुसार-अपने आप को सर्वोपरि ज्ञानवाली, भगवती सरस्वती मानने वाली तारा देवी ने भट्टाकलंक देव दिगम्बर साधु से छह माह तक शास्त्रार्थ किया। किन्तु आचार्यश्री की वाद विद्या, पैनी दृष्टि व युक्तियुक्त तार्किक वाणी रूपी तरंगों के सामने वह नहीं टिक पाई, पराजित हो गई और सत्यार्थ तत्त्वज्ञान से अपरिचित अज्ञानियों की गणना को प्राप्त हुई। तारा देवी अपनी पराजय से लज्जित हो आश्चर्यचकित रह गई। अब लज्जित हो मिथ्या एकान्तमत क्षणिकवाद के प्रतिपादक बौद्धों के मत में ही इधर-उधर अपने मन को कठिनता से स्थिर कर कठिनाइयों को सहने लगी ऐसा हम मानते हैं।

भगवति मान तारा ने निज को, प्रभु अकलंक से वाद किया।
छह महिने में तर्क युक्ति से, प्रभु ने उसको मात दिया॥
आश्चर्य चकित हुए निश्चय से, यतः ततः मन भञ्जन वान।
ऐसा मान रहे हैं हम यह, अज्ञानी मिथ्यात्वी मान।16॥

इति अकलंक स्तोत्रम्

विषापहार स्तोत्रम्

स्वात्म-स्थितः सर्वगतः समस्त-व्यापार-वेदी विनिवृत्त-संगः।
प्रवृद्ध-कालोऽप्यजरो वरेण्यः,पायाद पायात्पुरुषः पुराणः।।१।।

अन्वयार्थ-स्वात्मस्थितः अपि सर्वगतः-आत्मज्ञस्वरूप में स्थित सर्वव्यापक होकर भी, **समस्तव्यापारवेदी अपि**-सब व्यापारों के जानकार होकर भी, **विनिवृत्तसंग**-परिग्रह से रहित, **प्रवृद्धकालः अपि अजरः**-दीर्घ आयुवाले होकर भी बुढ़ापे से रहित था **वरेण्यः**-श्रेष्ठ, **पुराणः पुरुषः**-प्राचीन पुरुष भगवान् वृषभनाथ, **नः**-हम सबको, **अपायात्**-विनाश से, **पायात्**-बचावें-रक्षित करें।

भावार्थ-श्लोक में विरोधाभास अलंकार है। इस अलंकार के सुनते समय विरोध मालूम होता है, पर बाद में अर्थ का विचार करने से उसका परिहार हो जाता है। देखिये-जो अपने स्वरूप में स्थित होगा वह सर्वव्यापक कैसे होगा? यह विरोध है; पर उसका परिहार यह है कि पुराण पुरुष आत्म-प्रदेशों की अपेक्षा अपने स्वरूप में ही स्थित हैं, पर उनका ज्ञान सब जगह के पदार्थों को जानता है। इसलिए ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत है। जो सम्पूर्ण व्यापार को जानने वाला है वह परिग्रहरहित कैसे हो सकता है? यह विरोध है। उसका परिहार यह है कि आप सर्वपदार्थों के स्वाभाविक अथवा वैभाविक परिवर्तनों को जानते हुए भी कर्मों के सम्बन्ध से रहित हैं। इसी तरह दीर्घायु से सहित होकर भी बुढ़ापे से रहित हैं, यह विरोध है। उसका परिहार इस तरह है कि महापुरुषों के शरीर में वृद्धावस्था का विकार नहीं होता अथवा शुद्ध आत्मस्वरूप की अपेक्षा वे कभी भी जीर्ण नहीं होते। इस तरह श्लोक में विघ्न बाधाओं से अपनी रक्षा करने के लिए पुराण पुरुष से प्रार्थना की गई है।।1।।

आत्मरूप में संस्थित हैं अरु, त्रिभुवन के हैं पथगामी।
वेत्ता हैं सब व्यापारों के, अपरिग्रही हैं जिन स्वामी।।
दीर्घायु से सहित आप हैं, वृद्ध अवस्था से भी हीन।
श्रेष्ठ पुराण नरोत्तम जग में, जो विनाश से पूर्ण विहीन।।1।।

परैरचिन्त्यं युग-भारमेकः, स्तोतुं वहन्योगि-भिरप्-यशक्यः।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः,किमप्रवेशे विशति प्रदीपः।।२।।

अन्वयार्थ-परैः-दूसरों के द्वारा, **अचिन्त्यम्**-चिंतवन करने के अयोग्य, **युगभारम्**-कर्मयुग के भार को, **एक**-अकेले ही, **वहन्**-धारण किये हुए तथा, **योगिभिःअपि**-मुनियों के द्वारा भी, **स्तोतुम् अशक्यः**-जिनकी स्तुति नहीं की जा सकती है ऐसे, **असौ वृषभः**-हे भगवान् वृषभनाथ, **अद्य**-आज, में **स्तुत्यः**-मेरे द्वारा स्तुति करने के योग्य हैं अर्थात् आज मैं उनकी स्तुति कर रहा हूँ। सो ठीक है, **भानोः**-सूर्य का, **अप्रवेश**-प्रवेश नहीं होने पर, **किम्**-क्या, **प्रदीप**-दीपक, **न विशति**-प्रवेश नहीं करता? अर्थात् करता है।

भावार्थ-भगवन्! यहाँ जब कर्मभूमि का समय प्रारम्भ हुआ था उस समय की सब व्यवस्था आप अकेले ही कर गये थे। इस तरह आपकी विलक्षण शक्ति को देखकर योगी भी कह उठे कि मैं आपकी स्तुति नहीं कर सकता। पर मैं आज आपकी स्तुति कर रहा हूँ, इसका कारण मेरा अभिमान नहीं है, पर मैं सोचता हूँ जिस गुफा में सूर्य का प्रवेश नहीं हो पाता उस गुफा में भी दीपक प्रवेश कर लेता है। यह ठीक है कि दीपक सूर्य की भाँति गुफा के सब पदार्थों को प्रकाशित नहीं कर सकता, उसी तरह मैं भी योगियों की तरह आपकी पूर्ण स्तुति नहीं कर सकूँगा फिर भी, मुझमें जितनी सामर्थ्य है उससे बाज क्यों आऊँ?।।2।।

युग का भार विचिन्तित जिसने, अन्य अकेले ही धारा।
एवं जिनका गुण कीर्तन भी, सम्भव न मुनियों द्वारा।।
अभिनंदन के योग्य मेरे वह, श्री वृषभ दुख के हर्त्ता।
रवि अभाव में हे प्रभुवर! क्या, दीप प्रवेश नहीं करता।।2।।

तत्याज शक्रः शकनाभिमानम्, नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम्।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं, वातायनेनेव निरूपयामि।।३।।

अन्वयार्थ-शक्र-इन्द्र ने, **शकनाभिमानम्**-स्तुति कर सकने की शक्ति का अभिमान, **तत्याज**-छोड़ दिया था। किन्तु **अहम्**-मैं, **स्तवनानुबन्धम्**-स्तुति

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

के उद्योग को, **न त्यजामि**–नहीं छोड़ रहा हूँ। मैं **वातायनेन इव**–झरोखे की तरह, **स्वल्पेन बोधेन**–थोड़े से ज्ञान के द्वारा, **ततः**–झरोखे और ज्ञान से, **अधिकार्थम्**–अधिक अर्थ को, **निरूपयामि**–निरूपित कर रहा हूँ।

भावार्थ–जिस तरह छोटे से झरोखे में झाँक कर उससे कई गुणी वस्तुओं का वर्णन किया जाता है, उसी तरह मैं भी अपने अल्प ज्ञान से जानकर आपके गुणों का वर्णन कर रहा हूँ। मुझे अपनी इस अनोखी सूझ पर हर्ष और विश्वास दोनों हैं। इसलिए मैं इन्द्र की तरह अपनी शक्ति को नहीं छिपाता।।3।।

तव संस्तुति करने का भी जब, त्याग चुका मद है सुरपति।
पर में तव गुण गाने का भी, करे न उद्यम हे जिनपति!।।
वातायन सम सीमित होकर, अल्प ज्ञान से मैं इस क्षण।
करता हूँ उनसे विस्तृत अति, व्यापक अर्थ का मैं निरुपण।।3।।

त्वं विश्व दृश्वा सकलैरदृश्यो, विद्वान शेषं निखिलैरवेद्यः।
वक्तुं कियान्कीदृश-मित्यशक्यः स्तुति स्ततोऽशक्ति कथा तवास्तु।।४।।

अन्वयार्थ–त्वम्–आप, **विश्वदृश्वा अपि**–सबको देखने वाले हैं किन्तु **सकलैः**–सबके द्वारा, **अदृश्यः**–नहीं देखे जाते, **आप अशेषम् विद्वान्**–सबको जानते हैं पर **निखिलैः अवेद्य**–सबके द्वारा नहीं जाने जाते। आप **कियान् कीदृश**–कितने और कैसे हैं, **इति**–यह भी, **वक्तुम् अशक्यः**–नहीं कहा जा सकता, **ततः**–उससे, **तव स्तुतिः**–आपकी स्तुति, **अशक्तिकथा**–मेरी असामर्थ्य की कहानी ही, **अस्तु**–हो।

भावार्थ–आप सबको देखते हैं पर आपको देखने की किसी में शक्ति नहीं है। आप सबको जानते हैं पर आपको जानने की किसी में शक्ति नहीं है। आप कैसे और कितने परिणाम वाले हैं यह भी कहने की किसी में शक्ति नहीं है। इस तरह आपकी स्तुति मानों अपनी अशक्ति की चर्चा करना ही है। इससे पहले के श्लोक में कवि ने कहा था कि आपकी स्तुति से इन्द्र ने अभिमान छोड़ दिया था पर मैं नहीं छोडूँगा कि, जानने की अथवा कहने की शक्ति नहीं है, जिसका तात्पर्य यह होता है कि मुझमें भी उतनी शक्ति नहीं है, तब उन्हें भी अन्त में स्वीकार करना

पड़ता है कि इन्द्र ने जो शक्ति का अभिमान छोड़ा था वह ठीक ही किया था और मेरे द्वारा की गई यह स्तुति भी मेरी अशक्ति की कथा ही हो।।4।।

आप सभी के ज्ञाता दृष्टा, किन्तू सबसे आदर्शित।
वेत्ता भी हो आप सभी के, विदित नहीं हो स्पर्शित।।
कितने हैं? कैसे हैं? प्रभुजी, बता नहीं पाते ज्ञानी।
प्रभु तव संस्तुति से प्रगटित हो, मेरी शक्ती अन्जानी।।4।।

व्यापीडितं बालमिवात्म-दौषै-, रुल्लाघतां लोकमवापिपरस्त्वम्।
हिताहितान्वेषण-मान्द्य-भाजः, सर्वस्य जन्तोरसि बाल-वैद्यः।।५।।

अन्वयार्थ–त्वम्–आपने, **बालम् इव**–बालक की तरह, **आत्मदोषैः**–अपने द्वारा किये गये अपराधों से, **व्यापीडितम्**–अत्यन्त पीड़ित, **लोकम्**–संसारी मनुष्य को, **उल्लाघताम्**–नीरोगता, **अवापिपः**–प्राप्त कराई है। निश्चय से आप **हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः**–भले–बुरे के विचार करने में मूर्खता को प्राप्त हुए, **सर्वस्य जन्तोः**–सब प्राणियों के, **बालवैद्यः**–बालवैद्य हैं।

भावार्थ–जिस तरह बालकों की चिकित्सा करने वाला वैद्य अपनी भूल से पैदा किये हुए वात, पित्त कफ आदि दोषों से पीड़ित बालकों को अच्छे बुरे का ज्ञान कराकर उन्हें नीरोग बना देता है और अपने 'बाल वैद्य' इस नाम को सार्थक बना लेता है उसी तरह आप भी हित और अहित के निर्णय करने में असमर्थ बाल अर्थात् अज्ञानी जीवों को हित–अहित का बोध कराकर संसार के दुःखों से छुड़ाकर स्वस्थ बना देते हैं। इस तरह आपका भी 'बाल वैद्य' अर्थात् 'अज्ञानियों के वैद्य' नाम सार्थक सिद्ध होता है।।5।।

जो शिशुओं सम व्याकुल जग में, अपने दोषों के कारण।
उन दोषों का पूर्ण रूप से, किया आपने है वारण।।
मूढ़ बुद्धि हित और अहित का, कर न पाते हैं निर्णय।
बाल वैद्य बनकर निश्चय से, करते भव रोगों का क्षय।।5।।

दाता न हर्त्ता दिवसं विवस्वा-नद्यश्व इत्यच्युत दर्शिताशः।
सव्याजमेवं गमयत्यशक्तः,क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय।।६।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-**अच्युत**-हे उदारता आदि गुणों से रहित जिनेन्द्र देव!, **विवस्वान्**-सूर्य, **न दाता 'न' हर्ता**-न देता है, न अपरहरण करता है सिर्फ, **अद्यश्वः**-आजकल, **इति**-इस तरह, **दर्शिताशः**-आशा (दूसरे पक्ष में दिशा को) दिखाता हुआ, **अशक्तः सन्**-असमर्थ हो, **एवम्**-ऐसे ही-बिना लिये-दिये ही, **सव्याजम्**-कपट सहित, **दिवसम्**-दिन को, **गमयति**-बिता देता है, किन्तु आप, **नताय**-नम्र मनुष्य के लिये, **क्षणेन**-क्षणभर में, **अभिमतम्**-इच्छित वस्तु दत्से-दे देते हैं।

भावार्थ-लोग सूर्योदय होते ही हाथ जोड़ शिर झुकाकर 'नमोनारायण' कहते हुए सूर्य को नमस्कार करते हैं और उससे इच्छित वरदान माँगते हैं, पर वह 'आज दूँगा, कल दूँगा' इस तरह आशा दिखाता हुआ बिता देता है, किसी को कुछ देता-लेता नहीं है-असमर्थ जो ठहरा। पर आप नम्र मनुष्य को उसकी इच्छित वस्तु क्षणभर में दे देते हैं। इस तरह आप सूर्य से बहुत बढ़कर हैं।

कुछ भी हरण नहीं करता है, न ही कुछ देता दिनकर।
आज और कल की आशाएँ, सब जीवों को दिखलाकर॥
हो असमर्थ दिवस खो देता, प्रतिदिन ही जगती को छल।
शीघ्र आप जन जन को बन्धू, दे देते मन वांछित फल॥6॥

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि,त्वयि स्वभावाद् विमुखश्च दुःखम्।
सदावदात-द्युतिरेक रूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि।।७।।

अन्वयार्थ-**त्वयि सुमुखः**-आपके अनुकूल चलनेवाला, **भक्त्या**-भक्ति से, **सुखानि**-सुखों को, **उपैति**-प्राप्त होता है, **च**-और, **विमुख**-प्रतिकूल चलनेवाला, **स्वभावात्**-स्वभाव से ही, **दुःखम् 'उपैति'**-दुःख पाता है। किन्तु **त्वम्**-आप, **तयोः**-उन दोनों के आगे, **आदर्श इव**-दर्पण की तरह, **सदा**-हमेशा, **अवदातद्युतिः**-उज्ज्वल कान्तियुक्त तथा **एकरूपः**-एक सदृश, **अवभासि**-शोभायमान रहते हैं।

भावार्थ-जिस प्रकार दर्पण के सामने मुँह करनेवाला पुरुष दर्पण में अपना चेहरा देखकर सुखी होता है और पीठ देकर खड़ा हुआ पुरुष

अपना चेहरा न देख सकने से दुःखी होता है; उनके सुख-दुःख में दर्पण कारण नहीं है। दर्पण तो उन दोनों के लिए हमेशा एक रूप ही है,पर वे दो मनुष्य अपनी अनुकूल और प्रतिकूल क्रिया से अपने आप सुखी और दुःखी होते हैं, उसी प्रकार जो मनुष्य आपके विषय में सुमुख होता है वह शुभ कर्मों का बंध होने अथवा अशुभ कर्मों की निर्जरा होने से स्वयं सुखी होता है और जो आपके विषय में विमुख रहता है वह अशुभ कर्मों का बन्ध होने से दुख पाता है। उनके सुख-दुख में आप कारण नहीं हैं। आप तो हमेशा दोनों के लिए रागद्वेष रहित और चैतन्य-चमत्कारमय एकरूपी हैं।

जो अनुकूल आपके चलते, वह प्राणी सुख से रहते।
रहते जो प्रतिकूल आपके, जग के अगणित दुख सहते॥
आप सदा दोनों के आगे, दर्पण सम रहते भगवान।
अपनी आभा में निमग्न हो, होते नहीं कभी भी क्लान॥7॥

अगाधताब्धेः स यतः पयोधिर्, मेरोश्च तुंगा प्रकृति स यत्र।
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव, व्याप-त्वदीया भुवनान्तराणि।।८।।

अन्वयार्थ-**अब्धेः**-समुद्र की, **अगाधता**-गहराई, **तत्र अस्ति**-वहाँ है, **यतः सः पयोधिः**-जहाँ वह समुद्र है! **मेरोः**-सुमेरुपर्वत की, **तुंग प्रकृति**-उन्नत प्रकृति-ऊँचाई, **तत्र**-वहाँ है, **यत्र सः**-जहाँ वह सुमेरु पर्वत है, **च**-और, **द्यावापृथिव्योः**-आकाश-पृथिवी की, **पृथुता**-विशालता भी, **तदैव**-उसी प्रकार है अर्थात जहाँ आकाश और-पृथिवी हैं वहीं उनकी विशालता है। परन्तु **त्वदीया 'अगाधता, तुंगा प्रकृतिः पृथुता च'**-आपकी गहराई, उन्नत प्रकृति और हृदय की विशालता ने, **भुवनान्तराणि**-तीनों लोकों ने मध्यभाग को, **व्याप**-व्याप्त कर लिया है।

भावार्थ-अगाधता शब्द के दो अर्थ हैं-समुद्र की गहराई और मनुष्य-हृदय में। 'तुंगा प्रकृति' शब्द भी द्वयर्थक है। पहाड़ की ऊँचाई और मन में दीनता का न होना। इसी तरह पृथुता, विशालता के भी दो अर्थ हैं। जमीन का फैलाव और मन में सबको अपनाने के भाव, समुद्र की गम्भीरता समुद्र के ही पास है, मेरुपर्वत की ऊँचाई मेरु के ही

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

पास है और आकाश-पृथिवी का विस्तार भी उन्हीं के पास है, परन्तु आपकी अगाधता-धैर्यवृत्ति, ऊँचाई-अदैन्यवृत्ति और पृथुता-उदारवृत्ति सारे संसार में फैली हुई है। इसलिए जो कहा करते हैं कि आपकी गम्भीरता समुद्र के समान है, उन्नत प्रकृति की तरह है और विशालता आकाश-पृथिवी के सदृश है, वे भूल करते हैं।

सागर का गहरापन भाई, सागर तक मर्यादित है।
अरु सुमेरु की ऊँचाई भी, मात्र उसी तक सीमित है॥
वसुधा और गगन की सीमा, उन तक सीमित रही महान्।
तव गुण से कण-कण पूरित हैं, तीन लोक में हे भगवान!॥8॥

तवानवस्था परमार्थ-तत्त्वं, त्वया न गीतः पुनरागमश्च।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषीर्-, विरुद्ध वृत्तोपि समञ्जसरत्त्वम्।।९।।

अन्वयार्थ-अनवस्था-भ्रमणशीलता, परिवर्तनशीलता, **तव**-आपका, **परमार्थतत्त्वम्**-वास्तविक सिद्धान्त है, **च**-और, **त्वया**-आपके द्वारा, **पुनरागमः न गीतः**-मोक्ष से वापिस आने का उपेदश दिया नहीं गया है तथा **त्वम्**-आप, **दृष्टम्**-प्रत्यक्ष इस लोक सम्बन्धी सुख, **विहाय**-छोड़कर **अदृष्टम्**-परलोकसम्बन्धी सुख को, **ऐषीः**-चाहते हैं, इस तरह **त्वम्**-आप, **विरुद्धवृत्तः अपि**-विपरीत प्रवृत्तियुक्त होने पर भी, **समंजसः**-उचितता से युक्त हैं।

भावार्थ-जब आपका सिद्धान्त है कि सब पदार्थ परिवर्तनशील हैं-सभी में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होता है तब सिद्धों में भी परिवर्तन अवश्य होगा। किन्तु आप उनके पुनरागमन को संसार में वापिस आने को स्वीकार नहीं करते, यह विरुद्ध बात है। जो मनुष्य प्रत्यक्ष-सामने रखी हुई वस्तु को छोड़कर अप्रत्यक्ष परभव में प्राप्त होने वाली वस्तु के पीछे पड़ता है, लोक में वह अच्छा नहीं कहलाता, परन्तु आप वर्तमान के सुखों को छोड़कर भविष्यत् के सुख प्राप्त करने की इच्छा से उद्योग करते हैं, यह भी विरुद्ध बात है। पर जब इन दोनों बातों का तत्त्वदृष्टि से विचार करते हैं तब वे दोनों ठीक मालूम होने लगती है, जिससे आपकी

यह प्रवृत्ति उचित ही ठहरती है। यद्यपि पर्यायदृष्टि से सब पदार्थों में परिवर्तन होता है-सिद्धों में भी होता है तथापि द्रव्य-दृष्टि से सब पदार्थों में अपरिवर्तनरूप भी हैं। संसारमें आने का कारण कर्मबन्ध सिद्ध अवस्था में जड़मूल से नष्ट हो जाता है, इसलिए सिद्ध जीव फिर कभी लौटकर संसार में वापिस नहीं आते, यह आपका सिद्धान्त उचित ही है। इसी तरह आपने वर्तमान के क्षणभंगुर-इन्द्रियजनित सुखों से मोह छोड़कर सच्चे आत्मसुख को प्राप्त करने का उपदेश दिया है। वह सच्चा सुख तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि यह प्राणी इन्द्रियजनित सुख में लगा रहता है। इसलिए प्रत्यक्ष के अल्प सुख को छोड़कर वीतरागता प्राप्त करने से यदि परभव में सच्चा सुख प्राप्त होता हो तो उसे कौन प्राप्त न करना चाहेगा? इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है।।9।।

है सिद्धांत आपका प्रभुवर, अनवस्थित है और यथार्थ।
पुनरागमन व्यवस्था का न, घोषित किया आपने अर्थ॥
इह लौकिक सुख त्याग सौख्य शुभ, पर लौकिक के अभिलाषी।
शरणागत को मिले आपके, रहे और विरोधाभाषी॥9॥

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्, नुद्धूलितात्मा यदि नाम शम्भुः।
अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः किं गृह्यते येन भवानजागः।।१०।।

अन्वयार्थ-स्मर-काम, **भवता एव**-आपके द्वारा, **सुदग्धः**-अच्छी तरह भस्म किया गया है, **यदि नाम शम्भुः**-यदि आप कहें कि महादेव ने भी तो भस्म किया था, तो वह कहना ठीक नहीं, क्योंकि बाद में वह **तस्मिन्**-उस काम के विषय में, **उद्धूलितात्मा**-कलंकित हो गया था। और **विष्णु अपि**-विष्णु ने भी, **वृन्दोपहतः- सन्**-वृन्दा-लक्ष्मी नाम स्त्री से प्रेरित हो, **अशेत**-शयन किया था, **येन**-यतश्च, **भवान् अजाग**-आप जागृत रहे। अर्थात् काम निद्रा में अचेत नहीं हुए, इसलिए **किं गृह्यते**-कामदेव के द्वारा आपकी कौन-सी वस्तु ग्रहण की जाती है, अर्थात् कोई भी नहीं।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-हे भगवन्! जगद्विजयी काम को आपने ही भस्म किया था। लोग जो कहा करते हैं कि महादेव ने भस्म किया था यह ठीक नहीं, क्योंकि बाद में महादेव ने पार्वती की तपस्या से प्रसन्न हो उसके साथ विवाह कर लिया था और काम में इतने आसक्त हुए कि अपना आधा शरीर स्त्रीरूप कर लिया था। इसी तरह विष्णु ने भी वृन्दा-लक्ष्मी के वशीभूत हो तरह-तरह की कामचेष्टाएँ की थीं, पर आप हमेशा ही आत्मव्रत में लीन रहे तथा काम को इस तरह पछाड़ा कि वह पनप नहीं सका।

हुआ वस्तुतः आपके द्वारा, मर्यादित शुभ कार्य अशेष।
हुआ मनोज कलंकित शम्भू, कैसे माने गये विशेष॥
लक्ष्मी से प्रेरित होकर के, विष्णु भी सोये स्वमेय।
जागृत थे अविराम आप क्यों, ग्राह्य हुए फिर कैसे एव॥10॥

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा, तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वम्।
स्वतोऽम्बुराशे-र्महिमा न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य।।११।।

अन्वयार्थ-वा-अथवा, **स**-वह ब्रह्मादि देवों का समूह, **नीरजाः**-पाप सति, **स्यात्**-हो और, **अपरः**-दूसरा देव, **अघवान् 'स्यात्'**-पाप सहित हो इस तरह **तद्दोषकीर्त्या एव**-उनके दोषों के वर्णन करने मात्र से ही, **ते**-आपकी, **गुणित्वम् न**-गुण सहितता नहीं है। **देव**-हे देव!, **अम्बुराशेः**-समुद्र की, **महिमा**-महिमा, **स्वतः 'स्यात्'**-स्वभाव से ही होती है, **जलाशयस्य स्तोकापवादेन न**-'यह छोटा है' इस तरह तालाब वगैरह की निन्दा से नहीं होती।

भावार्थ-हे भगवन! दूसरे के दोष बतला कर हम आपको गुणीपना सिद्ध नहीं करना चाहते, क्योंकि आप स्वभाव से ही गुणी हैं। सरोवर को छोटा कह देने मात्र से समुद्र की विशालता सिद्ध नहीं होती, किन्तु विशालता उसका स्वभाव है इसलिए वह विशाल-बड़ा कहलाता है।

ब्रह्मादिक या अन्य देव कोइ, सारे जग के सविकारी।
उनके दोष कथन से गरिमा, रह पाती न अविकारी॥

जिस कारण सागर की महिमा, हो स्वभावतः हे जिनवर!
सिद्ध नहीं हो पाए कभी भी, सरवर को छोटा कहकर॥11॥

कर्म स्थितिं जन्तुरनेक-भूमिं, नयत्यमुं सा च परस्परस्य।
त्वं नेतृ-भावं हि तयोर्भवाब्धौ,जिनेन्द्र नौ-नाविकयो-रिवाख्यः।।१२।।

अन्वयार्थ-जन्तुः-जीव, **कर्मस्थितिम्**-कर्मों की स्थिति को, **अनेकभूमिम्**-अनेक जगह, **नयति**-ले जाता है, **च**-और, **सा**-वह कर्मों की स्थिति, **अमुम्**-अनेक जगह को, **अनेक-भूमिम्**-अनेक जगह ले जाती है। इस तरह **जिनेन्द्र**-हे जिनेन्द्रदेव! **त्वम्**-आपने, **भवाब्धौ**-संसाररूप समुद्र में, **नैनाविकयोः इव**-नाव और खेवटिया की तरह, **तयोः**-उन दोनों में, **हि**-निश्चय से, **परस्परस्य**-एक दूसरे को, **नेतृभावम्**-नेतृत्व, **आख्यः**-कहा है।

भावार्थ-सिद्धान्त-ग्रन्थों में कहा गया है कि जीवन अपने भले-बुरे भावों में जिन कर्मों को बाँधता है, वे कर्म तब तक उसका साथ नहीं छोड़ते जब तक फल देकर खिर नहीं जाते। इस बीच में जीव जन्म-मरण कर अनेक स्थानों में पैदा हो जाता है। इसी अपेक्षा से कहा गया है कि जीव कर्मों को अनेक जगह ले जाता है और जीव का जन्म मरण कर जहाँ-तहाँ पैदा होना आयु आदि कर्मों की सहायता के बिना नहीं होता। इसलिए कहा गया है कि कर्म ही जीव को चारों गतियों में जहाँ-तहाँ ले जाते हैं। हे भगवन्! आपने इन दोनों में परस्पर का नेतृत्व उस तरह कहा है जिस तरह कि समुद्र में पड़े हुए जहाज और खेवटिया में हुआ करता है।12।।

कर्म पिण्ड को भव-भव में यह, जीव साथ ले जाता है।
वही कर्म का पिण्ड जीव को, हर गति साथ घुमाता है॥
हे जिनेन्द्र! नौका नाविक सम, भव जल में यह दिखलाया।
सत्य नियम नेतृत्व परस्पर, कहकर जग को बतलाया॥12॥

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्, धर्माय पापानि समाचरन्ति।
तैलाय बालाः सिकता-समूहं, निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः।।१३।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-जिस प्रकार **बालाः**-बालक, **तैलाय**-तेल के लिये, **सिकतासमूह**-बालू के समूह को, **निपीडयन्ति**-पेलते हैं, **स्फुटम्**-ठीक उसी प्रकार, **अत्वदीयाः**-आपके प्रतिकूल चलने वाले पुरुष, **सुखाय**-सुख के लिए, **दुःखानि**-दुःखों को, **गुणाय**-गुण के लिए, **दोषान्**-दोषों को और **धर्माय**-धर्म के लिए, **पापानि**-पापों को, **समाचरन्ति**-समाचरित करते हैं।

भावार्थ-हे भगवन्! जो आपके शासन में नहीं चलते हैं, उन्हें धार्मिक तत्त्वों का सच्चा ज्ञान नहीं हो पाता इसलिए वे अज्ञानियों की तरह उल्टे आचरण करते हैं। वे किसी स्त्री, राज्य या स्वर्ग आदि को प्राप्त कर सुखी होने की इच्छा से तरह-तरह के कायक्लेश कर दुःख उठाते हैं, पर सकाम तपस्या का कोई फल नहीं होता, इसलिए वे अन्त में भी दुःखी ही रहते हैं। 'हममें शील, शान्ति आदि गुणों का विकास हो' ऐसी इच्छा रखते हुए भी रति-लम्पटी, क्रोधी आदि देवों की उपासना करते हैं, पर उन देवों की शीलघातक और क्रोधयुक्त क्रियाओं का उन पर बुरा असर पड़ता है, जिससे उनमें गुणों का विकास न होकर दोषों का ही विकास हो जाता है। इसी प्रकार यज्ञादि धर्म करने की इच्छा से पशु-हिंसा आदि पाप करते हैं जिससे उल्टा पापबन्ध ही होता है। हे प्रभो! यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उनकी क्रियायें उन बालकों जैसी हैं जो कि तैल पाने की इच्छा से बालू के पुंज को कोल्हू में पेलते हैं।

जैसे तेल प्राप्त करने को, शिशु पेला करते रज कण।
विमुख आपके शासन से त्यों, देव अनेकों हैं नर गण॥
सुख की इच्छा से दुख पाते, गुण की इच्छा करके दोष।
धर्म हेतु पापों का संचय, करके भरते उनका कोष॥13॥

विषापहारं मणिमौषधानि, मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति, पर्याय-नामानि तवैव तानि।।१४।।

अन्वयार्थ-अहो-आश्चर्य है कि लोग, **विषापहार**-विष को दूर करने वाले, **मणिम्**-मणि को, **औषधानि**-औषधियों को, **मन्त्रम्**-मन्त्र को,

च-और, रसायन को, **समुद्दिश्य**-उद्देश्य कर, **भ्राम्यन्ति**-यहाँ-वहाँ घूमते हैं, किन्तु, **त्वम्**-आप ही मणि हैं, औषधि हैं, मन्त्र हैं, और रसायन हैं, **इति**-ऐसा, **स्मरमन्ति**-ख्याल नहीं करते। क्योंकि **तानि**-वे मणि आदि, **तव एव**-आपके ही, **पर्यायनामानि**-पर्यायवाची शब्द हैं।

भावार्थ-हे भगवन्! जो मनुष्य शुद्ध हृदय से आपका स्मरण करते हैं, उनके विष वगैरह का विकार अपने आप दूर हो जाता हैं कहा जाता है कि एक समय स्तोत्र के रचयिता धनंजय कवि के लड़के को साँप ने डस लिया, तब वे अन्य उपचार न कर उसे सीधे जिनमन्दिर में ले गये और वहाँ विषापहार स्तोत्र रचकर भगवान् के सामने पढ़ने लगे। उनकी सच्ची भक्ति के प्रभाव से पुत्र का विष दूर होने लगा और वे ज्यों ही 'विषापहारं मणिमौषधानि' इस श्लोक को पढ़कर पूरा करते हैं, त्यों ही पुत्र उठकर बैठ जाता है-उसका विषविकार बिल्कुल दूर हो जाता है। इसलिए इसका नाम 'विषापहार' स्तोत्र प्रचलित किया।।14।।

मणी मंत्र औषधी रसायन, खोज रहे हैं विषहारी।
भोले प्राणी भटक रहे हैं, खोज रहे विस्मयकारी॥
मणी मंत्र औषधी आप कुछ, नहीं ध्यान में भी लाते।
क्योंकि आपके ही यह सारे, पर्यय नाम कहे जाते॥14॥

चित्ते न किञ्चित्कृतवानसि त्वं, देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम्।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं, सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः।।१५।।

अन्वयार्थ-त्वम्-आप, **चित्ते**-अपने हृदय में, **किंचित्**-कुछ भी, **कृतवान् असि**-नहीं करते हैं-रखते हैं, किन्तु **येन**-जिसके द्वारा, **देवः-आप, चेतसि**-हृदय में, **कृतः**-धारण किये हैं, **तेन**-उसके द्वारा, **सर्वम्**-समस्त, **जगत्**-संसार, **हस्ते कृतम्**-हाथों में कर लिया गया है-अर्थात् उसने सब कुछ पा लिया है यह **विचित्रम्**-आश्चर्य की बात है। और आप **चित्तबाह्यः अपि**-चेतन से रहित हुए भी, **सुखेन जीवति**-सुख से जीवित हैं यह आश्चर्य है।

भावार्थ-परिहार यह है-यद्यपि आपके पास किसी को देने के लिए

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

कुछ भी नहीं है, और रागभाव न होने से आप मन में भी ऐसा विचार नहीं करते हैं कि मैं अमुक मनुष्य के लिए अमुक वस्तु दूँ। फिर भी उक्त जीव अपनी शुभ भावनाओं से शुभ कर्मों का बन्ध कर उनके उदयकाल में सब कुछ पा लेते हैं। अथवा जो यथार्थ में आपको अपने हृदय में धारण कर लेता है, वह आपके समान ही निःस्पृह हो जाता है-उसकी सब इच्छाएँ शान्त हो जाती हैं। वह सोचता है कि मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मैं आज आपको चित्त में धारण कर सका, मानो तीनों लोकों की सम्पत्तियाँ हमारे साथ में आ गईं।

स्वयं आप अपने मन में हे, देव! नहीं कुछ भी करते।
प्राणी भाव सहित इस जग के, मोद सहित उर में धरते॥
मानो सर्व जगत् को उसने, किया हाथ में भी संचित।
है आश्चर्य! आप चेतन से, रहित लोक में हो जीवित॥15॥

त्रिकाल तत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी,स्वामीति संख्या-नियतेरमीषाम्।
बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यंस्, तेऽन्येऽपि चेद्व्याप्स्यदमून पीदम्।।१६।।

अन्वयार्थ-त्वम-आप, **त्रिकालतत्त्वम्**-भूत, भविष्यत् वर्तमान इन तीनों कालों के पदार्थों को, **अवैः**-जानते हैं, तथा **त्रिलोकी स्वामी**-ऊर्ध्व, मध्य, पाताल, तीनों लोकों के स्वामी हैं। **इति संख्या**-इस प्रकार की संख्या, **अमीषां नियतेः**-उन पदार्थों के निश्चित संख्यावाले होने से, **युज्यते**-ठीक हो सकती है, परन्तु **बोधाधिपत्यं प्रति न**-ज्ञान के साम्राज्य के प्रति पूर्वोक्त प्रकार की संख्या ठीक नहीं हो सकती। क्योंकि **इदम्**-ज्ञान, **चेत्**-आदि, **ते अन्ये अपि अभविष्यम्**-वे तथा और भी पदार्थ होते, **तर्हि**-तो, **अमून्अपि**-उन्हें भी, **व्याप्स्यत्**-व्याप्त कर लेता, जान लेता।

भावार्थ-हे प्रभो! आप तीन काल तथा तीन लोक की बात को जानते हैं, इसलिए आप का ज्ञान भी उतना ही है, ऐसा नहीं है। किन्तु आपके ज्ञान का साम्राज्य सब ओर अनन्त है। जितने पदार्थ हैं, उनको तो ज्ञान जानता ही है। यदि इनके सिवाय और भी होते तो, ज्ञान उन्हें अवश्य ही जानता।।16।।

त्रैकालिक तत्त्वों के ज्ञाता, अरु त्रिलोक के हो स्वामी।
उनकी निश्चितता से संख्या, बन जाती प्रभु अनुगामी॥
नहीं ज्ञान के शासन में पर, यह संख्या समुचित मानी।
होती कोई और यदी वह, जान रहे केवलज्ञानी॥16॥

नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं, नागम्यरूपस्य तवोपकारि।
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानो-, रुद्बिभ्रतच्छत्र-मिवादरेण।।१७।।

अन्वयार्थ-नाकस्या पत्युः-इन्द्र की, **रम्यम्**-मनोहर, **परिकर्म**-सेवा, **अगम्यरूपस्य**-अज्ञेय है स्वरूप जिनका ऐसा, **तव**-आपका, **उपकारि न**-उपकार करनेवाली नहीं हैं, किन्तु जिसका स्वरूप अप्राप्य है, **ऐसे भानोः**-सूर्य के लिए, **आदरेण**-आदरपूर्वक, **छत्रम् उद्बिभ्रतः इव**-छत्र धारण करने वाले की तरह, **तस्य एव**-उस इन्द्र के ही, **स्वसुखस्य**-आत्म-सुख का, **हेतुः**-कारण है।

भावार्थ-जिस प्रकार कोई सूर्य के लिए छत्ता लगावे, तो उससे सूर्य का कुछ भी उपकार नहीं होता, क्योंकि वह सूर्य छत्ता लगानेवाले से बहुत ऊपर है, परन्तु छत्ता लगानेवाले को अवश्य ही छाया का सुख होता है। उसी प्रकार इन्द्र जो आपकी सेवा करता था? क्योंकि वह वास्तव में आपके स्वरूप को समझ ही नहीं सका था। उल्टा शुभास्रव होने से उसी का भला होता था।।17।।

शिवपुर के स्वामी की सेना, सर्व जगत् में मनहारी।
हे आगम! के धारी अनुपम, नहीं आपकी उपकारी॥
जैनागम के दिनकर को शुभ, छत्र लगाने वाली है।
आत्मिक सुख देने वाली जो, जग में विशद निराली है॥17॥

क्वोपेक्ष करस्त्वं क्व सुखोपदेशः, स चेत्किमिच्छा-प्रतिकूल-वादः।
क्वासौ क्व वा सर्व जगत्प्रियत्वं, तन्नो यथा तथ्यमवेविजं ते।।१८।।

अन्वयार्थ-उपेक्षकः त्वम् क्व-रागद्वेष रहित आप कहाँ? और **सुखोपदेशः क्व**-सुख का उपदेश देना कहाँ? **चेत्**-यदि, **सः**-सुख का उपेदश आप देते हैं, **तर्हि**-इच्छा के विरुद्ध बोलना ही कहाँ है? अर्थात् आप के

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

इच्छा नहीं है, ऐसा कथन क्यों किया जाता है? **असौ क्व**-इच्छा के प्रतिकूल बोलना कहाँ? **या**-और, **सर्वजगत्प्रियत्वम् क्व**-सब जीवों को प्रिय होना कहाँ? इस तरह जिस कारण से आपका प्रत्येक बात में विरोध है, **तत्**-उस कारण से मैं, **ते यथातथ्यम् नो अवेविजम्**-आपकी वास्तविकता-असली रूप का विवेचन नहीं कर सकता।

भावार्थ-हे भगवन! जब आप रागद्वेष से रहित हैं, तब किसी को सुख का उपदेश कैसे देते हैं? यदि सुख का उपदेश देते हैं तो इच्छा के बिना कैसे उपदेश देते हैं? यदि इच्छा के बिना उपदेश देते हैं, तो जगत् के सब जीवों को प्यारे कैसे हैं? इस तरह आपकी सब बातें परस्पर में विरुद्ध हैं। दरअसल आपकी असलियत को कोई नहीं जान सकता।।18।।

कहाँ आप निर्मोही जिनवर, कहाँ सुखद उपदेश महान्।
इच्छा के विपरीत निरूपण, कहाँ आपका हो भगवान!।।
कहाँ लोक प्रियता होती है, कहाँ लोक रंजकता एव।
यों विरोध है सब प्रकार से, होय नहीं सद्रूप सदैव।।18।।

तुंगात्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च, प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रे-र्नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः।।१६।।

अन्वयार्थ-तुंगात् अकिंचनात् च-उदार चित्तवाले दरिद्र मनुष्य से भी, **यत्फलम्**-जो फल, **प्राप्यम् 'अस्त'**-प्राप्त हो सकता है, **तत्**-वह, **समृद्धात् धनेश्वरदेः न**-सम्पत्तिवाले धनाढ्यों से नहीं प्राप्त हो सकता है। ठीक ही तो है, **निरम्भसः अपि उच्चतमात् अद्रेः इव**-पानी से शून्य होने पर भी अत्यन्त ऊँचे पहाड़ के समान, **पयोधेः**-समुद्र से, **एका अपि धुनी**-एक भी नदी, **न निर्याति**-नहीं निकलती है।

भावार्थ-पहाड़ के आस-पास पानी की एक बूँद भी नहीं है। परन्तु उसकी प्रकृति अत्यन्त उन्नत है, इसलिए उससे कई नदियाँ निकलती हैं, परन्तु समुद्र से जो कि पानी से लबालब भरा रहता है, एक भी नदी नहीं निकलती। इसका कारण है समुद्र में ऊँचाई का अभाव। भगवन्! मैं जानता हूँ कि आपके पास कुछ भी नहीं है। परन्तु आपका हृदय

पर्वत की तरह उन्नत है-दीन नहीं है, इसलिए आपसे हमें जो चीज मिल सकती है, वह अन्य धनाढ्यों से मिल नहीं सकती, क्योंकि समुद्र के समान वे भी ऊँचे नहीं हैं अर्थात् कृपण हैं।।19।।

दानी निष्किन्चन से जो फल, पल में ही मिल जाता है।
धनशाली लोभी जन से वह, नहीं प्राप्त हो पाता है।
अद्रि शिखर से जल विहीन ज्यों, अगणित सरिताएँ बहतीं।
पर हे नाथ! सभी सरिताएँ, सिन्धु से दूर सदा रहतीं।।19।।

त्रैलोक्य-सेवा नियमाय दण्डं, दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य।
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं, तत्कर्म योगाद्यदि वा तवास्तु।।२०।।

अन्वयार्थ-यत्-जिस कारण से, **इन्द्र**-इन्द्र ने, **विनयेन**-विनयपूर्वक, **त्रैलोक्यसेवानियमाय**-तीन लोक के जीवों की सेवा के नियम के लिए अर्थात मैं त्रिलोक के जीवों की सेवा करूँगा और उन्हें धर्म के मार्ग पर लगाऊँगा, इस उद्देश्य से, **दण्डम्**-दण्ड, **दध्रे**-धारण किया था। **तन्**-उस कारण से, **प्रातिहार्यम्**-प्रतीहारपना, **तस्या स्यात्**-इन्द्र के ही हो, **भवतः कुतस्त्यम!**-आपके कहाँ से आया? **यदि वा**-अथवा, **तत्कर्मयोगात्**- तीर्थंकरनामकर्म का संयोग होने से या इन्द्र के उस कार्य में प्रेरक होने से, **तव अस्तु**-आपके भी प्रातिहार्य-प्रतीहारपना हो।

भावार्थ-जब भगवान ऋषभनाथ भोगभूमि के बाद कर्मभूमि की व्यवस्था करने के लिए तैयार हुए तब इन्द्र ने आकर भगवान् की इच्छानुसार सब व्यवस्था करने के लिए दण्ड धारण किया था। अर्थात् प्रतीहार पद स्वीकार किया था। जो किसी काम की व्यवस्था करने के लिए दण्ड धारण किया करता है, उसे प्रतीहार कहते हैं। जैसे कि आजकल लाठी धारण किये हुए वालिण्टयर- स्वयंसेवक। प्रतीहार के कार्य अथवा भाव को संस्कृत में प्रातिहार्य कहते हैं। हे प्रभो! जब इन्द्र ने सब व्यवस्था की थी, तब सच्चा प्रातिहार्य-प्रतीहारपना इन्द्र के ही हो सकता है, आपके कैसे हो सकता है? क्योंकि आपने प्रतीहार का काम थोड़े ही किया था! फिर भी यदि आपको प्रातिहार्य होता ही है, ऐसा कहना

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

है तो उपचार से कहा जा सकता है। क्योंकि आप इन्द्र के उस काम में प्रेरक थे। अथवा श्लोक का ऐसा भाव हो सकता है-'तीन लोक के जीव भगवान् की सेवा करो' इस नियम को प्रचलित करने के लिए इन्द्र ने हाथ में दण्ड लिया था-इसलिए प्रातिहार्यपना इन्द्र के ही बन सकता है, आपके नहीं। अथवा आपके भी हो सकता है, क्योंकि आपसे ही इन्द्र की उस क्रिया के कर्मकारक का सम्बन्ध होता था। यहाँ एक और भी गुप्त अर्थ है, वह इस प्रकार है-लोक में प्रातिहार्य पद का अर्थ आभूषण प्राप्ति है। भगवान् के भी अशोक वृक्ष आदि आठ प्रातिहार्य-आभूषण होते हैं। यहाँ कवि प्रातिहार्य पद के श्लोक से पहले यह बतलाना चाहते हैं कि संसार के अन्य देवों की तरह आपके शरीर पर प्रातिहार्य नहीं हैं। इन्द्र के प्रातिहार्य-प्रतिहारपना हो, पर आपके शरीर पर प्रातिहार्य नहीं हैं। इन्द्र के प्रातिहार्य-प्रतिहारपना हो, पर आपके प्रातिहार्य-आभूषण कहाँ से आये? फिर उपचार पक्ष का आश्रय लेकर कहते हैं कि आपके भी प्रातिहार्य हो सकते हैं। उसका कारण है 'तत्कर्मयोगात्' अर्थात् आभूषणों के कार्य सौन्दर्य वृद्धि के साथ सम्बन्ध होना है।।20।।

तीनों लोकों की सेवा के, अर्थ नियम के जो कारण।
अधिक विनय से सुरपति द्वारा, दण्ड किया था जो धारण॥
प्रातिहार्य उसको यों होते, नहीं आपको संभव नाथ!।
कर्म योग से वही आपके, पद में झुका रहे हैं माथ॥20॥

श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः, श्रीमान्न कश्चित् कृपणं त्वदन्यः।
यथा प्रकाश-स्थितमन्धकार-, स्थायीक्षतेऽसौ न तथा तमः स्थम्।।२१।।

अन्वयार्थ-निःस्वः-निर्धन पुरुष, **श्रिया परम्**-लक्ष्मी के श्रेष्ठ अर्थात् सम्पन्न मनुष्य को, **साधु**-अच्छी तरह आदरभाव से, **पश्यति**-देखता है, किन्तु, **त्वदन्य**-आपसे भिन्न, **किंचित्**-कोई, श्रीमान, सम्पत्तिशाली पुरुष, **कृपणम्**-निर्धन को, **साधु न पश्यति**-अच्छे भावों से नहीं देखता। ठीक है **अन्धकारस्थायी**-अन्धकार में ठहरा हुआ मनुष्य, **प्रकाशस्थितम्**-उजाले में ठहरे हुए पुरुष को, **यथा**-जिस प्रकार, **ईक्षते**-देख लेता है, **तथा**-उसी प्रकार, **असौ**-उजाले में स्थित पुरुष, **तमःस्थम्**-अँधेरे में स्थित पुरुष को, **न ईक्षते**-नहीं देख पाता।

भावार्थ-हे प्रभो! संसार के श्रीमान् निर्धन पुरुषों को बुरी दृष्टि-(निगाह) से देखते हैं, पर आप श्रीमान् होते हुए भी ज्ञानादि सम्पत्ति से रहित मनुष्यों को बुरी निगाह से नहीं देखते। उन्हें भी अपनाकर हित का उपदेश देकर सुखी करते हैं। इस तरह आप संसार के अन्य श्रीमानों से भिन्न ही श्रीमान् हैं। दोनों की श्रीलक्ष्मी में भेद जो ठहरा। उनके पास रुपया, चाँदी, सोना वगैरह जड़ लक्ष्मी है, पर आपके पास रुपया, चाँदी, सोना वगैरह जड़ लक्ष्मी नहीं है, पर आपके पास अनंतज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी है।।21।।

निर्धन जन लक्ष्मी शाली को, सदा देखते हैं सादर।
शिवा आपके निर्धन को वह, धनी नहीं देते आदर॥
तिमिरावस्थित प्राणी को ही, ज्यों प्रकाश दिखलाता है।
त्यों प्रकाश स्थित प्राणी को, नहीं देखने पाता है॥21॥

स्व वृद्धि निःश्वास-निमेषभाजि,प्रत्यक्ष-मात्मानुभवेऽपि मूढः।
किं चाखिल-ज्ञेय-विवर्ति-बोध-, स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः।।२२।।

अन्वयार्थ-प्रत्यक्षम्-यह प्रकट है कि, **यः**-जो मनुष्य, **स्ववृद्धिनिः श्वास-निमेषभाजि**-अपनी वृद्धि, श्वासोच्छ्वास और आँखों की टिमकार को प्राप्त, **आत्मानुभवे अपि**-अपने आपके अनुभव करने में, **मूढः**- मूर्ख है, **स लोकः**-वह मनुष्य, **अखिलज्ञेयविवर्त्तिबोधस्वरूपम्**-सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान ही है स्वरूप जिसका ऐसे **अध्यम्**- अध्यात्मस्वरूप आपको, **किं च अवैति**-कैसे जान सकता है?

भावार्थ-भगवन्! जो मनुष्य अपने आपको स्थूल पदार्थों को भी जानने के लिए समर्थ नहीं है, वह ज्ञानस्वरूप तथा आत्मा में विराजमान आपको कैसे जान सकता है? अर्थात् नहीं जान सकता।।22।।

ज्यों प्रत्यक्ष वृद्धि उच्छवासों, का दृग ज्योति के भाजन।

निजस्वरूप के अनुभव की जो, शक्ति न रखते हैं भविजन॥
सकल विश्व के ज्ञायक वे सब, ज्ञानमयी गुण के सागर।
लोकाध्यक्ष आपको कैसे, समझ पाएँगे हे जिनवर!॥22॥

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव! त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यम्, पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति।।२३।।

अन्वयार्थ-देव-हे नाथ, **ये**-जो मनुष्य, आप, **तस्य आत्मजः**-उसके पुत्र हो और **तस्य पिता**-उसके पिता हो, **इति**-इस प्रकार, **कुलम् प्रकाश्य**-कुल का वर्णन कर, **त्वाम् अवगायन्ति**-आपका अपमान करते हैं, **ते**-वे, **अद्य अपि**-अब भी, **पाणौ कृतम्**-हाथ में आये हुए, **हेम**-सुवर्ण को, **आश्मनम्**-पत्थर से पैदा हुआ, **इति**-इस हेतु से, **पुनः**-फिर, **अवश्यं त्यजन्ति**-अवश्य ही छोड़ देते हैं?

भावार्थ-एक तो सुवर्ण हाथ नहीं लगता, यदि किसी तरह लग भी जावे तो उसे यह सोचकर कि इसकी उत्पत्ति पत्थरों से हुई है, फिर फेंक देना मूर्खता है। इसी तरह आपका मनुष्य-कुल में पैदा बतला कर फिर भी छोड़ देता है, यह सबसे बढ़कर मूर्खता है। सुवर्ण यदि शुद्ध है, चाहे वह पत्थर से नहीं, दुनिया के किसी हल्के पदार्थ से उत्पन्न हुआ हो तो बाजार में उसकी कीमत पूरी ही लगेगी। और मैल सहित है-अशुद्ध है, तो किसी भी अच्छे पदार्थ से उत्पन्न होने पर भी उसकी पूरी कीमत नहीं लग सकती। इस प्रकार जो आत्मा शुद्ध है, कर्ममल से रहित है भले हीउस पर्याय में नीच कुल में पैदा हुआ हो, वह पूज्य कहलाता है, और यदि वही आत्मा उच्च कुल में पैदा हुआ हो, वह पूज्य कहलाता है, और यदि वही आत्मा उच्च कुल में पैदा होकर भी अशु-मलिन है तो उसे कोई पूछता भी नहीं है।।23।।

नाभिराय नन्दन हे जिनवर!, पिता भरत के आप महान्।
नाथ! आपकी वंशावलि कह, अपमानित करते इन्सान॥
स्वर्ण प्राप्त करके हाथों में, पत्थर जन्म समझते हैं।
फिर अवश्य ही जग के, प्राणी पत्थर कहकर तजते हैं॥23॥

दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः, सुराऽसुरास्तस्य महान् स लाभः।
मोहस्य मोहस्त्वयि को वरोद्धुर्, मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः।।२४।।

अन्वयार्थ-मोह के द्वारा **त्रिलोक्याम्**-तीनों लोकों में, **पटहः**-विजय का नगाड़ा, **दत्त**-दिया गया-बजाया गया उससे जो, **सुरासुराः**-सुर और असुर, **अभिभूताः**-तिरस्कृत हुए, **सः**-वह, **तस्य**-उस मोह का, **महान् लाभः**-बड़ा लाभ हुआ, **किन्त त्वयि**-आपके विषय में, **विरोद्धुम**-विरोध करने के लिए, **मोहस्य**-मोह को, **कः**-कौनसा, **मोहः**-भ्रम हो सकता था अर्थात् कोई नहीं, क्योंकि **बलवद्विरोधः**-बलवान के साथ विरोध करना, **मूलस्य नाशः**-मानो मूल का नाश करना है।

भावार्थ-हे भगवन्! जिस मोह ने संसार के सब जीवों को अपने वश में कर लिया, उस मोह को भी आपने जीत लिया है अर्थात् आप मोहरहित रागद्वेष शून्य हैं।।24।।

तीन लोक में मोह सुभट ने, जय का पटह बजाया है।
हुए तिरस्कृत उससे सब पर, लाभ मोह ने पाया है॥
उसको भी तो आपके सम्मुख, पड़ा पराजित होना देव।
सत्य सबल का रिपू रहा जो, नाश हुआ वह पूर्ण सदैव॥24॥

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्ते-श्चतुर्गतिनां गहनं परेण।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन,त्वं मा कदाचिद्-भुजमालुलोकः।।२५।।

अन्वयार्थ-त्वया-आपके द्वारा, **एकः**-एक, **विमुक्तेः**-मोक्ष का ही, **मार्गः**-मार्ग, **ददृशे**-देखा गया है और **परेण**-दूसरों के द्वारा, **चतुर्गतिनाम्**-चारों गतियों का, **गहनतम्**-सघन वन, **ददृशे**-देखा गया है, मानो इसीलिए **त्वम्**-आपने, **मया सर्वं दृष्टम्**-मैंने सब कुछ देखा है, **इति स्मयेन**-इस अभिमान से, **कदाचित्**-कभी भी, **भुजम्**-अपनी भुजा को, **मा आलुलोकः**-नहीं देखा था।

भावार्थ-घमण्डियों का स्वभाव होता है कि वे अपने को बड़ा समझकर बार-बार अपनी भुजाओं की तरफ देखते हैं, पर आपने घमण्ड से कभी अपनी भुजा की तरफ नहीं देखा। उसका कारण यह कि आप सोचते

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

थे कि मैंने तो सिर्फ एक मोक्ष का ही रास्ता देखा है और देवी-देवता चारों गतियों के रास्तों से परिचित हैं इसलिए मैं उनके सामने अल्पज्ञ हूँ। अल्पज्ञ का बहुज्ञानियों के सामने अभिमान कैसा? श्लोक का तात्पर्य यह है कि आप अभिमान से रहित हैं और निश्चित ही मोक्ष को प्राप्त होने वाले हैं, परन्तु अन्य देवी-देवता अपने-अपने कार्यों के अनुसार नरक आदि चारों गतियों में घूमा करते हैं।।25।।

जो भी देखा नाथ! आपने, मोक्षमार्ग पर रहा गमन।
औरों ने जो भी देखा वह, चतुर्गती का रहा भ्रमण।।
सर्व चराचर मैंने देखा, ऐसा कभी नहीं कहकर।
स्वयं भुजाएँ अपने मद से, देखी नहीं कभी जिनवर।।25।।

स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः, कल्पान्त वातोऽम्बु निधेर्विघातः।
संसार-भोगस्य वियोग-भावो, विपक्ष-पूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये।।२६।।

अन्वयार्थ-स्वर्भानुः-राहु, **अर्कस्य**-सूर्य का, **अम्भः**-पानी का, **हविर्भुजः**-अग्नि का, **कल्पांतवातः**-प्रलयकाल की वायु, **अम्बुनिधेः**-समुद्र का तथा **वियोग भावः**-विरहभाव, **संसारभोगस्य**-संसार के भोगों का, **विघातः**-नाश करने वाला है, इस तरह **त्वदन्ये**-आपसे भिन्न सब पदार्थ, **विपक्षपूर्वाभ्युदयाः 'सन्ति'**-विनाश के साथ ही उदय होते हैं।

भावार्थ-हे प्रभो! संसार के सब पदार्थ अनित्य हैं, सिर्फ आप ही सामान्य स्वरूप की अपेक्षा नित्य हैं, अर्थात् आप जन्म-मरण से रहित हैं और आपकी यह विशुद्धता भी कभी नष्ट नहीं होती है।।26।।

राहु सूर्य का ग्राहक है तो, जल पावक का संहारक।
जो कल्पान्त काल का भीषण, मारुत सागर का नाशक।।
विरह भाव इस जग के भोगों, का क्षयकारी रहा विशेष।
सिवा आपके सबका अरि संग, होता है संयोग जिनेश।।26।।

अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्-, तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति।
हरिन्मणिं काचधिया दधान-स्तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः।।२७।।

अन्वयार्थ-त्वाम्-आपको, **अजानतः**-बिना जाने ही, **नमतः**-नमस्कार करने वाले पुरुष को, **यत् फलम्**-जो फल होता है, **तत्**-वह फल, **अन्य देवता इति जानतः**-दूसरे को 'देवता है' इस तरह जानने वाले पुरुष को **न तु**-नहीं होता। क्योंकि **हरिन्मणिम्**-हरे मणि को, **काचधिया**-काँच की बुद्धि से, **दधानः**-धारण करनेवाला पुरुष, **तं तस्या बुद्ध्या वहतः**-हरे मणि को हरे मणि की बुद्धि से धारण करने वाले पुरुष की अपेक्षा **रिक्तः न**-दरिद्र नहीं है।

भावार्थ-हे भगवन्! जो आपको नमस्कार करता है, पर आपके स्वरूप को नहीं जानता, उसे भी जो पुण्यबंध होता है, वह किसी दूसरे के देवता मानने वाले पुरुष को नहीं होता। जिस तरह कोई अनजान मनुष्य हरित मणि को पहन कर उसे काँच समझता है, तो वह दूसरे की निगाह में जो मणि को मणि समझ कर पहिन रहा है, निर्धन नहीं कहलाता है। वे दोनों एक जैसी सम्पत्ति के अधिकारी कहे जाते हैं। श्रद्धा और विवेक के साथ प्राप्त हुआ अल्प ज्ञान भी प्रशंसनीय है।।27।।

बिना आपको जाने जिनवर! विजयी फल पाता जैसा।
देव समझ करके औरों को, कभी न फल पावे वैसा।।
निर्मल मणि को काँच समझकर, धारण जो करता सज्जन।
मणि को मणी समझने वाला, होता नहीं कभी निर्धन।।27।।

प्रशस्त-वाचश्चतुराः कषायैर्, दग्धस्य देव-व्यवहारमाहुः।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्त्वं, दृष्टं कपालस्य च मंगलत्वम्।।२८।।

अन्वयार्थ-प्रशस्तवाचः-सुन्दर बोली बोलनेवाले, **चतुराः**-चतुर मनुष्य, **कषायैः दग्धस्य**-कषायों से जले हुए पुरुष के भी, **देवव्यवहारम् आहुः**देव शब्द का व्यवहार करना कहते हैं। सो ठीक ही है, **हि**-क्योंकि, **गतस्य दीपस्य**-बुझे हुए दीपक का, **नंदितत्त्वं**-बढ़ना, **च**-और, **कपालस्य**-फूटे हुए घड़े का, **मंगलत्वम्**-मंगलपन, **दृष्टम्**-देखा गया है।

भावार्थ-हे भगवन्! लौकिक मनुष्य रागी-द्वेषी जीवों को भी 'देव' शब्द से व्यवहार करते हैं, सो सिर्फ लोकव्यवहार से ही किसी बात की

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

सत्यता नहीं होती। क्योंकि लोक में कितनी ही बातों का उल्टा व्यवहार होता है। जैसे कि जब दीपक बुझ जाता है, तब लोग कहते हैं कि दीपक बढ़ गया और जब घड़ा फूट जाता है, तब लोग कहने लगते हैं कि घड़े का कल्याण हो गया।।28।।

ज्यों व्यवहार कुशल पटु वक्ता, चतुःकषायों से दहते।
रागी द्वेषी मोही जन को, देव निरन्तर जो कहते॥
बुझे हुए दीपक को प्राणी, जैसे कहते दीप बढ़ा।
कहते हैं कल्याण हुआ जब, फूट जाय यदि कोई घड़ा॥28॥

नानार्थ-मेकार्थ-मदस्त्व-दुक्तं, हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति, ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण।।२६।।

अन्वयार्थ-नानार्थम्-अनेक अर्थों के प्रतिपादक तथा, **एकार्थम्**-एक ही प्रयोजन युक्त, **त्वदुक्तम्**-आपके कहे हुए, **अदः हितं वचः**-इन हितकारी वचनों को, **निशम्य**-सुनकर, **के**-कौन मनुष्य, **ते वक्तुः**-आपके जैसे वक्ता की, **निर्दोषताम्**-निर्दोषता को, **न विभावयन्ति**-नहीं अनुभव करते हैं, अर्थात् सभी करते हैं। जैसे **यः**-जो, **ज्वरेण मुक्तः 'भवति'**-जवर से मुक्त हो जाता है। **सः**-वह, **स्वरेण सुगमः 'भवति'**-स्वर से सुगम हो जाता है। अर्थात् स्वर से उसकी अच्छी तरह पहिचान हो जाती है।

भावार्थ-आपके वचन नानार्थ होकर भी एकार्थ हैं। यह प्रारम्भ में विरोध मालूम होता है, पर अन्त में उसका इस प्रकार परिहार हो जाता है कि आपके वचन स्याद्वाद सिद्धान्त से अनेक अर्थों का प्रतिपादन करने वाले हैं, फिर भी एक ही प्रयोजन को सिद्ध करते हैं, अर्थात् पूर्वापर विरोध से रहित हैं। हे भगवन्! आपके हितकारी वचनों को सुनकर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि आप निर्दोष हैं, क्योंकि सदोष पुरुष वैसे वचन नहीं बोल सकता, जैसे कि किसी की अच्छी आवाज सुनकर साफ मालूम हो जाता है कि वह ज्वर से मुक्त है, क्योंकि ज्वर से पीड़ित मनुष्य का स्वर अच्छा नहीं होता।।29।।

हैं एकार्थ आपके वर्णित, कई अर्थों के प्रतिपादक।
त्रिभुवन हितकारी वचनों के, कौन लोक में हैं धारक॥
निर्दोषत्व न तत्क्षण अपना, प्रभुवर अनुभव को पाता।
सच है ज्वर से विरहित योगी, स्वर सुगम्य कहा जाता॥29॥

न क्वापि वाञ्छाववृते च वाक् ते, काले क्वचित् कोऽपि तथा नियोगः।
न पूरयाम्यम्बुधि-मित्युदंशुः, स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति।।३०।।

अन्वयार्थ-ते-आपकी, **क्वापि**-किसी भी वस्तु में, **वाञ्छा न**-इच्छा नहीं है, **च**-और, **वाक् ववृतै**-वचन प्रवृत्त होते हैं। सचमुच में **क्वचित् काले**-किसी काल में, **तथा**-वैसा, **कः अपि नियोगः**-कोई नियोग-नियम ही होता है। **हि**-क्योंकि, **शीतद्युतिः**-चन्द्रमा, **अम्बुधिम् पूरयामि**-मैं समुद्र को पूर्ण कर दूँ, **इति**-इसलिए, **उदंशु न भवति**-उदित नहीं होता किन्तु **स्वयम् अभ्युदेति**-स्वभाव से ही उदित होता है।

भावार्थ-जिस प्रकार चन्द्रमा यह इच्छा रखकर उदित नहीं होता कि मैं समुद्र को लहरों से भर दूँ, पर उसका वैसा स्वभाव ही है कि चन्द्रमा का उदय होने पर समुद्र में लहरें उठने लगती हैं, इसी प्रकार आपको यह इच्छा नहीं है कि मैं कुछ बोलूँ, पर वैसा स्वभाव होने से स्वयं ही आपके वचन प्रकट होने लगते हैं।

इच्छा नहीं आपकी कुछ भी, खिरते वचन स्वयं पावन।
किसी काल में वैसा होता, नियम नहीं न अपनापन॥
उगता नहीं सोच ज्यों शशि यह, करूँ सिन्धु को मैं पूरित।
पर स्वभावतः प्रतिदिन रजनी, दूर करे होकर समुदित॥30॥

गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना, बहु-प्रकारा बह-वस्तवेति।
दृष्टोऽयमंतः स्तवने न तेषां, गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति।।३१।।

अन्वयार्थ-तव-आपके, **गुणाः**-गुण, **गभीरः**-गम्भीर, **परमाः**-उत्कृष्ट, **प्रसन्नाः**-उज्ज्वल, **बहुप्रकाराः**-अनेक प्रकार के और **बहवः**-बहुत, **इति अयम्**-इस प्रकार, **स्तवनेन**-स्तुति के द्वारा ही, **तेषां गुणानां**-उन गुणों का, **अन्तो दृष्टः**-अन्त देखा गया है। **अतः परं गुणानां अन्तः किम् अस्ति**-इसके सिवाय गुणों का अन्त क्या होता है? अर्थात् नहीं।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ–स्तुति में आपके समस्त गुण कहने की सामर्थ्य नहीं है, इसलिए उनका अन्त हो जाता है, अन्य प्रकार से उनका अन्त संभव नहीं है।।31।।

गुण गण हैं हे नाथ! आपके, अनुपम अगणित अरु गम्भीर।
और अपरिमित श्रेष्ठ समुज्ज्वल, विविध भाँति उत्कृष्ट सुधीर॥
यों तो अन्त दीखता उनका, नहीं स्तवन में जिनवर।
और अन्य गुण क्या हो सकते, हे जिनेन्द्र! इनसे बढ़कर॥31॥

स्तुत्या परं नाभि मतं हि भक्त्या, स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं, केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम्।।३२।।

अन्वयार्थ–**स्तुत्या हि**–स्तुति के द्वारा ही, **अभिमतम् न**–इच्छित वस्तु की सिद्धि नहीं होती, **परम्**–किन्तु, **भक्त्या स्मृत्या च प्रणत्या**–भक्ति, स्मृति और नमस्कृति से भी होती है, **ततः**–इसलिये मैं, **नित्यम्**–हमेशा, **देवम् भजामि, स्मरामि, प्रणमामि**–आपकी भक्ति करता हूँ, आपका स्मरण करता हूँ, और **हि**–क्योंकि, **फलम्**–इच्छित वस्तु की प्राप्ति रूप फल को, **केन अपि उपायेन**–किसी भी उपाय से, **साध्यम्**–सिद्ध कर लेना चाहिए।

भावार्थ–हे भगवन्! आपकी स्तुति से, भक्ति से स्मृतिध्यान से और प्रणति से जीवों को इच्छित फलों की प्राप्ति होती है, इसलिए मैं प्रतिदिन आप की स्तुति करता हूँ, भक्ति करता हूँ, ध्यान करता हूँ और नमस्कार करता हूँ क्योंकि मुझे जैसे बने तैसे अपना कार्य सिद्ध करना है।।32।।

केवल संस्तुति करने से ही, मन वाच्छित न होवे सिद्ध।
सद्भक्ति और नमस्कृति से, संस्कृति से होय प्रसिद्ध॥
प्रतिपल नत होकर ध्याता जो, भजे आपको भी अत एव।
परम साध्य फल पा लेता है, कारण किसी सुविधि से एव॥32॥

ततस्त्रिलोकी-नगराधिदेवं, नित्यं परं ज्योतिरनन्त-शक्तिम्।
अपुण्य-पापं पर पुण्य-हेतुं, नमाम्यहं वन्द्यमवन्दितारम्।।३३।।

अन्वयार्थ–**ततः**–इसलिए, **अहम्**–मैं, **त्रिलोकीनगराधिदेवम्**–तीन लोक रूप नगर के अधिपति, **नित्यम्**–विनाश रहित, **परम्**–श्रेष्ठ, **ज्योतिः**–ज्ञान ज्योतिस्वरूप, **अनन्तशक्तिम्**–अनन्तवीर्य से सहित, **अपुण्यपापम्**–स्वयं पुण्य और पाप से रहित होकर भी, **परपुण्यहेतुम्**–दूसरे के पुण्य के कारण तथा **वन्द्यम्**–वन्दना करने के योग्य होकर भी स्वयं, **अवन्दितारम्**–किसी को नहीं वन्दनेवाले, **भवन्तम्**–आपको, **नमामि**–नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ–हे भगवन्! आप तीन लोक के स्वामी हैं, आपका कभी विनाश नहीं होता, सर्वोत्कृष्ट हैं, केवलज्ञानरूप ज्योति से प्रकाशमान हैं, आप में अनन्त बल है, आप स्वयं पुण्य–पाप से रहित हैं, पर अपने भक्तजनों के पुण्य बन्ध में निमित्तकारण हैं। आप किसी को नमस्कार नहीं करते, पर सबलोग आपको नमस्कार करते हैं, आपकी इस विचित्रता से मुग्ध होकर मैं आपके लिए नमस्कार करता हूँ।

प्रभु अतएव त्रिलोक स्वरूपी, इस नगरी के अधिकारी।
शाश्वत हैं अति श्रेष्ठ प्रभामय, प्रभु निस्सीम शक्ति धारी।
पुण्य पाप से विरहित हैं जो, पुण्य हेतु जग में वन्दित।
स्वयं अखण्ड प्रभु को करता, मैं प्रणाम हो आनन्दित॥33॥

अशब्द-मस्पर्श-मरूप-गन्धं, त्वां नीरसं तद्विषयाव-बोधम्।
सर्वस्य मातार-ममेय-मन्यै-, र्जिनेन्द्र-मस्मार्य-मनुस्मरामि।।३४।।

अन्वयार्थ–**अशब्दम्**–शब्द रहित, **स्पर्शम्**–स्पर्शहित, **अरूपगन्धम्**–रूप और गन्ध रहित था, **नीरसम्**–रस रहित होकर भी, **तद्विषयावबोधम्**–उनके ज्ञान से सहित, **सर्वस्य मातारम्**–सबके जाननेवाले होकर भी, **अन्यैः**–दूसरों के द्वारा, **अमेयम्**–नहीं जानने के योग्य तथा **अस्मार्य**–जिनका स्मरण नहीं किया जा सकता ऐसे **जिनेन्द्रम् अनुस्मरामि**–जिनेन्द्र भगवान् का प्रतिक्षण स्मरण करता हूँ–ध्यान करता हूँ।

भावार्थ–हे भगवन्! आप रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द से रहित हैं, अमूर्तीक हैं, फिर भी उन्हें जानते हैं। आप सबको जानते हैं, पर आपको कोई नहीं जान पाता। यद्यपि आपका मन से भी कोई स्मरण नहीं कर सकता, तथापि मैं अपने बाल–साहस से आपका क्षण–क्षण में स्मरण करता हूँ।।34।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

जो स्पर्श हीन अति नीरस, गंध रूप से पूर्ण विहीन।
और शब्द से रहित जिनोत्तम, तद्विषयक हैं ज्ञान प्रवीण॥
प्रभु सर्वज्ञ स्वयं होकर भी, अन्य जनों से जो वंदित।
ध्याते हम अस्मार्य जिनेश्वर, विशद भाव से हो प्रमुदित॥34॥

अगाधमन्यै-र्मनसाप्य-लंघयं, निष्किञ्चनं प्रार्थितमर्थवद्भिः।
विश्वस्य पारं तमदृष्ट पारं, पतिं जिनानां शरणं व्रजामि।।३५।।

अन्वयार्थ-अगाधम्-गम्भीर, **अन्यैः**-दूसरों के द्वारा, **मनसा अपि अलंघयम्**-मन से भी उल्लंघन करने के अयोग्य अर्थात् अचिन्त्य, **निष्किंचनम्**-निर्धन होने पर भी, **अर्थवद्भि**-धनाढ्यों के द्वारा, **प्रार्थितम्**-याचित, विश्वस्य **पारम्**-सबके पारस्वरूप होने पर भी, **अदृष्टपरम्**-जिनका पार-अन्त कोई देख सका है, ऐसे **तम् जिनानाम् पतिम्**-उन जिनेन्द्रदेव की, **शरणम्**-शरण को, **व्रजामि**-प्राप्त होता हूँ।

भावार्थ-हे भगवन्! आप बहुत ही गम्भीर, धैर्यवान हैं। आपका कोई मन से भी चिंतवन नहीं कर सकता। यद्यपि आपके पास देने के लिए कुछ भी नहीं है, तो भी धनिक योग (अथवा याचकवर्ग) आपसे याचना करते हैं, आप सबके पार को जानते हैं, पर आपके पार को कोई नहीं जान सकता और आप जगत् के जीवों के प्रतिरक्ष हैं, ऐसा सोचकर मैं भी आपकी शरण में आया हूँ।

जो गम्भीर सिन्धु से बढ़कर, मन द्वारा भी अनुलंघित।
निष्किन्चन होने पर भी जो, धनवानों द्वारा याचित॥
जो हैं सबके पार स्वरूपी, पर जिनका न पाए पार।
शरण प्राप्त हो जाए उनकी, जगत्पति जो अपरम्पार॥35॥

त्रैलोक्य-दीक्षा-गुरवे नमस्ते, यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत्।
प्राग्गण्डशैलः पुनरद्रि-कल्पः, पश्चान्न मेरुः कुल-पर्वतोऽभूत।।३६।।

अन्वयार्थ-त्रैलोक्यदीक्षागुरवे ते नमः-त्रिभुवन के जीवों के दीक्षागुरु स्वरूप आपके लिए नमस्कार हो, **यः**-जो आप, **वर्धमानः अपि**-क्रम से उन्नति को प्राप्त हुए भी, **निजोन्नतः**-स्वयमेव उन्नत, **अभूत्**-हुए

थे। **मेरुः**-मेरुपर्वत, **प्राक्**-पहले, **गण्डशैलः**-गोल पत्थरों का ढेर, **पुनः**-फिर, **अद्रिकल्पः**-पहाड़ और **पश्चात्**-फिर **कुलपर्वत**-कुलाचल, **न अभूत्**-नहीं हुआ था किन्तु स्वभाव से ही वैसा था।

भावार्थ-हे प्रभो! आप तीन लोक के जीवों के दीक्षागुरु हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो। इस श्लोक के द्वितीय पद में विरोधाभास अलंकार है। वह इस तरह के आप अभी वर्धमान हैं-अर्थात् क्रम से बढ़ रहे हैं फिर भी निजोन्नत-अपने आप उन्नत हुए थे। जो चीज बढ़ रही है वह पहिले उससे छोटी ही होती है न कि बड़ी, पर यहाँ विपरीत बात यह है कि विरोध का परिहार्य इस प्रकार है कि आप वर्धमान होकर भी स्वयमेव उन्नत थे, न कि क्रम-क्रम से उन्नत हुए थे। क्योंकि मेरुपर्वत आज जितना उन्नत है, उतना उन्नत हमेशा से ही था, न कि क्रम-क्रम से उन्नत हुआ है। यहाँ वर्धमान पद श्लिष्ट है।।36।।

त्रिभुवन के दीक्षा गुरुवर हे! नमन् आपको शत् शत् बार।
वर्धमान होकर भी उन्नत, स्वयं आप हो अपरम्पार॥
मेरु सुगिरि के पूर्व में टीला, रत्न राशि फिर पर्वत राज।
क्रमशः कुल गिरि हुआ न फिर भी, था स्वभाव से उन्नत ताज॥36॥

स्वयं प्रकाशस्य दिवा निशा वा, न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम्।
न लाघवं गौरवमेक रूपं, वन्दे विभुं काल कलामतीतम्।।३७।।

अन्वयार्थ-स्वयं प्रकाशस्य यस्य-स्वयं प्रकाशमान रहनेवाले जिसके, **दिवा निशा वा**-दिन और रात की तरह, **न बाध्यता, न बाधकत्वम्**-न बाध्यता है और न बाधकपना भी। इसी प्रकार जिनके **न लाघवं गौरवम्**-न लाघव है न गौरव भी, उन **एकरूपम्**-एकरूप रहनेवाले और **कालकलाम् अतीतम्**-काल-कला से रहित अर्थात् अन्त रहित **विभुम् वन्दे**-परमेश्वर की वन्दना करता हूँ।

भावार्थ-स्वयं प्रकाशमान पदार्थ के पास जिस प्रकार रात और दिन का व्यवहार नहीं होता; क्योंकि प्रकाश के अभाव को रात कहते हैं, और रात के अभाव को दिन कहते हैं। जो हमेशा प्रकाशमान रहता

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

है, उसके पास अन्धकार न होने से रात का व्यवहार नहीं होता और जब रात का व्यवहार भी नहीं होता; उसी प्रकार आप में बाध्यता और बाधक का व्यवहार नहीं है; आप किसी को बाधा नहीं पहुँचाते, इसलिए आप बाधकत्व नहीं और कोई आपको भी बाधा नहीं पहुँचा सकता, इसलिए आप बाध्य नहीं हैं। जिसमें बाध्य का व्यवहार नहीं, उसमें बाधक का भी व्यवहार नहीं होता और जिसमें बाधक का व्यवहार नहीं उसमें बाध्य का व्यवहार नहीं हो सकता, क्योंकि ये दोनों धर्म परस्पर में सापेक्ष हैं। उसी प्रकार आप में, न लाघव ही है और न गुरुत्व ही। दोनों सापेक्ष धर्मों से रहित हैं। आप अगुरुलघु हैं। हे भगवन्! आप समय की मर्यादा से भी रहित हैं, अर्थात् अनन्तकाल तक ऐसे ही रहे आवेंगे।।37।।

जो स्वयमेव प्रकाशित जिसको, दिन अरु रात का भेद नहीं।
न बाधकता अरु बाधत्व का, न ही होता नियम कहीं।।
यों जिनके न कभी भी लाघव, और न गौरव है अणुभर।
अविनाशी उन एक रूप जिन, को प्रणाम मेरा सादर।।37।।

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्, वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छाया तरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्, कश्छायया याचितयात्मलाभः।।३८।।

अन्वयार्थ-देव-हे देव! **इति स्तुतिम् विधाय**-इस प्रकार स्तुति करके मैं, **दैन्याद्**-दीन भाव से, **वरम् न याचे**-वरदान नहीं माँगता, क्योंकि **त्वम् उपेक्षकः असि**-आप उपेक्षक हैं, राग-द्वेष से रहित हैं अथवा **तरुम् संश्रयतः**-वृक्ष का आश्रय करनेवाले पुरुष को **छाया स्वतः स्यात्**-छाया स्वयं प्राप्त हो जाती है। **याचितया छायया कः आत्मलाभः**-छाया की याचना से क्या लाभ है?

भावार्थ-हे भगवन्! मैं सर्प से डसे हुए मृतप्रायः लड़के को आपके सामने लाया हूँ, इसलिए स्तुति कर चुकने के बाद मैं आप से यह वरदान नहीं माँगता कि आप मेरे लड़के को स्वस्थ करदें। क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप राग-द्वेष से रहित हैं, इसलिए न किसी को कुछ देते हैं और न किसी से कुछ लेते-(छीनते) हैं। स्तुति करनेवाले को

तो फल की प्राप्ति स्वयं ही हो जाती हैं। जैसे जो मनुष्य वृक्ष के नीचे पहुँचेगा, उसे छाया स्वयं प्राप्त हो जाती है। छाया की याचना करने से कोई लाभ नहीं होता।।38।।

हे प्रभुवर! यों संस्तुति करके, मैं भी दीन भाव के साथ।
नहीं माँगता हूँ वर कोई, क्योंकि आप उपेक्षक नाथ!।।
वृक्षाश्रित को स्वयं आप ही, मिल जाती छाया शीतल।
भीख माँगने से छाया की, मिलता है क्या कोई फल।।38।।

अथास्ति दित्सा यदि वोपरोधस्, त्वय्येव सक्तां दिश भक्ति-बुद्धिम्।
करिष्यते देव! तथा कृपां मे, को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः।।३६।।

अन्वयार्थ-अथा दित्सा अस्ति-यदि आपकी कुछ देने की इच्छा है, **यदि वा**-अथवा वरदान माँगो ऐसा, **उपरोधः 'अस्ति'**-आग्रह है तो, **त्वयि एवं सक्ताम्**-आप में लीन, **भक्तिबुद्धिम्**-भक्तिमयी भगवान् को, **दिश**-देओ। मेरा विश्वास है कि **देव**-हे देव! **मे**-मुझ पर, **तथा**-वैसी, **कृपाम् करिष्यते**-दया करेंगे, **आत्मपोष्ये**-अपने द्वारा पोषण करने के योग्य शिष्य पर, **को वारि सूरिः**-कौन पंडित पुरुष, **सुमुखो न 'भवति'**-अनुकूल नहीं होता! अर्थात् सभी होते हैं।

भावार्थ-हे नाथ! यदि आपकी कुछ देने की इच्छा है तो मैं आप से यही चाहता हूँ कि मेरी भक्ति आप में ही रहे। मेरा विश्वास है कि आप मुझ पर अपनी कृपा अवश्य करेंगे। क्योंकि विद्वान् पुरुष अपने आश्रित रहने वाले शिष्य की इच्छाओं को पूर्ण ही करते हैं।।39।।

यदि आग्रह कुछ देने का है, या देने की अभिलाषा।
हो जाऊँ भक्ती में तत्पर, यही मात्र मेरी आशा।।
है विश्वास आप अब वैसी, कृपा करोगे हे जिनवर!।
निज शिष्यों पर करुणाकर क्या?, होते नहीं श्री गुरुवर।।39।।

(आर्या छन्द)

वितरति विहिता यथाकथंचित्, जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः।
त्वयि नुति-विषया पुनर्विशेषाद्, दिशति सुखानि यशो 'धनंजयं' च।।४०।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-**जिन**-हे जिनेन्द्र!, **यथाकथंचित्**-जिस किसी तरह, **विहिता**-की गई, **भक्ति**-भक्ति, **विनताय**-नम्र मनुष्य के लिए, **मनीषितानि**-इच्छित वस्तुएँ, **वितरित**-देती हैं, **पुनः**-फिर, **त्वयि**-आपके विषय में की गई, **नुतिविषया**-स्तुतिविषयक भक्ति, **विशेषात्**-विशेषरूप से, **सुखानि**-सुख, **यश**-कीर्ति, **धनम्**-सम्पत्ति, **च**-और, **जयम्**-जीत को, **दिशति**-देती है।

भावार्थ-हे भगवन्! आपकी भक्ति से 'विशद' विनयशील मनुष्यों के लिए सुख, यश, धन तथा विजय आदि की प्राप्ति होती है॥40॥

जिस किस भाँती से सम्पादित, देव वंद्य हे जिननायक!
मन वाच्छित फल देने वाली, भक्ती कर्मों की क्षायक॥
संस्तुति विषयक भक्ति आपकी, देती है शुभ फल निश्चय।
'विशद' ओज विद्यादायक है, कीर्ति धनंजय ही अक्षय॥40॥

विपत्ति नाशक चन्द्रप्रभः स्तोत्रम्

चन्द्रप्रभः प्रभादीशं चन्द्रशेखर चन्दनम्।
चन्द्र लक्ष्म्यांकं चन्द्रांकं चन्द्रबीजं नमोस्तुते॥1॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री चन्द्रप्रभः श्रीं ह्रीं कुरु-कुरु स्वाहाः।
इष्ट सिद्धि महा ऋद्धि, तुष्टि पुष्टि करो मम॥2॥

द्वादश सहस्र जपतो वांछितार्थ फलप्रदः।
महंतं त्रिसंध्यं जपतः, सर्वातिव्याधिनाशनम्॥3॥

सुरासुरेन्द्र सहितः श्री पांडव नृपस्तुते।
श्री चन्द्रप्रभ तीर्थेशं श्रियं चन्द्रो ज्वालां कुरु॥4॥

श्री चन्द्रप्रभु विधेयं, स्मृता मेय फलंप्रदा।
भवाब्धि ब्याधि विध्वंश, दायिनिमी वरप्रदा॥5॥

ॐ नमो भगवते चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय चन्द्र महिताय चन्द्रकीर्ति मुखरंजनी स्वाहा।

दर्शन पाठ

दर्शनं देव देवस्य दर्शनं पाप-नाशनं।
दर्शनं स्वर्ग-सोपानं, दर्शनं मोक्ष-साधनं।।१।।

अन्वयार्थ-**देव देवस्य दर्शनं**-देवाधिदेव का दर्शन, **पापनाशनम्**-पापों का नाशक है, **दर्शनं**-दर्शन, **स्वर्ग सोपानं**-स्वर्ग की सीढ़ी और, **मोक्ष साधनम्**-मोक्ष का साधन है।

भावार्थ-देवाधिदेव अर्हन्त भगवान का दर्शन पापों का नाश करने वाला है, स्वर्ग की सीढ़ी और मोक्ष का साधन है।

जिन दर्शन होता भला, करता पाप विनाश।
स्वर्ग नसैनी है यही, साधन मुक्ती राश॥1॥

दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधूनां वंदनेन च।
न तिष्ठति चिरं पापं छिद्र-हस्ते यथोकदम्।।२।।

अन्वयार्थ-**जिनेन्द्राणां**-जिनेन्द्र देव के, **दर्शनेन**-दर्शन से, **च**-और, **साधूनां**-साधुओं की, **वन्दनेन**-वंदना से, **पापं**-पाप, **चिरं**-अधिक समय तक, **न तिष्ठति**-नहीं ठहरते, **यथा**-जिस प्रकार, **छिद्रहस्ते**-छिद्र सहित हाथों में, **उदकम्**-जल (ज्यादा देर नहीं ठहरता)

भावार्थ-छिद्र सहित हाथों में जिस तरह जल ज्यादा देर तक नहीं टिकता, उसी प्रकार जिनेन्द्र भागवान के दर्शन और साधुओं की वन्दना से पाप कर्म लम्बे समय तक नहीं ठहरते हैं अर्थात् शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

जिन दर्शन गुरु वंदना, हरते जग की पीर,
कर्म झरें यों आत्म से, अंजलि पुट ज्यों नीर॥2॥

वीतराग-मुखं दृष्टवा, पद्म-राग-सम-प्रभं।
नैकजन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति।।३।।

अन्वयार्थ-**पद्मराग**-पद्मराग मणि के, **समप्रभं**-समान प्रभायुक्त, **वीरागमुखं**-वीतराग भगवान के मुख को, **दृष्ट्वा**-देखकर, **जन्म-जन्मकृतं**-जन्म-जन्मान्तर में किये, **पापं**-पाप, **दर्शनेन**-दर्शन से,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

विनश्यति-नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ-पद्मरागमणि की प्रभा के समान वीतराग भगवान को देखकर जन्म-जन्मान्तर में किये गये पाप दर्शन करने से नाश हो जाते हैं।

वीतराग छवि देखकर, पद्म राग सम होय,
जन्म-जन्म के कर्म को, दर्शन नाशे सोय॥3॥

दर्शनं जिन सूर्यस्य संसार-ध्वान्त-नाशनं।
बोधनं चित्त-पद्मस्य समस्तार्थ प्रकाशनम्।।४।।

अन्वयार्थ-जिनसूर्यस्य-जिनेन्द्र रूपी सूर्य का, **दर्शनं**-दर्शन, **संसारध्वान्त**-संसार रूपी अन्धकार का, **नाशनं**-नाश करने वाला, **च**-और, **चित्तपद्मस्य**-मनरूपी कमल का विकास तथा, **समस्तार्थ प्रकाशनं**-समस्त पदार्थों का प्रकाश है।

भावार्थ-जिनेन्द्र भगवान रूपी सूर्य का दर्शन समस्त पाप रूपी अंधकार को नष्ट करने वाला, समस्त पदार्थों का प्रकाशक एवं मन रूपी कमल को खिलाने वाला है।

जिन सूरज के दर्श से, भव तम होवे नाश,
बोधि चित्त में पद्म सम, चउ दिश होय प्रकाश॥4॥

दर्शनं जिन चन्द्रस्य, सद् धर्मामृत-वर्षणं।
जन्म-दाह-विनाशाय वर्धनं सुख-वारिधेः।।५।।

अन्वयार्थ-जिनचन्द्रस्य-जिनेन्द्र रूपी चन्द्रमा का, **दर्शनम्**-दर्शन, **जन्मदाह**-जन्मरूपी ताप का, **विनाशाय**-नाश करने के लिए, **सुखवारिधेः**-सुख रूप समुद्र की, **वर्धनम्**-वृद्धि के लिए, **सद्धर्मामृत**-सद्धर्म् रूपी अमृत की, **वर्षणम्**-वर्षा करता है।

भावार्थ-जिनेन्द्र रूपी चन्द्रमा का दर्शन जन्म रूपी दाह का नाश करने के लिए एवं सुख रूपी समुद्र की वृद्धि के लिए सद्धर्म रूपी अमृत की वर्षा करता है।

दर्शन श्रीजिन चन्द्र का, धर्मामृत वर्षाय,
जन्म दाह को नाशता, सुख समुद्र बढ़ जाय॥5॥

जीवादि तत्त्व-प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व-मुख्याष्ट-गुणार्णवाय।
प्रशान्तरूपाय-दिगम्बराय, देवाधि-देवाय-नमो जिनाय।।६।।

अन्वयार्थ-जीवादितत्त्व-जीवादि तत्त्वों के, **प्रतिपादकाय**-प्रतिपादक, **सम्यक्त्व मुख्याष्ट**-सम्यक्त्वादि आठ मुख्य, **गुणार्णवाय**-गुणों के समुद्र, **प्रशान्तरूपाय**-प्रशान्त रूप, **दिगम्बराय**-दिगम्बर, **देवाधिदेवाय**-देव अर्हन्त प्रभु, **जिनाय**-जिनेन्द्र के लिए, **नमः**-नमस्कार हो।

भावार्थ-जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का स्वरूप बताने वाले तथा सम्यक्त्व आदि आठ गुणों के समुद्र, प्रशान्त रूप, दिगम्बर अर्हन्त भगवान के लिए नमस्कार हो।

जीवादि तत्त्व प्रति पादक ज्ञानधारी, सम्यक्त्व मुख्य वसु गुणमय निर्विकारी।
हे! शान्त रूप जिनवर देवाधिदेव, चरणों नमन करें हम जिनके सदैव॥6॥

चिदानन्दैक-रूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्म-प्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः।।७।।

अन्वयार्थ-चिदानन्दैकरूपाय-आप आत्मानंद स्वरूप हैं, **जिनाय**-कर्मों को जीतने वाले हैं, **परमात्मने**-उत्कृष्ट आत्मा हैं, **परमात्म**-परम आत्म तत्त्व के, **प्रकाशाय**-प्रकाशक, **सिद्धात्मने**-सिद्ध स्वरूप हैं, आपको, **नित्यं**-हमेशा, **नमः**-नमस्कार हो

भावार्थ-हे भगवन्! आप आनन्द स्वरूप हैं, कर्मों को जीतने वाले हैं, उत्कृष्ट आत्मा हैं, परम आत्म तत्त्व के प्रकाशक और सिद्ध स्वरूप हैं। हे प्रभो! आपको हमेशा नमस्कार हो।

कर्म विजेता श्रेष्ठतम, चिदानन्द इक रूप,
आत्म प्रकाशक पद नमन, आतम सिद्ध स्वरूप॥7॥

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्य भावेन, रक्ष-रक्ष जिनवेश्वर।।८।।

अन्वयार्थ-अन्यथा-आपके सिवा अन्य कोई, **शरणं**-शरण नहीं है, **त्वम्**-आप, **एव**-ही, **मम**-मेरे, **शरणं**-शरण हैं, **तस्मात्**-इसलिए, **जिनेश्वर**-हे जिनेन्द्र भगवन्!, **कारुण्य भावेन**-दया करके, **मम रक्ष रक्ष**-मेरी रक्षा

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

करो, मेरी रक्षा करो।

भावार्थ-संसार में आपके सिवा अन्य कोई शरण नहीं है, आप ही मेरे लिए शरण हैं इसलिए जिनदेव! दया करके आप मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो।

अन्य शरण कोई है नही, मुझे शरण एक नाथ!,
करो सुरक्षा जिन प्रभो!, करुण भाव के साथ॥8॥

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति।।९।।

अन्वयार्थ-जगत्त्रये-तीन लोक में, **वीतरागात्परः देवः**-वीतराग अर्हन्त भगवान के सिवा और कोई, **न हि त्राता**-जीवों की रक्षा करनेवाला नही है, **न हि त्राता**-रक्षा करने वाला नहीं है, **न हि त्राता**-रक्षा करने वाला नहीं है, **न भूतो**-न भूतकाल में हुआ, **न भविष्यति**-और न आगे होगा।

भावार्थ-तीन लोक में वीतराग भगवान के सिवा अन्य कोई जीवों का रक्षक न है भूतकाल में हुआ और न भविष्य में होगा

त्राता नहिं तिहुँ लोक में, त्राता नहीं है कोय,
वीतराग जिनदेव सम, तीन काल में सोय॥9॥

जिनेभक्ति-र्जिनेभक्ति-र्जिनेभक्ति-र्दिनेदिने।
सदा मेऽस्तु सदामेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवे-भवे।।१०।।

अन्वयार्थ-दिने दिने, भवे भवे-प्रतिदिन भव-भव में, **मे जिने-भक्ति**-मुझमें जिनभक्ति, **सदाऽस्तु**-सदा हो, **मे जिनेः भक्ति**-मुझमें जिनभक्ति, **सदाऽस्तु**-सदा हो, **मे जिनेभक्ति**-मुझमें जिनभक्ति, **सदाऽस्तु**-सदा हो।

भावार्थ-हे प्रभो! प्रतिदिन और भव-भव में मुझमें जिनभक्ति सदा हो, मुझमें जिनभक्ति सदा हो, मुझमें जिनभक्ति सदा हो।

प्रतिदिन हमको प्राप्त हो, जिनभक्ति त्रिबार,
सदा-सदा करता रहूँ, भव-भव में हर बार।10॥

जिन-धर्म-विनिर्मुक्तो, मा भूवं-चक्रवर्त्यपि।

स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिन-धर्मानुवासितः।।११।।

अन्वयार्थ-जिनधर्म-जिनधर्म से, **विनिर्मुक्तः**-रहित, **चक्रवर्त्यपि**-चक्रवर्ती भी, **मा भवेत्**-नहीं हो, **स्याच्चेटोऽपि**-भले ही दुखी हों, **दरिद्रोऽपि**-दरिद्री भी हों, लेकिन, **जिनधर्मानुवासितः**-जिन धर्म सहित मेरा जीवन हो

भावार्थ-हे भगवन्! जिनधर्म से रहित मुझे चक्रवर्ती पद भी नहीं चाहिए, भले ही दुःखी, दरिद्री होना पड़े पर जैन कुल में ही मेरा जन्म हो।

चक्रवर्ति पद भी नहीं, दर्शन बिन हे! नाथ,
दारिद्रता स्वीकार है, जिन दर्शन के साथ॥11॥

जन्म-जन्म-कृतं पापं, जन्म-कोटिभि-रर्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा रोगो, हन्यते जिनदर्शनात्।।१२।।

अन्वयार्थ-जिनदर्शनात्-जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से, **जन्म-जन्म कृत्-जन्म**-जन्मातन्तर में किए गये, **कोटिमुपार्जितम्**-करोड़ों उपार्जित, **पापम्**-पाप और, **जन्म मृत्यु जरारोगः**-जन्म, मरण, बुढ़ापा तथा रोग, **हन्यते**-नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ-अर्हन्त भगवान के दर्शन से जन्म-जन्मान्तर में संचित पाप और जन्म-जरा-मृत्यु तथा सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

जन्म-जन्म कृत पाप भी, कोटि जन्म के होय।
जन्म-जरा अरु मृत्यु भी, दर्शन नाशे सोय॥12॥

अद्याभवत्-सफलता नयन-द्वयस्य,देव! त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक-तिलक-प्रतिभासते मे, संसार-वारिधि-रयं चुलुक-प्रमाणः।।१३।।

अन्वयार्थ-देव!-हे जिनदेव!, **त्वदीय**-आपके, **चरणाम्बुज**-चरण कमल, **वीक्षणेन**-देखने से, **अद्य में**-आज मेरे, **नयन द्वयस्य**-दोनों नेत्र, **सफलता अभवत्**-सफल हुए हैं, **त्रिलोकतिलक!**-हे तीन लोक के स्वामी!, **अद्य मे**-आज मुझे, **अयं**-यह, **संसारवारिधिः-संसार**-समुद्र, **चुलुक प्रमाणः**-चुल्लू प्रमाण, **प्रतिभासते**-लगता है।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र भगवन्! आपके चरण कमल को देखने से आज मेरे दोनों नेत्र सफल हो गये हैं। तीन लोक के चूड़ामणि! मुझे आज

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

यह संसार-सागर बहुत थोड़ा सा प्रतीत हो रहा है।

त्रैलोक्य के तिलक यह संसार सागर,
चुल्लू प्रमाण दिखता जिनवर को पाकर।
देवाधिदेव चरणाम्बुज के सहारे,
दोनों नयन सफल हैं लख के हमारे।13॥

श्री शांतिनाथ स्तवन

समग्र तत्त्व दर्पणम्, विमुक्ति मार्ग घोषणम्।
कषाय मोह मोचनम्, नमामि शान्ति जिनवरं॥
त्रिलोक वन्द्य भूषणम्, भवाब्धि नीर शोषणम्।
जितेन्द्रियम् अजंजिनम्, नमामि शान्ति जिनवरं॥
अखण्ड खण्ड गुण धरम, प्रचण्ड काम खण्डनम्।
सुभव्य पद्म दिनकरम, नमामि शान्ति जिनवरं॥
एकान्तवाद मत हरं, सुस्याद्वाद कौशलम्।
मुनीन्द्र वृन्द सेवितम्, नमामि शान्ति जिनवरं॥
नृपेन्द्र चक्र मण्डनम्, प्रकर्म चक्र चूरणम्।
सुधर्म चक्र चालकं, नमामि शान्ति जिनवरं॥
अग्रन्थ नग्न केवलं, विमोक्ष धाम केतनम्।
अनिष्ट घन प्रभजनम्, नमामि शान्ति जिनवरं॥
महाश्रमण किंचनम्, अकाम काम पद धरम।
सुतीर्थ कर्तृ षोडषम्, नमामि शान्ति जिनवरं॥
पञ्च महाव्रत धरं, दया क्षमा गुणा करम्।
सुदृष्टि ज्ञान व्रत धरम, नमामि शान्ति जिनवरं॥

अद्याष्टक स्तोत्र

(अनुष्टुप छन्द)

अद्य मे सफलं जन्म, नेत्रे च सफले मम।
त्वामद्राक्ष यतो देव, हेतुमक्षय संपदः।।१।।

अन्वयार्थ-अद्य-आज, **मे**-मेरा, **जन्म**-जन्म (जीवन), **सफलम्**-सफल (हो गया है), **च**-और, **मम**-मेरे, **नेत्रे**-दोनों नयन, **सफले**-सफल (हो गये हैं) **यत्**-क्योंकि, **देव**-हे देव, **अक्षय-सम्पदः**-अविनाशी सम्पत्तियों के, **हेतुम्**-कारणरूप, **त्वाम्**-आपके, **अद्राक्षम**-दर्शन कर लिए हैं।

भावार्थ-हे देव! आज मैंने अक्षय संपत्ति के हेतुभूत आपके दर्शन किए। इससे मेरा जन्म सफल हो गया और दोनों नेत्र सफल हो गए।

हे देव! दर्शन आपका कर, जन्म मेरा सफल है।
शुभसंपदा अक्षय जो पाई, दर्श का ही सुफल है॥
मम नयन आज सफल हुए हैं, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥1॥

अद्य संसार-गम्भीर, पारावारः सुदुस्तरः।
सुतरोऽयं क्षणेनैव, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।२।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र-हे जिनेन्द्र प्रभु, **तव**-आपके, **दर्शनात्**-दर्शन करने से, **अद्य**-आज, **अयं**-यह, **संसार-गम्भीर**-गम्भीर संसाररूपी, **सु दुस्तरः**-अत्यन्त दुस्तर (जिसे पार करना अत्यन्त कठिन है), **पारावारः**-समुद्र, **क्षणैन**-क्षणभर में, **एव**-ही, **सुतरः**-सरलता पूर्वक तैरने योग्य (पार करने योग्य) (हो गया है)

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! आज आपके दर्शन करने से तरने के लिए अत्यन्त कठिन वह गम्भीर संसार रूपी समुद्र मेरे लिए क्षणमात्र में तैरने योग्य हो गया है।

हे देव! दर्शन आपका कर, अति गहन अपार है।
वह पार क्षण भर में मिला जो, गहन अति संसार है॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भव पार होना है सरल अब, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥2॥

अद्य मे क्षालितं गात्रं, नेत्रे न विमले कृते।
स्नातोऽहं धर्म-तीर्थेषु, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।३।।

अन्वयार्थ-**जिनेन्द्र**-हे जिनेन्द्र प्रभु, **तव**-आपके, **दर्शनात्**-दर्शनकरने से, **अद्य**-आज से, **मे**-मेरा, **गात्रम्**-शरीर, **क्षालितं**-धुल गया है, **नेत्रे**-दोनों नेत्र, **विमले**-निर्मल, **कृते**-हो गये हैं, **च**-और, **अहम्**-मैंने, **धर्मतीर्थेषु**-धर्म तीर्थों में, **स्नातः**-स्नान कर लिया है।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! आज आपका दर्शन करने से मेरा शरीर धुल गया, नेत्र निर्मल हो गये और मैंने धर्म तीर्थों में स्नान कर लिया।

हे देव! दर्शन आपका कर, नेत्र निर्मल हो गये।
सद्धर्म तीरथ में नहाकर, कर्म सारे खो गये॥
प्रभु आज तन मेरा धुला है, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥3॥

अद्य मे सफलं जन्म, प्रशस्तं सर्व मंगलम्।
संसाराऽर्णव-तीर्णोऽहं, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।४।।

अन्वयार्थ-**जिनेन्द्र**-हे जिनदेव, **अद्य**-आज, **तव**-आपके, **दर्शनात्**-दर्शन करने से, **मे**-मेरा, **जन्म**-जीवन, **प्रशस्तं**-आलोकित, **सर्वमंगलम्**-पूर्णतः कल्याण युक्त (हो गया है) (और आज) **अहम्**-मैं, **संसाराऽर्णवः**-संसार रूप सागर को, **तीर्णः**-तैर कर पार कर चुका हूँ।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! आज आपका दर्शन करने से मेरा जन्म सफल हो गया, मुझे प्रशस्त सर्व मंगलों की प्राप्ति हो गयी और संसार रूपी समुद्र से तैर कर पार हो गया।

हे देव! दर्शन आपका कर, मेरा जन्म सफल है।
पार भवसर का मिला यह, दर्श का ही सुफल है॥

प्रभु सर्व मंगल पा लिए हैं, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥4॥

अद्य कर्माष्टक-ज्वालं, विधूतं सकषायकम्।
दुर्गतेर्विनिवृत्तोऽहं, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।५।।

अन्वयार्थ-**जिनेन्द्र!** हे अर्हन्त देव, **अद्य**-आज, **तव**-आपको, **दर्शनात्**-दर्शन करने से, **सकषायकम्**-कषाय सहित, **कर्माष्टकज्वालम्**-आठ कर्मों को जलाने को, **विधूतम्**-नाश कर दिया है, और **अहम्**-मैं, **दुर्गतेः**-दुर्गति से, **विनिवृत्तः**-दूर हो गया हूँ।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! आज आपका दर्शन करने से मैंने कषाय के साथ आठ कर्मों को जलाकर दूर कर दिया और मैं दुर्गति से पार हो गया।

हे देव! दर्शन आपका कर, कर्म की ज्वाला जली।
प्रभु आज यह अतिशय हुआ वसु, कर्म की सेना चली॥
दुर्गती से मुक्ती जो पाई, हृदय मम् भक्ति जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥5॥

अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे, शुभाश्चैकादश-स्थिताः।
नष्टानि विघ्न-जालानि, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।६।।

अन्वयार्थ-**जिनेन्द्र**-हे जिनेन्द्र भगवन, **अद्य**-आज, **तव**-आपके, **दर्शनात्**-दर्शन करने से, **एकादश-स्थिताः**-ग्यारह स्थानों में स्थित, **सर्वे**-सभी, **ग्रहाः**-ग्रह, **सौम्या**-शांत, **च**-और, **शुभाः**-शुभ (हो गये हैं), **विघ्न**-विपत्तियों के, **जालानि**-समूह, **नष्टानि**-नष्ट हो गये हैं।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! आज आपका दर्शन करने से एकादश स्थान में सब गृह सौम्य और शुभ हो गए तथा विघ्नजाल नष्ट हो गये।

हे देव! दर्शन आपका कर, विघ्न सारे नश गये।
प्रभु आज सब ग्रह सौम्य होकर, इक जगह में बस गये॥
सब ग्रह एकादश शांत करने, की लगन मन में जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥6॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणां दुखदायकः।
सुख संगं समापन्नो, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।७।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र-हे जिनेन्द्र भगवन्, **अद्य**-आज, **तव**-आपके, **दर्शनात्**-दर्शन करने से, **दुःखदायक**-दुःख देने वाले, **कर्मणां**-कर्मों का, **महाबन्धः**-महा बन्धन, **नष्टः**-नष्ट हो गया है (और मैं), **सुख संगं**-सुखदायी संगति से, **सम्पन्नः**-संयुक्त हो गया हूँ।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! आज आपका दर्शन करने से दुःख देने वाले कर्मों का महाबन्ध नष्ट हो गया और मैं सुखकर संगति को प्राप्त हो गया।

हे देव! दर्शन आपका कर, घोर दुखदायक महा।
दुष्कर्म का बंधन बंधा था, आज वह भी न रहा॥
जीवन सुखी हो गया है अरु, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥7॥

अद्य कर्माष्टकं नष्टं, दुःखोत्पादन-कारकम्।
सुखाम्भोधि-निमग्नोऽहं, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।८।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र-हे जिनेन्द्र देव, **अद्य**-आज, **तव**-आपके, **दर्शनात्**-दर्शन से, **दुःखोत्पादन**-दुःख उत्पन्न, **कारकम्**-करने वाले, **कर्माष्टकम्**-आठ कर्मों का समूह, **नष्टम्**-नष्ट हो गया है (और) **अहम्**- मैं, **सुखाम्बोधि**-सुखरूपी समुद्र में, **निमग्नः**-निमग्न हो गया हूँ।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! आज आपका दर्शन करने से दुःख को उत्पन्न करने वाले आठ कर्म नष्ट हो गये तथा मैं सुखसागर में निमग्न हो गया।

हे देव! दर्शन आपका कर, आज दुखदायी सभी।
दुष्कर्म आठों नश गये हैं, दर्श करते ही अभी।
शुभ सौख्य सागर में मगन हो, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥8॥

अद्य मिथ्यांधकारस्य, हन्ता ज्ञान-दिवाकरः।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन्, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।६।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र-हे जिनेन्द्र प्रभु, **अद्य**-आज, **तव**-आपके, **दर्शनात्**-दर्शन करने से, **मत्**-मेरे, **अस्मिन्**-इस, **शरीरे**-शरीर में, **मिथ्यान्धकारस्यहन्ता**-मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का नाश करने वाला, **ज्ञान दिवाकर**-ज्ञानरूपी दिवाकर (सूर्य), **उदितः**-उदित हो गया है।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! आज आपका दर्शन करने से मेरे आत्मा रूप शरीर में मिथ्यात्व रूप अंधकार का नाश करने वाला ज्ञानरूपी सूर्य उदित हुआ है।

हे देव! दर्शन आपका कर, तिमिर मिथ्या देह से।
वह नश गया है आज सारा, चेतना के गेह से॥
सद्ज्ञान का आलोक पाया, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥9॥

अद्याहं सुकृतीभूतो, निर्धूताशेषकल्मषः।
भुवन-त्रय-पूज्योऽहं, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।१०।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र-हे जिनेन्द्र प्रभु, **तव**-आपके, **दर्शनात्**-दर्शन करने से, **अद्य**-आज, **अशेष**-सम्पूर्ण, **कल्मषः**-पापों के, **निर्धूत**-धुल जाने के कारण, **अहम्**-मैं, **सुकृतीभूतो**-सुकृति और, **भुवनत्रय**-तीनों लोकों में, **पूज्यः**-पूज्य (हो गया हूँ)।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! आज आपका दर्शन करने से समस्त कल्मष को धोकर मैं सुकृति और तीन लोक में पूज्य हो गया।

हे देव! दर्शन आपका कर, पुण्यात्मन् हो गया।
अब आज मेरा आत्मा से, पाप मल सब खो गया॥
हो गया त्रैलोक्य पूज्य प्रभु, भक्ति मेरे उर जगी।
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥10॥

अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणाऽऽनन्दित-मानसः।
तस्य सर्वार्थ संसिद्धिर्, जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।११।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र-हे जिनेन्द्र देव, **तव**-आपके, **दर्शनात्**-दर्शनों के

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

पश्चात्, **गुणाऽऽनन्दित**-आपके गुणों से आनंद युक्त, **मानसः**-मन वाला होकर, **यः**-जो व्यक्ति, **अद्याष्टकम्**-अद्याष्टक स्तोत्र को, **पठेत**-पढ़ता है, **तस्य**-उस भक्त व्यक्ति के, **सर्वार्थ**-समस्त प्रयोजनों की, (अभिलाषाओं की), **संसिद्धि**-प्राप्त हो जाती है।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! आपका दर्शन करते समय जो आपके गुणों में आनंदपूर्वक अपने मन को लगाकर इस अद्याष्टक स्तोत्र को पढ़ता है, उसे आपके दर्शन करने मात्र से सब अर्थों में सिद्धि 'विशद' सर्वार्थसिद्धि प्राप्त हो जाती है।

हे देव! दर्शन आपका कर, अद्य अष्टक जो पढ़े।
प्रमुदित हृदय से मोक्ष पथ पर, शीघ्रता से वह बढ़े।
सब ही प्रयोजन सिद्ध हों यह, 'विशद' भक्ती उर जगी॥
पावन परम चरणों में दृष्टी, आपके मेरी लगी॥11॥

'इति गुणनन्दिकृतम् अद्याष्टक स्तोत्रम्'

अथ घण्टाकर्ण मंत्र

ॐ घण्टाकर्ण महावीरः सर्वव्याधि विनाशकः।
विस्फोटकभयं प्राप्ते, रक्ष रक्ष महाबलः॥1॥

यत्र त्वं तिष्ठसे देव, लिखिताक्षर पंक्तिभिः।
रोगास्तत्र प्रणश्यन्ति, वातपित्तकफोद्भवाः॥2॥

तत्र राज्यभयं नास्ति, यान्ति कर्णे जपात्क्षयम्।
शाकिनी भूतवेताला, राक्षसाः प्रभवन्ति न॥3॥

नाकाले मरणं तस्य, न च सर्पेण दंश्यते।
अग्निचौरभयं नास्ति, ॐ ह्रीं क्लीं घण्टाकर्णः
नमोस्तु ते। ॐ ठः ठः ठः स्वाहा॥4॥

दृष्टाष्टक स्तोत्र

(बसन्ततिलका छन्द)

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि, भव्यात्मनां विभव संभव-भूरिहेतु।
दुग्धाब्धि-फेन-धवलोज्ज्वल-कूटकोटी, नद्धध्वज-प्रकर-राजि-विराजमानं॥1॥

अन्वयार्थ-यत्-जो, **भव्यात्मनां**-भव्य जीवों के, **भवतापहारि**-भवताप को हरने वाला है। **यत्**-जो, **संभव विभव**-अपरिमिंत विभूति की, **भूरिहेतु**-उत्पत्ति का हेतु है। और **दुग्धाब्धि फेन**-दूध व समुद्र फेन के समान, **धवलोज्ज्वल**-धवल व उज्ज्वल, **कूट-कोटी नद्धः**-शिखर के कंगूरों में लगे हुए, **ध्वज प्रकर**-ध्वज पंक्ति, **राजि विराजमानं**-से शोभायमान है। आज मैंने ऐसे **जिनेन्द्र भवनं**-जिनालय के, **दृष्टं**-दर्शन किये हैं।

भावार्थ-जो भव्य जीवों के ताप को हरने वाला है, जो अपरिमित विभूति की उत्पत्ति का हेतु है और जो दूध तथा समुद्रफेन के समान धवलोज्ज्वल शिखर के कंगूरों में लगे हुए ध्वज-पंक्ति से शोभायमान है। आज मैंने ऐसे जिनालय के दर्शन किए॥1॥

श्री जिन भवन के दर्शन करके, भव तापों का होता नाश।
धन वैभव का भव्य जीव के, स्वयं आप ही होता वास॥
क्षीर नीर सम धवल सुउज्ज्वल, कोटि-कोटि शोभित होते।
ध्वजा प्रकर शोभित होता है, भव्यों की जड़ता खोते॥1॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी- धामर्द्धिवर्द्धित-महामुनि-सेव्यमानम्।
विद्याधरामर-वधूजन-मुक्तदिव्य- पुष्पाञ्जलि प्रकर-शोभित-भूमिभागम्॥2॥

अन्वयार्थ-यत्-जो, **भुवनैक लक्ष्मी**-तीन लोक की लक्ष्मी का एक आश्रय है। **यत्**-जो, **धामर्द्धि वर्द्धित**-ऋद्धि संपन्न, **महामुनि**-महामुनियों से, **सेव्यमानम्**-सेव्यमान है और **भूमिभागम्**-जहाँ की भूमि, **विद्याधरामर**-विद्याधरों और देवों की, **वधूजनः**-वधूजनों के द्वारा, **मुक्त दिव्य**-बिखेरी गयी दिव्य, **पुष्पाञ्जलिः**-पुष्पाञ्जलि के कारण, **प्रकर शोभित**-शोभायमान हो रही है-आज मैंने ऐसे, **जिनेन्द्र भवनं**-जिनेन्द्र के, **दृष्टं**-दर्शन किये हैं।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-जो तीन लोक की लक्ष्मी का एक आश्रय है, जो ऋषि सम्पन्न महामुनियों से सेव्यमान हैं और जहाँ की भूमि विद्याधरों और देवों की वधूजनों के द्वारा बिखेरी गयी दिव्य पुष्पाञ्जलि के कारण शोभायमान हो रही है-आज मैंने ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, भुवन एक लक्ष्मी को प्राप्त।
धर्म सरोवर वर्धित होता, महत् मुनी से सेवित आप्त।।
विद्याधर अरु अमर बंधुजन, का है मुक्ति रूप अनुराग।
दिव्य पुष्प अञ्जलि समूह से, शोभित है सारा भू-भाग।।2।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवास-विख्यात-नाक-गणिकागण-गीयमानम्।
नानामणि-प्रचय-भासुर-रश्मिजाल-व्यालीढ-निर्मल-विशाल-गवाक्षजालम्।।3।।

अन्वयार्थ-यत्र-जहाँ पर, **भवनादिवास**-भवनवासी आदि देवों की, **गणिकागण**-गणिकाएँ, **गीयमानम्**-गान कर रही हैं और जिसके, **निर्मल विशाल गवाक्ष जालम्**-निर्मल विशाल गवाक्ष जाल, **नाना मणि प्रचय**-नाना प्रकार की मणियों की, **भासुर रश्मि जाल**-दैदीप्यमान कांति से, **व्यालीढ**-व्याप्त हो रहे हैं। आज मैंने ऐसे, **जिनेन्द्र भवनं**-जिनेन्द्र भवन के, **दृष्टं**-दर्शन किये हैं।

भावार्थ-जहाँ पर भवनवासी आदि देवों की गणिकाएँ गान कर रही हैं और जिसके विशाल गवाक्ष जाल नाना प्रकार की मणियों की दैदीप्यमान कान्ति से कर्बरित हो रहे हैं-आज मैंने ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, भवनादिक देवों में वास।
जग विख्यात स्वर्ग की गणिका, गीयमान गण का आवास।।
नाना मणी समूह से भासुर, विकसित किरणों का विस्तार।
महत् सुनिर्मल शुभम् सुशोभित, गवाक्ष शोभा का आधार।।3।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुर-सिद्ध-यक्ष-गन्धर्व-किन्नर-करार्पित-वेणु-वीणा।
संगीत-मिश्रित-नमस्कृत, धीरनादै-रापूरिताम्बर-तलोरु-दिगन्तरालम्।।4।।

अन्वयार्थ-यत्-जो, **दिगन्तरालम् सुर**-दिगन्तराल देव, **सिद्ध, यक्ष, गंधर्व, किन्नर**-सिद्ध, यक्ष, गंधर्व, किन्नरों के द्वारा, **करार्पित**-हाथ में, **वेणु वीणा**-वेणु निर्मित वीणा लेकर, **नमस्कृत**-नमस्कार करते हुए, **संगीत मिश्रित धीरनादैः**-संगीत मिश्रित गंभीर नाद से, **रापूरिताम्बर तलोरु**-आपूरित हो रहा है। आज मैंने ऐसे **जिनेन्द्र भवनं**-जिनालय के, **दृष्टं**-दर्शन किये हैं।

भावार्थ-जो दिगन्तराल देव, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों के द्वारा हाथ में वेणुनिर्मित वीणा लेकर नमस्कार करते समय किए गए संगीत मिश्रित नाद से आपूरित हो रहा है-आज मैंने ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, सिद्ध यक्ष सुर अरु गंधर्व।
किन्नर कर में वेणू वीणा, लेकर बाद्य बजाते सर्व।।
नृत्य गान कर करें नमन नित, पूरब पश्चिम चारों ओर।
गगन और पृथ्वी में झूमें, भक्तीमय हो भाव विभोर।।4।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोल-मालाकुलालि-ललितालक-विभ्रमाणाम्।
माधुर्यवाद्य-लय-नृत्य-विलासिनीनां, लीला-चलद्वलय-नूपुर-नाद-रम्यम्।।5।।

अन्वयार्थ-यत्-जो, **विलोल**-हिलती हुई, **माला कुलालि**-सुन्दर मालाओं में, **विभ्रमाणाम्**-आकुल हुए, **ललितालक**-भ्रमरों के कारण, **विलसत**-शोभा को धारण कर रहा है। और **यत्**-जो, **माधुर्य-वाद्य**-मधुर शब्द से युक्त वाद्य, **लय-नृत्य**-लय के साथ नृत्य करती हुई, **विलासिनीनां**-वीरांगनाओं की, लीला **चलद्वलय-नूपुर**-माला से हिलते हुए वलय और नुपूर के, **नाद रम्यम्**-नाद से रमणीय प्रतीत होता है। आज मैंने ऐसे **जिनेन्द्रभवनं**-जिनालय के, **दृष्टं**-दर्शन किये हैं।

भावार्थ-जो हिलती हुयी सुन्दर मालाओं में आकुल हुए भ्रमरों के कारण ललित अलकों की शोभा को धारण कर रहा है और जो मधुर शब्द युक्त, वाद्य और लय के साथ नृत्य करती हुयी वीरांगनाओं की माला से हिलते हुए वलय और नूपुर के नाद से रमणीय प्रतीत होता है-आज मैंने ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किये।

श्री जिन भवन क दर्शन करके, विलसत और विलोलित माल।
देख के विभ्रम हो जाता है, ललितालक है शुभम् कुलाल।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

मधुर वाद्य लय नृत्य विलासी, लीला चलद वलय अभिराम।
नुपूर से हो रम्यनाद अति, जिन चैत्यालय पूजा धाम॥5॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणि-रत्न-हेम, सारोज्ज्वलैः कलश-चामर-दर्पणाद्यैः।
सन्मंगलैः सततमष्टशत्-प्रभेदै-, र्विभ्राजितं विमल-मौक्तिक-दामशोभम्॥6॥

अन्वयार्थ-यत्-जो, **मणि-रत्न**-मणि, रत्न, **हेम**-स्वर्ण से निर्मित, **सततं अष्टशतः प्रभेदैः**-निरन्तर एक सौ आठ प्रकार के, **कलश, चामर दर्पणाद्यैः**-कलश, चामर और दर्पण आदि, **सारोज्ज्वलैः सन्मंगलैः**-उज्ज्वल, समीचीन, मंगलद्रव्यों से, **विभ्राजितं**-शोभित हो रहा है। और **यत्**-जो, **विमल मौक्तिक दाम शोभम्**-निर्मल, मोती की मालाओं से सुशोभित है। आज मैंने ऐसे **जिनेन्द्र भवनं**-जिनालय के, **दृष्टं**-दर्शन किये हैं।

भावार्थ-जो मणि, रत्न और स्वर्ण से निर्मित निरन्तर एक सौ आठ प्रकार के कलश, चामर और दर्पण आदि समीचीन मंगलद्रव्यों से शोभित हो रहा है और जो निर्मल मौक्तिक मालाओं से सुशोभित है-आज मैंने ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, उज्ज्वल हेममणीमय भव्य।
हेम रत्नमय कलश सुचामर, दर्पण आदि सुमंगल द्रव्य॥
एक सौ आठ द्रव्य शुभ राजित, मणि मुक्तामय अपरंपार।
इत्यादिक शोभा से मण्डित, चैत्यालय है मंगलकार॥6॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेवदारु-कर्पूर-चन्दन-तरुष्क-सुगन्धि-धूपैः।
मेघायमानगगने पवनाभिघात-चञ्चच्चलद्विमल-केतन-तुंगशालम्॥7॥

अन्वयार्थ-यत्-जो, **तुंग शालम्**-उतंग शाल, **वरदेवदारु**-उत्तम प्रकार के देवदारु, **कर्पूर चंदन तरुष्क**-कपूर, चंदन और तरुष्क आदि, **सुगंधि-धूपैः**-सुगंधित द्रव्यों से बने हुए सुगंधित धूप से निकले हुए धूम्र के कारण, **मेघायमान गगनं**-बादलों से आच्छादित आकाश की तरह प्रतीत होता है तथा, **पवनाभिघात**-पवन के अभिघात से, **चंचलद्विमल-केतन**-हिलती हुई पताकाओं से युक्त हो रहा है। आज मैंने ऐसे **जिनेन्द्र भवनं**-जिनालय के, **दृष्टं**-दर्शन किये हैं।

भावार्थ-जो उत्तुंग शाल, उत्तम प्रकार के देवदारु, कपूर चन्दन और तरुष्क आदि सुगंधित द्रव्यों से बने हुए सुगन्धित धूप से निकले हुए धूम्र के कारण मानों आकाश में मेघ ही छाए हों, इस प्रकार की विचित्र शोभा के लिए पवन के अभिघात से हिलती हुयी पताकाओं से युक्त हो रहा है-आज मैंने ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, श्रेष्ठ देव दारू कर्पूर।
चंदन तरु से प्राप्त सुगंधित, धूप मनोहर है भरपूर॥
मेघ सुविघटित होता है ज्यों, गगन मध्य में शोभामान।
विमल शाल उत्तुंग सुकेतन, चंचल चलद है आभावान॥7॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं धवलात-पत्रच्-छाया-निमग्न-तनु-यक्षकुमार-वृन्दैः।
दोधूयमान-सित-चामर-पंक्तिभासं,भामण्डल-द्युति-युत-प्रतिमाभिरामम्॥8॥

अन्वयार्थ-यत्-जो, **धवलात पत्रच्**-धवल आतपत्र की, **छाया निमग्न**-छाया में लीन हुए, **यक्षकुमार वृन्दैः**-यक्ष कुमारों के समूह के कारण तथा, **दोधूयमान**-ढुरते हुए, **सित चामर**-शुक्ल चामरों की, **पंक्तिभासं**-पंक्ति की शोभा को धारण करता है और जो, **भामण्डल द्युति**-भामण्डल की द्युति से, **युत**-सहित, **प्रतिमाभिरामं**-प्रतिमाओं के कारण अत्यन्त अभिराम लग रहा है। आज मैंने ऐसे **जिनेन्द्र भवनं**-जिनालय के, **दृष्टं**-दर्शन किये हैं।

भावार्थ-जो धवल आत पत्र की छाया में लीन हुए यक्ष-कुमारों के कारण तथा ढुरते हुए शुक्ल चमरों की पंक्ति की शोभा को धारण करता है और जो भामण्डल की द्युति से युक्त प्रतिमाओं के कारण अत्यन्त अभिराम लग रहा है-आज मैंने ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, धवल पत्र शोभित पावन।
छाया में रहते निमग्न तनु, यक्षकुमार सुमन भावन॥
दुग्ध फेन सम श्वेत सुचामर, पंक्तिबद्ध शोभित सुखधाम।
कांति युक्त भामण्डल अनुपम, प्रतिमा शोभित है अभिराम॥8॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकार-पुष्पोहार-रमणीय-सुरत्नभूमि।
नित्यं वसन्ततिलक-श्रियमादधानं, सन्मंगलं-सकल-चन्द्र-मुनीन्द्र-वन्द्यम्॥9॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-**विविध प्रकार**-नाना प्रकार के, **पुष्पोहार**-पुष्पों के उपहार से जहाँ की, **सुरत्न भूमि**-रत्नभूमि, **रमणीय**-रमणीय लग रही है, **यत्**-जो, **नित्यं वसंत तिलकं**-हमेशा बसंत ऋतु में तिलक यानि वृक्ष की, **श्रियमादधानं**-शोभा को धारण करता है **व सन्मंगलं**-जो सर्वोत्तम मंगल रूप है, **सकल चंद्र मुनीन्द्र वन्द्यम्**-और जो समस्त श्रेष्ठ मुनिगणों के द्वारा वंदनीय हैं। आज मैंने ऐसे **जिनेन्द्र भवनं**-जिनालय के, **दृष्टं**-दर्शन किये हैं।

भावार्थ-नाना प्रकार के पुष्पों के उपहार के कारण जहाँ की सुन्दर रत्नभूमि रमणीय लग रही है, जो निरन्तर बसन्त ऋतु में तिलक वृक्ष की शोभा को धारण करती है, जो सर्वोत्तम मंगलरूप है और जो समस्त श्रेष्ठ मुनिगणों के द्वारा वन्दनीय हैं-आज मैंने ऐसे जिनेन्द्र भवन के दर्शन किए।

श्री जिन भवन के दर्शन करके, विविध प्रकार पुष्प उपहार।
भूमी पर शोभित होते हैं, अति रमणीय सुरत्न अपार॥
नित्य बसन्त तिलक सम आश्रय, होय प्राप्त शुभ अपरंपार।
सकल सुमंगल चन्द्र मुनीन्द्रों से, वंदित हैं बारंबार॥9॥

दृष्टं मयाद्य मणि-काञ्चन-चित्र-तुंग-सिंहासनादि-जिनबिंब-विभूतियुक्तम्।
चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे, सन्मंगलं सकल-चन्द्र-मुनीन्द्र-वन्द्यम्॥10॥

अन्वयार्थ-**यत्**-जो, **मणि कांचन**-मणि व कांचन के कारण, **चित्र तुंग**-विचित्र शोभा को लिए हुए उत्तुंग, **सिंहासनादि**-सिंहासन आदि, **विभूति-युक्तं**-विभूति से युक्त, **जिनबिंब**-जिनबिंब सा शोभायमान हो रहा है। **यत् अतुलं**-जिसकी अनुपम, **परिकीर्तितं मे**-कीर्ति गायी जाती है। **यत्**-जो, **सन्मंगलं**-मेरे लिए मंगल स्वरूप है। और जो, **सकल चंद्र मुनीन्द्र वंद्यं**-समस्त श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा वंदनीय है। आज मैंने ऐसे **जिनेन्द्र भवनं**-जिनेन्द्र भवन के, **दृष्टं**-दर्शन किये हैं।

भावार्थ-जो मणि और कांचन के कारण विचित्र शोभा को लिए हुए उत्तुंग सिंहासन आदि विभूति से युक्त जिनबिम्ब सा शोभायमान हो रहा है, जिसकी निरूपम कीर्ति गाई जाती है, जो मेरे लिए मंगलस्वरूप है

और जो समस्त श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा वन्दनीय हैं-आज मैंने ऐसे जिन चैत्यालय के दर्शन किए।

मणि काञ्चनमय तुंग सुचित्रित, सिंहासन आदिक जिनबिम्ब।
अति शोभा से युक्त जिनालय, कीर्तिमान होता प्रतिबिंब॥
'विशद' जिनालय देखा मैंने आज महामह अपरंपार।
सफल सुमंगल चन्द्र मुनीन्द्रों, से वंदित है बारम्बार॥10॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

लघु वीतराग स्तोत्र

शिवं शुद्ध बुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बन्धुर् न कर्मा न कर्त्ता।
न अंगं न संगं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम् १

अन्वयार्थ-(मैं अर्थात् शुद्धात्मा) **न देवो**-न देव, **न बन्धुः**-न किसी का बन्धु (भाई), **न कर्मा**-न कर्म, **न कर्त्ता**-न कर्त्ता (कर्म करने वाला), **न अंगं**-न अंग (मेरे अवयव-अंग नहीं/मैं खण्ड हूँ), **न संगं**-न मेरे परिग्रह, **न स्वेच्छा**-न इच्छा, **न कायं**-न शरीर रूप (हूँ, मैं तो) **शिवं**-परमानंद रूप, **शुद्ध बुद्धं**-शुद्ध और बुद्ध (ज्ञान स्वरूप), **परं**-उत्कृष्ट, **विश्वनाथं**-तीनों लोकों के नाथ, **चिदानंद रूपं**-चैतन्य के आनंद स्वरूप, **वीतराग**-(देव) अर्थात् अष्टादश दोष रहित परमात्मा को, **नमः**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-मैं न देव, कुटुम्बी, कर्त्ता, कर्म, अंग, परिग्रह, स्वेच्छा और न शरीर रूप हूँ। मैं यानि यह आत्मा मोक्ष स्वरूप शुद्ध, बुद्ध, उत्कृष्ट परम और तीनों लोकों का स्वामी है। ऐसी आत्मा के आनंद स्वरूप वीतरागता को मैं नमस्कार करता हूँ।

शुद्ध बुद्ध शिव विश्वनाथ पर, कर्ता कर्म न बंधूदेव।
अंग संग न स्वेच्छा कायं, नमो निःसंग चिदानंद एव॥1॥

न बंधो न मोक्षो न रागादिदोषः, न योगं न भोगं न व्याधिर् न शोकम्।
न कोपं न मानं न माया न लोभं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।२।।

अन्वयार्थ-(यह आत्मा) **बन्धः न**-बंध रूप नहीं, **मोक्षो न**-मोक्षरूप नहीं, **रागादि दोषः न**-रागादि दोष रूप नहीं, **योगं न**-योग रूप नहीं, **भोगं न**-भोग रूप नहीं, **व्याधिः न**-व्याधि रूप नहीं, **शोकं न**-शोक रूप नहीं, **कोपं न**-क्रोध रूप नहीं, **मानं न**-मान रूप नहीं, **माया न**-माया रूप नहीं, **लोभं न**-लोभ रूप नहीं हूँ, **चिदानंद रूपं**-चैतन्य के आनंद स्वरूप, **वीतरागम्**-वीतराग परमात्मा को, **नमः**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-यह आत्मा बन्ध, मोक्ष, राग, द्वेष, मोह, लोभ, मन, वचन, काय,

भोग, व्याधि, शोक, क्रोध, मान माया, लोभ, स्वरूप नहीं है, ऐसी आत्मा के आनंद स्वरूप वीतरागता को मैं नमस्कार करता हूँ।

बंध मोक्ष रागादि दोष न, योग भोग व्याधी न शोक।
क्रोध मान न माया लोभं, नमो निःसंग चिदानंद एव॥2॥

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा, न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यः न देवो न मर्त्यः, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।३।।

अन्वयार्थ-(यह आत्मा) **हस्तौ न**-हाथ रूप नहीं, **पादौ न**-पाद रूप नहीं, **घ्राणं न**-घ्राण रूप नहीं, **जिव्हा न**-जीभ रूप नहीं, **चक्षुः न**-आँख रूप नहीं, **कर्ण न**-कर्ण रूप नहीं, **वक्त्रं न**-मुँह रूप नहीं, **निद्रा न**-निद्रा (नींद) रूप नहीं, **स्वामी न**-स्वामी (मालिक) रूप नहीं, **भृत्यः न**-नौकर रूप नहीं, **देवः न**-देव रूप नहीं, **मर्त्यः न**-मनुष्य रूप नहीं, **चिदानन्द रूपम्**-चैतन्य के आनंद स्वरूप, **वीतरागम्**-वीतराग (देव) अर्थात् अष्टादोष रहित परमात्मा को, **नमः**-नमन करता हूँ।

भावार्थ-यह आत्मा हाथ, पैर, नाक, जीभ, नेत्र, कान, मुँह, निद्रा, आकार स्वरूप नहीं है और देव, मनुष्य, नौकर, मालिक भी नहीं है। ऐसी आत्मा के आनंद स्वरूप वीतरागता को मैं नमस्कार करता हूँ।

हस्त पाद न घ्राणं जिह्वा, भृत्य मर्त्य स्वामी न देव।
चक्षु कर्ण न वक्त्रं निद्रा, नमो निःसंग चिदानंद एव॥3॥

न जन्मं न मृत्युं न मोहं न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न स्थूलं।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।४।।

अन्वयार्थ-(आत्मा का) **जन्मं न, मृत्यु नं**-जन्म-मरण नहीं होता, **मोहं न चिंता न**-वह मोह व चिन्ता से दूर है, (यह आत्मा), **क्षुद्रो न**-क्षुद्र रूप नहीं, **भीतो न**-भयभीत रूप नहीं, **कार्श्यं न**-खासी से रहित है, **स्थूलं न**-स्थूल भी नहीं है, **स्वेदं न**-पसीना रूप नहीं है, **खेदं न**-दुःख रूप नहीं है, **वर्णं न मुद्रा न**-रंग व आकार रूप नहीं है, **चिदानन्द रूपम्**-चैतन्य के आनन्द स्वरूप, **वीतराग**-वीतराग

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

(देव) अर्थात् अष्टादस दोष रहित परमात्मा को, **नमः**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-आत्मा का जन्म मरण नहीं होता, वह मोह चिंता से दूर है, यह आत्मा क्षुद्र, भयभीत, खांसी, प्रमाद, पसीना, दु:ख रूप नहीं है। आत्मा का रंग व आकार नहीं होता, ऐसी आत्मा के आनंद स्वरूप वीतरागता को मैं नमस्कार करता हूँ।

क्षुद्र शीत न कार्श्यं तन्द्रा, जन्म मृत्यु न चिंता मोह।
स्वेद खेद न मुद्रा वर्णं, नमो निःसंग चिदानंद एव॥4॥

त्रिदण्डे त्रिखण्डे हरे विश्वनाथं, हृषीकेश विध्वस्त कर्मादि जालम्।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि गात्रं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।५।।

अन्वयार्थ-(यह आत्मा) **त्रिदण्डे**-तीन दण्ड का धारी, **त्रिखण्डे हरे**-तीन खण्ड का अधिपति नारायण, **विश्वनाथं**-विश्व का स्वामी, **हृषीकेश**-ऋषिकेश, **विध्वस्त कर्मादि जालं**-कर्म के समूह को नाश करने वाले, **पुण्यं न पापं न चाक्षादि गात्रं न**-पुण्य, पाप तथा नेत्रादि शरीर स्वरूप नहीं है, **चिदानन्द रूपम्**-चैतन्य के आनन्द स्वरूप, **वीतराग**-वीतराग (देव) को, **नमः**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-यह आत्मा तीन दण्ड का धारी, तीन खण्ड का अधिपति नारायण, विश्व का स्वामी, कर्म के समूह को नाथ करने वाला, ऋषिकेश, पुण्य, पाप, नेत्रादि शरीर स्वरूप नहीं है। ऐसी आत्मा के आनंद स्वरूप वीतरागता को नमस्कार हो।

विश्वनाथ त्रिदण्ड त्रिखण्डे, पुण्य पाप चाक्षादि न गात्र।
कर्मजाल विध्वस्त हृषीकेश, नमो निःसंग चिदानंद एव॥5॥

न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो, न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर् न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तन्द्रा, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।६।।

अन्वयार्थ-(यह आत्मा) **बालो न**-बालक रूप नहीं, **वृद्धो न**-वृद्ध रूप नहीं, **तुच्छो न**-हीन रूप नहीं, **मूढो न**-मूढ़ रूप नहीं, **स्वेदं न**-स्वेद रूप नहीं, **भेदं न**-भेद रूप नहीं, **मूर्तिः न**-मूर्ति रूप नहीं, **स्नेह न**-स्नेह रूप नहीं, **कृष्णं न**-काला रूप नहीं, **शुक्लं न**-गोरा रूप नहीं, **मोहं न**-मोह रूप नहीं, **तन्द्रा न**-तन्द्रा रूप नहीं, **चिदानंद रूप**-चैतन्य के आनन्द स्वरूप, **वीतराग**-वीतराग (देव) को, **नमः**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-यह आत्मा बालक, वृद्ध, हीन, मूर्ख, स्वेद, भेद, मूर्तिक स्नेह, काला, गोरा, मोह और तन्द्रा रूप नहीं है। ऐसी आत्मा के आनंद स्वरूप वीतरागता को नमस्कार हो।

बाल वृद्ध न तुच्छ मूढ़ न, स्वेद भेद न मूर्ति स्नेह।
कृष्ण शुक्ल न मोहं तंद्रा, नमो निःसंग चिदानंद एव॥6॥

न आद्यं न मध्यं न अंतं न मन्या, न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।७।।

अन्वयार्थ-(यह आत्मा) **आद्यं न**-आदि रूप नहीं, **मध्यं न**-मध्य रूप नहीं, **अंतं न**-अंत रूप नहीं, **अन्या न**-अन्य (दूसरा) रूप नहीं, **द्रव्यं न**-द्रव्य रूप नहीं, **क्षेत्र न**-क्षेत्र रूप नहीं, **कालोः न**-काल रूप नहीं, **भावः न**-भाव रूप नहीं, **शिष्यः न**-शिष्य रूप नहीं, **गुरुः न**-गुरु रूप नहीं, **हीनं दीनं न अपि**-हीन व भिखारी रूप भी नहीं है, **चिदानंद रूपं**-चैतन्य के आनंद स्वरूप, **वीतरागम्**-वीतराग (देव) को, **नमः**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-यह आत्मा आदि मध्य, अंत, दूसरा, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुरु, शिष्य, हीन, भिखारी रूप नहीं है। ऐसी आत्मा के आनंद स्वरूप वीतरागता को मैं नमस्कार करता हूँ।

अद्य मध्य न अंतं मन्या, द्रव्य क्षेत्र न कालो भाव।
दीन हीन गुरु शिष्य 'विशद' न, नमो निःसंग चिदानंद एव॥7॥

इदं ज्ञान रूपं स्वयं तत्त्व वेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्यं स्वरूपी।
न चान्यो न भिन्नं न परमार्थ-मेकं, चिदानन्द रूपं नमो वीतरागम्।।८।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-**इदं**-यह आत्मा, **स्वयं ज्ञानरूपं**-स्वयं ज्ञानस्वरूप है, **तत्त्व वेदी**-तत्त्वों को जानने वाली है, **पूर्णं न**-पूर्ण रूप नहीं, **शून्य न**-शून्य रूप नहीं, **चैत्यं स्वरूपी न**-प्रतिमा रूप नहीं, **च**-और, **अन्यः न**-अन्य रूप नहीं है, **भिन्नं न**-भिन्न नहीं है, **परमार्थं एकम् न**-एक परमात्मा रूप नहीं, **चिदानंद रूपं**-चैतन्य के आनंद स्वरूप, **वीतरागम्**-वीतराग (देव) को, **नमः**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-यह आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, तत्त्वों को जानने वाली है। पूर्ण, शून्य, प्रतिमा रूप नहीं है और अन्य रूप नहीं है और न भिन्न है, न एक परमात्मा रूप है। ऐसी आत्मा के आनंद स्वरूप 'विशद' वीतरागता को मैं नमस्कार करता हूँ।

ज्ञान रूप ये तत्त्व स्ववेदी, अन्य भिन्न परामर्थ न एक।
पूर्ण शून्य न चैत्य स्वरूपी, नमो निःसंग चिदानंद एव॥8॥

आत्माराम गुणाकरं गुणनिधिं चैतन्य रत्नाकरम्।
सर्वे भूत गतागते सुख दुःखे ज्ञाते त्वया सर्वगे
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा ध्यायंति योगीश्वराः।
वंदे तं हरिवंश हर्ष हृदयं श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम्।।६।।

अन्वयार्थ-**त्वया**-आपके द्वारा, **सर्वे**-समस्त, **सर्वगे**-सर्वत्र व्याप्त, **भूतगतागते**-विगत भूत एवं भविष्यकालीन, **सुख-दुःखे ज्ञाते**-सुख-दुःखों को जान लिया गया है, (जिन्हें) **योगीश्वराः**-मुनीश्वर गण, **स्वयं स्वमनसा**-स्वयं अपने हृदय से, **ध्यायन्ति**-ध्यान करते हैं, **त्रैलोक्याधिपते**-हे त्रिलोकीनाथ! (मैं), **आत्माराम गुणाकरम्-गुणनिधिम्**-आत्म गुणों के आकर, गुणों के खजाने रूप, **चैतन्य रत्नाकरं**-चैतन्य गुणों को आकर (निधान), **हरिवंश हर्ष हृदयम्**-हरिवंश के हृदय को हर्षित करने वाले, **श्रीमान्**-अंतरंग व बहिरंग लक्ष्मी के युक्त भगवान, **हृदाभ्युद्यताम्**-मेरे हृदय को भी आनन्दित करें। **तं**-उनको, **वन्दे**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-आत्मगुणों के आकर (समूह) गुणों के खजाने तथा चैतन्य गुणों के रत्नाकर तथा सम्पूर्ण भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल संबंधी

सुख-दुःख के जानने वाले सर्वज्ञ हैं। हे देव! आप तो तीनों लोकों के स्वामी हो, तुम्हें मुनीश्वर अपने हृदय में सदैव ध्यान करते हैं। ऐसे हरिवंश के हृदय को प्रफुल्लित करने वाले भगवान मेरे भी हृदय को आनंदित करें। इसलिए उस वीतरागता को मैं नमस्कार करता हूँ।

गुण निधि गुणकर आत्मराम हे! अद्भुत चेतन रत्नाकर।
भूत, भविष्यत् वर्तमान सब, सुख दुख ज्ञाता करुणाकर॥
तीन लोक के जिन अधिपति को, योगी-जन मन से ध्याते।
हरीवंश के श्रीमान् का, वंदन कर उर हर्षाते॥9॥

अथ श्री वज्रपंजर स्तोत्र

परमेष्ठी नमस्कारं, सारं नवपदात्मकं।
आत्मरक्षाकरं मंत्रं, पंजरं सस्मराम्यहं।।1।।
ॐ णमो अरिहंताणं, शिरस्कंध शिरसंस्थितम्।
ॐ णमो सिद्धाणं, मुखे मुख पटंवरम्।।2।।
ॐ णमो आयरियाणं, अंग रक्षाति सायिणीम्।
ॐ णमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तयोर्दृढ़म्।।3।।
ॐ णमोलोएसव्वसाहूणं, मोचकेपादयोः शुभे।
सो पंच णमोयारो, शिववज्रमयी तले।।4।।
सव्वपावप्पणासणो, शिवज्रो वज्रमयो मही।
मंगलाणं च सव्वेसिं, वीतरागादि खातका।।5।।
स्वाहा पंच पदं ज्ञेयं, पढमं हवइ मंगलम्।
वज्रो परिवज्रमयं ज्ञेयं, विधानं देह रक्षणे।।6।।
महाप्रभाव रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रव नाशिनी।
परमेष्ठि पदोद्धुत्ता, कथितापूर्व सूरिभिः।।7।।
यश्चैवं कुरुते रक्षा, परमेष्ठि पदैः सदा।
तस्य तस्माद् भयं व्याधि-राधिश्चापि कदापि न।।8।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

गोम्मटेस-अष्टक

(उपजाति छन्द)

विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं, सुलोयणं चंद-समाण-तुण्डं।
घोणाजियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥1॥

अन्वयार्थ-सुलोयणं-जिनके उत्तम नेत्र, **कंदोट्ट**-नीलकमल, **दलाणुयारं**-दल के अनुशरण को, **विसट्ट**-छोड़ने वाले अर्थात् उससे भी सुंदर हैं, **तुण्डं**-मुख, **चंद समाण**-चन्द्रमा के समान सौम्य तथा, **घोणा**-नासिका, **चम्पय-पुप्फसोहं**-चम्पक पुष्प की शोभा को, **जियं**-जीतता है (पराजित करती है), **तं**-उन, **गोम्मटेसं**-गोम्मट स्वामी को, **णिच्चं**-(मैं) नित्य, **पणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-जिनके सुन्दर मृणाल सहित नीलकमल की पांखुड़ी का अनुशरण करते हैं, जिनका मुख चन्द्र-मण्डल के समान सुशोभित है और जिनकी नासिका चम्पक पुष्प की शोभा को पराजित करती है, ऐसे उन गोम्मटेश-बाहुबली को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

चन्द्र समान सुमुख अति सुंदर, लोचन नील कमल दल रूप।
चंपक पुष्प पराजित होता, देख नाशिका का स्वरूप॥
कामदेव पद से शोभित हैं, बाहुबली है जिसका नाम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम॥1॥

अच्छाय-सच्छं जलकंत-गण्डं, आबाहु-दोलंत-सुकण्णपासं।
गइन्द-सुण्डुज्जल-बाहुदण्डं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥2॥

अन्वयार्थ-जलकंत गण्डं-जल के समान स्वच्छ कपोल, **सुकण्ण पासं**-कर्णपाश, **आबाहु दोलंत**-स्कन्धों तक दोलायित हैं, **बाहुदण्डं**-दोनों भुजाएँ, **गइंद सुण्डुज्जल**-गजराज की सूण्ड के समान सुन्दर लंबी हैं, **तं**-उन, **अच्छाय सच्छं**-आकाश के समान निर्मल, **गोम्मटेसं**-गोम्मट स्वामी को, **णिच्चं**-(मैं) नित्य, **पणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-जिनकी देह आकाश की भाँति निर्मल है, जिनके कपोल जल

के समान स्वच्छ हैं, जिनके कर्ण पल्लव स्कन्धोंतक दोलायित हैं, जिनकी दोनों भुजाएँ गजराज की सूण्ड के समान सुन्दर लगती हैं, ऐसे उन गोम्मटेश बाहुबली को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

जिनके स्वच्छ सुनिर्मल जल सम, शोभित सुन्दर उभय कपोल।
कर्ण कंध पर्यंत झूलते, बालों की संरचना गोल॥
गज सुण्डासम उभय भुजाएँ, गगन रूप शोभित अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम॥2॥

सुकण्ठ-सोहा-जिय दिव्व-संखं, हिमालयुद्दाम-विसाल-कंधं।
सुपेक्खणिज्जायल-सुट्ठु-मज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥3॥

अन्वयार्थ-(परज्ञस)-अपने, **सुकण्ठसोहा**-अद्वितीय कंठ की शोभा से, **(ये)**- जिन्होंने, **दिव्वसंखं**-अनुपम शंख की शोभा को, **जिय**-जीत लिया है, **यस्य कंधं**-जिनका वक्षस्थल, **हिमालयुद्दाम**-हिमालय की भाँति उन्नत, **च**-और, **विसाल**-उदार है, **यस्य**-जिनका, **सुट्ठु मज्झं**-सुन्दर मध्यभाग/कटि प्रदेश, **सुपेक्खणिज्जायल**-सम्यक् अवलोकनीय है और अचल है, **तं गोम्मटेसं**-उन गोम्मट स्वामी को, **णिच्चं**-(मैं) नित्य, **पणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-अपने विलक्षण कण्ठ की शोभा से जिन्होंने दिव्य शंख की शोभा-सुषमा को जीत लिया है, जिनका वक्षस्थल हिमालय की भाँति उन्नत और उदार है, जिनका कटि प्रदेश सुदृढ़ और प्रेक्षणीय है; ऐसे उन गोम्मटेश-बाहुबली को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

दिव्य शंख की शोभा को भी, जीत रहा है सुंदर कंठ।
विशद हिमालय की भाँती है, वक्षस्थल जिनका उत्कंठ॥
अचल सुसुंदर कटि प्रदेश है, सुदृढ़ प्रेक्षणीय अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम॥3॥

विंय्झायलग्गे पविभासमाणं, सिंहामणि सव्व-सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥4॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-विंज्झायलग्गे-विन्ध्यगिरि के अग्रभाग में, **पविभासमाणं**-जो प्रकाश मान हो रहे हैं, **सव्व सुचेदियाणं**-सभी सुन्दर चैत्यों के, **सिंहामणि**-शिखामणि तथा, **तिलोय संतोसय**-तीन लोक के जीवों को आनन्द देने में, **पुण्णचंदं**-जो पूर्ण चंद्रमा हैं, **तं**-उन, **गोम्मटेसं**-गोम्मट स्वामी को, **णिच्चं**-(मैं) नित्य, **पणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-विन्ध्यगिरि के अग्रभाग में जो अनुपम कान्ति से दमक रहे हैं, विंध्याचल के पर्वत में जो तपस्यालीन हैं और सब भव्य जनों के लिए जो वैराग्यरूपी प्रासाद के शिखर की शिखामणि हैं, तथा तीन लोक के जीवों को आनन्द प्रदान करने में जो पूर्ण चन्द्रमा के समान हैं, ऐसे उन गोम्मटेश-बाहुबली को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

विंध्यगिरि के अग्र भाग पर, शुभम् कांति से दमक रहे।
सब चैत्यों के शिखामणि हो, पूर्ण चाँद सम चमक रहे॥
तीन लोकवर्ती जीवों को, सुख देते अनुपम अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम॥4॥

लया-समक्कंत-महासरीरं, भव्वावलीलद्ध-सुकप्परुक्खं।
देविंदविंदच्चिय-पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥5॥

अन्वयार्थ-लयासमक्कंत-लताओं से आक्रान्त (जिनका), **महासरीरं**-विशाल शरीर है, **भव्वावलीलद्ध)**-भव्य समूह के लिए प्राप्त, **सुकप्प रुक्खं**-कल्पवृक्ष तथा, **देविंदविंदच्चिय**-देवेन्द्रों के द्वारा अर्चित जिनके, **पायपोम्मं**-चरण कमल है, **तं**-उन, **गोम्मटेसं**-गोम्मट स्वामी को, **णिच्चं**-(मैं) नित्य, **पणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-जिस कामदेव के सुविशाल शरीर पर चरण से भुजाओं तक माधवी लताएँ लिपटी हुई हैं, भव्यों के लिए जो कल्पवृक्ष जैसे फल प्रदाता हैं, और देवेन्द्र समूह जिनके चरण कमलों की अर्चना-पूजा करते हैं; ऐसे उन गोम्मटेश-बाहुबली को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

लिपटी महत् लताएँ जिनके, महत् देह पर चारों ओर।
कल्पवृक्ष सम भवि जीवों को, कर देते हैं भाव विभोर॥

देवेन्द्रों के द्वारा अर्चित, चरण कमल जिनके अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम॥5॥

दियंबरो जो ण च भीइ-जुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि-जंतु-प्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥6॥

अन्वयार्थ-जो दियंबरो-जो दिगम्बर हैं, **च**-और, **भीइजुत्तो-भययुक्तगण**-नहीं है अर्थात् निर्भय हैं, **च**-और, **ण अंबरे**-न वस्त्रादि में, **सत्तमणो**-आसक्त मनवाले हैं, **विसुद्धो**-विशुद्ध हैं, **सप्पादि जंतु**-सर्पादि जंतुओं से, **प्फुसदो**-स्पर्श होने पर भी, **ण कंपो**-कम्पायमान नहीं है, **तं**-उन, **गोम्मटेसं**-गोम्मट स्वामी को, **णिच्चं**-(मैं) नित्य, **पणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-जो दिगम्बर श्रमण हैं, सप्त-भय से विप्रमुक्त हैं, अभीत हैं, वस्त्र-वल्कलादि पर आसक्त मन वाले नहीं हैं और विषधर-नागराजादि जन्तुओं से दुरावृत होने पर भी अकम्प-अविचल हैं; ऐसे उन गोम्मटेश-बाहुबली को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

पूर्ण दिगंबर निर्भय साधक, जो हैं जिन आतम के भक्त।
मन विशुद्ध जिनका वस्त्रों में, होता नहीं कभी आसक्त॥
सर्पादिक की फुंकारों से, कंपित न होते अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम॥6॥

आसां ण जो पोक्खदि सच्छदिट्ठी, सोक्खे ण वाञ्छा हयदोसमूलं।
विरायभावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥7॥

अन्वयार्थ-सच्छदिटिठ-जो स्वस्थ (सम) दृष्टी होने से, **आशा**-आशा (तृष्णा) को, **ण पोक्खदि**-पुष्ट नहीं करते, **हयदोस मूलं**-दोषों का मूल (मोह) नाश करने से, **सोक्खे**-जिनकी सुख में, **ण वांछा**-वाञ्छा नहीं और, **विरायभावं**-विराग भाव होने से, **भरहे**-भरत (भाई) में, **विसल्लं**-जो निशल्य हैं, **तं**-उन, **गोम्मटेसं**-गोम्मट स्वामी को, **णिच्चं**-(मैं) नित्य, **पणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-जो स्वस्थ (सम) दृष्टी होने से आसा (तृष्णा) को पुष्ट नहीं

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

करते, स्वदोषों के समूल विनष्ट होने से जिन्हें सांसारिक सुखों की वांछा नहीं रही और अग्रज भरत के प्रति जो संज्वलनमान था, वह अब वैराग्य में परिणत होगया है; ऐसे निःकांक्षित गोम्मटेश बाहुबली को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

स्वच्छ दृष्टि शुभ बुद्धी वाले, दोष मूल है मोह विहीन।
नाश किया उस महाबली को, सुख की आशा से भी हीन॥
किया पराजित भ्रात भरत को, शल्य रहित शोभित अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम॥7॥

उप्पाहि-मुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय मोह-हारयं।
वस्सेय-पज्जंत-मुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥8॥

अन्वयार्थ-उप्पाहि मुत्तं-जो उपाधि से रहित हैं, **धण धाम**-धन मकानादिसे, **वज्जियं**-रहित, **सुसम्मजुत्तं**-समता भाव सहित हैं तथा, **मय मोह हारयं**-मद मोह को नष्ट करने वाले हैं, **वस्सेय-पज्जंतम्**-एक वर्ष पर्यंत, **उववास जुत्तं**-उपवास धारण करने वाले, **तं**-उन, **गोम्मटेसं**-गोम्मट स्वामी को, **णिच्चं**-(मैं) **नित्य पणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-जो समस्त उपाधि, मद परिग्रह से मुक्त हैं, धन और धाम का जिन्होंने अन्तरंग से ही परित्याग कर दिया है एवं मोह, राग और द्वेष को जिन्होंने तप द्वारा जीत लिया है, जो क्षायिकभाव में स्थित हैं तथा पूरे एक संवत्सर (वर्ष) तक जिन्होंने अखण्ड उपवास व्रत किया है; ऐसे गोम्मटेश बाहुबली को मैं नित्य, 'विशद' प्रणाम करता हूँ।

सर्व परिग्रह रहित आप हैं, धन अरु धाम के त्यागी देव।
मद अरु मोह जीतने वाले, क्षायिक समदृष्टी हैं एव॥
एक वर्ष पर्यंत अखंडित, 'विशद' किया अनशन अभिराम।
विश्व वंद्य श्री गोमटेश पद, मेरा बारंबार प्रणाम॥8॥

णाण रूपेइ कम्भंणाण वलेण वोल्लह अण्णाणी।
वेज्जो भेझज्ज-महं जाणे इदि णस्सदे वाही॥ र.सा.

सरस्वती स्तोत्र

(बसन्ततिलका छन्द)

चन्द्रार्क-कोटि-घटितोज्ज्वल दिव्यमूर्ते,
श्री चन्द्रिका कलित निर्मल शुभ्र वस्त्रे।
कामार्थदायि कलहंस समाधि रूढ़े,
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि!।।१।।

अन्वयार्थ-चन्द्रार्क-कोटि-करोड़ों चन्द्रमा और सूर्यों से, **घटितोज्ज्वल**-एकत्रित शुभ्र तेज युक्त, **दिव्यमूर्ते**-दिव्यमूर्ति स्वरूप (संबोधन), हे सरस्वती देवी! **श्री चन्द्रिका**-चन्द्रकिरणों से, **कलित**-संकलित, (एकत्रित/सुसज्जित), **निर्मल**-अत्यन्त स्वच्छ, **शुभ्रवस्त्रे**-श्वेत वस्त्रों को धारण करने वाली (हे सरस्वती देवी), **कामार्थदायि**-सकल कामनाओं के पदार्थों को देने वाली **कलहंस**-राजहंस पर, **समाधिरूढ़े**-अधिरूढ़ अर्थात् बैठी हुई, **वागीश्वरि**-सरस्वती, **देवि**-हे देवी, **प्रतिदिनं**-प्रतिदिन, **मम**-मेरी, **रक्ष**-रक्षा करें।

भावार्थ-करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा के एकत्रित तेज से भी अधिक तेज धारण करने वाली, चंद्रकिरण के समान अत्यंत स्वच्छ एवं श्वेत वस्त्र को धारण करने वाली, सकल मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली तथा कलहंस पक्षी पर आरूढ़ दिव्यमूर्ति श्री सरस्वती देवी! प्रतिदिन हमारी रक्षा करें।

कोटी चन्द्र सूर्य से भी अति, उज्ज्वल दिव्य मूर्ति पावन।
धवल चाँदनी से अति निर्मल, शुभ्र वस्त्र अति मनभावन॥
समतामय कामार्थ दायिनी, हंसारूढ़ दिव्य आसन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्॥1॥

देवासुरेन्द्र-नत-मौलिमणि प्ररोचि,
श्री मंजरी निविड रंजित पाद पद्मे।
नीलालके प्रमद हस्ति समानयाने,
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि!।।२।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-देवा सुरेन्द्र-देवों और असुरों के इन्द्रों के, **नत**-नमस्कार हेतु झुके हुए, **मौलि**-मुकुटों की, **मणि**-मणियों को, **प्ररोचि**-प्रकाशित करने वाली **श्री-मञ्जरी-निबिड-रञ्जित**-कमल घने गुच्छों या कलियों से रञ्जित हैं, **पादपद्मे**-चरण रूपी कमल जिनके, ऐसी हे देवी, **नील-अलके**-गहरे, नीले-अर्थात् काले बालों वाली, **प्रमद-हस्ति**-मदोन्मत्त हाथी के, **समान-याने**-समान, **मन्थर**-(मन्द) गतिवाली, **वागीश्वरि**-सरस्वती, **देवि**-हे देवी, **प्रतिदिनं**-प्रतिदिन, **मम**-मेरी, **रक्ष**-रक्षा करें।

भावार्थ-जिनके चरण कमलों में देवेन्द्र नतमस्तक हैं, देवों के मस्तक में लगे हुये बहुमूल्य रत्नों की प्रभा से जिनके चरण सुशोभित हैं। जिनके केश नीलवर्ण हैं तथा जिनकी गति मदोन्मत्त हाथी के समान मन्द है, ऐसी श्री सरस्वती देवी! हमारी प्रतिदिन रक्षा करें।

नमित सुरासुर के मुकुटों की, मणिमय आभा कांतीमान।
सघन मंजरी से अनुरंजित, पाद पद्म हैं आभावान॥
नील अलीसम केश सुसुंदर, प्रमद हस्ति सम गगन गमन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्॥2॥

केयूरहार मणि-कुण्डल मुद्रिकाद्यैः,
सर्वांगभूषण नरेन्द्र मुनीन्द्र वंद्ये।
नानासुरत्न वर निर्मल मौलियुक्ते,
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि!।।३।।

अन्वयार्थ-केयूर-भुजबंध, **हार**-कण्ठमाल, **मणि-कुण्डल**-मणि जड़ित कुण्डल (कर्णाभूषण), **मुद्रिकाद्यैः**-अंगूठी आदि आभूषणों से, **सर्वांगभूषण**-सभी अंग हैं अलंकृत जिनके ऐसे, **नरेन्द्र**-राजाओं से और, **मुनीन्द्र**-मुनिराजों से, **वन्द्ये**-वन्दनीय (हे देवी), **नाना**-अनेक, **सुरत्न-वर**-सुन्दर और श्रेष्ठ रत्नों से, **निर्मल-मौलियुक्त**-मुकुट से युक्त (हे देवी), **प्रतिदिनं**-प्रतिदिन, **मम**-मेरी, **रक्ष**-रक्षा करें।

भावार्थ-जिनके सर्वांग बाजूबन्द, हार, मणियों के कुण्डल और मुद्रिका आदि आभूषणों से आभूषित हैं, राजाओं और मुनियों से वन्दीय हैं,

नाना प्रकार के उत्तम रत्नों से युक्त मुकुट से जिनका मुखमण्डल सुशोभित है, ऐसी सरस्वती देवी! हमारी रक्षा करें।

मुक्तामणि से निर्मित कुण्डल, हार मुद्रिका अरु केयूर।
निर्मल रत्नावलि सुसज्जित, मुकुट सुशोभित है भरपूर॥
सर्व अंग भूषण से सज्जित, नर मुनीन्द्र भी करें नमन्।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्॥3॥

मंजीर कोत्कनक-कंकण-किंकणीनाम्,
कांच्याश्च झंकृत-रवेण विराजमाने।
सद्धर्म वारिनिधि सन्तति वर्द्धमाने,
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि!।।४।।

अन्वयार्थ-उत्कनक-स्वर्ण निर्मित, **मंजीरक्**-नूपुर (बिछोड़ी), **कंकण**-कंगन, और **किंकिंणीनां कांच्याश्च**-घुंघरुदार करधनी से, **झंकृतरवेण**-झंकार करती हुयी, **विराजमाने**-शोभायमान, **सद्धर्म**-सच्चे धर्म रूप, **वारिनिधि सन्तति**-समुद्र को, **वर्धमाने**-बढ़ाने वाली, **वागीश्वरि**-हे सरस्वती देवी, **प्रतिदिनं**-प्रतिदिन (आप), **मम**-मेरी, **रक्ष**-रक्षा करें।

भावार्थ-जो स्वर्ण के नूपुर (तोड़े), कंकण और घुंघरुओं तथा कमर-बंधों की झंकार करती हुयी विराजमान हैं, भगवान जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित अहिंसा प्रधान धर्मरूपी समुद्र को निरन्तर बढ़ाने वाली है, ऐसी हे सरस्वती देवी! आप हम सबकी प्रतिदिन रक्षा करें।

कंकण कनक करधनी सुंदर, कंठ में शोभित कंठाहार।
नूपुर झंकृत होते अनुपम, इत्यादि शोभित उपहार॥
धर्म वारि निध की संतति को, नित प्रति करते हैं वर्धन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्॥4॥

कंकेलिपल्लव विनिंदित पाणि युग्मे,
पद्मासने दिवस पद्मसमान वक्त्रे।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

जैनेन्द्र वक्त्र भव दिव्य समस्त भाषे,
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि!।।५।।

अन्वयार्थ-कंकेल्लि-अशोक वृक्ष के, **पल्लव**-नवीन सुकोमल पत्तों को, **विनिन्दित**-तिरस्कृत कर दिया है, **पाणियुग्मे**-कर युगलों ने जिनके, **पद्मासने**-कमल है आसन जिनका, **दिव्य-पद्मासने- वक्त्रे**-दिन के कमल के समान (सुन्दर) है मुखजिनका, **जैनेन्द्र**-जिनेन्द्र प्रभु के, **वक्त्र-भव**-मुख से उत्पन्न, **दिव्य**-अलौकिक/भव्य, **समस्तभाषे**-सर्वभाषामय (दिव्यध्वनि! जिनवाणी 18 महाभाषा एवं 700 लघु भाषा रूप होती है), **वागीश्वरि**-हे सरस्वती देवी, **प्रतिदिन**-प्रतिदिन, **मम**-मेरी, **रक्ष**-रक्षा करें।

भावार्थ-जिन्होंने अपने सुकोमल करों से अशोक वृक्ष के कोमल पत्तों को भी तिरस्कृत कर दिया है, जिनका आसन कमल है, जिनका मुखमण्डल दिन में विकसित होनेवाले कमल के समान अत्यंत सुन्दर है और जो भगवान जिनेश्वर के मुख से उत्पन्न होने वाले सर्वभाषामय स्वरूप में प्रकट हुयी है। ऐसी सरस्वती देवी! सदा हमारी रक्षा करें।

कदली दल को निंदित करते, मृदुतम जिनके दोनों हाथ।
विकसित कमल समान सुमुख है, कमलासन पर शोभित नाथ॥
सब भाषामय दिव्य देशना, जिन मुख से निःसृत पावन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्॥5॥

अर्द्धेन्दु मण्डितजटा ललितस्वरूपे,
शास्त्र प्रकाशिनि समस्त कलाधिनाथे।
चिन्मुद्रिका जपसराभय पुस्तकांके,
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि!।।६।।

अन्वयार्थ-अर्द्धेन्दु-अर्द्धचन्द से, **मण्डित**-शोभित, **जटा**-जटाओं के कारण, **ललित-स्वरूपे**-ललित स्वरूप है जिनका, **शास्त्र प्रकाशिनि**-सकल शास्त्रों का प्रकाश करने वाली, **समस्त कलाधिनाथे**-समस्त कलाओं (विद्याओं) की स्वामिनी, **चिन्मुद्रिका**-चैतन्य मुद्रा के धारण करने वाली, **जप-**

सराभय-जपमाला अभयदान और **पुस्तकांके**-पुस्तक है लक्षण जिनके, **वागीश्वरि**-हे सरस्वती देवी, **मम**-मेरी, **प्रतिदिनं**-प्रतिदिन, **रक्षा**-रक्षा करें।

भावार्थ-अर्द्धचंद से विभूषित जटा के संयोग से जिनका स्वरूप अत्यन्त मनोहर है, सम्पूर्ण शास्त्रों को प्रकाश करने वाली हैं, जो समस्त कलाओं की स्वामिनी हैं और ज्ञानसमुद्र, जपमाला, अभयदान तथा पुस्तक ही जिनके लक्षण हैं, ऐसी श्री सरस्वती देवी! सदा हमारी रक्षा करें।

अर्ध चन्द्र सम जटा सुमंडित, कला निधी सुंदर तम रूप।
धारण किए गोद में पुस्तक, जिनका चित् चैतन्य स्वरूप॥
सर्व शास्त्र का करे प्रकाशन, अजपाजाप मय शुभ आसन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्॥6॥

डिंडीर पिण्ड हिमशंख सिताभ्रहारे,
पूर्णेन्दु बिम्बरुचि शोभित दिव्यगात्रे।
चांचल्यमान मृगशावललाट नेत्रे,
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ७

अन्यार्थ-डिण्डीर-पिण्ड-समुद्रफेन, **हिम**-बर्फ, **शंख**-शंख, **सिताभ्र हारे** श्वेत बादल के समान है हार जिनका, **पूर्णेन्दु**-पूर्णचन्द्र के, **बिम्ब**-आकार के समान, **रुचि**-द्युतिमान/कान्तिमान, **शोभित**-शोभायुक्त है, **दिव्य-गात्रे**-दिव्य देह है जिनका, **चाञ्चल्यमान**-अत्यन्त चंचल, **मृग-शाव**-हिरण के बच्चे के समान, **ललाट-नेत्रे**-ललाट पर स्थित हैं नेत्र जिनके, **वागीश्वरि**-हे सरस्वती देवी, **मम**-मेरी, **प्रतिदिनं**-प्रतिदिन, **रक्षा**-रक्षा करें।

भावार्थ-समुद्र के फेन अथवा बर्फ के समान अत्यन्त सफेद हार जिनके कण्ठ में है, जिनका शरीर पूर्णिमा के चन्द्रबिम्ब के समान अत्यन्त सुशोभित है, तथा जिनके नेत्र कमल मृग के छोटे-छोटे बच्चों के समान चंचल हैं, ऐसी हे सरस्वती देवी! तुम मेरी रक्षा करो।

सागर फेन समान सुसुंदर शंख लिए हैं बर्फ समान।
पूर्ण चन्द्रमा सम शोभित तन, अभ्रहार ज्यों शोभावान॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

दिव्य ललाट सहित चंचल अति, हिरणी शावक समलोचन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्॥7॥

पूज्ये पवित्र करणोन्नत कामरूपे,
नित्यं फणीन्द्र गरुडाधिप किन्नरेन्द्रैः।
विद्या धरेन्द्र सुरयक्ष समस्त वृन्दैः,
वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि!।।८।।

अन्वयार्थ-पवित्र-करण-पवित्र करने वाली, **उन्नत-कामरूपे**-उन्नत काम स्वरूप, **नित्यं**-हमेशा, **फणीन्द्र**-सर्पराजों, **गरुडाधिप**-गरुड़राजों, **किन्नरेन्द्रैः**-किन्नरों (किन्नर जाति के व्यन्तरों) के इन्द्रों, **विद्याधरेन्द्र**-विद्याधरों के इन्द्र, **सुर**-देवों, **यक्ष**-यक्ष (जाति के देवों), **समस्त वृन्दों**-आदि समस्त समूहों के द्वारा, **पूज्य**-पूजित, **वागीश्वरि**-हे सरस्वती देवी, **प्रतिदिनं**-प्रतिदिन, **मम**-मेरी, **रक्ष**-रक्षा करें।

भावार्थ-जो सभी को पवित्र करने वाली उन्नत काम स्वरूप हैं, जो नागराज, गरुडराज, किन्नरेन्द्र, विद्याधर, देवेन्द्र, यक्ष आदि समस्त देवों के समुदाय से सदा पूज्यनीय हैं, ऐसी सरस्वती देवी! 'विशद' आप सदा हमारी रक्षा करो।

काम रूपिणी हे! करणोन्नत, जगत् पूज्य तुम परम पवित्र।
नाग गरुण किन्नर के स्वामी, पूजा करते सुर नर नित्य॥
सर्व यक्ष विद्या धरेन्द्र नित 'विशद' करें तुमको वन्दन।
रक्षा करो मात जिनवाणी, प्रतिदिन बारंबार नमन्॥8॥

हमने किसी गैर से नहीं, अपनों से चोट खाई है।
इसलिए किसी को अपना न बनाने की कसम खाई है॥
धन छोड़ वन को जाने वाले, पार्श्वनाथ बन गये,
हम भी पार्श्व बन जाएँ, हमने यही भावना भाई है॥

सरस्वती नाम स्तोत्र

सरस्वत्याः प्रसादेन, काव्यं कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मान्निश्चल भावेन, पूजनीया सरस्वती॥1॥

अन्वयार्थ-मानवाः-(विद्वान्) मनुष्य, **सरस्वत्याः**-सरस्वती के, **प्रसादेन**-अनुग्रह/कृपा से, **काव्यं**-कविता की, **कुर्वन्ति**-रचना कर पाते हैं, **तस्मात्**-इसलिए, **निश्चल**-भाव से, **अटल (भक्ति)**-भाव से, **सरस्वती**-माता सरस्वती की, **पूजनीया**-पूजा करना चाहिए।

भावार्थ-सरस्वती देवी की कृपा से विद्वज्जन काव्य रचना में कुशल होते हैं। इसलिए अटल भक्तिभाव से वह सरस्वती देवी सदा पूज्य है।

सरस्वती की कृपा से मानव, करें काव्य की संरचना।
इसीलिए निश्चल भावों से, पूज्य सरस्वती को जपना॥1॥

श्री सर्वज्ञ मुखोत्पन्ना, भारती बहुभाषिणी।
अज्ञान तिमिरं हन्ति, विद्या बहु विकासिनी॥2॥

अन्वयार्थ-श्री सर्वज्ञ-श्री अर्थात् लक्ष्मी से विभूषित सर्वज्ञ भगवान के मुख से उत्पन्न, **बहुभाषिणी**-अनेक भाषामय (18 महाभाषा और 700 लघु भाषामय), **विद्या-बहु**-अनेक विद्याओं को, **विकासिनी**-विकास करने वाली, **भारती**-सरस्वती माता (भव्य जीवों के), **अज्ञान-तिमिरं**-अज्ञान रूपी अन्धकार को, **हन्ति**-नाश करती है।

भावार्थ-जो सरस्वती देवी श्री वीतराग सर्वज्ञ प्रभु के मुख कमल से उत्पन्न हुई है, जो अनेक भाषा रूप है और जिससे अनेक विद्याओं का उदय हुआ है, वह सरस्वती देवी भव्य जीवों के अज्ञान अंधकार का नाश करती है।

श्री सर्वज्ञ कथित जिनवाणी, बहु भाषामय जिसका ज्ञान।
हनन करे अज्ञान तिमिर का, विद्या का करती गुणगान॥2॥

सरस्वती मया दृष्टा, दिव्या कमल लोचना।
हंसस्कन्ध समारूढ़ा, वीणा पुस्तक धारिणी॥3॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-मया-मैंने, **दिव्य**-अत्यन्त भव्य, **कमललोचना**-कमल के समान नेत्रों वाली, **हंस-स्कन्ध**-हंस के कन्धों पर, **समारूढ़ा**-विराजित, **वीणा-पुस्तक**-वीणा और पुस्तक को, **धारिणी**-धारण करने वाली, **सरस्वती**-सरस्वती देवी के, **दृष्टा**-दर्शन किये हैं।

भावार्थ-अनेक विद्याओं की जन्मदात्री, कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, वाहन रूपी हंस के ऊपर उपविष्ट, वीणा और पुस्तक को कर-कमलों में धारण करने वाली, सरस्वती देवी का हमने दर्शन किया।

दिव्य कमल लोचन से देवी, सरस्वती देखो हमको।
हंसारूढ़ सुपुस्तक वीणा, धारी वंदन है तुमको।।3।।

प्रथमं भारती नाम, द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवी, चतुर्थं हंसगामिनी।।4।।

अन्वयार्थ-(सरस्वती माता का) प्रथमं-पहला, **नाम**-नाम, **भारती**-भारती, **(है) द्वितीयं**-दूसरा (नाम), **सरस्वती**-सरस्वती (है) **तृतीयं**-तीसरा (नाम), **शारदा देवी**-शारदा देवी (है), **चतुर्थं**-चौथा, **(नाम) हंसगामिनी**-हंसगामिनी, (है)।

भावार्थ-सरस्वती देवी का पहला नाम भारती, दूसरा नाम सरस्वती, तीसरा नाम शारदा देवी और चौथा नाम हंसगामिनी है।

प्रथम भारती नाम आपका, द्वितिय सरस्वती है नाम।
तीजा नाम शारदा देवी, हंसगामिनी चौथानाम।।4।।

पंचमं विदुषां माता, षष्ठं वागीश्वरि तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी।।5।।

अन्वयार्थ-पंचमं-पाँचवाँ (नाम), **विदुषां माता**-विद्वानों की माता, **षष्ठं**-छठा (नाम), **वागीश्वरी**-वागीश्वरी, **सप्तमं**-सातवाँ (नाम), **कुमारी**-कुमारी, **अष्टमं**-आठवाँ, (नाम), **ब्रह्मचारिणी**-ब्रह्मचारिणी, **प्रोक्तम्**-कहा गया है।

भावार्थ-पाँचवाँ नाम विद्वानों की माता, छठवाँ नाम वागीश्वरि, सातवाँ नाम कुमारी तथा आठवाँ नाम ब्रह्मचारिणी है।

विदुषां माता का नाम पाँचवाँ, वागीश्वरी है छठवा नाम।
सप्तम नाम कुमारी पावन, ब्रह्मचारिणी अष्टम नाम।।5।।

नवमं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा भवेत्।।6।।

अन्वयार्थ-नवमं-नोवाँ, (नाम), **जगन्माता**-जगन्माता, **दशमं**-दसवाँ (नाम), **ब्राह्मिणी**-ब्राह्मिणी, **एकादशं**-ग्यारहवाँ (नाम), **ब्रह्माणि**-ब्रह्माणि, **द्वादशं**-बारहवाँ (नाम), **वरदा**-वरदा, **भवेत्**-होवे अर्थात् है।

भावार्थ-नववाँ नाम जगन्माता, दसवाँ ब्राम्हिणी, ग्यारहवाँ नाम ब्रह्माणी और बारहवाँ नाम वरदा है।

नौवाँ नाम जगत् माता है, ब्राह्मिणी जिनका दशवाँ नाम।
ग्यारहवाँ जानो ब्रह्माणी, वरदा है बारहवाँ नाम।।6।।

वाणी त्रयोदशं नाम, भाषाचैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुतदेवी, षोडशं गोर्निगद्यते।।7।।

अन्वयार्थ-(सरस्वती देवी का), **त्रयोदशं**-तेरहवां, **नाम**-नाम, **वाणी**-वाणी, **चैव**-और **चतुर्दशम्**-चौदहवाँ, **नाम**-नाम, **भाषा**-भाषा, **पञ्चदशम्**-पन्द्रहवां, (नाम), **श्रुतदेवी**-श्रुतदेवी, **च**-और, **षोडशं**-सोलहवाँ, (नाम), **गौः**-गौ, (गौरी) **निगद्यते**-कहा जाता है।

भावार्थ-तेरहवाँ नाम वाणी, चौदहवाँ नाम भाषा, पन्द्रहवाँ नाम श्रुतदेवी, सोलहवाँ नाम गौ है। इस प्रकार से सोलह सरस्वती देवी के नाम है।

वाणी नाम कहा तेरहवाँ, चौदहवाँ है भाषा नाम।
श्रुतदेवी है नाम पंचदश, सोलहवाँ है गौरी नाम।।7।।

एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य संतुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत्।।8।।

अन्वयार्थ-यः-जो (भव्य व्यक्ति), **प्रातः**-प्रातःकाल, **उत्था**-उठकर, **एतानि**-ऊपर कहे गये, **श्रुतनामानि**-सरस्वती देवी के नामों को, **पठेत्**-पढ़े/पढ़ता है, **तस्य**-उस पर, **शारदा**-सरस्वती, **मात**-माँ,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

संतुष्यति-प्रसन्न होता है (और), **वरदा**-वर देने वाली, **भवेत्**-होती है।

भावार्थ-जो भव्य पुरुष प्रातःकाल उठकर सरस्वती देवी के इन नामों का भक्तिभाव से पाठ करता है उस पर सरस्वती देवी प्रसन्न होती है और वर प्रदान करती है।

प्रातः उठकर श्रुतदेवी के, इन सब नामों को पढ़ते।
कर देती संतुष्ट सुमाता, विद्या में आगे बढ़ते॥8॥

सरस्वती नमस्तुभ्यं, वरदे काम रूपिणी।
विद्यारम्भं करिष्यामि, सिद्धि र्भवतु मे सदा॥9॥

अन्वयार्थ-वरदे-हे वरदायिनी, **कामरूपिणि**-कामरूपिणी (इच्छानुकूल) रूप वाली अथवा इच्छाओं को पूर्ण करने वाली, **सरस्वती**-हे सरस्वती माता, **तुभ्यम्**-तेरे लिए, **नमः**-नमस्कार हो (मैं), **विद्यारम्भम्**-विद्या का आरम्भ करने जा रहा हूँ, **मे**-मेरे लिये, **सदा**-हमेशा, **सिद्धिः**-सिद्धि, **भवतु**-प्राप्त हो।

भावार्थ-वरदायिनी, कामरूपिणी, हे सरस्वती! तेरे लिये हमारा बारम्बार नमस्कार हो, मैं विद्या का आरम्भ करूँगा, तेरी कृपा से मुझे विद्या प्राप्ति में सदा 'विशद' सिद्धि प्राप्त हो।

इच्छित वर देने वाली, हे सरस्वती! है तुम्हें नमन्।
सिद्धि दो हमको हे माता! काम रूपिणी तुम्हें नमन्॥
विद्या का आरंभ करूँ मैं, हे! ब्रह्माणी तुम्हें नमन्।
'विशद' ज्ञान को देने वाली, श्री जिनवाणी तुम्हें नमन्॥9॥

धन वैभव सौभाग्य प्रदायक, जिन मंगल अष्टक धारा।
सुप्रभात कल्याण महोत्सव, में सुनते-पढ़ते न्यारा॥
धर्म अर्थ अरु काम समन्वित लक्ष्मी हो आश्रयकारी।
मोक्ष लक्ष्मी 'विशद' प्राप्त कर, होते हैं मंगलकारी॥10॥

गणधर वलय स्तोत्र

(उपजाति छन्द)

जिनान् जिताराति-गणान् गरिष्ठान्,
देशावधीन् सर्व-परावधींश्च।
सत्-कोष्ठ-बीजादि-पदानुसारीन्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै॥1॥

अन्वयार्थ-जित आराति-जीत लिया है घातिकर्म रूप शत्रुओं को जिनने ऐसे, **जिनान्**-जिनेन्द्र भगवान को, **गणान्**-गुणों में, **गरिष्ठान्**-श्रेष्ठ, **देशावधीन**, देशावधि, **सर्वपरावधीन् च**-सर्वावधि और परमावधि धारक, **सत् कोष्ठ बीज आदि पदानुसारीन**-कोष्ठ ऋद्धि पदानुसारि आदि ऋद्धि के धारक, **गणेशान् अपि**-गणधर देवों की, **तद्**-उनके, **गुणाप्त्यै**-गुणों की प्राप्ति के लिए, **स्तुवे**-मैं स्तुति करता हूँ।

भावार्थ-रागादि भाव को जिन्होंने जीत लिया है, वही जिन हैं, सत्य में श्रेष्ठ हैं, देशावधि-सर्वावधि और परमावधि ज्ञान के धारी हैं, कोष्ठ-बीज और पदानुसारी आदि ऋद्धियों में प्रवृत्त हैं, ऐसे उन गणधर देव के गुणों की प्राप्ति के लिए मैं स्तुति करता हूँ।

कर्म घातिया अरि को जीता, जो हैं सर्व गुणों में ज्येष्ठ।
देश सर्व परमावधि धारक, कोष्ठ बीज बुद्धि अति श्रेष्ठ॥
पदानुसारिणी बुद्धि आदिक, धारक गणधर देव महान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु हम, करते चरणों 'विशद' प्रणाम॥1॥

संभिन्न-श्रोतान्वित-सन्-मुनीन्द्रान्,
प्रत्येक-सम्बोधि-बुद्ध धर्मान्।
स्वयं-प्रबुद्धांश्चविमुक्ति-मार्गान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै॥2॥

अन्वयार्थ-संभिन्न-श्रोतान्वित-संभिन्न श्रोतृत्व से सहित, **प्रत्येक-सम्बोधित-बुद्ध**-प्रत्येक बुद्ध, बोधितबुद्ध, **च**-और, **स्वयं प्रबुद्धान्**-स्वयं

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

बुद्ध जो कि, **विमुक्ति मार्गान् धर्मान्**-मोक्षमार्ग रूप धर्म के, **सन्मुनीन्द्रान**-सच्चे मुनियों के स्वामी हैं ऐसे, **गणेशान् अपि**-गणधर देवों की, **तद्**-उनके, **गुणाप्त्यै**-गुणों की प्राप्ति के लिए, **स्तुवे**-मैं स्तुति करता हूँ।

भावार्थ-प्रत्येक प्राणी को धर्माचरण कराने वाले हैं, खोटे मार्ग को दूरकर स्वयं जागृत हैं और संभिन्न संशोक्ति ऋद्धि से युक्त हैं-ऐसे उन गणधर देव के गुणों की प्राप्ति के लिए मैं उनकी स्तुति करता हूँ।

संभिन्न श्रोतृत्व धारी जिन हे! प्रत्येक बुद्ध अरु बोधित बुद्ध।
मोक्षमार्ग रूपी सु धर्ममय आप स्वयं में स्वयं प्रबुद्ध॥
सच्चे मुनियों के स्वामी हैं ऐसे गणधर देव महान्।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु हम, करते चरणों 'विशद' प्रणाम॥2॥

द्विधा मनःपर्यय-चित्-प्रयुक्तान्,
द्विपञ्च-सप्तद्वय-पूर्व-सक्तान्।
अष्टांग-नैमित्तिक शास्त्र-दक्षान्
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै॥3॥

अन्वयार्थ-द्विधा मनः पर्ययचित्प्रयुक्तान्-दो प्रकार के मनः पर्ययज्ञान के धारक, **द्विपञ्च**-दो (अंगबाह्य, अंगप्रविष्टि पंच दृष्टिवाद के भेद) **सप्तद्वयपूर्वसक्तान्**-चौदह पूर्व के धारक, **अष्टांगनैमित्तिक शास्त्रदक्षान्**-अष्टांग महानिमित के ज्ञाता, कुशल शास्त्रज्ञ, **गणेशानपि**-गणधर देवों की, **तद्**-उनके, **गुणाप्त्यै**-गुणों की प्राप्ति के लिए, **स्तुवे**-मैं स्तुति करता हूँ।

भावार्थ-जो दो प्रकार के मनःपर्यय ज्ञान (ऋजुमति और विपुलमति) से संयुक्त हैं, दो प्रकार के श्रुतज्ञान-अंगबाह्य, अंगप्रविष्ट, पाँच प्रकार के दृष्टिवाद और 14 प्रकार के पूर्व से सहित हैं। आठ प्रकार के नैमित्तिक शास्त्रों के ज्ञाता हैं। ऐसे इन गुणों की प्राप्ति के लिए मैं उनकी स्तुति करता हूँ।

द्वय प्रकार मनःपर्यय ज्ञानी, ऋजु विपुलमति पाया ज्ञान।
श्रुतज्ञान दो भेद पाँच युत, चौदह पूर्व धारी गुणवान॥
अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता, शास्त्र कुशल गणधर भगवान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु हम, करते चरणों 'विशद' प्रणाम॥3॥

विकुर्वणाख्यर्द्धि-महा-प्रभावान्,
विद्याधरांश्चारण-ऋद्धि-प्राप्तान्।
प्रज्ञाश्रितान् नित्य-ख-गामिनश्च,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै॥4॥

अन्वयार्थ-महाप्रभावान्-महा प्रभावशाली, **विकुर्वणाख्य ऋद्धि**-विक्रिया नामक ऋद्धि के धारक, **विद्याधरान्**-विद्याधारक, चारण ऋद्धि प्राप्तान्-चारण ऋद्धि को प्राप्त, **प्रज्ञाश्रितान्**-प्रज्ञावान, **च**-और, **नित्य**-सदा, **खगामिनः**-आकाश में गमन करने वाले, **गणेशानपि**-गणधर देवों की, **तद्**-उनके, **गुणाप्त्यै**-गुणों की प्राप्ति के लिए, **स्तुवे**-मैं स्तुति करता हूँ।

भावार्थ-विद्याधरों की तरह आप चारण ऋद्धि, प्रज्ञाश्रित ऋद्धि से युक्त आकाश में गमन करते हैं और खोटे मार्ग को दूर करने में आप महान् प्रभावशाली हैं इसलिए इन गुणों की प्राप्ति के लिए हे गणधर देव! मैं आपकी स्तुति करता हूँ।

महा प्रभाव विक्रिया ऋद्धी, धारी विद्या धारक नाथ!।
चारण ऋद्धी प्राप्त किए हैं प्रज्ञावान आप हैं साथ॥
नित्य गगन में गमन करें जो, ऐसे गणधर देव महान्
उनके गुण की प्राप्ति हेतु हम, करते चरणों 'विशद' प्रणाम॥4॥

आशी र्विषान् दृष्टि-विषान् मुनीन्द्रा-,
नुग्राति-दीप्तोत्तम-तप्त तप्तान्।
महातिघोर-प्रतपः प्रसक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै॥5॥

अन्वयार्थ-आशीर्विषान्-आशीविष, **दृष्टिविषान्**-दृष्टिविष ऋद्धि के धारक, **मुनीन्द्रान्**-मुनियों को, **उग्रअति**-अति उग्र/उग्राग्र तप, **दीप्त उत्तम**-उत्तम दीप्त तप, **तप्ततप्तान्**-तप्त तप/घोर तप, **महा अति घोर प्रतपः**-महा अतिघोर प्रकृष्ट तप के धारक, **गणेशानपि**-गणधर देवों की, **तद्**-उनके, **गुणाप्त्यै**-गुणों की प्राप्ति के लिए, **स्तुवे**-मैं स्तुति करता हूँ।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-आशीर्विष, दृष्टिविष, उग्र और दीप्त तप ऋद्धि से युक्त हैं। महान् घोर तपश्चरण से युक्त होने के कारण मुनियों में श्रेष्ठ हैं ऐसे उन गुणों की प्राप्ति के लिए मैं गणधर देव की स्तुति करता हूँ।

आशी-र्विष दृष्टी विष ऋद्धी, के धारक मुनिराज प्रधान।
अति उग्र तप दीप्त तपोतप, तप्त ऋद्धि धारक गुणवान॥
महा घोर तप ऋद्धी धारक, ऐसे गणधर देव महान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु हम, करते चरणों 'विशद' प्रणाम॥5॥

वन्द्यान् सुरै-र्घोर-गुणांश्च लोके,
पूज्यान् बुधै-र्घोर-पराक्रमांश्च।
घोरादि-संसद-गुण ब्रह्म युक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै॥6॥

अन्वयार्थ-सुरैः-देवों के द्वारा, **वंद्यान्**-वंदित, **लोके पूज्यान्**-लोक में पूज्य, **घोरगुणान्**-घोर गुणों के धारक, **च**-और, **बुधैः पूज्यान्**-लोक में ज्ञानियों के द्वारा पूज्य, **घोरपराक्रमान्**-घोर पराक्रम धारक, **घोरादिसंसद् गुणब्रह्मयुक्तान्**-समीचीन श्रेष्ठ घोर ब्रह्मचर्य आदि से युक्त, **गणेशानपि**-गणधर देवों की, **तद्-गुणाप्त्यै**-उनके गुणों की प्राप्ति के लिए, **स्तुवे**-स्तुति करता हूँ।

भावार्थ-महान् गुणों के कारण आप देवों के द्वारा पूजनीय हैं, विद्वानों के द्वारा महान् पराक्रमी हैं और लोक में सबके द्वारा पूजनीय हैं, महान् से महान् गुणों से युक्त हैं-इसलिए हे गणधरदेव! मैं उन गुणों की प्राप्ति हेतु आपकी स्तुति करता हूँ।

देवों द्वारा वंदनीय हैं लोक पूज्य सद्गुण धारी,
जगत् पूज्य ज्ञानी जीवों के, सद्गुण धारक ब्रह्मचारी।
घोर पराक्रम धारण करते, ऐसे गणधर देव महान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु हम, करते चरणों 'विशद' प्रणाम॥6॥

आमर्द्धि-खेलर्द्धि-प्रजल्ल-विडर्द्धि-
सर्वर्द्धि-प्राप्तांश्च व्यथादि-हंत्रन।
मनो-वचः काय-बलोपयुक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै॥7॥

अन्वयार्थ-आमर्द्धिखेलर्द्धिप्रजल्लविडर्द्धि-आमर्द्धि, खेलर्द्धि, प्रकृष्ट जल्लऋद्धि, विड्ऋद्धि, **सर्वर्द्धिप्राप्तान् च**-और सर्वऋद्धि प्राप्त, **व्यथा आदि हंतृन**-पीड़ा आदि को हरने वाले, **मनः वचःकाय बल उपयुक्तान्**-मन बल, वचन बल, काय बल ऋद्धि से युक्त, **गणेशानपि**-गणधर देवों की, **तद्**-उनके, **गुणाप्त्यै**-गुणों की प्राप्ति के लिए, **स्तुवे**-मैं स्तुति करता हूँ।

भावार्थ-सबके दु:खों को दूर करने वाले आमर्द्धि-खेलर्द्धि, प्रकृष्ट जल्लोर्द्धि, सर्वर्द्धि और मनबल, वचनबल, कायबल ऋद्धियों से युक्त हैं- इसलिए उन गुणों की प्राप्ति के लिए मैं गणधर देव की स्तुति करना चाहता हूँ।

आमर्द्धि अरु खेलर्द्धि युत, प्रजल्ल तथा विड ऋद्धीवान्।
पीड़ा आदिक हरने वाले, सर्व ऋद्धि हैं जिन्हें प्रधान॥
मन बल वचन काय ऋद्धी युत, ऐसे गणधर देव महान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु हम, करते चरणों 'विशद' प्रणाम॥7॥

सत् क्षीर-सर्पि-र्मधुरामृतर्द्धीन्,
यतीन् वराक्षीण महानसांश्च।
प्रवर्धमानांस्त्रिजगत्-प्रपूज्यान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै॥8॥

अन्वयार्थ-सत्क्षीरसर्पिर्मधुरामृतर्द्धीन् (सत्क्षीर, सर्पिः मधुर अमृत ऋद्धीन्)-समीचीन क्षीरस्रावी, सर्पिस्रावी, मधुरस्रावी और अमृतस्रावी ऋद्धि के धारक, **वर अक्षीण महानसान् च**-श्रेष्ठ अक्षीण संवास और अक्षीण महानस ऋद्धियों से, **प्रवर्धमानान्**-सुशोभित, **त्रिजगत्प्रपूज्यान्**-तीन लोक में पूज्य, **यतीन्-यतिराज- गणेशानपि**-गणधरों की, **तद्गुणाप्त्यै**-उनके

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

गुणों की प्राप्ति के लिये, **स्तुवे**-स्तुति करता हूँ।

भावार्थ-जो तीन लोकों में पूज्य हैं, क्षीरस्रावी, मधुस्रावी, अमृतस्त्रावी, अक्षीणस्रावी और वर्धमान ऋद्धि से युक्त हैं-इसलिए मैं गणधर देव की स्तुति करता हूँ कि मुझे उन गुणों की प्राप्ति हो।

सत्क्षीर स्रावी घृतस्रावी युत, मधुर स्रावि ऋद्धीधारी।
अमृत स्रावी अक्षीण महानस, वर्धमान ऋद्धीधारी।।
तीन लोक में पूज्य मुनीश्वर, ऐसे गणधर देव महान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु हम, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।8।।

सिद्धालयान् श्रीमहतोऽतिवीरान्,
श्रीवर्धमानर्द्धि विबुद्धि-दक्षान्।
सर्वान् मुनीन् मुक्तिवरा-नृषीन्द्रान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै।।9।।

अन्वयार्थ-सिद्धालयान्-सिद्धालय में विराजमान, **श्री महतः अतिवीरान्**-श्री अति महान् अतिवीर, **श्री वर्द्धमान ऋद्धि विबुद्धिदक्षान्**-श्री वर्द्धमान ऋद्धि और विशिष्ट बुद्धि ऋद्धि में दक्ष, कुशल, **मुक्तिवरान्**-मुक्तिलक्ष्मी को वरण करने वाले, **सर्वान् मुनीन्**-सब मुनियों की, **ऋषि इन्द्रान्**-ऋषिगणों को, **गणेशानपि**-तथा गणधर देवों की, **तद्-गुणाप्त्यै**-मैं उनके गुणों को प्राप्त करने के लिए, **स्तुवे**-स्तुति करता हूँ।

भावार्थ-सिद्धालय को प्राप्त वर्द्धमान ऋद्धि से युक्त, सर्वमुनि समूह को मोक्षमार्ग में प्रवृत्त कराने वाले और सर्वमुनियों में श्रेष्ठ हैं-इसलिए मैं उन गुणों की प्राप्ति के लिए गणधर देव की स्तुति करता हूँ।।

सिद्धालय में आप विराजित, महत् श्री जिनवर अतिवीर।
वर्धमान ऋद्धी विशिष्ट युत, बुद्धि ऋद्धिधारी गुण धीर।।
मुक्ती वर ऋषि मुनी इन्द्र अरु, श्री गणनायक देव महान्।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु हम, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।9।।

नृ-सुर-खचर-सेव्या विश्व-श्रेष्ठर्द्धि-भूषा।
विविध-गुण-समुद्रा मार मातंग-सिंहाः।

भव-जल-निधि-पोता वन्दिता मे दिशन्तु,
मुनि-गण-सकलाः श्री सिद्धिदाः सदृषीन्द्राः।।10।।

अन्वयार्थ-नृसुरखचरसेव्या-मनुष्य देव, विद्याधरों से पूज्य, विश्वश्रेष्ठ **ऋद्धिः-भूषा**-समस्त श्रेष्ठ ऋद्धियों से भूषित, **विविध गुण समुद्रा**-अनेक गुणों के समुद्र, **मार-मातंगसिंहा**-कामदेवरूपी हाथी को वश में करने के लिए सिंह समान, **भवजलनिधिपोता**-संसाररूप समुद्र को पार करने के लिए जहाज, **सदृश**-समान, **वन्दिता**-वन्दना किये गये, **मुनिगणसकलाः इन्द्रा**-समस्त मुनि समूह/संघ के इन्द्र गणधर देव, **मे सिद्धिदाः दिशन्तु**-मुझे सिद्धपद प्रदान करनेवाले हों।

भावार्थ-देव, मनुष्य और विद्याधरों से पूज्य, संसार में सम्पूर्ण श्रेष्ठ ऋद्धियों से युक्त हैं, नाना प्रकार के गुणों के समुद्र हैं, कामरूपी हस्ति (हाथी) को जीतने के लिए सिंह के समान हैं, संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए नौका के समान हैं-इसलिए सम्पूर्ण मुनियों के समूह को सिद्धि प्राप्त करने के लिये समीचीन दृष्टि देने वाले हैं, इसलिए हे गणधरदेव! मैं आपकी स्तुति करता हूँ।

नर सुर विद्याधर से पूजित, श्रेष्ठ बुद्धि भूषित गुणखान।
विविध गुणों के सागर हैं जो, गज मन्मथ को सिंह समान।।
भव सागर को पोत रूप हैं, मुनि समूह के इन्द्र महान।
उनके गुण की प्राप्ति हेतु हम, करते चरणों 'विशद' प्रणाम।।10।।

नित्यं यो गणभृन्मन्त्र, विशुद्धसन् जपत्यमुम्,
आस्रवस्तस्य पुण्यानां, निर्जरा पापकर्मणाम्।
नश्यादुपद्रवकश्चिद्, व्याधिभूत विषादिभिः
सदसत् वीक्षणे स्वप्ने, समाधिश्च भवेन्मृतो।।11।।

अन्वयार्थ-यः-जो, **नित्यं**-प्रतिदिन, **विशुद्ध सन्**-शुद्ध मन होता हुआ/शुद्धिपूर्वक, **अमुम्**-इस, **गणभृन्मन्त्रं**-गणधर वलय मन्त्र को, **जपति**-पढ़ता है, **तस्य**-उसको, **पुण्यानां आस्रव**-पुण्य कर्मों का आस्रव होता है तथा, **पापकर्मणां निर्जरा**-पापकर्मों की निर्जरा होती है, **विषादिभिः व्याधिभूत**-विष

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

आदि से होने वाले रोग पिशाच आदि, **उपद्रवः**-बाधा, **नश्यात्**-दूर होते हैं, **स्वप्ने सत् असत्**-स्वप्न में शुभ-अशुभ, **वीक्षणे**-दिखाई देता है, **च**-और, **मृतौ**-मरण समय में, **समाधिः**-समाधिमरण, **भवेत्**-होता है।

भावार्थ-जो प्रतिदिन शुद्धिपूर्वक इस गणधर वलय मन्त्र को पढ़ता है, उसको पुण्य कर्मों का आस्रव होता है तथा पाप कर्मों की निर्जरा होती है। विष आदि से होने वाले रोग, पिशाच आदि बाधा दूर होते हैं। स्वप्न में शुभ-अशुभ दिखाई देता है और मरण समय में समाधिमरण होता है मैं उनके गुणों की प्राप्ति के लिए गणधर देव के चरणों में 'विशद' प्रणाम करता हूँ।

गणधर वलय को शुद्ध मन से, नित्य पढ़ता भाव से।
पाप कृत का वह नाश करता, पुण्य पावे चाव से॥
भूत विष आदि कुव्याधि, के उपद्रव नाश हों।
सब स्वप्न दिखते हैं शुभाशुभ, अन्तिम समाधी वास हो॥

मंगलाचरण

महामंत्र है मोक्ष प्रदायक
ॐ णमो अरिहंताणं।
ध्यान किए सिद्धि पा जाए
ॐ णमो श्री सिद्धाणं॥
मोक्ष महल की राह दिखाए
ॐ णमो आयरियाणं।
उर में सम्यक् ज्ञान जगाए
ॐ णमो उवज्झायाणं॥
'विशद साधना करने वाले
ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं।
जैन धर्म जिन चैत्य जिनालय
जैनागम को सत् वन्दन॥

श्री पंच महागुरु भक्ति (प्राकृत)

मणुय-णाइंद-सुर धरिय-छत्तत्तया,
पंचकल्लाण सोक्खावलीपत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं।
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं।।१।।

अन्वयार्थ-मणुयणाइंद-मनुज, नागेन्द्र और, **सुरधरिय**-सुरेन्द्र द्वारा जिनको, **छत्तत्तया**-छत्रत्रय लगाये गये हैं, **पंचकल्लाण**-पंचकल्याणकों में, **सोक्खावली**-सुख संतति, **पत्तया**-प्राप्त हैं, **ते जिणा**-वे जिन अरहंत भगवान, **दंसणं णाण**-अनंत दर्शन, ज्ञान, **झाणं अणंतं बलं**- ध्यान और बल, **वरं मंगलं**-श्रेष्ठ मंगल, **अम्हं**-हमारे लिए, **दिंतु**-देवें।

भावार्थ-नरेन्द्र, नागेन्द्र और सुरेन्द्र जिनपर तीन छत्र धारण कराते हैं तथा जो पंच कल्याणकों के सुख समूह को प्राप्त हैं वे जिनेन्द्र हमारे लिए उत्कृष्ट मंगलस्वरूप अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतबल और उत्कृष्ट ध्यान को देवें।

तर्ज- नित देव मेरी आत्मा.....

कल्याण पाए पाँच अरु सिर छत्र शोभित तीन हैं।
सुज्ञान-दर्शन ध्यान बल, अनंत सुख में लीन हैं॥
नागेन्द्र सुर नर इन्द्र आदिक, पूजते जिनके चरण।
वे देव मंगल हों जगत में, है चरण शत्-शत् नमन॥1॥

जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइदड्ढयं,
जम्म-जर मरण-णय-रत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं,
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ।।२।।

अन्वयार्थ-जेहिं-जिन्होंने, **झाणग्गि वाणेहिं**-ध्यान रूपी अग्नि बाणों द्वारा, **अइदड्ढयं**-अत्यंत दृढ़, **जम्म जर मरण**-जन्म जरा और मरण रूपी, **णयरत्तयं**-तीनों नगरों को, **दड्ढयं**-जलाया, **जेहिं**-जिन्होंने, **सासयं**

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

सिवं-शाश्वत् शिव, **ठाणयं पत्तं**-स्थान को प्राप्त किया, **ते सिद्धा**-वे सिद्ध भगवान, **महं**-मुझे, **वरं णाणयं**-उत्तम ज्ञान, **दिंतु**-देवें, प्रदान करें।

भावार्थ-जिन्होंने ध्यान रूपी अग्नि वाणों से सुदृढ़ जन्म, जरा और मरण रूपी तीन नगरों को जला डाला तथा जिन्होंने शाश्वत् मोक्षस्थान प्राप्त कर लिया, वे सिद्ध भगवान मुझे उत्तम ज्ञान प्रदान करें।

ध्यानाग्नि के द्वारा स्वयं ही, कर्म सारे दग्ध कर।
जन्म, मृत्यू अरु जरा का, नगर अति विध्वस्तकर॥
शाश्वत् सुशिव स्थान को भी, कर रहे हैं जो वरण।
वे देव मंगल हों जगत में, है चरण शत्-शत् नमन॥2॥

पंचआचार पंचग्गिसंसाहया,
बारसंगाइ सुअजलहि-अवगाहया।
मोक्खलच्छीमहंती महंते सया,
सूरिणो दिंतु मोक्खं गया संगया।।३।।

अन्वयार्थ-पंचआचार-जो पाँच प्रकार के आचार रूपी, **पंचग्गि**-पंचाग्नियों के, **संसाहया**-सम्यक् साधक, **वार संगाइसुअ**-द्वादशांग आदि श्रुत रूप, **जलहि अवगाहया**-सागर में अवगाहन करने वाले तथा जो, **मोक्खं-गयासंगया**-आशाओं से रहित मोक्ष को प्राप्त हुये हैं ते **सूरिण्यः**-वे आचार्य, **महं मया**-मुझे सदा, **महंती मोक्खलच्छी**-महान् मोक्ष लक्ष्मी को, **दिंतु**-देवें।

भावार्थ-जो पाँच आचार रूप पाँच अग्नियों का साधन करते हैं, द्वादशांगरूपी समुद्र में अवगाहन करते हैं तथा जो आशाओं से रहित मोक्ष को प्राप्त हुए हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी मेरे लिए सदा महती मोक्षरूपी लक्ष्मी को प्रदान करें।

पालें सुपंचाचार पंच, प्रकार पाप विनाशते।
द्वादश सुअंग समुद्र में, नित सतत् जो अवगाहते॥
जो महत् मुक्ती लक्ष्मी के, हेतु करते आचरण।

वे देव मंगल हों जगत में, है चरण शत्-शत् नमन॥3॥

घोर-संसार - भीमाडवीकाणणे,
तिक्ख-वियराल-णह-पाव-पंचाणणे।
णट्ठ-मग्गाण जीवाण पहदेसिया,
वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया।।४।।

अन्वयार्थ-तिक्ख वियराल-(जिसमें) तीक्ष्ण विकराल, **णहपाव**-नाखून वाले पाप रूपी, **पंचाणणे**-सिंह व्याघ्र हैं ऐसे, **घोर संसार**-घोर संसार रूपी, **भीमाडवी काणणे**-भयंकर अटवी, वन में, **णट्ठमग्गाण**-मार्ग भ्रष्ट, **जीवाण**-जीवों को, **पहदेसिया**-जो मार्ग के उपदेशक, मार्गदर्शक हैं, **ते उवज्झाय**-उन उपाध्याय को, **अम्हे सया**-हम सदा, **वंदिमो**-वंदन करते हैं

भावार्थ-जिसमें तीक्ष्ण विकराल नख और पैर वाले पाप रूपी सिंह विद्यमान हैं, ऐसे भयंकर संसार रूपी बीहड़ वन में मार्ग भूले हुए जीवों को जो मार्ग दिखाते हैं, उन उपाध्याय परमेष्ठी की हम सदा वंदना करते हैं।

संसार रूपी अति भयानक, घोर वन अति सघन है।
विकराल सिंह नख तीक्ष्ण वाले, पंच अघ का भ्रमण है।
जो नष्ट करके पाप पथ को, मोक्ष पथ करते वरण।
वे देव मंगल हों जगत में, है चरण शत्-शत् नमन॥4॥

उग्ग-तव-चरण-करणेहिं झीणं गया,
धम्म-वर झाण-सुक्केक्क-झाणं-गया।
णिब्भरं तव-सिरी-ए-समा-लिंगया,
साहवो ते महा मोक्ख पथमग्गया ।।५।।

अन्वयार्थ-उग्ग तवचरण-उग्र तपश्चरण, **करणेहिं**-करने से (जिनका शरीर), **क्षीणंगया**-क्षीणता को प्राप्त हो गया है, **धम्मवर झाण**-उत्तम धर्मध्यान तथा, **सुक्केक्क**-प्रधान शुक्ल, **झाणंगया**-ध्यान को प्राप्त तथा,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

तव सिरी ए-तप रूपी लक्ष्मी से, **णिब्भरं समालिंगया**-भारी आलिंगित है, **ते साहवः**-वे साधुगण, **महं**-मेरे लिए, **मोक्खपथ**-मोक्ष पथ के, **मग्गया**-मार्गदर्शक हों।

भावार्थ-उग्र तपश्चरण करने से जिनका शरीर क्षीण हो गया है जो उत्तम धर्मध्यान और शुक्लध्यान को प्राप्त हैं तथा तप रूपी लक्ष्मी के द्वारा जो अत्यंत आलिंगित हैं, वे साधु परमेष्ठी मेरे मोक्षमार्ग के लिए मार्गदर्शक हों।

तपश्चरण कर उग्रतम अति, काय जिनकी क्षीण है।
सुधर्म ध्यान अरु शुक्ल ध्यान, में सदा लवलीन हैं॥
स्वरूप है अर्हंत जैसा, श्रेष्ठ जग में आचरण।
वे देव मंगल हों जगत में, है चरण शत्-शत् नमन॥5॥

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदये,
गुरुय-संसारघण-वेल्लि सो छिंदये।
लहइ सो सिद्ध-सोक्खाइ बहु-माणणं,
कुणइ कम्मिंधणं पुंज पज्जालणं।।६।।

अन्वयार्थ-एण थोत्तेण-इस स्तोत्र से, **जो पंचगुरु**-जो पंचगुरुओं की, **वंदए**-वंदना करता है, **सो**-वह, **गुरुय**-गुरु (भारी, अनन्त), **संसार घण**-संसार रूपी सघन, **वेल्लि**-बेल को, **छिंदए**-काट डालते है और, **सोबहुमाणणं**-वह उत्तम जनों के द्वारा मान्य, **सिद्ध सोक्खाइं**-मोक्ष के सुखों को, **लहइ**-प्राप्त होता है, **(अपि च)**-और भी, **कम्मिंधणं**-कर्मरूपी ईंधन, **पुंज पज्जालणं**-समूह को प्रज्ज्वलित, **कुणइ**-करता है (जला डालता है)।

भावार्थ-जो इस स्तोत्र के द्वारा पंचगुरुओं/पंच परमेष्ठियों की वंदना करता है, वह अनंत संसाररूपी सघन बेल को काट डालता है, उत्तम जनों के द्वारा मान्य मोक्ष के सुखों को प्राप्त होता है तथा कर्मरूपी ईंधन के समूह को जला डालता है।

पंच गुरु स्तुत्य हैं अरु, लोक में वंदित कहे।
संसार रूपी सघन बेली, छेदने में रत रहे।

दुष्कर्म ईंधन हीन करने, में 'विशद' जो लीन हैं।
वे देव मंगल हों जगत में, है चरण शत्-शत् नमन॥6॥

अरुहा सिद्धाइरिया, उवझाया साहु पंच परमेट्ठी।
एदे पंच णमोयारा, भवे भवे मम सुहं दिंतु।।७।।

अन्वयार्थ-अरुहा-अरहंत, **सिद्धाइरिया**-सिद्ध, आचार्य, **उवझाया**-उपाध्याय और, **साहु**-साधु, **पंच परमेट्ठी**-यह पाँच परमेष्ठी हैं, **एदे पंच**-यह पाँच इनके **णमोयारा**-नमस्कार, **मम**-मुझे, **भवे-भवे**-भव-भव में, **सुहं दिंतु**-सुख देवें।

भावार्थ-अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच परमेष्ठी हैं। इनके लिए किये गये नमस्कार मुझे भव-भव में सुख देवें।

अर्हंत सिद्धाचार पाठक, साधु, मंगलमय महाँ।
ये पंच गुरु मंगल करें मम्, मैं रहूँ चाहे जहाँ॥7॥

इच्छामि, भंते! पंचमहागुरुभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थम्मि, पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्पवयणमाउसंजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादिसुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरदाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरदाणं सव्वसाहूणं, सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोधिलाहो, सुग-इगमणं, समाधिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं॥

॥इति श्री प्राकृत पंचमहागुरुभक्ति॥

मृत्युकल्पद्रुमे प्राप्ते स्वर्ग मोक्षादि सिद्धदे।
समाधि मरणं यत्नाद साधयन्तु शिवार्थिनः॥

स्वर्ग मोक्षादि को सिद्धि के लिए मृत्यु रूप कल्पवृक्ष प्राप्त होने पर आत्मार्थी को समाधिमरण की शाधना करना चाहिए।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

लघु स्वयंभू स्तोत्र

(उपजाति छन्द)

येन स्वयं बोधमयेन लोका, आश्वासिताः केचन वित्तकार्ये।
प्रबोधिताः केचन मोक्ष-मार्गे, तमादिनाथं प्रणमामि नित्यम्।।१।।

अन्वयार्थ-स्वयं बोधमयेन-स्वयं उत्पन्न हुए अपने ज्ञान से, **येन**-जिन्होंने, **(केचन लोका)**-किन्हीं लोगों को, **वित्तकार्ये**-आजीविका में लगा कर, **आश्वासिताः**-आश्वस्त किया, **(केचन लोका)**-किन्हीं लोगों को, **मोक्षमार्गे**-मोक्षमार्ग में, **प्रबोधितः**-प्रबुद्ध किया, **तम्**-उन, **आदिनाथम्**-आदिनाथ जिन को, **नित्यम्**-सदा ही, **प्रणमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जिन्होंने स्वयं उत्पन्न हुए अपने ज्ञान से किन्हीं को आजीविका में लगाकर आश्वस्त किया और किन्हीं को मोक्षमार्ग में प्रबुद्ध किया उन आदिनाथ जिन को मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

जिनने आत्म ज्ञान के द्वारा, पर का भी उपकार किया।
वित्त कार्य अरु मोक्षमार्ग पर, प्रेरित कर उद्धार किया॥
मोक्षमार्ग को प्रभु ने पाया, मैं भी उसको वरण करूँ।
आदिनाथ के श्री चरणों में 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥1॥

इन्द्रादिभिः क्षीर समुद्र-तोयैः, संस्नापितो मेरुगिरौ जिनेन्द्रः।
यः कामजेता जन-सौख्यकारी, तं शुद्ध-भावादजितं नमामि।।२।।

अन्वयार्थ-कामजेता-काम को जीतने वाले, **च**-और, **जन सौख्यकारी**-प्राणीमात्र को सुख प्रदान करने वाले, **यः जिनेन्द्रः**-जिन जिनेन्द्र भगवान का, **इन्द्रादिभिः**-इन्द्रादिकों ने, **क्षीर समुद्र तोयैः**-क्षीर समुद्र के जल से, **मेरुगिरौ**-मेरुपर्वत पर, **संस्नापितो**-अभिषेक किया है, **तम्**-उन, **अजितम्**-अजितनाथ जिन को, **शुद्धभावात्**-शुद्ध भावों से, **नमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-काम को जीतने वाले और प्राणी मात्र को सुख प्रदान करने वाले जिन इन्द्रादिकों ने क्षीर समुद्र के जल से मेरु पर्वत पर जिनेन्द्र

देव का अभिषेक किया उन अजितनाथ जिन को शुद्ध भावों से मैं नमस्कार करता हूँ।

जो सुमेरु पर्वत के ऊपर, ऐरावत पर लाए थे।
देवों ने क्षीरोदधि द्वारा, शुभ अभिषेक कराए थे॥
सुखदाता अरु कर्म विजेता, के पद को मैं वरण करूँ।
अजितनाथ के श्रीचरणों में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥2॥

ध्यान-प्रबन्धः प्रभवेन येन, निहत्य कर्म-प्रकृतिः समस्ताः
मुक्ति-स्वरूपां पदवीं प्रपेदे, तं संभवं नौमि महानुरागात्।।३।।

अन्वयार्थ-येन-जिन्होंने, **ध्यान प्रबन्धः प्रभवेन**-सतत् ध्यान के प्रभाव से, **समस्ताः कर्म प्रकृतिः**-सम्पूर्ण कर्म प्रकृतियों को, **निहत्य**-नष्टकर, **मुक्ति स्वरूपां पदवी**-मोक्ष पद, **प्रमेदे**-प्राप्त किया, **तम्**-उन, **संभवं**-संभवनाथ जिन को, **महानुरागात्**-बड़े अनुराग से **नौमि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जिन्होंने सतत् ध्यान के प्रभाव से सम्पूर्ण कर्म-प्रकृतियों को नष्ट कर मोक्षपद प्राप्त किया उन संभवनाथ जिन को मैं बड़े अनुराग से नमस्कार करता हूँ।

जिनने शुद्ध ध्यान के द्वारा, कर्म घातिया नाश किए।
मोक्ष महापद पाकर के जो, सिद्ध शिला पर वास किए॥
श्रीफल अर्पित करके मैं प्रभु, मोक्षमहल को ग्रहण करूँ।
संभव जिन के श्रीचरणों में 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥3॥

स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां, गजादि वह्न्यन्तमिदं ददर्श।
यत्तात इत्याह गुरुः परोऽयं, नौमि प्रमोदा-दभिनन्दनं तम्।।४।।

अन्वयार्थ-यदीया-जिनकी, **जननी**-माता ने, **क्षपायां**-रात्रि में, **स्वप्ने**-स्वप्न में, **गजादि वह्न्यन्तमिदं**-हाथी से लेकर अग्नि तक सोलह स्वप्न, **ददर्श**-देखे, **यत्तात**-जिनके पिता ने, **अयं**-जिन्हें, **परः गुरुः**-श्रेष्ठ गुरु, **इत्याह**-बतलाया, **शुद्धभावात्**-शुद्ध भावों से, **तम् अभिनन्दनम्**-उन अभिनन्दन जिन को, **(अहं) प्रमोदात्**-मैं प्रमोद पूर्वक, **नौमि**-नमस्कार

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

करता हूँ।

भावार्थ-जिनकी माता ने रात्रि में हाथी से लेकर अग्नि तक सोलह स्वप्न देखे और जिनके पिता ने उन्हें उत्कृष्ट गुरु बतलाया उन अभिनन्दन जिन को मैं प्रमोदपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

जिनकी माँ को रात्री में शुभ, सोलह सपने आए थे।
गज से लेकर के अग्नी तक, महत् चिन्ह दर्शाये थे॥
पिता के द्वारा श्रेष्ठ कहे जो, उनको कैसे वरण करूँ।
अभिनंदन जिन के चरणों में, प्रमुदित होकर नमन् करूँ॥4॥

कुवादिवादं जयता महान्तं, नय प्रमाणै-र्वचनै-र्जगत्सु।
जैनं मतं विस्तरितं च येन, तं देवदेवं सुमतिं नमामि।।५।।

अन्वयार्थ-महान्तं-बड़े-बड़े, **कुवादि वादं**-कुवादियों के वादों पर, **येन**-जिन्होंने, **नय प्रमाणैः**-नय और प्रमाण रूपी, **वचनैः**-वचनों से, **जयता**-विजय प्राप्त कर, **च**-और, **जगत्सु**-तीनों लोकों में, **जैनम् मतम्**-जिन धर्म का, **विस्तरितं**-विस्तार किया, **तम् देवदेवम्**-उन देवों के देव, **सुमतिं**-सुमित जिन को, **(अहम्)**-मैं, **नमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जिन्होंने नय और प्रमाण संगत वचनों के कुवादियों के बड़े-बड़े वादों पर विजय प्राप्त कर तीनों लोकों में जिन धर्म का विस्तार किया उन देवाधिदेव सुमति जिन को मैं नमस्कार करता हूँ।

अनेकांत अरु स्याद्वाद शुभ, महत् धर्म जिनने पाया।
नय प्रमाण सम्यक् वचनों से, जिनमत को भी फैलाया॥
कुमत वादियों को जीता है, उस मत को मैं ग्रहण करूँ।
सुमतिनाथ देवाधिदेव को, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥5॥

यस्यावतारे सति पितृधिष्ण्ये, ववर्ष रत्नानि हरे-र्निदेशात्।
धनाधिपः षण्णव-मासपूर्वं, पद्म प्रभं तं प्रणमामि साधुम्।।६।।

अन्वयार्थ-यस्यावतारे सति-जिनके जन्म होने के, **पूर्वं**-पूर्व में, **हरेर्निदेशात्**-इन्द्र की आज्ञा से, **धनाधिपः**-धन के अधिपति (कुबेर) ने, **पितृधिष्णये**-पिता के प्रांगण में, **षण्णव मास**-पन्द्रह महीने तक,

रत्नानि-रत्नों की, **ववर्ष**-वर्षा की, **तम्**-उन, **पद्मप्रभं साधुम्**-पद्मप्रभ जिन को, **(अहं)**-मैं, **प्रणमामि**-प्रणाम करता हूँ

भावार्थ-जिनके जन्म से पूर्व पन्द्रह महीने तक पिता के प्रागंण में इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने रत्नों की वर्षा की, उन पद्मप्रभ जिन को मैं नमस्कार करता हूँ।

जन्म समय सौधर्म इन्द्र ने, धनपति को आदेश दिया।
छह नौ माह पूर्व रत्नों की, वृष्टी का संदेश दिया॥
जिस पद को प्रभु ने पाया है, उसका मैं आचरण करूँ।
पद्मप्रभु के श्रीचरणों में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥6॥

नरेन्द्र-सर्पेश्वर नाक-नाथैर्- वाणी भवन्ती जगृहे स्वचित्ते।
यस्यात्म-बोधः प्रथितः सभाया, महं सुपार्श्वं ननु तं नमामि।।७।।

अन्वयार्थ-भवन्ती-जिनकी, **वाणी**-दिव्य ध्वनि को, **नरेन्द्र**-नरेन्द्र, **सर्पेश्वर**-धरणेन्द्र और, **नाकनाथैः**-देवेन्द्रों ने, **स्वचित्ते**-अपने चित्त में, **जगृहे**-धारण किया और, **यस्य**-जिनका, **आत्मबोधः**-आत्मबोध, **सभायाम्**-समवशरण सभा में, **प्रथित्**-प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ, **ननु**-निश्चय से, **तम् सुपार्श्वं**-उन सुपार्श्वनाथ के लिए, **नमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जिनकी दिव्यध्वनि को नरेन्द्र, धरणेन्द्र और देवेन्द्रों ने अपने चित्त में धारण किया और जिनका आत्मबोध सभा में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ उन सुपार्श्व जिन को मैं नमस्कार करता हूँ।

केवल ज्ञान प्रकट होने पर, जीवों को उपदेश दिया।
चक्रवर्ति धरणेन्द्र सुरों ने, दिव्य ध्वनि को ग्रहण किया॥
दिव्य देशना पाकर मैं भी, समतापूर्वक मरण करूँ।
प्रभु सुपार्श्व के पद पंकज में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥7॥

सत्प्रातिहार्यातिशय-प्रपन्नो, गुण-प्रवीणो हत-दोष संगः।
यो लोक-मोहान्ध-तमः प्रदीपश्, चन्द्रप्रभं तं प्रणमामि भावात्।।८।।

अन्वयार्थ-यः-जो, **सत्प्रातिहार्य**-सुन्दर प्रातिहार्य रूप, **अतिशय**-अतिशयों को, **प्रपन्नो**-प्राप्त हुए, **गुण प्रवीणः**-गुणों में प्रवीण, **हतदोष संगः**-दोष

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

समूह के नाशका और, **लोक मोहान्धतमः**-जीवों के मोह रूपी अंधकार को, **प्रदीपः**-दीपक के समान हैं, **तम् चन्द्रप्रभम्**-उन चंद्रप्रभ जिन को, **भावात्**-भावों से, **प्रणमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जो सुन्दर आठ प्रातिहार्य रूप अतिशयों को प्राप्त हुए, जो गुणों में प्रवीण हैं, जो अठारह दोषों से रहित हैं और जीवों के मोहरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए दीपक के समान हैं उन चन्द्रप्रभ जिन, को मैं भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

मूर्छा दोष रहित गुण संयुत, प्रातिहार्य वसु पाये हैं।
अतिशय चौंतिस सहित सुधी जिन, केवल ज्ञान जगाए हैं॥
दीपक मोह तिमिर के नाशक, मोह का मैं अपहरण करूँ।
चन्द्रप्रभु के पद पंकज में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥8॥

गुप्तित्रयं-पंच महाव्रतानि, पंचोपदिष्टाः समितिश्च येन।
बभाण यो द्वादशधा तपांसि, तं पुष्पदंतं प्रणमामि देवम्।।९।।

अन्वयार्थ-येन-जिन्होंने, **गुप्तित्रयं**-तीन गुप्ति, **पंच महाव्रतानि**-पाँच महाव्रत और, **पंच समितिः**-पाँच समितियों का, **उपदिष्टाः**-उपदेश किया तथा, **यः**-जिन्होंने, **द्वादशधा**-बारह प्रकार के, **तपांसि**-तपों को, **बभाण**-कहा, **तं**-उन, **पुष्पदंतं देवम्**-पुष्पदंत जिन को, **प्रणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-जिन्होंने तीन गुप्ति, पाँच महाव्रत, पाँच समिति और बारह तपों का उपदेश दिया उन पुष्पदन्त जिन को मैं नमस्कार करता हूँ।

पाँच महाव्रत समिति गुप्ति का, जिनने शुभ उपदेश किया।
द्वादश तप तपने का पावन, भव्यों को संदेश दिया॥
वीतरागता को पाया शुभ, मैं भी उसका वरण करूँ।
पुष्पदंत प्रभु के पद पंकज, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥9॥

ब्रह्मा व्रतांतो जिन नायकेनोत्, तम क्षमादि-र्दशधापि धर्मः।
येन प्रयुक्तो व्रत-बंध-बुद्ध्या, तं शीतलं तीर्थकरं नमामि।।१०।।

अन्वयार्थ-येन-जिननायकेन-मोक्षमार्ग के नेता जिनेन्द्र देव ने, **व्रत**

बन्ध बुद्धया-व्रतों के समुदाय को बुद्धि से, **उत्तम क्षमादिः**-उत्तम क्षमादि को आदि लेकर, **ब्रह्मा व्रतान्तो**-ब्रह्मचर्य व्रत पर्यन्त।, **दशधापि धर्मः**-दश प्रकार के धर्मो आदि का भी, **येन प्रयुक्तः**-जिन्होंने पालन किया, **तंशीतलं**-इन शीतलनाथ, **तीर्थङ्करं**-तीर्थङ्कर को, **नमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-मोक्षमार्ग के नेता जिनेन्द्र देव ने बुद्धि के द्वारा उत्तम क्षमा से प्रारम्भ कर ब्रह्मचर्य पर्यन्त दश प्रकार के धर्म का पालन किया, उन शीतलनाथ भगवान को नमस्कार हो।

उत्तम क्षमा धर्म से लेकर, ब्रह्मचर्य तक अन्त रहा।
दश प्रकार के धर्म व्रतों की, परम्परा को आप कहा॥
केवलज्ञान बुद्धि को पाकर, मैं भी उसको वरण करूँ।
शीतलनाथ प्रभू के पद में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥10॥

गणे जनानंद करे धरान्ते, विध्वस्त-कोपे प्रशमैक-चित्ते।
यो द्वादशांगं श्रुतमादि-देश, श्रेयांसमानौमि जिनं तमीशम्।।११।।

अन्वयार्थ-यः-जिन्होंने, **विध्वस्त कोपे**-क्रोध के नाशक अर्थात् **क्षमाशील प्रशमैकचित्ते**-प्रशांत एकचित्त, **च**-और, **धरान्ते**-संसार के, **जनानन्द करे**-प्राणियों को आनन्द देने वाले, **गणे**-गणधर को, **द्वादशांगम्**-द्वादशांग, **श्रुतम्**-श्रुत को, **आदिदेश**-उपदेश किया, **तम्**-उन, **श्रेयांसम्**-श्रेयांस, **जिनं ईशम्**-जिनेश्वर को, **आनौमि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जिन्होंने क्षमाशील, शान्तचित्त और संसार के प्राणियों को आनन्द देने वाले गणधरों को द्वादशांग श्रुत का उपदेश दिया उन श्रेयांसनाथ जिनेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।

द्वादश गण से पृथ्वी तल तक, भव्यों में आनंद भरें।
कोप विनाशक शांत स्वरूपी, द्वादशांग उपदेश करें॥
द्वादशांग श्रुत के स्वामी जिन, उनको उर में वरण करूँ।
श्रेयनाथ के श्रीचरणों में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥11॥

मुक्त्यंगनाया रचिता विशाला, रत्नत्रयी-शेखरता च येन।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

यत्कंठ-मासाद्य बभूव श्रेष्ठा, तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेगात्।।१२।।

अन्वयार्थ-येन-जिन्होंने, **मुक्त्यंगनाया**-मुक्ति रूपी वधू के लिए, **विशाला**-विशाल, **रत्नत्रयी शेखरता**-रत्नत्रय रूपी मुकुट का, **रचिता**-निर्माण किया, **च**-और, **यत्कण्ठम् आसाद्य**-जिनके कण्ठ को प्राप्त कर, **मुक्त्यंगनाया**-मुक्ति रूपी वधु, **श्रेष्ठा**-श्रेष्ठ, **बभूव**-हो गई, **तम्**-उन, **वासुपूज्यं**-वासुपूज्य जिन को, **वेगात्**-शीघ्रता से, **प्रणमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जिन्होंने मुक्तिरूपी वधू के लिए विशाल रत्नत्रयरूपी मुकुट का निर्माण किया और मुक्तिरूपी वधू जिनके कण्ठ से लगकर श्रेष्ठ हो गई उन वासुपूज्य जिन को मैं शीघ्रता के साथ नमस्कार करता हूँ।

रत्नत्रय के महत् हार का, जिनने शुभ निर्माण किया।
मुक्तिवधू ने कण्ठ में जिसको, श्रेष्ठ भाव से धार लिया॥
प्रभु ने जिन रत्नों को पाया, मैं भी उनको वरण करूँ।
वासुपूज्य के पूज्य चरण में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥12

ज्ञानी-विवेकी-परम-स्वरूपी-, ध्यानी-व्रती-प्राणि-हितोपदेशी।
मिथ्यात्वघाती शिव सौख्य भोजी, बभूव यस्तं विमलं नमामि।।१३।।

अन्वयार्थ-यः-जो, **ज्ञानी**-ज्ञानी, **विवेकी**-विवेकवान, **परमस्वरूपी**-उत्कृष्ट आत्मस्वरूप के धारी, **ध्यानी**-ध्यानी, **व्रती**-व्रती, **प्राणिहितोपदेशी**-प्राणियों के हितोपदेश, **मिथ्यात्वघाती**-मिथ्यात्व को नष्ट करने वाले, **(च)**-और, **शिवसौख्यभोजी**-मोक्षसुख के भागी, **बभूव**-हुए, **तम्**-उन, **विमलं**-विमलनाथजिनको, **(अहं)**-मैं, **नमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जो ज्ञानी, विवेकवान्, उत्कृष्ट आत्मस्वरूप के धारी, ध्यानी, व्रती, प्राणियों के हितोपदेशक, मिथ्यात्व को नष्ट करने वाले और मोक्ष सुख के भागी हुए, ऐसे उन विमलनाथ जिन को मैं नमस्कार करता हूँ।

सम्यक् ज्ञान विवेक युक्त जो, परम स्वरूप के धारक हैं।
ध्यानी व्रती हैं मिथ्याघाती, जन-जन के उपकारक हैं॥
मोक्ष सुखों को पाने वाले, मैं भी उसका वरण करूँ।

विमलनाथ के विमल चरण में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥13॥

आभ्यन्तरं-बाह्य-मनेकधा-यः, परिग्रहं सर्व-मपाचकार।
यो मार्ग-मुद्दिश्य हितं जनानां, वन्दे जिनं तं प्रणमाम्यनंतम्।।१४।।

अन्वयार्थ-यः-जिन्होंने, **जनानां हितं**-सब जीवों के हित के, **मार्गम् उद्दिश्य**-मार्ग को लक्ष्य कर, **आभ्यंतरं**-आभ्यंतर और, **बाह्यम् अनेकधा**-बाह्य अनेक प्रकार के, **सर्व परिग्रहं**-सर्व परिग्रह का, **अपाचकार**-त्याग किया, **तम्**-उन, **अनन्तम्जिनम्**-अनन्तनाथ जिन को, **प्रणमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जिन्होंने सब जीवों के हित के मार्ग को लक्ष्य कर आभ्यन्तर और बाह्य अनेक प्रकार के सर्व परिग्रह का त्याग किया उन अनन्तनाथ जिन को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

जिनने जीवों के हित हेतू, मोक्षमार्ग को लक्ष्य किया।
अन्तरंग बहिरंग परिग्रह, सभी पूर्णतः त्याग दिया॥
राग त्याग बन गये दिगम्बर, मैं भी वह आचरण करूँ।
अनंत नाथ जिनवर के पद में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥14॥

साद्र्धं पदार्था नव-सप्त तत्त्वैः-, पंचास्तिकायाश्च न कालकायाः।
षड्द्रव्य निर्णीति-रलोक युक्तिर्, येनोदिता तं प्रणमामि धर्मम्।।१५।।

अन्वयार्थ-येन-जिन्होंने, **नव पदार्था**-नव पदार्थों के, **सार्द्धं**-साथ, **सप्त तत्त्वैः**-सात तत्त्व, **पंश्चास्तिकायाः**-पाँच अस्तिकाय, **च**-और, **न कालकायाः**-काय रहित कालद्रव्य (इस तरह सब मिलाकर), **षड्द्रव्यनिर्णीतिः**-छह द्रव्य और, **अलोक युक्तिः**-अलोकाकाश की युक्ति का, **उदिता**-कथन किया, **तं धर्मम्**-उन धर्मनाथ जिन को, **प्रणमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जिन्होंने नौ पदार्थों के साथ सात तत्त्व, पाँच अस्तिकाय, कायरहित काल द्रव्य इस प्रकार सब मिलकर छह द्रव्य और अलोकाकाश की युक्ति का कथन किया उन धर्मनाथ जिन को मैं प्रणाम करता हूँ।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

सप्त तत्त्व अरु नव पदार्थ हैं, काल ना अस्तीकाय कहा।
अस्तिकाय हैं पाँच द्रव्य छह, अरु अलोक आकाश रहा॥
जिनने इनका कथन किया है, मैं भी उनका मनन करूँ।
धर्मनाथ जिन के चरणों में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥15॥

यश्चक्रवर्ती भुवि पञ्चमोऽभूच्-, छ्री नंदनो द्वादशको गुणानाम्।
निधि प्रभुःषोडशको जिनेन्द्रस्, तं शान्तिनाथं प्रणमामि -भेदात्।।१६।।

अन्वयार्थ-यः-जो, **भुवि**-लोक में, **गुणानाम्**-अनेक गुणों और, **निधि प्रभुः**-निधियों के स्वामी, **पंचम**-पाँचवे, **चक्रवर्ती अभूत**-चक्रवर्ती हुए, **द्वादशकः**-बारहवे, **श्रीनन्दनः**-कामदेव हुए और, **षोडशकः**-सोलहवे, **जिनेन्द्रं**-तीर्थंकर हुए, **तम् शांतिनाथम्**-उन शांतिनाथ जिनको, **भेदात्**-पद के अनुसार पृथक्-पृथक्, **प्रणमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-जो लोक में अनेक गुणों और निधियों के स्वामी पाँचवे चक्रवर्ती हुए, बारहवे कामदेव हुए और सोलहवे तीर्थंकर हुए उन शान्तिनाथ जिन को मैं पद के अनुसार पृथक्-पृथक् नमस्कार करता हूँ।

पंचम चक्रवर्ति पृथ्वी पर, नव निधि रत्नों के स्वामी।
कामदेव द्वादश सोलहवे, जिनवर मुक्ती पथगामी॥
'विशद' गुणों को जिनने पाया, मैं भी उनको ग्रहण करूँ।
शांतिनाथ तीर्थेश चरण में, मन वच तन से नमन् करूँ॥16॥

प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं, विराधितो यो न करोति रोषं।
शीलं व्रताद् ब्रह्मपदं गतोयस् तं कुन्थुनाथं प्रणमामि हर्षात्।।१७।।

अन्वयार्थ-यः प्रशंसित-प्रशंसा करने पर जिनको, **हर्ष**-हर्ष, न **विभर्ति**-नहीं होता और, **विराधितः**-निन्दा करने पर जो, **रोषम्**-रोष को, **न करोति**-नहीं करते तथा, **यः**-जो, **शीलव्रताद**-शील व्रतों का पालन कर, **ब्रह्मपदं**-ब्रह्म (मोक्ष) पद को, **गतः**-प्राप्त हुए हैं, **तं कुंथुनाथम्**-उन कुंथुनाथ जिन को, **हर्षात्**-हर्ष से, **प्रणमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-प्रशंसा करने पर जिन्हें हर्ष नहीं होता, निन्दा करने पर जो रोष नहीं करते और जो शीलव्रतों का पालन कर ब्रह्म (मोक्ष) पद को प्राप्त

हुए हैं उन कुंथुनाथ जिन को मैं बड़े हर्ष से प्रणाम करता हूँ।

नहीं प्रशंसा में हर्षित हों, निंदा में ना रोष करें।
शीलव्रतों का पालन करते, नहीं कभी विद्वेष करें॥
आतमपद को प्राप्त हुए जो, मैं भी उनका वरण करूँ।
कुन्थुनाथ के 'विशद' चरण में, हर्षभाव से नमन् करूँ॥17॥

न संस्तुतो न प्रणतः सभायां, यः सेवितोऽन्तर्गण-पूरणाय।
पदच्युतैः केवलिभिर्जिनस्य, देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तम्।।१८।।

अन्वयार्थ-यः-जो, **पदच्युतै**-पद से रहित, **केवलिभिः**-केवलियों के द्वारा, **न संस्तुतः**-स्तुति नहीं किए गए, **न प्रणतः**-न प्रणाम किए गए किन्तु, **अन्तर्गण पूरणाय**-अन्तर्गत की पूर्ति के लिए, **यः सेवितः**-जो सेवित हुए आदर को प्राप्त हुए, **तं अरं**- उन अरहनाथ भगवान को, **प्रणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-जो पद रहित केवलियों के द्वारा स्तुति नहीं किए गए, नमस्कार नहीं किए गए, किन्तु अन्तर्गण की पूर्ति के लिए जो सेवित हुए अर्थात् आदर को प्राप्त हुए उन अरहनाथ भगवान को प्रणाम करता हूँ।

अन्तर्गण की पूर्ती हेतू, समवशरण में आये थे।
नमन् स्तुति रहित केवली, पूर्ण समादर पाए थे॥
तीर्थंकर जिनदेव परम हैं, मैं उस पद को ग्रहण करूँ।
अरहनाथ के पद पंकज में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥18॥

रत्नत्रयं पूर्व-भवान्तरे यो, व्रतं पवित्रं कृत्वा-नशेषम्।
कायेन-वाचा-मनसा विशुद्ध्या, तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या।।१६।।

अन्वयार्थ-यः-जिन्होंने, **पूर्व भवान्तरे**-पूर्व भव में, **मनसावाचा**-मन वचन, **कायेन विशुद्धया**-काम से विशुद्ध, **पवित्रं**-पवित्र, **रत्नत्रयं व्रतं**-रत्नत्रय व्रत का, **अशेषम्** पूरी तरह, **कृतवान्**-पालन किया, **तं मल्लिनाथं**-उन मल्लिनाथ जिन को, **(अहं)**-मैं, **भक्त्या**-भक्तिपूर्वक, **प्रणमामि**-प्रणम करता हूँ।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-जिन्होंने पूर्व भव में विशुद्ध मन, वचन और काय से पवित्र रत्नत्रय व्रत का पूरी तरह पालन किया उन मल्लिनाथ जिन को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

मन, वच, तन से पूर्व भवों में, पूर्ण विशुद्धी को पाया।
रत्नत्रय व्रत पालन करके, निज आतम को भी ध्याया॥
मोहमल्ल को किया पराजित, मैं भी उसका हनन करूँ।
मल्लिनाथ जिनदेव चरण में, 'विशद' भक्ति युत से नमन् करूँ॥19॥

ब्रुवन्नमः सिद्ध-पदाय वाक्य-, मित्यग्रहीद्यः स्वयमेव लोचम्।
लोकान्तिकेभ्यः स्तवनं निशम्य, वन्दे जिनेशं मुनिसुव्रतं तम्।।२०।।

अन्वयार्थ-यः-जिन्होंने, **लौकान्तिकेभ्यः**-लौकान्तिक देवों के द्वारा की गई, **स्तवनं**-स्तुति को, **निशम्य**-सुनकर, **सिद्ध पदाय**-सिद्ध पद के लिए, **नमः**-नमस्कार हो, **इति**-इस प्रकार, **वाक्यम् ब्रुवन्**-वाक्य को कहते हुए, **स्वयमेव**-स्वयं ही, **लोचम्**-केशलोंच, **अग्रहीत्**-किए थे, **तम् मुनिसुव्रतं**-उन मुनिसुव्रत, **जिनेशं**-जिन को, **वन्दे**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-जिन्होंने लौकान्तिक देवों के द्वारा की गई स्तुति को सुनकर 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर स्वयं ही केशलोंच किया, उन मुनिसुव्रत जिनको मैं नमस्कार करता हूँ।

लौकांतिक देवों की श्रुति सुन, सिद्ध के पद को नमन् किया।
'श्री सिद्धाय नमः' कह करके, अपने हाथों लोंच किया॥
प्रभु ने सिद्ध के पद को पाया, मैं भी वह पद वरण करूँ।
मुनिसुव्रत के पद पंकज में, 'विशद' भाव से नमन् करूँ॥20॥

विद्यावते तीर्थकराय तस्मा-, दाहार दानं ददतो विशेषात्।
गृहे नृपस्या-जनि रत्नवृष्टिः स्तौमि प्रमाणान्-नयतो नमिं तम्।।२१।।

अन्वयार्थ-विद्यावतेः-(चा) ज्ञानधारी, **तीर्थकराय**-जिन तीर्थंकर देव को, **आहारदानं**-आहार दान, **ददतः**-देते हुए, **नृपस्य**-राजा के, **गृहे**-घर में, **रत्नवृष्टिः**-रत्नों की वर्षा, **अजनि**-हुई, **तं नमिं**-उन नमि जिन की, **विशेषात्**-समग्ररूप से और, **नयतः**-पृथक् रूप से, **अहं**-मैं, **स्तौमि**-स्तुति करता हूँ।

भावार्थ-चार ज्ञानधारी जिन तीर्थंकर देव को दान देते हुए राजा के घर में रत्नवृष्टि हुई उन नमि जिन की समग्र रूप से और पृथक् रूप से मैं स्तुति करता हूँ।

ज्ञानाचार युत तीर्थंकर के, नृप के घर आहार हुए।
रत्न वृष्टि तब की देवों ने, उनके भी उद्धार हुए॥
विशद ज्ञान को पाने हेतू, कर्मों से संग्राम करूँ।
नमीनाथ जिनके चरणों में, स्तुति सहित प्रणाम करूँ॥21॥

राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे, स्थितिं चकारा-पुनरागमाय।
सर्वेषु जीवेषु दया दधानस्, तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या।।२२।।

अन्वयार्थ-सर्वेषु-सब, **जीवेषु**-जीवों पर, **दयां**-दया, **दधानं**-करने वाले, **यः**-जिन्होंने, **अपुनरागमाय**-अपुनर्भव रूप प्रयोजन की सिद्धि के लिए, **राजीमतीं**-राजमती को, **प्रविहाय**-छोड़कर (अपने को) **मोक्षे स्थितिं**-मोक्ष में स्थित, **चकार**-किया, **तं**-उन, **नेमिनाथं**-नेमिनाथ जिन को, **भक्तया**-भक्तिपूर्वक, **प्रणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-सब जीवों पर दया करने वाले जो जिनदेव अपुनर्भव रूप प्रयोजन की सिद्धि के लिए राजमती (राजुल) का त्याग कर मोक्ष में स्थित हुए उन नेमिनाथ जिन को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

जीवों पर करुणा धारण कर, जग से नाता तोड़ चले।
पुनरागमन मैटने हेतू, राजीमती को छोड़ चले॥
मोक्ष में स्थित हुए प्रभू जी, जाकर मैं विश्राम करूँ।
भक्तिभाव से नेमिनाथ जिन, पद में 'विशद' प्रणाम करूँ॥22॥

सर्पाधिराजः कमठारितो-यैर्, ध्यान स्थितस्यैव फणावितानैः।
यस्योपसर्गं निरवर्त-यत्तं, नमामि पार्श्वं महतादरेण।।२३।।

अन्वयार्थ-ध्यान स्थितस्यैव-ध्यान में बैठे हुए, **यैः**-जिनके ऊपर, **कमठारितः**-बैरी कमठ के द्वारा किए गए, **यस्य उपसर्ग**-जिस उपसर्ग

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

का, **सर्पाधिराजः**-नागेन्द्र अर्थात् धरणेन्द्र ने, **फणावितानैः**-फण फैलाकर, **निरवर्त**-निवारण किया, **तं**-उन, **पार्श्व**-पार्श्वनाथ जिनको, **(अहं)**-मैं, **महत्**-बड़े, **आदरेण**-आदर से, **नमामि**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ-ध्यान में बैठे हुए जिनके ऊपर पूर्व जन्म के बैरी कमठ के द्वारा किये गये उपसर्ग को धरणेन्द्र ने ऊपर फण फैलाकर दूर किया, उन पार्श्व जिन को बड़े आदर के साथ मैं प्रणाम करता हूँ।

ध्यान अवस्था में बैठे थे, कमठ ने तब उपसर्ग किया।
फण फैलाया पद्मावति ने, अरु धरणेन्द्र ने दूर किया॥
ध्यान के द्वारा 'विशद' ज्ञान हो, मैं भी उसका मनन करूँ।
महतभाव से पार्श्वनाथ के, श्री चरणों में नमन् करूँ॥23॥

भवार्णवे जन्तु-समूहमेन-, माकर्षयामास-हि-धर्म-पोतात्।
मज्जन्त-मुद्वीक्ष्य य येन सापि, श्री वर्द्धमानं प्रणमाम्यहं तं।।२४।।

अन्वयार्थ-यः-जिन्होंने, **एनस्**-पाप से, **भवार्णवे**-संसार समुद्र में, **मज्जन्तं**-डूबते हुए, **एनम्**-जन्तु **समूहं**-इस प्राणी समूह को, **उद्वीक्ष्य**-देखकर, **हि**-ही, **धर्म-पोतात्**-धर्मरूपी जहाज के सहारे, **आकर्षयामास**-खींच लिया, बाहर निकाल लिया, **तं**-उन, **श्री वर्द्धमानं**-श्री वर्द्धमान स्वामी को, **अपि**-भी, **(अहं)**-मैं, **प्रणमामि**-प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ-पाप के कारण संसार-समुद्र में डूबते हुए प्राणी समूह को जिन्होंने धर्मरूपी जहाज के सहारे बाहर निकाल लिया उन श्री वर्द्धमान जिन को मैं नमस्कार करता हूँ।

पाप के कारण भवसागर में, डूब रहे थे जो प्राणी।
देख उन्हें निश्चय करके तब, सुना गये अमृत वाणी॥
धर्मपोत से उन्हें बचाया, धर्म को ध्याऊँ चारों याम।
तीर्थंकर श्रीवर्धमान को, 'विशद' भाव से करूँ प्रणाम॥24॥

यो धर्मं दशधा करोति पुरुषः स्त्री वा कृतोपस्कृतं,
सर्वज्ञ-ध्वनि-संभवं त्रिकरण-व्यापार-शुद्ध्यानिशम्।

भव्यानां जयमालया विमलया पुष्पाञ्जलिं दापयन्,
नित्यं स श्रियमात नोति सकलं स्वर्गापवर्ग-स्थितम्।।२५।।

अन्वयार्थ-यः पुरुषः-जो पुरुष, **वा स्त्री**-या स्त्री, **भव्यानां**-भव्य पुरुषों के द्वारा, **कृतोपस्कृतं**-किए गए, **विमलया**-विमल, **जयमालया**- गुणानुवाद के साथ, **पुष्पाञ्जलिं**-पुष्पाञ्जलि, **दापयन्**-समर्पण करता हुआ, **त्रिकरण**-व्यापार, **शुद्धया**-शुद्ध मन-वचन और काय से, **सर्वज्ञ**-ध्वनि संभव-सर्वज्ञ की ध्वनि से उत्पन्न, **दशधा धर्मम्**-दशप्रकार के धर्म को, **अनिशम् करोति**-प्रतिदिन करता है (पालता है), **सः**-वह, **स्वर्गापवर्ग**-स्वर्ग और मोक्ष में, **स्थितम्**-स्थित, **सकलं श्रियम्**-समस्त लक्ष्मी का, **आतनोति**-विस्तार करता है।

भावार्थ-जो पुरुष या स्त्री भव्य पुरुषों के द्वारा किये किये विमल गुणानुवाद के साथ पुष्पांजलि समर्पण करता हुआ शुद्ध मन, वचन और काय से प्रतिदिन सर्वज्ञ भाषित दश प्रकार के धर्म का आदरपूर्वक पालन करता है वह सदा 'विशद' स्वर्ग और मोक्षरूपी लक्ष्मी का विस्तार करता है।

रचा भव्य स्त्री पुरुषों को, विमल गुणानुवाद महान्।
अर्हत् की वाणी में भाषित, दश प्रकार का धर्म प्रधान॥
मन वच तन की शुद्धी पूर्वक, पुष्प समर्पित करते हैं।
'विशद' लक्ष्मी को पाकर शुभ, स्वर्ग मोक्ष पद वरते हैं॥25॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि चतुर्विंशति जिनाय नमः।

आचार्य श्री विमल सागर का अर्घ्य

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु वर, दीप धूप फल लाए रे!।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाकर, पद अनर्घ्य प्रगटाए रे!॥
श्री विमल सिन्धु की रे! पूजा करता जो कोय रे !।
उसके सारे कार्य पूर्ण सब, स्वतः सिद्ध हो जाय रे!।॥9॥
ॐ ह्रूँ प. पू. आचार्य श्री विमल सागराय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

सामायिक पाठ

(उपेन्द्रवज्रा छन्द)

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।१।।

अन्वयार्थ-देव-हे भगवन!, **मम आत्मा**-मेरी आत्मा, **सदा**-हमेशा, **सत्त्वेषु**-सम्पूर्ण प्राणियों में, **मैत्रीम्**-मैत्री भाव को, **गुणिषु**-गुणी जनों को, **प्रमोदं**-प्रमोद भाव को, **क्लिष्टेषु जीवेषु**-दुःखी जीवों पर, **कृपा-परत्वम्**-दया भाव को, **विपरीत वृत्तौ**-(और) विपरीत प्रवृत्ति वाले (व्यक्तियों पर), **माध्यस्थभावं**-मध्यस्थ भाव को, **विदधातु**-धारण करे।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! मेरा सब प्राणियों पर सदा मैत्री भाव रहे, गुणी जनों को देखकर प्रमोद (हार्दिक स्नेह) भाव उत्पन्न हो, दुखी जीवों पर करूणा भाव रहे और विपरीत आचरण वालों पर मध्यस्थ (उपेक्षा) भाव रहे, इस प्रकार ये चारों गुण दीजिए।

तीन लोक के सब जीवों से, मेरा मैत्री भाव रहे।
गुणी जनों को देख हृदय में, प्रेम की सरिता नित्य बहे॥
दुखी प्राणियों को लखकर के, उर में करुणा भाव जगे।
हो माध्यस्थ भाव उनके प्रति, अविनय में जो जीव लगे॥1॥

शरीरतः कर्तुमनन्त-शक्तिं, विभिन्नमात्मान-मपास्त-दोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्ग-यष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः।।२।।

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र-हे जिनेन्द्र! **कोषात्**-म्यान से, **खड्गयष्टिं**-तलवार के समान, **अनन्त शक्तिम्**-अनंत शक्ति वाले, **अपास्त दोषम्**-सम्पूर्ण दोषों से रहित, **आत्मानम्**-अपनी आत्म को, **शरीरतः विभिन्नम्**-शरीर से भिन्न, **कर्त्तुम**-करने के लिए, **तव**-आपकी/आपके, **प्रसादेन**-कृपा से/प्रसाद से, **मम**-मेरी, **शक्तिः**-शक्ति, **अस्तु**-हो।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र प्रभो! आपके प्रसाद से मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो जिनके द्वारा मैं अनंत शक्तिशाली एवं समस्त दोषों से रहित अपनी

आत्मा को शरीर से इस तरह पृथक् कर सकूँ जैसे कि कोई म्यान से तलवार को निकाल कर अलग कर देता है

हे जिनेन्द्र! तव कृपा प्राप्त कर, मुझमें ऐसी शक्ति जगे।
ज्यों तलवार म्यान से होती, भिन्न आत्मा मुझे लगे॥
है अनन्त शक्तीशाली जो, सर्व दोष से है निर्मूल।
तन से चेतन भिन्न करूँ मैं, क्षमता यह जागे अनुकूल॥2॥

दुःखे-सुखे वैरिणि-बन्धुवर्गे, योगे-वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेष-ममत्व बुद्धेः, समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ।।३।।

अन्वयार्थ-निराकृताशेष-सम्पूर्ण पर पदार्थों में, **ममत्वबुद्धे**-ममत्व बुद्धि से रहित, **नाथ**-हे भगवन्! **मे मनः**-मेरा मन, **दुःखे-सुखे**-दुःख में, सुख में, **वैरिणि बन्धुवर्गे**-शत्रु में, मित्र वर्ग में, **योगे-वियोगे**-संयोग में, वियोग में, **भवने-वने वा**-भवन में और वन में, **सदा-अपि**-सदा ही/हमेशा, **समम्**-समान/समतावान, **अस्त**-रहे।

भावार्थ-हे सम्पूर्ण ममता से रहित जिनेन्द्र प्रभु! मेरा मन दुःख में सुख में, शत्रु एवं मित्रों पर अनिष्ट संयोग और इष्ट वियोग में, वन में या महल में राग-द्वेष से रहित होकर सदा समता धारण करे।

हे जिनेन्द्र! मेरे मन में शुभ, समता का संचार बहे।
पर पदार्थ में न ममत्त्व हो, निर्ममत्व का भाव रहे॥
वन में और भवन सुख दुख में, शत्रु मित्र का हो संयोग।
या वियोग हो जाए स्वजन का, धारें समता का ही योग॥3॥

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निषाताविव बिम्बिताविव।
पादौत्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमो धुनानौहृदि दीपकाविव।।४।।

अन्वयार्थ-मुनीश-हे मुनीश्वर! **तमो धुनानौ**-अंधकार विनाशक, **दीपकौ इव**-दो दीपकों के समान, **त्वदीयौ पादौ**-आपके दोनों चरण, **मम हृदि**-मेरे हृदय में, **लीनों इव**-लीन होने के समान, **कीलितौ इव**-कीलित हुए के समान, **स्थिरः**-स्थिर/स्थाई/अविचल, **निषातौ इव**-उत्कीर्ण किये

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

गये के समान, **बिम्बितौ इव**-मूर्ति के समान, **सदा तिष्ठताम्**-हमेशा, विराजमान हों।

भावार्थ-हे मुनियों के ईश/प्रभु/स्वामी् अज्ञान या मोहरूपी अंधकार को नष्ट करने वाले आपके दोनों चरण कमल रूपी दीपक मेरे मन मंदिर में लीन हुए के समान, (दीपक के समान) तथा पत्थर पर उत्कीर्ण (उकेरे) किये के समान अथवा प्रतिबिम्ब/मूर्ति की तरह सदा-सदा के लिए विराजमान रहें।

हे मुनीश! तम के नाशक हो, दीपक सम तव दोय चरण।
लीन हुए सम या कीलित सम, अविचल मैं कर सकूँ वरण॥
स्थिर रहें उकेरे जैसे, मंगलमय शुभ मूर्ति समान।
हों आसीन हृदय में मेरे, नित्य करूँ मैं जिन का ध्यान॥4॥

एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः, प्रमादतः सञ्चरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडितास्, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा।।५।।

अन्वयार्थ-देव-हे भगवान! **यतस्ततः**-इधर-उधर, **संचरता**-संचार करते हुए, **मया**-मेरे द्वारा, **यदि**-यदि, **एकेन्द्रियाद्या**-एकेन्द्रिय आदि, **देहिनः**-प्राणी, **क्षता**-विनष्ट हो गये हों, **विभिन्न**-अलग-अलग हो गये हों, **मिलिता**-मिल गये हों, **निपीडिताः**-अथवा पीड़ित हुए हों, **तदा**-तो, **तत्**-वह, **दुरनुष्ठितं**-दुराचरण/पाप, **मम**-मेरा, **मिथ्या**-मिथ्या/विफल/निष्फल, **अस्तु**-हो।

भावार्थ-हे देव! यदि प्रमाद से इधर-उधर चलते हुए मेरे द्वारा एकेन्द्रिय आदि जीवों को क्षत-विक्षत किया गया हो, या अपने समूह से अलग कर दिया हो, या दूसरे समूह में मिला दिया गया हो, तो मेरा यह दुष्कृत मिथ्या हो/ निष्फल हो।

हे जिनेन्द्र! मैंने प्रमाद से, इधर उधर कीन्हा संचार।
एकेन्द्रिय आदिक जीवों का, यदि हुआ होवे संहार॥
मले गये या चोट खाये हों, अलग-अलग जो हुए कहीं।
दुराचरण वह मिथ्या हो मम्, मैंने जाना उसे नहीं॥5॥

विमुक्तिमार्ग-प्रतिकूल वर्तिना, मया-कषायाक्ष-वशेन दुर्धिया।
चारित्र शुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो!।।६।।

अन्वयार्थ-प्रभो-हे स्वामिन्!, **विमुक्ति मार्ग**-मोक्ष मार्ग के, **प्रतिकूल**-प्रतिकूल, **वर्तिना**-आचरण करने वाले, **दुर्धिया**-कुबुद्धि/दुर्बुद्धि वाले, **मया**-मेरे द्वारा, **कषायाक्ष वशेन**-कषाय और इन्द्रियों के विषयों के वशीभूत होकर, **चारित्रशुद्धेः**-चारित्र की शुद्धि का, **यत् लोपनम्**-जो लोप, **अकारि**-किया हो (तो), **मम् दुष्कृतम्**-मेरा दुष्कृत, **मिथ्या अस्तु**-मिथ्या हो! निष्फल हो।

भावार्थ-विषय और कषायों के वश होकर हे स्वामिन्! मोक्षमार्ग के प्रतिकूल आचरण करके मैंने यदि चारित्र की शुद्धि का लोप किया हो तो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।

हे जिनेन्द्र! मुक्ती मारग के, किया आचरण जो प्रतिकूल।
वह कषाय इन्द्रिय विषयों के, वशीभूत हो हुई ये भूल॥
लोप हुआ चारित्र शुद्धि का, मुझ दुर्बुद्धी के द्वारा।
वह दुष्कृत मिथ्या हो जाए, हे स्वामी! मेरा सारा॥6॥

विनिन्दनालोचन-गर्हणैरहं, मनोवचः काय कषाय-निर्मितम्।
निहन्मि पापं भव दुःख कारणं, भिषग्विषं मंत्र गुणैरिवाखिलम्।।७।।

अन्वयार्थ-भिषक्-वैद्य, **मन्त्रगुणै**-मंत्रों की शक्ति द्वारा, **अखिलम् विषम् इव**-जैसे सम्पूर्ण विष को नष्ट कर देते हैं उसी तरह, **अहम्**-मैं, **विनिन्दनालोचनगर्हणैः**-(आत्मा) निन्दा, आलोचना और गर्हा के द्वारा, **मनो वचः काय कषाय**-मन, वचन, काय और कषाय से, **निर्मितम्**-उपार्जित, **भव दुःख कारणम्**-सांसारिक दुःखों के कारण भूत, **पापम्**-पापों को, **निहन्मि**-नष्ट करता हूँ।

भावार्थ-हे भगवन्! मैंने मन, वचन, काय और कषायों द्वारा संसार दुःख के कारण भूत जो पाप किये हैं उसे मैं आत्म निंदा-गर्हा और आलोचना द्वारा उसी प्रकार से नष्ट करता हूँ जिस प्रकार वैद्य मंत्रों के द्वारा समस्त विष को नष्ट कर देता है।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

हे जिनेन्द्र! मैंने कषाय या, मन वच तन से कीन्हा पाप।
मैं निन्दा आलोचन द्वारा, करता उसका पश्चात्ताप॥
ज्यों मंत्रों की शक्ती द्वारा, विष का करता वैद्य विनाश।
भव दुख के कारण पापों का, त्यों मेरे हो जाए नाश॥7॥

अतिक्रमं यद्विमते-र्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं-सुचरित्र कर्मणः।
व्यधामनाचार-मपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये।।८।।

अन्वयार्थ-जिन-हे जिनेन्द्र! **अहं**-मैंने, **सुचरित्र कर्मणः**-श्रेष्ठ चारित्र के अनुष्ठान (में), **विमते**-दुर्बुद्धि से (और), **प्रमादतः**-प्रमाद से, **यः**-जो, **अतिक्रमम्**-अतिक्रम, **व्यतिक्रमम्**-व्यतिक्रम, **अतिचारम्**-अतिचार (और), **अनाचरम् अपि**-अनाचार भी, **व्यधाम्**-किया है, **तस्य शुद्धये**-उसकी शुद्धि के लिए, **प्रतिक्रमम् करोमि**-प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र देव! ग्रहण किये गये चारित्र के पालने में जो मैंने प्रमाद से अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार किया है उसे दूर कर चारित्र की शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

हे जिनेन्द्र! चारित्र क्रिया में, अतिक्रम हुआ रहा अज्ञान।
या प्रमाद से हुआ व्यतिक्रम, जिसमें हुई व्रतों की हान॥
अतिचार या अनाचार जो, मुझसे हुआ है हे भगवान!
उसकी शुद्धि हेतु करता हूँ, प्रतिक्रमण मैं करके ध्यान॥8॥

क्षतिं मनःशुद्धि-विधे-रतिक्रमं, व्यतिक्रमं शीलव्रते-र्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचार-मिहाति-सक्तताम।।९।।

अन्वयार्थ-प्रभो-हे भगवन्!, **इह (ज्ञानिन)**-इस लोक में आप जैसे ज्ञानीजन, **मनः शुद्धि विधेः**-मन की शुद्धि विधि की, **क्षतिं**-क्षति/विनाश को, **अतिक्रमम्**-अतिक्रम, **शील व्रतेः**-शील के बाढ़ (मर्यादा) के, **विलंघनम्**-उल्लंघन को, **व्यतिक्रमम्**-व्यतिक्रम, **विषयेषु**-विषयों में, **वर्तनम्**-प्रवर्तन को, **अतिचारम्**-अतिचार (और), **अतिसक्तताम्**-अत्यासक्ति को, **अनाचारम्**-अनाचार, **वदन्ति**-कहते हैं।

भावार्थ-हे प्रभो! आपने मनः शुद्धि के विनाश को अतिक्रम, व्रत की मर्यादा के उल्लंघन को व्यतिक्रम, इन्द्रिय विषय सेवन को अतिचार तथा आसक्ति पूर्वक विषय सेवन को अनाचार कहा है।

हे जिनेन्द्र! ज्ञानी जन मन की, शुद्धी में क्षति को अतिक्रम।
शीलव्रतों के उल्लंघन को, कहते हैं वह तो व्यतिक्रम॥
विषयों में यदि होय प्रवर्तन, उसको कहते हैं अतिचार।
अनाचार अत्याशक्ती को, कहते आगम के अनुसार॥9॥

यदर्थमात्रा-पद-वाक्य-हीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवल बोध-लब्धिम्।।१०।।

अन्वयार्थ-यदि-यदि, **मया**-मेरे द्वारा, **प्रमादात्**-प्रमाद से, **यत्**-जो, **अर्थ मात्रा, पद वाक्य**-अर्थ मात्रा, पद और वाक्य से, **हीनम्**-हीन/रहित, **किंचित्**-कुछ भी, **उक्तम्**-कहा गया हो तो, **मे**-मेरे, **तत्**-उस अपराध को, **क्षमित्वा**-क्षमा करके, **सरस्वती देवी**-सरस्वती देवी/जिनवाणी माता, **केवल बोध लब्धिम्**-केवल ज्ञान रूपी लब्धि को, **विदधातु**-प्रदान करे।

भावार्थ-मैंने प्रमाद से यदि अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य से हीन कुछ भी कहा हो तो, हे सरस्वती देवी! मेरे उस अपराध को क्षमा कर मुझे केवलज्ञान रूपी लब्धि दें।

हे देवी! जिन सरस्वती यदि, मेरे द्वारा हुआ प्रमाद।
वाक्य अर्थ पद मात्रा का जो, किंचित् हीन हुआ उत्पाद॥
वह अपराध क्षमा हो मेरा, देना हमको करुणादान।
केवल ज्ञान रूप लब्धी अब, माता हमको करो प्रदान॥10॥

बोधिःसमाधिः परिणाम-शुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः
चिन्तामणिं चिन्तित-वस्तु-दाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि!।।११।।

अन्वयार्थ-देवि-हे सरस्वती देवि!, **चिन्तित वस्तुदाने**-मनोवांछित वस्तु के देने में, **चिन्तामणिं**-चिन्तामणी रत्न के समान, **त्वाम्**-आपको, **वन्द्यमानस्य**

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

मम-वन्दन करने वाले मुझे, **बोधिः**-बोधि/केवलज्ञान, **समाधिः**-समाधि, **परिणाम शुद्धि**-परिणामों की शुद्धि, **स्वात्मोपलब्धिः**-अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति, **शिवसौख्य सिद्धिः**-(और) मोक्ष सुख की सिद्धि, **अस्त**-हो।

भावार्थ-हे सरस्वती देवि! आप मनोवांछित वस्तु को देने के लिए चिन्तामणि के समान हैं अतएव आपकी वन्दना करने वालों को बोधि, समाधि, परिणामों की शुद्धि, अपने आत्म स्वरूप की उपलब्धि और मुक्ति के सुख की सिद्धि आपके प्रसाद से प्राप्त हो।

हे देवी! जिन सरस्वती तव, मन वाञ्छित फल की दाता।
चिंतामणि सम तुमको वन्दन, तव चरणों में सिर नाता॥
बोधि समाधी मुझे प्राप्त हो, परिणामों की हो शुद्धी।
निज स्वरूप की प्राप्ती हो अरु, मोक्ष सौख्य की हो सिद्धी॥11॥

यः स्मर्यते सर्व-मुनीन्द्र-वृन्दैः-, यः स्तूयते सर्व-नरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥१२॥

अन्वयार्थ-यः-जो, **सर्वमुनीन्द्र-वृन्दैः**-सभी मुनिराजों के समूह द्वारा, **स्मर्यते**-स्मरण किया जाता है, **यः**-जो, **सर्वनरामरेन्द्रैः**-सभी नरेन्द्रों और देवेन्द्रों से, **स्तूयते**-स्तुत्य (है तथा), **यः**-जो, **वेदपुराण शास्त्रैः**-वेदों पुराणों और शास्त्रों के द्वारा, **गीयते**-गाया जाता है, **सः**-वह, **देव-देवः**-देवाधिदेव (अरहन्त), **मम**-मेरे, **हृदये**-हृदय **में**, **आस्ताम्**-विराजमान रहे।

भावार्थ-जिसे सर्व मुनिराज सदा स्मरण करते हैं, जिसका सर्व इन्द्र नरेन्द्र और धरणेन्द्र स्तवन करते हैं और जिसका वेद, पुराण और शास्त्र गुणगान करते हैं वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

मुनि नायक के वृंदों से जो, नित्य स्मरण योग्य कहे।
सुरपति नरपति जिनकी स्तुति, करने में तल्लीन रहे॥
वेद पुराण शास्त्र में गाए, वह मेरे देवाधिदेव।
हृदय कमल पर करुणा करके, आन विराजो श्री जिनदेव॥12॥

यो दर्शनज्ञान सुखस्वभावः, समस्त संसार विकार-वाह्यः।

समाधि-गम्यः परमात्म-संज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥१३॥

अन्वयार्थ-यः-जो, **दर्शन ज्ञान**-अनंतदर्शन अनन्तज्ञान और, **सुख-स्वभावः**-अनन्त सुखरूप स्वभाव वाले हैं, **(यः) समस्त संसार**-जो संसार के समस्त, **विकार बाह्यः**-विकारों से रहित हैं, **(यः) समाधि गम्यः**-जो समाधि से गम्य हैं, **(यः) परमात्मसंज्ञः**-और परमात्म संज्ञा के धारक हैं, **स देवदेवः**-वह देवों के देव, **मम हृदये**-मेरे हृदय में, **आस्ताम्**-विराजमान रहें।

भावार्थ-जो अनन्त दर्शन, ज्ञान और सुख रूप स्वभाव वाले हैं, जो संसार के समस्त विकारों से रहित हैं जो समाधि के द्वारा ही अनुभवगम्य हैं और जिसे योगीजन परमात्मा कहते हैं वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

दर्श अनन्त ज्ञान को पाए, सुख स्वभाव में रहते लीन।
इस संसार के सभी विकारों, से जो रहते पूर्ण विहीन॥
जो समाधि के गम्य रहे हैं, परमातम संज्ञा धारी।
वह देवों के देव हमारे, हृदय बसें मंगलकारी॥13॥

निषूदते यो भवदुःख-जालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालं।
योऽन्तर्गतो योगि-निरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥१४॥

अन्वयार्थ-यः-जो, **भवदुःख जालम्**-संसार के दुःख समूह को **निषूदते**-नष्ट करता है, **यः**-जो, **जगदन्तरालम्**-जगत के अन्तराल को, **निरीक्षते**-देखता है, **यः अन्तर्गतः**-जो लोक के अन्त में स्थित है, **योगि निरीक्षणीयः**-और योगीजनों के द्वारा अवलोकनीय है। **स, देव देवो**-वह देवों का देव, **मम हृदयम्**-मेरे हृदय में, **आस्ताम्**-विराजमान रहे।

भावार्थ-जो संसार दुःख जाल को काटते हैं, जो जगत के अन्तराल को अर्थात् सम्पूर्ण लोक को जानते और देखते हैं और जो योगी जनों द्वारा जाने जाते हैं वे देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

जो भव दुक्खों के समूह का, कर देता है पूर्ण विनाश।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

और जगत् के अन्तराल का, ज्ञान में जिसके होय प्रकाश॥
योगी जन से प्रेक्षणीय जो, जिनका है लोकाग्र निवास।
वह देवों के देव कृपाकर, मेरे करें हृदय में वास॥14॥

विमुक्तिमार्ग प्रतिपादको यो,- यो जन्ममृत्यु व्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।१५।।

अन्वयार्थ-यः-जो, विमुक्ति मार्ग, **प्रतिपादकः**-मोक्ष मार्ग के प्रतिपादक हैं, जन्म मृत्यु **व्यसनात्**-जन्ममरणादि के दुःखों से, **अतीतः**-रहित हैं, **(यः) त्रिलोक लोकी**-जो तीनों लोकों का अवलोकन करते हैं, **विकल**-शरीर रहित हैं, **अकलंक**-कर्म कलंक से रहित हैं, **स देवदेवः**-वह देवों के देव, **मम हृदये**-मेरे हृदय में, **आस्ताम्**-विराजमान रहें।

भावार्थ-जो मोक्षमार्ग के प्रतिपादक हैं, जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु इत्यादि दुःखों से रहित हैं, लोकालोक के ज्ञाता दृष्टा हैं, अशरीरी हैं, कर्म कलंक से रहित हैं वे देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

मोक्ष मार्ग के प्रतिपादक हो, जन्म मरण दुःखों से हीन।
तीन लोक अवलोकन करते, जो शरीर से रहे विहीन॥
कर्म कलंक हीन होते जो, वह हैं देवों के भी देव।
हृदय कमल पर करुणा करके, आन विराजो श्री जिनदेव॥15॥

क्रोडी-कृताशेष-शरीरवर्गाः-, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।१६।।

अन्वयार्थ-क्रोडी कृताशेष शरीरवर्गाः-समस्त प्राणियों को व्याप्त करने वाले, **रागादयो**-रागादिक, **दोषाः**-दोष, **यस्य**-जिसके, **न सन्ति**-नहीं है, **सः**-वह, **निरिन्द्रियः**-अतीन्द्रिय, **ज्ञानमयः**-ज्ञानमयी, **अनपायः**-अपाय रहित, **देव देवः**-देवों का देव, **मम हृदये**-मेरे हृदय में, **आस्ताम्**-विराजमान रहें।

भावार्थ-समस्त प्राणीवर्ग को अपने आधीन करने वाले रागादि दोष जिनमें किचिंत भी नहीं हैं। जो अतीन्द्रिय हैं, ज्ञानमयी हैं और सर्व अपायों से रहित हैं। वे देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

तीन लोकवर्ती जीवों को, व्याप्त करें रागादिक दोष।
दोष रहित वह कहे अतीन्द्रिय, ज्ञान मयी होते निर्दोष॥
जो अपाय से रहित लोक में, वह हैं देवों के भी देव।
हृदय कमल पर करुणा करके, आन विराजो श्री जिनदेव॥16॥

यो व्यापको विश्व-जनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुत-कर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं-, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।१७।।

अन्वयार्थ-यः-जो, **व्यापकः**-ज्ञेय की अपेक्षा सर्व व्यापक है, **विश्व जनीन वृत्तेः**-विश्व कल्याण की जिनकी सहज प्रवृत्ति है, **सिद्धोः**-सिद्ध हैं, **विबुद्धः**-ज्ञायक स्वभावी है, **धुत कर्मबन्धः**-कर्म बन्धनों के विध्वंसक हैं, **ध्यातः**-ध्यान में चिन्तन करने वाले, **सकलम्-समस्त, विकारम्**-विकारी भावों को, **धुनीते**-नष्ट करते हैं, **स देवदेवः**-वह देवों के देव, **मम हृदये**-मेरे हृदय में, **आस्ताम्**-विराजमान रहें।

भावार्थ-विश्व कल्याण की प्रवृत्ति जिनकी साहजिक हो चुकी है जो ज्ञेयापेक्षा सर्वव्यापी है, सिद्ध हैं, जानने की अपेक्षा ज्ञायक स्वभावी हैं और सर्वकर्म बन्धनों से रहित हैं तथा जिनका ध्यान करने से हृदय के सर्व विकार दूर हो जाते हैं, वे देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान रहें।

ज्ञेयापेक्षा व्यापक हैं जो, ज्ञायक स्वभावी हैं जो सिद्ध।
विश्व कल्याण की वृत्ती जिनकी, सर्वलोक में रही प्रसिद्ध॥
कर्म बन्ध विध्वंसक ध्याता, सकल विकारों के नाशी।
वह देवों के देव हमारे, अन्तःपुर के हों वासी॥17॥

न स्पृश्यते कर्म कलङ्कदौषैर्- यो ध्वान्त सङ्घैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्यमनेक-मेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।१८।।

अन्वयार्थ-ध्वान्त संघैः-अन्धकार समूह से, **तिग्मरश्मिः इव**-जैसे सूर्य स्पष्ट नहीं होता है, **यः-(उसी प्रकार)** जो, कर्म कलंक **दोषैः**-कर्म

कलंक और रागादि दोषों से, **न स्पृश्यते**-स्पष्ट नहीं होता (तथा जो), कर्म कलंक और रागादि दोषों से, **न स्पृश्यते**-स्पष्ट नहीं होता (तथा जो), **निरंजनम्**-कर्म कालिमा से रहित, निरंजन, निर्मल, **नित्यम्**-नित्य, **अनेकम्**-अनेक और, **एकम्**-एक स्वरूप है, **तं**-उस, **आप्तम्**-आप्त, **देवम्**-देव की, **अहम्**-मैं, **शरणम**-शरण को, **प्रपद्ये**-ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ-जैसे सम्पूर्ण अंधकार का समूह भी सूर्य को स्पर्शित नहीं कर सकता अर्थात् सूर्य अंधकार समूह से अस्पृष्ट है उसी प्रकार ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म कलंक से रहित और रागादि दोष जिसे स्पर्श भी नहीं कर सकते हैं, जो नित्य निरंजन स्वरूप है और जो एक रूप होकर के भी अनेक रूप में हैं मैं उन्हीं आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

तम समूह ज्यों रवि किरणों को, कर सकता है न स्पर्श।
कर्म कलंक दोष त्यों जिनके, करते नहीं कभी भी दर्श॥
नित्य निरंजन जो अनेक इक, वह जिनवर हैं मेरे आप्त।
देवों के जो देव कहे हैं, उनकी शरण हमें हो प्राप्त॥18॥

विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनाव-भासी।
स्वात्मस्थितं बोधमय-प्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।१६।।

अन्वयार्थ-**भुवनावभासी**-भुवन का **प्रकाशकमरीचिमाली**-सूर्य, **यत्र**-यहाँ, **विद्यमाने**-(आपके) विद्यमान रहने पर, **न विभासते**-शोभा नहीं पाता है, **स्वात्म स्थितम्**-ऐसे अपने आत्म स्वरूप में स्थित, **बोधमय प्रकाशम्**-ज्ञान मय प्रकाश वाले, **तं आप्तम् देवम्**-उस आप्त देव की, **शरणम् प्रपद्ये**-शरण को ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ-जिनेन्द्र देव के विद्यमान रहने पर भुवन प्रकाशक सूर्य शोभा नहीं पाता है, जो अपने आत्मा में स्थित हैं और ज्ञानमयी प्रकाश वाले हैं, मैं उन्हीं आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

भुवन भास्कर सूर्य कभी भी, शोभा पाता नहीं वहाँ।
विद्यमान रहते हैं अनुपम, प्रखर प्रकाशी प्रभू जहाँ॥

निज आतम स्वरूप में स्थित, ज्ञान प्रकाशी रहे सदैव।
शरण प्राप्त करता मैं उनकी, आप्त कहे देवों के देव॥19॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तं।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनंतं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।२०।।

अन्वयार्थ-**यत्र**-जिसके, **विलोक्यमाने**-अवलोकन, **सति**-करने पर, **इदम्**-यह, **विश्वम्**-विश्व स्पष्ट रूप से, **विविक्तम्**-पृथक्-पृथक्, **विलोक्यते**-दिखाई देता है, **शुद्धम्**-उस शुद्ध, **शिवम्**-शिव, **शान्तम्**-शान्त स्वरूप और, **अनाद्यनन्तम्**-आदि अन्त से रहित, **तं आप्तं देवं**-ऐसे उन आप्त प्रभु की, **(अहं) शरणम् प्रपद्ये**-(मैं) शरण को ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ-जिनके केवल दर्शन में यह सारा विश्व स्पष्ट और पृथक्-पृथक् दिखाई देता है, जो शुद्ध शांत आदि अन्त रहित और शिव स्वरूप है, मैं उन्हीं आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

जिनके अवलोकन करने पर, सारा का सारा संसार।
पृथक-पृथक दिखता है इकदम, कोई किसी का न आधार॥
वह शिव शान्त स्वरूप सिद्ध जिन, तो हैं आदिक अन्त विहीन।
आप्त देव की शरण प्राप्त कर, भक्ति में हो जाऊँ लीन॥20॥

येन क्षताः मन्मथ-मान-मूर्च्छा,- विषाद-निद्रा-भय शोक-चिन्ताः।
क्षतोऽनलेनेव तरु-प्रपञ्चस्, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।२१।।

अन्वयार्थ-**अनलेन**-अग्नि के द्वारा, **तरु प्रपंचः**-वृक्षों का समूह, **क्षता इव**-जैसे क्षय (भस्म) कर दिया जाता है, **येन**-उसी प्रकार जिसके द्वारा, **मन्मथ मान मूर्च्छा**-काम, मान, मूर्छा, विषाद, निद्रा, भय, शोक, चिन्ता **(आदि समस्त दोष)**-दुख, निद्रा, भय, शोक, चिंता, क्षता-क्षय को प्राप्त हो चुके हैं। **(अहं) तं आप्तम् देवम्**-(मैं) उस आप्त देव की, **शरणम् प्रपद्ये**-शरण को प्राप्त होता हूँ।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-जिस प्रकार अग्नि के द्वारा वृक्षों का समूह क्षय को प्राप्त होता है। उसी प्रकार जिसके द्वारा काम विकार, मान, मूर्छा, विषाद, निद्रा, भय, शोक और सर्व प्रकार की चिन्तायें नष्ट कर दी गई हैं, मैं उसी आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

वृक्ष समूह अग्नि के द्वारा, पूर्ण रूप हो जाता क्षय।
भय निद्रा मूर्छा दुख चिन्ता, शोकादिक त्यों होय विलय॥
मान और मन्मथ आदिक सब, दोषों से जो पूर्ण विहीन।
आप्त देव की शरण प्राप्त कर, भक्ती में हो जाऊँ लीन॥21॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्ष-कषाय-विद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः।।२२।।

अन्वयार्थ-विधानतः-विधान रूप से समाधि का साधन, **न संस्तरोश्मा**-न संस्तर (आसन) है, **न तृणम्**-न तृण पुंज है, **ने मेदिनी**-न पृथ्वी है और, **विनिर्मितः फलकः**-न बनाया गया काष्ठ फलक (चौकी पाटा) ही है। **यतः**-क्योंकि, **सुधिभिः**-बुद्धिमानों के द्वारा, **निरस्ताक्ष कषाय**-विषय कषायरूपी, **विद्विषः**-शत्रुओं से रहित, **सुनिर्मलः**-निर्मल, **आत्मा एव**-आत्मा ही, **मतः**-(ध्यान का आसन) माना गया है।

भावार्थ-ध्यान का आसन, न संस्तर है, न पाषाण है न तृण है, न भूमि है और न काष्ठ फलक (चौकी/पाटा, तख्त) है किन्तु जिसके अन्दर से विषय कषाय रूप शत्रु दूर हो गये हैं ऐसी निर्मल आत्मा को ज्ञानी जनों ने ध्यान का आसन माना है।

परम समाधी के विधान में, न संस्तर है न पाषाण।
न तृण पुंज और न पृथ्वी, नव निर्मित न फलक महान्॥
क्योंकि बुद्धीमानों द्वारा, विषय कषाय शत्रु से हीन।
निर्मल आतम ही समाधि के, मानी योग्य पूर्ण स्वाधीन॥22॥

न संस्तरो भद्र! समाधि-साधनं-, न लोकपूजा न च संघमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्य-वासनाम्।।२३।।

अन्वयार्थ-भद्र-हे भद्र!, **यतः**-क्योंकि, **न संस्तरः**-न संस्तर (आसन), **न लोक पूजा**-न लोक पूजा और, **न संघ मेलनम्**-न संघ सम्मेलन, **समाधि साधनम्**-समाधि के साधन हैं, **ततः**-इसलिए, **सर्वामपि**- सभी, **बाह्यवासनाम्**- बाहरी वासनाओं को, **विमुच्य**-छोड़ करके, **अनिशम्**-निरन्तर/दिनरात, **अध्यात्मरतः**-अध्यात्म में निरत, **भव**- हो।

भावार्थ-हे भद्र परिणामी आत्मन! समाधि का साधन निश्चय से न संस्तर है, न लोक पूजा है और न संघ समूह है, इसलिए सभी बाह्य वासनाओं को छोड़कर अपने अध्यात्म में निरन्तर संलग्न रहो।

हे भद्र! नहीं है संस्तर क्योंकि, नहीं लोक पूजा मनहार।
नहीं संघ सम्मेलन अनुपम, परम समाधी का आधार॥
इसीलिए तुम सब प्रकार से, बाह्य वासना को छोड़ो।
नित्य प्रतिदिन आत्म निरत हो, अध्यातम से नाता जोड़ो॥23॥

न सन्ति बाह्या मम केचनार्थाः-, भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै।।२४।।

अन्वयार्थ-केचन बाह्या-कोई भी बाहरी, **अर्थाः**-पदार्थ, **मम न सन्ति**-मेरे नहीं हैं, (च) **न अहं तेषां**-(और) न मैं उनका, **कदाचन् भवामि**-कदापि हूँ, **इत्थम् विनिश्चित्य**-इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके, **बाह्यं विमुच्य**-बाह्य सम्पर्क को छोड़कर, **भद्र**-हे भद्र, **त्वम् सदा**-तुम सदा, **स्वस्थः भव**-अपनी आत्मा में स्थिर रहो।

भावार्थ-कोई भी बाह्य पदार्थ मेरा नहीं है और न मैं कभी उनका हुआ हूँ ऐसा दृढ निश्चय कर हे भद्र पुरुष! बाह्य वस्तुओं को छोड़कर तुम मुक्ति प्राप्ति के लिए सदा अपनी आत्मामें स्थिर रहो।

हे भद्र! नहीं हैं मेरे कोई, जो भी बाह्य पदार्थ रहे।
नहीं कदापि मैं उनका हूँ, कोई कुछ भी हमें कहे॥
इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके, बाह्य की तुम संगति छोड़ो।
नित्य प्रति अब निज आतम से, अपना तुम नाता जोड़ो॥24॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

आत्मान-मात्मन्यवलोकमानस्, त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र-, स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम्।।२४।।

अन्वयार्थ-आत्मानम्-अपनी आत्मा को, **आत्मनि**-अपने आप में, **अवलोक्यमानः**-अवलोकन (साक्षात्) करते हुए, **त्वम्**-तुम, **खलु**-निश्चय से, **दर्शन-ज्ञान-मयः**-दर्शन ज्ञान से युक्त, **विशुद्धः**-विशुद्ध हो, **साधु**-साधु/मुनिजन, **यत्र तत्रापि स्थितः**-जहाँ कहीं भी स्थित हों, **एकाग्रचितः**-एकाग्रचित होकर, **समाधिम्**-समाधि को, **लभते**-प्राप्त करे हैं।

भावार्थ-हे आत्मन्! तू अपनी आत्मा में अपने आप का अवलोकन कर, क्योंकि अनंत दर्शन ज्ञानमयी और विशुद्ध स्वभाव वाली आत्मा में एकाग्रचित्त होकर साधु जन जहाँ कहीं भी स्थित होकर समाधि को प्राप्त कर लेते हैं।

निज आतम को निज आतम से, करना भाई अवलोकन।
निश्चय से सद्ज्ञान युक्त हो, और सहित हो सद्दर्शन॥
जहाँ कभी भी स्थित साधू, मोहादि सब करें समाप्त।
हो विशुद्ध एकाग्र चित्त वह, परम समाधि करते प्राप्त॥25॥

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगम-स्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता-, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः।।२६।।

अन्वयार्थ-मम आत्मा-मेरी आत्मा, **सदा एकः**-हमेशा एकाकी, **शाश्वतिकः**-शाश्वत, **विनिर्मलः**-निर्मल, **साधिगम स्वभावः**-अधिगम (ज्ञान) स्वभाव से युक्त है। **अपरे समस्ता**-अन्य सभी, **बहिर्भवाः**-बाहरी पदार्थ, **कर्म भवाः**-कर्म जनित हैं, **स्वकीयाः**-वे अपने और, **शाश्वताः न सन्ति**-शाश्वत नहीं हैं।

भावार्थ-मेरी आत्मा सदा एक और नित्य स्वरूप है कर्म मलों से रहित और ज्ञान स्वभावी है और इसके अलावा जितने भी बाहरी पदार्थ तथा राग-द्वेषादि हैं वे सब कर्मजनित हैं एवं अशाश्वत् हैं।

मम आतम है एक हमेशा, है अधिगम स्वभाव संयुक्त।
जो शाश्वत् है परम सुनिर्मल, अन्य सभी से रहा वियुक्त॥

बाह्य पदार्थ रहे जो कुछ भी, नहीं हैं अपने शाश्वत् रूप।
कर्म जनित होते हैं सब ही, जिनवर कहते वस्तु स्वरूप॥26॥

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः-, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये।।२७।।

अन्वयार्थ-यस्य-जिसको, **वपुषा अपि**-शरीर (के) भी, **सार्द्धम्**-साथ, **न ऐक्यम्**-ऐक्य नहीं है, **तस्य**-उसका, **पुत्र कलत्र मित्रैः**-पुत्र, स्त्री और मित्रों के साथ, **किम (ऐक्यम्) अस्ति**-क्या एकता संभव है? अर्थात् नहीं, **चर्मणि**-(क्योंकि) चमड़े के, **पृथक कृते**-अलग कर देने पर, **शरीरमध्ये**-शरीर के मध्य में, **रोमकृपाः**-रोम छिद्र, **हि कुतः तिष्ठन्ति**-निश्चय से कहाँ रह सकते हैं।

भावार्थ-जिसकी शरीर के साथ भी ऐक्यता नहीं है फिर उसका पुत्र, स्त्री और मित्रों के साथ ऐक्य कैसे संभव है। चर्म के पृथक् कर देने पर फिर उससे संबंधित रोम छिद्र पृथक् ही हो जाते हैं वे माँसादि से लगे नहीं रहते क्योंकि वे चर्म में ही होते हैं।

चर्म अलग कर देने पर ज्यों, इस शरीर के मध्य कभी।
रोम छिद्र निश्चय से उसमें, कहाँ रहेंगे कहो सभी॥
इस शरीर के साथ भी जिसका, एक्यपना है नहीं कदा॥
स्त्री पुत्र मित्र में उसका, कैसे सम्भव ऐक्य तदा॥27॥

संयोगतो दुःखमनेक भेदं,- यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो- यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्।।२८।।

अन्वयार्थ-यतः-क्योंकि, **शरीरी**-संसारी प्राणी, **जन्म वने**-संसार रूपी वन में, **संयोगतः**-संयोग के कारण, **अनेक भेदं**-अनेक प्रकार के, **दुःखम्**-दुःख को, **अश्नुते**-पाता है, **अतः**-इसलिए, **आत्मनीनाम्**-अपनी कल्याण कारणी, **निर्वृतिम्**-मुक्ति के, **यियासुना**-इच्छुक जन को, वह संयोग, **त्रिधा परिवर्जनीयः**- तीनों प्रकार से अर्थात् मन-वचन-काय से छोड़ देना चाहिए।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-बाह्य पदार्थों के संयोग से अर्थात् उनमें ममत्व भाव स्थापित करने से ही प्राणी भव वन में अनेक प्रकार के दु:खों को प्राप्त होता है। इसलिए मुक्ति के इच्छुक भव्यों को वह संयोग मन, वचन, काय से अवश्य ही छोड़ देना चाहिए।

भव वन में संसारी प्राणी, क्योंकि पाते हैं संयोग।
इस कारण से कई प्रकार के, पावे दु:खों का वह योग॥
इसीलिए कल्याण कारिणी, मुक्ती के इच्छाकारी।
मन वच तन से वह संयोगों, को छोड़ें हो अविकारी॥28॥

सर्वं निराकृत्य विकल्प-जालं, संसार-कान्तार-निपात-हेतुम्।
विविक्त मात्मान-मवेक्ष्यमाणो;- निलीयसे त्वं परमात्म तत्त्वे।।२६।।

अन्वयार्थ-**संसार कान्तार निपात**-संसार रूप वन में पतन के, **हेतुम्**-कारण, **सर्वम् विकल्प जालं**-सम्पूर्ण विकल्प जाल को, **निराकृत्य**-दूर करके, **विविक्तम्**-एक मात्र, **आत्मानम्**-आत्मा को, **अवेक्षमाण:**-देखते हुए, **त्वम्**-तुम, **परमात्म तत्त्वे**-परमात्म तत्त्व में, **निलीयसे**-लीन रहो।

भावार्थ-भव वन में भ्रमण करने वाले सर्व विकल्प जाल को दूर करके एक मात्र सबसे भिन्न अपनी आत्मा को देखते हुए हे आत्मन्! तुम परमात्म तत्त्व में लीन रहो।

भव कान्तार में शीघ्र पतन के, कारण जो भी रहे प्रधान।
उन विकल्प जालों का बन्धू, पूर्ण रूप करके अवसान॥
एक मात्र आतम को भाई, सदा देखते हुए अहो!।
निज परमात्मा तत्त्व में बन्धू, सदा स्वयं ही लीन रहो॥29॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा-, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।।३०।।

अन्वयार्थ-**आत्मना पुरा**-अपने द्वारा पहले, **यत्कर्म**-जो कर्म, **स्वयं कृतम्**-स्वयं किये गये हैं, **तदीयं**-उनका, **शुभाशुभम् फलं**-अच्छा-बुरा फल, **स्फुटं लभते**-स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है, **यदि परेणदत्तम्**-यदि दूसरों के द्वारा दिया गया, **सुखम् लभते**-सुख जीव को प्राप्त होने लगे, **तदा**-तब तो (फिर), **स्वयं कृतम् कर्म**-स्वयं के द्वारा किये गये कर्म, **निरर्थकम्**-निरर्थक/व्यर्थ हो जावेंगे।

भावार्थ-हे भगवान! जिस जीव ने पूर्व काल में अच्छे या बुरे कर्म स्वयं उपार्जित किये हैं वह उसी प्रकार के अच्छे या बुरे फल को प्राप्त होता है। यदि कोई दूसरों के द्वारा दिये गये शुभ या अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तो फिर अपने किये कर्म निरर्थक हो जावेंगे, किन्तु ऐसा कभी होता नहीं है।

स्वयं किए जो कर्म पूर्व में, पहले अपने ही द्वारा।
उनका फल स्पष्ट रूप से, मिले शुभाशुभ ही सारा॥
यदि और का दिया गया फल, सुखमय रूप में होवे प्राप्त।
तो फिर स्वयं किए कर्मों का, हो जाएगा व्यर्थ समाप्त॥30॥

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारयन्नेव-मनन्य-मानसः, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्।।३१।।

अन्वयार्थ-**निजार्जितम्**-अपने उपार्जित, **कर्म विहाय**-कर्म को छोड़कर, **कोऽपि कस्यापि देहिन:**-कोई भी किसी भी जीव को, **किंचन न ददााति**-कुछ भी नहीं देता है, **एवम् विचारयन्**-ऐसा विचारते हुए, **आत्मन्**-हे आत्मन्!, **पर: ददाती**-दूसरा कोई देता है, **इति**-इस प्रकार, **शेमुषीम् विमुञ्च**-बुद्धि को छोड़कर, **अनन्य मानस:**-एकाग्रचित हो।

भावार्थ-अपने उपार्जित कर्मों के अलावा कोई भी प्राणी किसी को सुख या दु:ख नहीं देता है ऐसा विचार कर, हे आत्मन्! तू एकाग्रचित हो और 'दूसरा देता है' इस बुद्धि को छोड़, इस प्रकार विचार करने से किसी के प्रति रागद्वेष नहीं होता है।

स्वयं उपार्जित कर्म छोड़कर, कोई किसी के लिए कभी।
किंचित् भी दे सके कभी न, ऐसा सोचो जीव सभी॥
अहो आत्मन्! पर कोई दाता, ऐसी बुद्धि तुम छोड़ो।
हो एकाग्र चित्त हे बन्धू! निज से अब नाता जोड़ो॥31॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

यैः परमात्माऽमित-गतिवन्द्यः, सर्व-विविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्व-दधीतो मनसि लभन्ते, मुक्ति निकेतं विभव वरं ते।।३२।।

अन्वयार्थ-यैः-जिन पुरुषों द्वारा **अमितगतिवन्द्यः**-अपरिमित ज्ञान वाले अथवा अमितगति आचार्य द्वारा वंदनीय, **सर्व विविक्तः**-सर्व कर्मों से रहित, **भृशम अनवद्यः**-अत्यंत निर्दोष, **परमात्मा**-ऐसा परमात्मा, **मनसि शश्वत्**-मन में निरन्तर, **अधीतो**-चिन्तन किया जाता है, **ते विभव वरम्**-वे (पुरुष) परम वैभव वाले, **मुक्ति निकेतम्**-मुक्ति रूपी महल को, **लभन्ते**-प्राप्त कर लेते हैं।

भावार्थ-जो परमात्मा अपरिमित ज्ञानी हैं अथवा अमितगति आचार्य के द्वारा वंदनीय हैं सर्व पदार्थ से भिन्न हैं और पूर्ण निर्दोष हैं उनका जो निरन्तर मन से चिन्तन करते हैं वे भाग्यशाली सर्वश्रेष्ठ वैभव वाले मोक्ष महल को प्राप्त करते हैं।

अमित गति से वन्दनीय जो, पुरुष लोक में कर्म विहीन।
अति निर्दोष परम परमातम, मन से ध्याते होकर लीन॥
वैभव वाले परम पुरुष वे, मोक्ष महल को करते प्राप्त।
अष्ट कर्म का नाश करें वह, बनते अल्प समय में आप्त॥32॥

इति द्वात्रिंशतावृतैः परमात्मान-मीक्षते।
योऽनन्यगत चेतस्को, यात्यसौ पद-मव्ययम्।।३३।।

अन्वयार्थ-यो-जो, **अनन्यगत चेतस्कः**-एकाग्र चित्त होकर, **इति द्वात्रिंशता**-इन बत्तीस (32), **वृत्तैः**-पद्यों से, **परमात्मानम्**-परमात्मा को, **ईक्षते**-देखता है, **असौ**-वह, **अव्ययम्**-'विशद' अविनाशी, **पदम्**-पद को, **याति**-प्राप्त होता है।

भावार्थ-इस प्रकार इन बत्तीस छंदो से जो एकाग्रचित्त होकर परमात्मा का चिंतन करता है वह अविनाशी मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है।

जो एकाग्र चित्त होकर इन, बत्तिस पद्यों को सम्प्राप्त।
परमातम को देख 'विशद' वे, अविनाशी पद करते प्राप्त॥33॥

।इति अमितगत्याचार्य कृत।।

परमानन्द स्तोत्र

(अनुष्टुप छन्द)

परमानन्द-संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम्।।१।।

अन्वयार्थ-निर्विकारं-निर्विकार है, **निरामयम्**-आलस्य (प्रमाद) रहित है, **निजदेहे-व्यवस्थितम्**-जो स्वयं अपने शरीर में स्थित है, **ध्यानहीना न पश्यन्ति**-उसे ध्यान रहित जीव नहीं जान सकते (ऐसी आत्मा), **परमानन्द संयुक्तं**-परम आनन्द से युक्त है।

भावार्थ-निर्विकार, आलस्य प्रमाद रहित, स्वयं अपने शरीर में स्थित, उसे ध्यान रहित जीव नहीं जान सकते, ऐसी आत्मा परम आनन्द से युक्त है।

(चौपाई छन्द)

निर्विकार आलस से हीन, स्वयं देह में हैं स्वाधीन।
जान सके ना ध्यान विहीन, परमानन्द चित्त निज लीन॥1॥

अनंतसुखसंपन्नं ज्ञानामृतपयोधरम्।
अनंतवीर्यसम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः।।२।।

अन्वयार्थ-अनंतसुख संपन्नं-अनंत सुख सहित, **ज्ञानामृतपयोधरम्**-ज्ञानरूपी अमृत को मेघ के समान, **अनंतवीर्य सम्पन्नं**-अनंतवीर्य से युक्त, **परमात्मनः दर्शनं**-उत्कृष्ट आत्मा उसे देखते हैं।

भावार्थ-अनन्त सुख सहित, ज्ञानरूपी अमृत को मेघ के समान, अनन्तवीर्य से युक्त उत्कृष्ट आत्मा उसे देखते हैं।

सुखानन्त युत जीव प्रधान, ज्ञानामृत को मेघ समान।
वीर्यानन्त युक्त उत्कृष्ट, आत्म देखता हो आकृष्ट॥2॥

निर्विकारं-निराबाधं सर्वसंग-विवर्जितम्।
परमानन्दसम्पन्नं, शुद्धचैतन्य-लक्षणम्।।३।।

अन्वयार्थ-निर्विकारं-विकार से रहित, **निराबाधं**-बाधा से रहित, **सर्वसंग**

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

विवर्जितम्-सम्पूर्ण बाह्य व अंतरंग परिग्रह से रहित, **परमानंद सम्पन्नं**-परम आनंद से संयुक्त, **शुद्ध चैतन्य लक्षणम्**-शुद्ध चैतन्य रूप आत्मा का लक्षण है।

भावार्थ-विकार, बाधा से रहित और सम्पूर्ण बाह्य, अंतरंग परिग्रह से रहित, परम आनन्द से संयुक्त शुद्ध चैतन्यरूप आत्मा का लक्षण है।

निर्विकार बाधा से हीन, बाह्यभ्यन्तर संग विहीन।
परमानन्द संयुक्त महान, शुद्ध चेतना लक्षण वान॥3॥

उत्तमा स्वात्मचिंता स्यात्, मोहचिंता च मध्यमा।
अधमा कामचिंता स्यात्, परचिंताऽधमा-धमा।।४।।

अन्वयार्थ-स्वात्मचिंता स्यात् उत्तम-अपने आत्मा की चिंता करना . उत्कृष्ट है, **मोह चिंता स्यात्**-मोह (शरीर) की चिंता करना, **मध्यमा**-मध्यम है, **कामचिंता स्यात्**-विषयभोगों की चिंता करना, **अधमा**-अधम (पाप) है, **च**-और, **परचिंता स्यात्**-दूसरों की चिंता करना, **अधमा-धमा**-महाअधम (महापाप) है।

भावार्थ-अपने आत्मा की चिंता करना उत्कृष्ट है, मोह चिंता (शरीर) की चिंता करना मध्यम है, विषयभोगों की चिंता करना, अधम है, और दूसरों की चिंता करना, महाअधम (महापाप) है।

आतम चिन्ता रही प्रधान, तन की चिंता मध्यम जान।
अधम काम चिंता पहिचान, अधमाधम परचिंता मान॥4॥

निर्विकल्प समुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसम्।
विवेकमंजुलिं कृत्त्वा, तत्पिवंति तपस्विनः।।५।।

अन्वयार्थ-निर्विकल्प समुत्पन्नं-विकल्प से रहित उत्पन्न होने वाले, **ज्ञानमेव सुधारसम्**-ज्ञानरूपी अमृत का पान, **विवेक मंजुलिं कृत्त्वा**-विवेक को धारण करने वाले, **तपस्विनः**-तपस्वी जन, **तत्पिवंति**-उसको पीते हैं।

भावार्थ-विकल्प से रहित होने वाले ज्ञानरूपी अमृत का पान विवेक को धारण करने वाले महान तपस्वी जन करते हैं।

है विकल्प से रहित महान, ज्ञान रूप अमृत का पान।
विवेक रूप अञ्जुलि पुटवान, तपसी जन करते रस पान॥5॥

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पंडितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानंद कारणम्।।६।।

अन्वयार्थ-यः-जो, **जीवं**-जीव को, **सदानन्दमयंः**-सदा आनंद में लीन रहने वाला, **जानाति**-जानते हैं, **स**-उसे, **पंडित**-पंडित कहते हैं, **स**-वह, **सदा निजात्मानं**-सदा अपनी आत्मा के स्वरूप का, **सेवते**-सेवन करते हैं (क्योंकि), **परमानंद कारणम्**-वह उत्कृष्ट आनंद का कारण है।

भावार्थ-जो जीव को सदा आनन्द में लीन रहने वाला जानते हैं उसे विद्वान कहते हैं। वह सदा आत्मा के स्वरूप का सेवन करते हैं क्योंकि वह उत्कृष्ट आनन्द का कारण है।

जीव सदा है आनन्दवान, ऐसा जाने वह विद्वान।
निज आतम का सेवन वान, आनन्द का कारण शुभ मान॥6॥

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलाः।।७।।

अन्वयार्थ-यथा-जिस प्रकार, **नलिन्यां**-नलिनी, **सर्वदा**-हमेशा, **नीरं भिन्नं तिष्ठति**-जल से अलग रहती है (उसी प्रकार) **अयम्-निर्मलाः आत्मा**-यह निर्मल आत्मा, **स्वभावेन**-स्वभाव से, **देहे भिन्नं तिष्ठति**-शरीर से अलग रहती है।

भावार्थ-जिस प्रकार नलिनी हमेशा जल से अलग रहती है, उसी प्रकार यह आत्मा स्वभाव से शरीर से अलग रहती है।

जिस प्रकार नलिनी से नीर, भिन्न सर्वदा मानो धीर!।
उसी तरह निर्मल निज रूप, देह से जानो भिन्न स्वरूप॥7॥

द्रव्यकर्म मलैर्मुक्तं, भाव कर्म विवर्जितम्।
नोकर्म रहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः।।८।।

अन्वयार्थ-निश्चयेन-निश्चय से, **चिदात्मनः**-यह आत्मा, **द्रव्यकर्म**-

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

ज्ञानावरणादि-द्रव्य कर्मरूपी, **मलैः मुक्तं**-मल से मुक्त है, **भावकर्म**-रागादि भाव कर्मों से, **विवर्जितम्**-रहित है, नोकर्म **रहितं**-शरीरादि नोकर्म से भी रहित है, **विद्धि**-सिद्ध स्वरूप है।

भावार्थ-निश्चय से यह आत्मा ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों से मुक्त है, रागादि भावकर्मों से रहित है और शरीरादि नोकर्म से भी रहित है इसलिए यह सिद्ध स्वरूप है।

निश्चय से यह आतम शुद्ध, द्रव्य कर्म मल से है मुक्त।
भावकर्म नो कर्म विहीन, निज स्वरूप में जानो लीन॥8॥

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं, निजदेहे व्यवस्थितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम्।।६।।

अन्वयार्थ-(आत्मा) आनंद ब्रह्मणो रूपं-आनंद ब्रह्म स्वरूप है, **निजदेहे**-अपने शरीर में, **व्यवस्थितम्**-व्यवस्थित है, **ध्यान हीना न**-उसे ध्यान रहित जीव नहीं, **पश्यन्ति**-जानते हैं, (जैसे) **जात्यन्ध इव भास्करम्**-जन्म से अन्धा मनुष्य सूर्य को, **न पश्यन्ति**-नहीं जानता है।

भावार्थ-आत्मा आनन्द ब्रह्म स्वरूप है और अपने शरीर में व्यवस्थित है उसे ध्यानरहित जीव नहीं जानते हैं, जैसे जन्म से अन्धा मनुष्य सूर्य को नहीं जानता है।

आत्मानन्द ब्रह्म स्वरूप, रहे व्यवस्थित निज तन रूप।
ध्यान विहीन ना जाने कोय, ज्यों जात्यन्ध सूर्य को सोय॥9॥

तद्ध्यान क्रियते भव्यैर्, मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कार-लक्षणम्।।१०।।

अन्वयार्थ-येन-जिस समय, **भव्यैः**-भव्य जीव, **मनोविलीयते**-मन को स्थिर करने के लिए, **तद्ध्यान**-उस शुद्ध ध्यान को, **क्रियते** करते हैं, **तत्क्षणं**-उसी समय, **चिच्चमत्कार**-चिच्चमत्कार रूप, **शुद्धं**-शुद्ध आत्मा का, **लक्षणम्**-लक्षण (स्वभाव), **दृश्यते**-भासता है।

भावार्थ-मन को स्थिर करने के लिए भव्यजीव शुद्ध ध्यान को करते हैं उसी समय चिच्चमत्कार शुद्ध आत्मा का स्वभाव भासता है।

मनस्थिर करने भवि जीव, शुद्ध ध्यान जब करें अतीव।
तत्क्षण चिच्चमत्कारवान, चेतन का लक्षण पहिचान॥10॥

ये ध्यानशीलाः मुनयः प्रधानास्ते, दुःखहीना नियमाद्-भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं, व्रजन्ति मोक्षं क्षण-मेक-मेव।।११।।

अन्वयार्थ-ये-जो, **ध्यानशीलाः**-ध्यान में लीन हैं, **मुनयः प्रधानाः**-मुनियों में श्रेष्ठ (प्रधान) हैं, **ते**-वे, **नियमाद्**-नियम से, **दुःखहीना भवन्ति**-दुःखों से रहित होते हैं, (वे) **शीघ्रं**-जल्दी से, **परमात्म तत्त्वं**-परमात्म तत्त्व को, **सम्प्राप्य**-प्राप्त होकर, **क्षणं एकं एव**-एक क्षण में, **मोक्षं व्रजन्ति**-मोक्ष प्राप्त करते हैं।

भावार्थ-जो ध्यान में लीन होते हैं, वे नियम से दुःखों से रहित होते हैं, और मुनियों में श्रेष्ठ हैं, जल्दी से परमात्म तत्त्व को प्राप्त होकर क्षणमात्र में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

जो रहते हैं ध्यानालीन, वे रहते हैं दुःख विहीन।
मुनियों में वे रहे प्रधान, परम तत्त्व पावें निर्वाण॥11॥

आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्तसंकल्प विकल्प मुक्तम्।
स्वभावलीना निवसंति नित्यं, जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम्।।१२।।

अन्वयार्थ-समस्त संकल्प विकल्प-समस्त संकल्प-विकल्प से, **मुक्तं**-रहित, **स्वभावलीना**-स्वभाव में लीन, **नित्यं**-सदैव, **निवसंति**-निवास करते हैं (ऐसे), **आनन्द रूपं परमात्म तत्त्वं**-परमात्म तत्त्व रूप आनंद को, **योगी**-योगीजन, **स्वयमेव तत्त्वं**-अपने आत्म तत्त्व को, **जानाति**-जानते हैं।

भावार्थ-जो समस्त संकल्प-विकल्प से रहित स्वभाव में लीन सदैव रहते हैं, ऐसे परमात्म तत्त्व रूप आनन्द को 'विशद' योगिजन अपने आप को जानते हैं।

सब संकल्प विकल्प विहीन, सदा रहें स्वभावसुलीन।
परमात्म तत्त्व रूप आनन्द, जाने योगी जन निर्द्वन्द॥12॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

श्री परमात्म स्वरूप स्तोत्र

चिदानन्दमयं शुद्धं, निराकारं निरामयम्।
अनन्तसुख सम्पन्नं, सर्वसंग विवर्जितम्।।१३।।

अन्वयार्थ-निराकारं-निराकार, **निरामयम्**-निरामय, **अनन्त सुख सम्पन्नं**-अनंतसुख से युक्त, **सर्वसंग विवर्जितम्**-सम्पूर्ण परिग्रह से रहित, **चित्**-आत्मा है, (और वह आत्मा), **आनन्दमयं शुद्धं**-आनंद स्वरूप शुद्ध है।

भावार्थ-निराकार, निरामय और अनन्त सुख से युक्त सम्पूर्ण परिग्रह से रहित आत्मा है और वह आनन्द स्वरूप शुद्ध है।

(मोतियादाम छन्द)

निरामय निराकार चित् रूप, आतमा है आनन्द स्वरूप।
रहा जो सुखानन्त संयुक्त, पूर्णतः परिग्रह से है मुक्त॥13॥

लोकमात्रप्रमाणोऽयं, निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः, कथितः परमेश्वरैः।।१४।।

अन्वयार्थ-परमेश्वरैः-जिनेन्द्र देव ने, **व्यवहारे**-व्यवहार नय से (आत्मा को), **तनूमात्रः**-अपने शरीर प्रमाण, **कथितः**-कहा है, (और) **निश्चये**-निश्चय नय की अपेक्षा, **अयं**-यह आत्मा, **लोकमात्र प्रमाणः**-लोकमात्र प्रमाण है, **न हि संशयः**-इसमें संशय नहीं है।

भावार्थ-जिनेन्द्रदेव ने व्यवहारनय से आत्मा को अपने शरीर प्रमाण कहा है और निश्चयनय की अपेक्षा यह आत्मा लोक प्रमाण है इसमें संशय नहीं है।

कहे व्यवहार से देह प्रमाण, आत्मा को श्री जिन भगवान।
रहा निश्चय से लोक प्रमाण, नहीं संशय इसमें कोइ मान॥14॥

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणगत विभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्प समाधितः।।१५।।

अन्वयार्थ-यत्क्षणं-जिस समय (यह आत्मा), **शुद्धं**-शुद्ध स्वरूप में, **दृश्यते**-लीन होता है, **तत्क्षण**-उसी समय, **गत विभ्रमः**-सम्पूर्ण विकल्प जाल से दूर, **स्वस्थचित्तः**-स्वस्थ चित्त (मन) में, **स्थिरीभूत्वा**-स्थिर हो जाता है, (जो) **निर्विकल्प समाधितः**-निर्विकल्प ध्यान से प्राप्त होता है।

भावार्थ-जिस समय यह आत्मा शुद्ध स्वरूप में लीन होता है उस समय सम्पूर्ण विकल्प जाल से दूर और स्वस्थ मन में स्थित हो जाता है यह निर्विकल्प ध्यान से प्राप्त होता है।

रहे जब शुद्धातम में लीन, विकल्पों से हों पूर्ण विहीन।
स्वस्थ मन में स्थिरता पाय, ध्यान जब निर्विकल्प हो जाय॥15॥

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिन पुंगवः।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः।।१६।।

अन्वयार्थ-स एव-वही आत्मा, **परमं ब्रह्म**-परम ब्रह्म है, **स एव**-वही आत्मा, **जिनपुंगव**-जिनों में श्रेष्ठ है, **स एव**-वही आत्मा **परमं तत्त्वं**-उत्कृष्ट तत्त्व है, (और) **स एव**-वही आत्मा, **परमो गुरुः**-परम गुरु है।

भावार्थ-वही आत्मा परम ब्रह्म है, जिनों में श्रेष्ठ है, वही उत्कृष्ट तत्त्व और वही उत्कृष्ट गुरु है।

आत्मा परम ब्रह्म स्वरूप, वही आतम जिन पुंगव रूप।
उसी को परम तत्त्वमय जान, वही गुरु आतम रहा महान॥16॥

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मकः।।१७।।

अन्वयार्थ-स एव-वही आत्मा, **परमं ज्योति**-केवलज्ञान रूपी ज्योति स्वरूप है, **ए एव**-वही आत्मा, **परमं तपः**-उत्कृष्ट तप है, **स एव**-वही आत्मा, **परमं ध्यानं**-परम ध्यान है, **स एव**-वही आत्मा, **परमात्मकः**-परमात्मा रूप है।

भावार्थ-वही परम ध्यानरूपी आत्मा उत्कृष्ट तप से, केवलज्ञानरूपी ज्योति से परमात्मा रूप है।

आत्मा परम ज्योति स्वरूप, वही जानो पावन तपरूप।
वही आतम है पावन ध्यान, वही परमातम रूप महान॥17॥

स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनम्।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमं शिवः।।१८।।

अन्वयार्थ-स एव-वही आत्मा, **सर्व कल्याणं**-सम्पूर्ण कल्याण करने वाली है, **स एव**-वही आत्मा, **सुखभाजनम्**-सुख प्राप्त करने वाली है, **स एव**-वही आत्मा, **शुद्ध चिद्रूपं**-शुद्ध चैतन्य रूप है, **स एव**-वही आत्मा, **परमं शिवः**-परम मोक्ष रूप है।

भावार्थ-वही आत्मा सम्पूर्ण कल्याण करने वाली, सुख प्राप्त करने वाली है और वही आत्मा शुद्ध और परम मोक्षरूप है।

करे आतम ही सब कल्याण, वही सुख भाजन रहा प्रधान।
वही है शुद्ध चैतन्य स्वरूप, वही है परम मोक्ष शिव रूप॥18॥

स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः।
स एव परमज्ञानं, स एव गुणसागरः।।१९।।

अन्वयार्थ-स एव-वही आत्मा, **परमानन्दः**-उत्कृष्ट (परम) आनंदरूप है, **स एव**-वही आत्मा, **सुखदायक**-सम्पूर्ण सुखों को देने वाली है, **स एव**-वही आत्मा, **परम ज्ञानं**-परम ज्ञानरूप है, **स एव**-वही आत्मा, **गुणसागरः**-सम्पूर्ण गुणों का समुद्र है।

भावार्थ-वही आत्मा उत्कृष्ट परम आनन्द रूप है, सब सुखों को देने वाली है। परम ज्ञान रूप एवं सम्पूर्ण गुणों का समुद्र है।

वही आतम है आनन्द रूप, वही सम्पूर्ण सौख्य स्वरूप।
वही आतम है पावन ज्ञान, वही सब गुण का सागर मान॥19॥

परमाह्लादसम्पन्नं, रागद्वेष विवर्जितम्।

सोऽहं तं देहमध्येषु, यो जानाति स पंडितः।।२०।।

अन्वयार्थ-परमाह्लाद सम्पन्नं-परम आह्लाद (प्रसन्नता) से युक्त, **रागद्वेष विवर्जितम्**-राग-द्वेष से रहित है **सः अहं**-ऐसी आत्मा जो, **देह मध्येषु**-शरीर में स्थित है, **तं**-उसे, **यः**-जो, **जानाति**-जानता है, **सः**-वही, **पंडितः**-विद्वान है।

भावार्थ-परम प्रसन्नता से युक्त राग-द्वेष से रहित है, ऐसी आत्मा जो शरीर में स्थिर है उसे जो जानता है वही परम विद्वान है।

आतमा परमाह्लाद संयुक्त, पूर्णतः राग द्वेष से मुक्त।
देह में स्थित आतमराम, जानता जो है वह विद्वान॥20॥

आकार रहितं शुद्धं स्वस्वरूपे व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम्।।२१।।

अन्वयार्थ-(वह) **शुद्धं**-शुद्ध आत्मा, **आकार रहितं**-आकार रहित, **स्वस्वरूपे**-अपने स्वरूप में, **व्यवस्थितम्**-स्थित है, (और) **सिद्धं अष्ट गुणोपेतं**-सिद्धों के अष्ट गुणों से युक्त, **निर्विकारं**-विकार रहित, **निरंजनम्**-निरंजन है।

भावार्थ-वह शुद्ध आत्मा आकार रहित अपने स्वरूप में स्थिर है और सिद्धों के अष्ट गुणों से युक्त, विकार रहित निरंजन है।

आत्मा है आकार विहीन, रहे जो निज स्वरूप में लीन।
सिद्ध के अष्ट गुणों संयुक्त, निरंजन है विकार से मुक्त॥21॥

तत्सदृशं निजात्मानं, यो जानाति स पंडितः।
सहजानंद चैतन्य-प्रकाशाय महीयसे।।२२।।

अन्वयार्थ-यः-जो, **तत्सदृशं**-शुद्ध आत्मा के समान, **निजात्मानं**-अपनी आत्मा को, **जानाति**-जानता है, **स पंडितः**-वही पंडित है, **सहजानंद**-सहज आनंद रूप, **चैतन्य**-आत्मा को, **प्रकाशाय**-प्रकट करने में, **महीयसे**-श्रेष्ठ है।

भावार्थ-जो शुद्ध आत्मा के समान अपनी आत्मा को जानता है वही

विद्वान है, सहज आनन्द रूप आत्मा को प्रकट करने में श्रेष्ठ है।

जानता निज को सिद्ध समान, वही पंडित जानो विद्वान।
सहज आनन्द रूप चैतन्य, प्रकट करने वाली है धन्य॥22॥

पाषाणेषु यथा हेमं, दुग्ध मध्ये यथा घृतम।
तिल मध्ये यथा तैलं, देह मध्ये यथा शिवः।।२३।।

अन्वयार्थ-यथा-जिस प्रकार, **पाषाणेषु हेम**-पत्थर में सोना, **यथा**-जिस प्रकार, **दुग्ध मध्ये घृतम्**-दूध में घी, **यथा**-जिस प्रकार, **तिल मध्ये तैलं**-तिल में तेल, **यथा**-जिस प्रकार, **देह मध्ये शिवः**-शरीर में आत्मा है।

भावार्थ-जिस प्रकार पत्थर में सोना, दूध में घी और तिल में तेल उसी प्रकार शरीर में आत्मा है।

रहे पत्थर में स्वर्ण समान, दूध में घृत भी रहे प्रधान।
रहे तिल में ज्यों तेल विशेष, देह में आतम सभी प्रदेश॥23॥

काष्ठमध्ये यथा वह्नि, शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पंडितः।।२४।।

अन्वयार्थ-यथा-जैसे, **काष्ठमध्ये वह्निः**-काष्ठ में अग्नि, शक्तिरूपेण **तिष्ठति**-शक्ति रूप में स्थित है, (वैसे ही) **अयम् आत्मा**-यह आत्मा, **शरीरेषु**-शरीर में, **तिष्ठति**-रहती है, **यः**-जो (ऐसा), **जानाति**-जानता है, **स पंडितः**-वही पंडित है।

भावार्थ-जैसे काष्ठ में अग्नि शक्ति रूप है वैसे ही यह आत्मा शरीर में रहती है ऐसा जो जानता है वही 'विशद विद्वान् है।

रहे ज्यों काष्ठ में शक्ति स्वरूप, अग्नि इस जग में रही अनूप।
आतमा देह में "विशद" महान, जानता ऐसा वह विद्वान॥24॥

जिन चतुर्विंशतिका

(शार्दूलविक्रीडति छन्द)

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं
वाग्देवीरतिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत्।
स स्यात्सर्वमहोत्सवैकभवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं
प्रातः पश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिनाङ्घ्रिद्वयम्॥1॥

अन्वयार्थ-(यः) जो मनुष्य **(प्रातः)** प्रभात के समय **(प्रार्थितार्थप्रदम्)** इच्छित वस्तुओं को देने वाले तथा **(कल्पपादपदलच्छायम्)** कल्पवृक्ष के पल्लव समान कान्ति के धारक **(जिनाङ्घ्रिद्वयम्)** जिनेन्द्र भगवान् के चरण-युगल को **(पश्यति)** देखता है अर्थात् उनके दर्शन करता है, **(सः)** वह **(श्रीलीलायतनम्)** लक्ष्मी का क्रीड़ागृह, **(महीकुलगृहम्)** पृथिवी का कुल भवन, **(कीर्तिप्रमोदास्पदम्)** यश और हर्ष का स्थान **(वाग्देवीरतिकेतनम्)** सरस्वती का क्रीड़ा-मन्दिर **(महत् जयरमाक्रीडानिधानम्)** विजयलक्ष्मी का विशाल क्रीडास्थान और **(सर्वमहोत्सवैक भवनम्)** सब बड़े-बड़े उत्सवों का मुख्य घर **(स्यात्)** होता है।

भावार्थ-जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातः काल के समय जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करता है, वह बहुत ही सम्पत्तिशाली होता है, पृथ्वी उसके वश में रहती है, उसकी कीर्ति सब ओर फैल जाती है, वह हमेशा प्रसन्न रहता है, उसे अनेक विद्याएँ प्राप्त हो जाती हैं, युद्ध में उसकी विजय होती है, अधिक क्या कहें, उसे सब उत्सव प्राप्त होते हैं।।1।।

प्रातः जिन दर्शन करता जो, होता वह सम्पत्ती वान।
पृथ्वी उसके वश में रहती, कीर्ती फैले सर्व जहान॥
वह प्रसन्न रहता है हरदम, होता पावन विद्या वान।
विजय लक्ष्मी पाने वाला, उत्सव पाए हर्ष महान॥1॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

शान्तं वपुः श्रवणहारि वचश्चरित्रं सर्वोपकारि तव देव ततः श्रुतज्ञाः।
संसार-मारव-महास्थलरुन्द्रसान्द्र-च्छायामहीरुह भवन्तमुपाश्रयन्ते॥2॥

अन्वयार्थ-(देव) हे देव! **(तव)** आपका **(वपुः)** शरीर **(शान्तम्)** शान्त है **(वचः)** वचन **(श्रवणहारि)** कानों को प्रिय है और **(चरित्रम्)** चारित्र **(सर्वोपकारि)** सबका भला करने वाला है, **(ततः)** इसलिए **(संसारमारवमहास्थलरुन्द्रसान्द्रच्छायामहीरुह)** हे संसाररूप मरुस्थल में विस्तृत सघन छायावृक्ष! **(श्रुतज्ञाः)** शास्त्रों के जानने वाले विद्वान् **(भवन्तम् उपाश्रयन्ते)** आपका आश्रय करते हैं।

भावार्थ-मरुस्थल प्रदेशों में छाया वाले वृक्ष बहुत कम होते हैं, इसलिए मार्ग में रास्तागीरों को बहुत तकलीफ होती है। वे थके हुए रास्तागीर जब किसी छायादार वृक्ष को पाते हैं। तब बड़े खुश होते हैं और उसकी सघन शीतल छाया में बैठकर अपना सब परिश्रम भूल जाते हैं। इसी तरह संसाररूप मरुस्थल में आप जैसे छायादार वृक्षों की बहुत कमी है, इसलिए मोक्ष-नगर को जाने वाले पथिक रास्ते में बहुत तकलीफ उठाते हैं। पर जब उन्हें आप जैसे छायादार वृक्ष की प्राप्ति हो जाती है तब वे बहुत ही खुश होते हैं और आपके आश्रय में बैठकर अपने सब दुःख भूल जाते हैं।।2।।

शांत रहा तन देव! आपका, कर्ण प्रिय हैं वचन महान।
सर्वोपकारी चारित पावन, करता जन-जन का कल्याण॥
इस संसार मरुस्थल में जिन, विस्तृत तरु हैं छायावान।
श्रुत के ज्ञाता आश्रय लेते, नाथ! आपके चरणों आन॥2॥

स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननीगर्भान्धकूपोदरा-
दद्योद्घाटितदृष्टिरस्मि फलवज्जन्मास्मि चाद्य स्फुटम्।
त्वामद्राक्षमहं यदक्षयपदानन्दाय लोकत्रयी-
नेत्रेन्दीवरकाननेन्दुममृतस्यन्दिप्रभाचन्द्रिकम्।।3।।

अन्वयार्थ-(स्वामिन्) हे नाथ! **(यत्)** जिस कारण से **(अहम्)** मैंने **(लोकत्रयीनेत्रेन्दीवरकाननेन्दुम्)** त्रिभुवन के जीवों के नेत्र रूपी कुमुद-वनको

विकसित करने के लिए चन्द्रमा रूप तथा **(अमृतस्यन्दिप्रभाचन्द्रिकम्)** जिनकी कान्ति रूप चाँदनी अमृत को प्रवाहित करती है ऐसे **(त्वाम्)** आपको **(अक्षयपदानन्दाय)** अविनाशी पद के आनन्द के लिए (अद्राक्षम्) देखा-अर्थात् आपके दर्शन किये, **(तत्)** उस कारण से **(स्पष्टम्)** स्पष्ट है कि **(अद्य)** आज मैं **(जननीगर्भान्धकूपोदरात्)** माता के गर्भ रूप अंधेरे कुएँ से **(विनिर्गतः अस्मि)** निकला हूँ, **(अद्य उद्घाटितदृष्टिः अस्मि)** आज प्रगट हुई दृष्टि जिसकी ऐसा हुआ हूँ, **(च)** और **(अद्य फलवज्जन्मा अस्मि)** आज सफल जन्म हुआ है। **भावार्थ**-हे भगवन्! आज आपके दर्शन कर मैं समझता हूँ कि आज ही पैदा हुआ हूँ। क्योंकि मेरा अब तक का समय आपके दर्शन के बिना व्यर्थ ही गया। आज ही मेरी दृष्टि खुली है, आज के पहले मानों मैं देखते हुए भी अन्धा था, और आज ही मेरा जन्म सफल हुआ है।।3।।

नाथ! आपके दर्शन से मैं, समझ रहा जन्मा हूँ आज।
व्यर्थ गया है समय पूर्व का, तव दर्शन बिन हे जिनराज!॥
दृष्टी खुली आज है मेरी, पहले था मैं अन्ध समान।
सफल हुआ है जन्म हमारा आज दर्श कर हे भगवान!॥3॥

निःशेषत्रिदशेन्द्रशेखरशिखारत्नप्रदीपावली-
सान्द्रीभूतमृगेन्द्रविष्टरतटीमाणिक्यदीपावलिः।
क्वेयं श्रीः क्व च निःस्पृहत्वमिदमित्यूहातिगस्त्वादृशः
सर्वज्ञानदृशश्चरित्रमहिमा लोकेश लोकोत्तरः।।4।।

अन्वयार्थ-(निःशेषत्रिदशेन्द्रशेखरशिखारत्नप्रदीपावली सान्द्रीभूतमृगेन्द्र विष्टरतटीमाणिक्य दीपावलिः) समस्त इन्द्रों के मुकुटों के अग्र भाग पर लगे हुए रत्न-रूप दीपकों की पङ्क्ति से सघन है सिंहासन के तट पर लगे हुए मणिमय दीपकों की पङ्क्ति जिसमें ऐसी **(इयम् श्रीः)** वह लक्ष्मी **(क्व)** कहाँ? **(च)** और **(इदम्)** यह **(निःस्पृहत्वम्)** निःस्पृहता-इच्छा का अभाव **(क्व)** कहाँ? **(इति)** इस प्रकार **(लोकेश)** हे त्रिभुवन के स्वामिन्! **(त्वादृशः)** आप जैसे सर्वज्ञानी सर्वदर्शी की

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

(लोकोत्तरः) सर्व श्रेष्ठ **(चरित्रमहिमा)** चारित्र की महिमा **(ऊहातिगः 'अस्ति')** तर्क के अगोचर है।

भावार्थ–हे भगवन्! आप समवशरण रूप लक्ष्मी सहित होने पर भी उसमें स्पृहा से रहित हैं, इससे मालूम होता है आपका चारित्र 'ऐसा क्यों हैं? यह तर्क का विषय नहीं है।।4।।

इन्द्र किरीटों के रत्नों की, दीप मालिका सघन महान।
सिंहासन के मणिमय दीपों, का वैभव क्या है श्रीमान।।
कहाँ आपकी निस्पृहता ये, रही लोक में त्रिभुवन ईश।
चारित की महिमा तुम जैसी, विषय तर्क का ना जगदीश।।4।।

राज्यं शासनकारिनाकपति यत त्यक्तं तृणावज्ञया
हेलानिर्दलितत्रिलोकमहिमा यन्मोहमल्लो जितः।
लोकालोकमपि स्वबोधमुकुरस्यान्तः कृतं यत्त्वया
सैषाश्चर्यपरम्परा जिनवर क्वान्यत्र सम्भाव्यते।।5।।

अन्वयार्थ–**(जिनवर)** हे जिनेन्द्र **(शासनकारिनाकपति)** आज्ञाकारी है इन्द्र जिसमें ऐसा राज्य **(यत्)** जो **(त्वया)** आपके द्वारा **(तृणावज्ञया)** तृण जैसी अनादर बुद्धि से **(त्यक्तम्)** छोड़ दिया गया है, **(हेलानिर्दलितत्रिलोकमहिमा)** अनायास ही खण्डित कर दी है तीन लोक के जीवों की महिमा जिसने ऐसा **(मोहमल्लः)** मोह रूपी मल्ल **(यत्)** जो **(जितः)** जीता गया है तथा **(यत्)** जो **(लोकालोकम् अपि)** लोक अलोक का समाहार-समूह भी **(स्वबोधमुकुरस्य अन्तः कृतम्)** अपने ज्ञानरूप दर्पण के भीतर किया गया है, सो **(एषा सा आश्चर्यपरम्परा)** यह प्रसिद्ध आश्चर्य परिपाटी **(अन्यत्र क्व)** आपको छोड़कर दूसरी जगह कहाँ **(सम्भाव्यते)** सम्भव हो सकती है।

भावार्थ–हे भगवन्! आपने विशाल राज्य को तृण के समान तुच्छ समझकर छोड़ दिया, आपने त्रिलोक विजयी मोहमल्ल को जीत लिया और आपने लोक-अलोक का ज्ञान प्राप्त कर लिया। यह विशेषता आपको छोड़कर अन्य मत सम्बन्धी देवों में नहीं हो सकती।।5।।

सुरपति सेवित राज्य आपने, तृण सम छोड़ दिया हे नाथ!।
त्रिभुवन विजयी मोह मल्ल को, किया पराजित तुमने साथ।।
लोकालोक ज्ञान दर्पण में, किया आपने हे प्रभु! लीन।
यह विस्मय अन्यत्र कहाँ हो, कौन है ऐसा कला प्रवीण।।5।।

दानं ज्ञानधनाय दत्तमसकृत्पात्राय सद्वृत्तये
चीर्णान्युग्रतपांसि तेन सुचिरं पूजाश्च बह्वयः कृताः।
शीलानां निचयः सहामलगुणैः सर्वः समासादितो
दृष्टस्त्वं जिन येन दृष्टीसुभगः श्रद्धापरेण क्षणम्।।6।।

अन्वयार्थ–**(जिन)** हे जिनेन्द्र! **(दृष्टिसुभगः)** आँखों को प्यारे लगने वाले **(त्वम्)** आप **(येन श्रद्धापरेण)** जिस श्रद्धालु के द्वारा **(क्षणम्)** एक क्षणभर भी **(दृष्टः)** देखे गये हो मानो **(तेन)** उसने **(ज्ञानधनाय)** ज्ञान ही है धन जिसका ऐसे तथा **(सद्वृत्तये)** सदाचारी **(पात्राय)** पात्र के लिए **(असकृत्)** कई बार **(दानम्)** दान **(दत्तम्)** दिया है, **(उग्रतपांसि चीर्णानि)** कठिन तपस्याओं का संचय किया है, **(सुचिरम्)** चिरकाल तक **(बह्वयः पूजाः कृताः)** अनेक पूजाएँ की हैं और **(अमलगुणैः सह)** निर्मल गुणों के साथ **(शीलानां सर्वः निचयः समासादितः)** शीलव्रतों का सब समूह प्राप्त कर लिया है।

भावार्थ–हे भगवन्! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक आपके दर्शन करता है, उसे पात्र दान करने, तप आचरने, पूजा करने तथा शीलव्रत धारण करने का फल लगता है।।6।।

नेत्र प्रिय जिन दर्श आपका, करने वाला श्रद्धावान।
उसने ज्ञानी व्रती पात्र को, मानो दिया श्रेष्ठतम दान।।
कठिन तपस्या का संचय कर, पूजा कीन्ही है चिरकाल।
निर्मल गुण युत शील व्रतों का, उसने पालन किया त्रिकाल।।6।।

प्रज्ञापारमितः स एव भगवान पारं स एव श्रुत
स्कन्धाब्धेर्गुणरत्नभूषण इति श्लाघ्यः स एव ध्रुवम्।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

नीयन्ते जिन येन कर्णहृदयालङ्कारतां त्वद्गुणाः
संसाराहिविषापहारमणयस्त्रैलोक्यचूड़ामणे:।।7।।

अन्वयार्थ-(**त्रैलोक्यचूड़ामणे! जिन**) हे त्रिभुवन के चूड़ामणि स्वरूप! जिनेन्द्र देव! (**संसाराहिविषापहारमणयः**) संसार रूपी साँप के विष को हरने के लिए मणि स्वरूप (**तद्गुणः**) आपके गुण (**येन**) जिसके द्वारा (**कर्णहृदयालंकारताम्**) कान तथा मन के आभूषणपने को (**नीयन्ते**) प्राप्त कराये जाते हैं। (**ध्रुवम्**) निश्चय से (**सः एव**) वही (**प्रज्ञापारम् इतिः**) बुद्धि के पार को प्राप्त हुआ (**भगवान्**) भगवान्-ऐश्वर्यवान् हैं (**सः एव श्रुतस्कन्धाब्धेः पारम्**) वही शास्त्र-समुद्र का अन्तिम तट है और (**सः एव**) वही (**गुणरत्न-भूषणः**) गुण रूपी रत्न ही है आभूषण जिसके (**इति**) इस तरह (**श्लाघ्यः**) प्रशंसनीय है।

भावार्थ-हे भगवन्! जो आपके गुणों को सुनकर हृदय में धारण करता है वही बुद्धिमान्, ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् और गुण रूपी रत्नों से भूषित होता है।।7।।

त्रिभुवन चूड़ामणि हे जिनवर! अहि विषहारक मणि निर्दोष।
तव गुण से जो कर्ण हृदय को, भूषित कर करता सन्तोष।।
प्रभु वह बुद्धी में पारंगत, शास्त्र सिन्धु से पाए पार।
सुगुण रत्न से भूषित है वह, रहा प्रशंसा पात्र उदार।।7।।

(मालिनी छन्द)

जयति दिविजवृन्दान्दोलितैरिन्दुरोचि-
र्निचयरुचिभिरुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः।
जिनपतिरनुरज्यन्मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मी-
युवतिनवकटाक्षक्षेपलीलां दधानैः।।8।।

अन्वयार्थ-(**दिविजवृन्दान्दोलितैः**) देव समूह के द्वारा संचालित, (**इन्दुरोचिर्निचयरुचिभिः**) चन्द्रमा की किरण-समूह के समान. उज्ज्वल कान्ति के धारी (**अनुरज्यन्मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मी- युवतिकटाक्षक्षेपलीलाम् दधानैः**) अनुराग करने वाली मोक्ष नगर की राज्य लक्ष्मी रूप तरुण स्त्री के कटाक्ष-संचार की शोभा को धारण किये हुए (**उच्चैः**) उन्नत (**चामरैः**) चँवरों के द्वारा (**वीज्यमानः**) ढोले जाने वाले (**जिनपतिः**) जिनेन्द्र भगवान् (**जयति**) जयवन्त हैं-सबसे उत्कृष्ट हैं।

भावार्थ-हे भगवन्! आपके दोनों ओर देवगण जो सफेद चँवर ढोर रहे हैं, वे चँवर आप में आसक्त हुई मुक्ति की राज्य लक्ष्मी रूप स्त्री के सफेद कटाक्षों की तरह शोभायमान होते हैं। उन चँवरों से आप संसार में सर्वश्रेष्ठ मालूम होते हैं।।8।।

सुर समूह द्वारा संचालित, शशि सम उज्ज्वल है छविमान।
है अनुरक्त मुक्ति वनिता के, जो कटाक्ष से शोभावान।।
उन्नत चँवर ढुराए जाने, वाले हे पावन जिनराज!।
हो जयवन्त आप इस जग में, माने सारा विज्ञ समाज।।8।

(स्रग्धरा छन्द)

देवः श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाऽशोकभाश्चक्रभाषा-
पुष्पौघासारसिंहासनसुरपटहैरष्टभिः प्रातिहार्यैः।
साश्चर्यैर्भ्राजमानःसुरमनुजसभाम्भोजिनीभानुमाली
पायान्नः पादपीठीकृतसकलजगत्पालमौलिर्जिनेन्द्रः।।9।।

अन्वयार्थ-(**साश्चर्यैः**) आश्चर्ययुक्त (**श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाऽशोक भाश्चक्रभाषापुष्पौघासारसिंहासनसुरपटहैः**) सफेद छत्रत्रय, चँवर, अशोकवृक्ष, भामण्डल, दिव्यध्वनि, पुष्प-समूह की वृष्टि, सिंहासन और देवदुन्दुभिरूप (**अष्टभिः प्रातिहार्यैः**) आठ प्रातिहार्यों के द्वारा (**भ्राजमानः**) शोभायमान (**सुरमनुजसभाम्भोजिनीभानुमाली**) देव और मनुष्यों की सभा को विकसित करने के लिए सूर्य तथा (**पादपीठीकृतसकलजगत्पालमौलिः**) जिन्होंने सब राजाओं के मुकुटों को अपने पांवों का पीठ-आसन बनाया है ऐसे (**जिनेन्द्रः**) जिनेन्द्रदेव (**नः पायात्**) हम सबकी रक्षा करें।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ-जो आठ प्रातिहार्यों से शोभायमान हैं, जो मनुष्य और देवों की सभा को हर्षित करते हैं तथा जिनके चरणों में जगत् के सब राजा अपना मस्तक झुकाते हैं वे जिनेन्द्रदेव हमारी रक्षा करें।।9।।

श्वेत छत्र चामर अशोक भामण्डल दिव्य ध्वनि अभिराम।
पुष्प वृष्टि दुन्दुभि सिंहासन, प्रातिहार्य युत शोभा धाम।।
सुर नर सभा विकासित रवि हे, चरणों झुकते सर्व नरेन्द्र!।
रक्षक बनो सभी जीवों के, करुणाकर हो आप जिनेन्द्र!।।9।।

नृत्यत्स्वर्दन्तिदन्ताम्बुरुहवननटन्नाकनारीनिकायः
सद्यस्त्रैलोक्ययात्रोत्सवकरनिनदातोद्यमाद्यन्निलिम्पः।
हस्ताम्भोजातलीलाविनिहितसुमनोदामरम्यामरस्त्री-
काम्यः कल्याणपूजाविधिषु विजयते देव देवागमस्ते।।10।।

अन्वयार्थ-(**देव**) हे देव! (**ते**) आपके (**कल्याणपूजाविधिषु**) पंचकल्याणकों के पूजा कार्य में (**नृत्यत्स्वर्दन्तिदन्ताम्बुरुहवन- नटन्नाकनारीनिकायः**) नृत्य करते हुए ऐरावत हाथी के दाँतों पर स्थित कमल-वन में नृत्य कर रहा है देवाङ्गनाओं का समूह जिसमें ऐसा, (**सद्यः**) शीघ्र ही (**त्रैलोक्ययात्रोत्सवकरनिनदातोद्य- माद्यन्निलिम्पः**) त्रिभुवन में यात्रा के उत्सव को करने वाली है ध्वनि जिसकी ऐसे बाजों से हर्षित हो रहे हैं देव जिसमें ऐसा, तथा (**हस्ताम्भोजातलीलाविनिहित- सुमनोदामरम्यामरस्त्रीकाम्यः**) हस्तकमलों के द्वारा क्रीड़ापूर्वक धारण की गई फूलों की मालाओं से रमणीय देवियों के द्वारा सुन्दर (**देवागमः**) देवागम (**विजयते**) जयवन्त है-सर्वोत्कृष्ट है।

भावार्थ-हे भगवन्! आपके कल्याणकों में जो देवों का आगमन होता है, वह संसार में सबसे उत्कृष्ट है-उसकी जय होवे।।10।।

देव आपके कल्याणक विधि, में सुर करते नृत्य महान।
नर्तित सुर गज के दाँतों पर, सुर बधुओं से आभावान।।
त्रिभुवन यात्रा उत्सव ध्वनि से, मुदित सुरों से रहे ज्वलन्त।।

सुर ललनाओं द्वारा पावन, शुभ देवागम है जयवन्त।।10।।

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

चक्षुष्मानहमेव देव भुवने नेत्रामृतस्यन्दिनं
त्वद्वक्त्रेन्दुमतिप्रसादसुभगैस्तेजोभिरुद्भासितम्।
येनालोकयता मयानतिचिराच्चक्षुः कृतार्थीकृतं।
द्रष्टव्यावधिवीक्षणव्यतिकरव्याजृम्भमाणोत्सवम्।।11।।

अन्वयार्थ-(**देव**) हे देव! (**येन**) जिस कारण से (**नेत्रमृतस्यन्दिनम्**) आँखों में अमृत झराने वाले तथा (**अतिप्रसादसुभगैः**) अत्यन्त प्रसन्नता से सुन्दर (**तेजोभिः**) तेज के द्वारा (**उद्भासितम्**) शोभायमान (**त्वद्वक्त्रेन्दुम्**) आपके मुखचन्द्र को (**आलोक्यता**) देखते हुए (**मया**) मैंने (**द्रष्टव्यावधिवीक्षणव्यतिकरव्यति- करणव्याजृम्भमाणोत्सवम्**) दर्शनीय वस्तुओं की सीमा के देखने रूप व्यापार बढ़ रहा है उत्सव जिनका ऐसी (**चक्षुः**) आँखों को (**अनतिचिरात्**) शीघ्र ही (**कृतार्थीकृतम्**) कृतार्थ किया है, (**तेन**) उस कारण से (**भुवने**) संसार में (**अहम् एव, मैं ही** (**चक्षुमान् अस्मि**) नेत्रवान् हूँ।

भावार्थ-हे भगवन्! जिन्होंने आपके दर्शन किये हैं, संसार में उन्हीं के नेत्र सफल हैं-वे ही नेत्रवान् कहलाते हैं।।11।।

देव दृगों से अमृत झरता, अति प्रसाद से आभावान।
मुख शशि तव तेजोमय का शुभ, दर्शन कर मैंने भगवान।।
सर्वोत्तम द्रष्टव्य आपका, दर्शन कर दृग किए पवित्र।
रहा विश्व में नेत्रवान मैं, जानो तुम हे त्रिभुवन मित्र!।।11।।

(मालती छन्द)

कन्तोः सकान्तमपि मल्लमवैति कश्चिन्-
मुग्धो मुकुन्दमरविन्दजमिन्दुमौलिम्।
मोघीकृतत्रिदशयोषिदपाङ्गपात-
स्तस्य त्वमेव विजयी जिनराज! मल्लः।।12।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-**(जिनराज)** हे जिनेन्द्र! **(कश्चित् मुग्धः)** कोई मूर्ख **(कन्तोः)** कामदेव के विषय में **(मुकुन्दम्)** श्रीकृष्ण **(अरविन्दजम्)** ब्रह्मा और **(इन्दुमौलिम्)** महादेव को **(सकान्तम् अपि)** स्त्रियों से सहित होने पर भी **(मल्लम्)** मल्ल **(अवैति)** मानता है। किन्तु **(मोघीकृतत्रिदशयोषिदपाङ्गपातः)** व्यर्थ कर दिया है देवांगनाओं का कटाक्षपात जिनने ऐसे **(त्वम् एव)** आप ही **(तस्य)** उस काम के **(विजयी)** जीतने वाले **(मल्लः)** शूरवीर हैं।

भावार्थ-हे भगवन्! कोई अज्ञानी जीव कहते हैं कि श्री विष्णु ने काम को जीता था, कोई कहते हैं कि ब्रह्मा ने जीता था और कोई कहते हैं कि महादेव ने जीता था, पर उनका यह कहना मिथ्या है, क्योंकि ये तीनों ही देवता देव अवस्था में भी स्त्रियों से सहित थे। जो काम को जीत लेता है-काम-विकार से रहित होता है, उसे स्त्री रखने की क्या आवश्यकता है। परन्तु आपके ऊपर मनुष्य-स्त्रियों की क्या बात, देवांगनाएँ भी अपना असर नहीं डाल सकीं, इसलिए कामदेव के सच्चे विजेता आप ही हैं॥12॥

हे जिन! कोई मुग्ध कामिनी, की आशा में रहते विद्ध।
हरिहर ब्रह्मा को बतलाते, काम विजेता मल्ल प्रसिद्ध॥
विफल किए हैं किन्तु आपने, सुर शचियों के वाण प्रहार।
मन्मथ जयी आपको हे जिन! कहलाने का है अधिकार॥12॥

(मालनी छन्द)

किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषात्।
कुसुमितमतिसान्द्रं त्वत्समीपप्रयाणात्।
मम फलितममन्दं त्वन्मुखेन्दोरिदानीं
नयनपथमवाप्ताद् देव! पुण्यद्रुमेण॥13॥

अन्वयार्थ-**(देव)** हे देव! **(मम)** मेरा **(पुण्यद्रुमेण)** पुण्य रूपी वृक्ष, **(त्वद्विलोकाभिलाषात्)** आपके दर्शन करने की इच्छा के **(अनल्पम्)** अत्यधिक **(किसलयितम्)** पल्लवों से व्याप्त हुआ था, **(त्वत्समीपप्रयाणात्)** आपके पास जाने से **(अतिसान्द्रम्)** अतिसघन **(कुसुमितम्)** फूलों से व्याप्त हुआ और **(इदानीम्)** इस समय **(त्वन्मुखेन्दोः)** आपके मुख-चन्द्रमा से **(अमन्दम्)** अत्यन्त **(फलितम्)** फलों से व्याप्त हुआ है।

भावार्थ-हे भगवन्! आपके दर्शन करने की इच्छा से पुण्य-रूपी वृक्ष लहलहा उठता है। आपके पास जाने से उसमें फूल लग जाते हैं और आपका साक्षात् दर्शन पा लेने पर उसमें फल लग जाते हैं। आपका दर्शन अत्यन्त पुण्य का कारण है॥13॥

तव दर्शन की इच्छा मेरे, पुण्य विटप में जगी हे आप्त!।
पल्लव निकले पास गमन से, सघन हुई सुमनावलि व्याप्त॥
सुमुख चन्द्र का दर्श किए जिन, लगे पुण्य में फल कई ईश।
दर्श आपका पुण्य हेतु है, पावन साधन हे योगीश!॥13॥

त्रिभुवनवनपुष्पात्पुष्पकोदण्डदर्प-
प्रसरदवनवाम्भोमुक्तिसूक्तिप्रसूतिः।
स जयति जिनराजव्रातजीमूतसङ्घः
शतमखशिखिनृत्यारम्भनिर्बन्धबन्धुः॥14॥

अन्वयार्थ-**(त्रिभुवनवनपुष्यात्पुष्पकोदण्डदर्पप्रसरदवन-वाम्भो-मुक्तिसूक्तिप्रसूतिः)** तीन लोक रूपी वन में बढ़ते हुए कामदेव सम्बन्धी अहंकार के प्रसार रूपी दावानल को बुझाने के लिए नूतन जलवृष्टि रूप सुन्दर उपदेश की है उत्पत्ति जिससे ऐसे, तथा **(शतमखशिखिनृत्यारम्भ-निर्बन्धबन्धुः)** इन्द्ररूपी मयूर के नृत्य प्रारम्भ करने में आग्रहकारी बन्धुस्वरूप **(सः)** वह **(जिनराजव्रातजीमूतसङ्घः)** जिनेन्द्र समूहरूप मेघों का समुदाय **(जयति)** जयवन्त है अर्थात् सबसे उत्कृष्ट है।

भावार्थ-जिनका उपदेश काम अग्नि को नष्ट करने के लिए जल-धारा के समान है और जिनके सामने स्वर्ग का इन्द्र मनोहर नृत्य करता है वे जिनेन्द्र देव संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं॥14॥

त्रिभुवन वन में कामदेव के, मद का दावानल है व्याप्त।
तव उपदेशामृत की वर्षा, उसे बुझा देती हे आप्त!॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

तथा इन्द्र रूपी मयूर के, नृत्य में भी जो निःसंदेह।
श्रेष्ठ आप हो आग्रहकारी, बन्धु स्वरूपी पावन मेह॥14॥

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

भूपालस्वर्गपालप्रमुखनरसुरश्रेणिनेत्रालिमाला-
लीलाचैत्यस्य चैत्यालयमखिलजगत्कौमुदीन्दोर्जिनस्य।
उत्तंसीभूतसेवाञ्जलिपुटनलिनीकुड्मलस्त्रिः परीत्य
श्रीपादच्छाययापस्थितभवदवथुः संश्रितोऽस्मीव मुक्तिम्॥15॥

अन्वयार्थ-(**भूपालस्वर्गपालप्रमुखनरसुरश्रेणिनेत्रालिमाला- लीलाचैत्यस्य**) चक्रवर्ती और इन्द्र हैं प्रधान जिनमें, ऐसे मनुष्य और देव समूह के नेत्ररूपी भ्रमर-पंक्ति की क्रीड़ा के लिए चैत्यवृक्ष तथा (**अखिलजगत्कौमुदीन्दोः**) सम्पूर्ण संसार रूप कुमुद समूह के लिए चन्द्रमा स्वरूप (**जिनस्य**) जिनेन्द्र देवके (**चैत्यालयं त्रिः परीत्य**) मंदिर की तीन प्रदक्षिणा देकर (**उत्तंसीभूतसेवांजलिपुटनलिनी- कुड्मलः**) आभरण रूप किया है सेवा से वह अंजलिपुटरूपकमलिनी के मुकुल (**बौंड़ी-कली**) जिसने ऐसा तथा (**श्रीपादच्छायया**) आपके श्रीचरण की छाया के द्वारा (**अपस्थितभवदवथुः**) दूर हो गया है संसार का सन्ताप जिसका ऐसा मैं (**मुक्तिम् इव संश्रितः अस्मि**) मानो मुक्ति को ही प्राप्त हो गया हूँ।

भावार्थ-हे भगवन्! आपके मन्दिर की तीन परिक्रमा देकर आपके चरणों के समीप हाथ जोड़कर बैठता हूँ, तब मुझे जो आनंद होता है उसमें मैं समझने लगता हूँ कि मैं अब मुक्ति को ही प्राप्त हो गया हूँ॥15॥

चक्री इन्द्र प्रमुख नर सुर के, नेत्र भ्रमर को क्रीड़ा धाम।
चैत्य वृक्ष अरु सर्व जगत के, कुमुद वर्ग के शशि अभिराम॥
जिन मंदिर की त्रय प्रदक्षिणा, देकर हाथ जोड़ सानन्द।
तव चरणों में ताप शांतकर, पाया मैंने शिव आनन्द॥15॥

(बसन्ततिलका छन्द)

देव त्वदङ्घ्रिनखमण्डलदर्पणेऽस्मि-
न्नर्घ्ये निसर्गरुचिरे चिरदृष्टवक्त्रः।

श्रीकीर्तिकान्तिधृतिसङ्गमकारणानि
भव्यो न कानि लभते शुभमङ्गलानि॥16॥

अन्वयार्थ-(**देव**) हे देव! (**अर्घ्ये**) प्रशंसनीय और (**निसर्ग-रुचिरे**) स्वभाव से सुन्दर (**अस्मिन् त्वदङ्घ्रिनखमण्डलदर्पणे**) आपके इस नखमण्डलरूपी दर्पण से (**चिरदृष्टवक्त्रः**) बहुत समय तक देखा है मुख जिसने ऐसा (**भव्यः**) भव्यजीव (**श्री कीर्तिकांतिधृतिसंगमकारणानि**) लक्ष्मी, यश, कान्ति और धीरज की प्राप्ति के कारण स्वरूप (**कानि शुभमङ्गलानि**) किन शुभ मंगलों को (**न लभते**) नहीं प्राप्त होता! अर्थात् सभी को प्राप्त होता है।

भावार्थ-हे भगवन् जो भव्य आपके नखमण्डलरूपी दर्पण में अपना मुँह देखता है-अर्थात् आपके चरणों में नमस्कार करता है, वह हर एक तरह के मंगलों को प्राप्त होता है। लोक में दर्पण में मुँह देखना मंगल का कारण माना जाता है॥16॥

देव! पूज्य अरु सुन्दर तव पद, नख दर्पण में बारम्बार।
निज मुख देख भव्य प्राणी श्री, कीर्ति कांति धृति के आगार॥
शुभ मंगलमय कौन प्रसंगों, को ना पाते हैं स्वमेव
सर्व मंगलों को पा लेते, 'विशद' आपके चरणों देव!॥16॥

(मालनी छन्द)

जयति सुरनरेन्द्रश्रीसुधानिर्झरिण्याः
कुलधरणिधरोऽयं जैनचैत्याभिरामः।
प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्रप्रवाल-
प्रसरशिखरशुम्भत् केतनः श्रीनिकेतः॥17॥

अन्वयार्थ-(**सुरनरेन्द्रश्रीसुधानिर्झरिण्याः**) देवेन्द्र और राजाओं की लक्ष्मी रूप अमृत के झरनों की उत्पत्ति के लिए (**कुलधरणिधरः**) कुलाचल, तथा (**प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्रप्रवालप्रसरशिखर- शुम्भत्केतनः**) अत्यधिक फल वाले धर्मरूप वृक्ष के अग्रभाग पर स्थित किसलयसमूह

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

की शिखर ही है शोभामान पताका जिस पर ऐसा तथा **(श्रीनिकेतः)** लक्ष्मी के गृहस्वरूप **(अयम्)** यह **(जैनचैत्याभिरामः)** जिनेन्द्रदेव का चैत्यालय **(जयति)** जयवन्त है-सबसे उत्कृष्ट है।

भावार्थ-हे भगवन्! आपका वह मन्दिर संसार में सबसे उत्कृष्ट है, जिसमें भक्तिपूर्वक जाने से देवेन्द्र तथा राजा-महाराजाओं की सम्पत्ति प्राप्त होती है, जिस पर मनोहर पताका फहरा रही है और वह लक्ष्मी का घर है।।17।।

सुर नर की श्री रूपी अमृत, के झरनों से जो अभिराम।
कुलधर अरु फल धर्म वृक्ष के, अग्रभाग पर लगी ललाम॥
किसलय दल को शिखरों, जैसे शोभित ध्वज से श्री गृह रूप।
श्री जिनेन्द्र के मंदिर पावन, जग में उत्तम रहे अनूप॥17॥

विनमदमरकान्ताकुन्तलाक्रान्तकान्ति-
स्फुरितनखमयूखद्योतिताशान्तरालः।
दिविजमनुजराजव्रातपूज्यक्रमाब्जो
जयति विजितकर्मारातिजालो जिनेन्द्रः॥18॥

अन्वयार्थ-(विनमदमरकान्ताकुन्तलाक्रान्तकान्तिस्फुरितनखमयूख-द्योतिताशान्तरालः) नमस्कार करती हुई देवांगनाओं के केशों से प्रतिबिम्बित कांति से शोभायमन नखचन्द्र की किरणों से प्रकाशित कर दिया है दिशाओं का मध्य भाग जिनने ऐसे, तथा **(दिविजमनुजराजव्रातपूज्यक्रमाब्जः)** देव और मनुष्यों के राजसमूह से पूजने योग्य हैं चरणकमल जिनके ऐसे, और **(विजितकर्मारातिजालः)** जीत लिया है कर्म रूपी शत्रुओं का समूह जिनने ऐसे **(जिनेन्द्रः)** जिनेन्द्रदेव **(जयति)** जयवन्त हैं-सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान हैं।

भावार्थ-जिनके चरणों के नखों की काँति से दशों दिशाएँ प्रकाशमान हैं, जिनके चरणों की देवेन्द्र और नरेन्द्र पूजा करते हैं तथा जिन्होंने कर्मों का क्षय कर दिया है, ऐसे जिनेन्द्र देव ही सबसे उत्कृष्ट हैं।।18।।

नमती सुरियों के केशों से, प्रति-बिम्बित हैं कांतीमान।
नख चन्द्रों की किरणों से हों, सर्व दिशाएँ आभावान॥
इन्द्र नरेन्द्रों से पूजा के, योग्य हैं जिनके चरण सरोज।
कर्म शत्रु सब जीते जिनने, जयवन्तों जिन पद हर रोज॥18॥

(बसन्ततिलका छन्द)

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमंगलाय
द्रष्टव्यमस्ति यदि मंगलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं
त्रैलोक्यमंगलनिकेतनमीक्षणीयम्॥19॥

अन्वयार्थ-(नाथ) हे स्वामिन्! **(सुप्तोत्थितेन)** सोकर उठे हुए **(सुमुखेन)** सुन्दर मुखवाले पुरुष के द्वारा **(सुमंगलाय)** कल्याण की प्राप्ति के लिए **(यदि मंगलम् एव वस्तु द्रष्टव्यम् अस्ति)** यदि मंगलरूप ही वस्तु देखी जानी चाहिए **(तत्)** तो **(अन्येन किम्)** और से क्या **(त्रैलोक्यमंगलनिकेतनम्)** तीनों लोंकों के मंगलों के घर स्वरूप **(तव वक्त्रम् एव)** आपका मुख ही **(ईक्षणीयम्)** देखना चाहिए।

भावार्थ-यदि सोकर उठने के बाद नियम से किसी मंगल वस्तु को देखना चाहिए ऐसा नियम है तो जिनेन्द्र भगवान् के मुख को ही देखिये क्योंकि वह सब मंगलों का घर है।।19।।

स्वामिन सोकर उठे पुरुष को, यदि पाने मंगल कल्याण।
मंगल वस्तु देखने हेतू, अन्य वस्तु की क्या पहिचान॥
तीन लोक के हर मंगल का, गृह स्वरूप तव मुख भगवान।
हर मंगल की प्राप्ती हेतू, जग में माना गया महान॥19॥

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

त्वं धर्मोदयतापसाश्रमशुकस्त्वं काव्यबन्धक्रम-
क्रीडानन्दनकोकिलस्त्वमुचितः श्रीमल्लिकाषट्पदः।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

त्वं पुन्नागकथारविन्दसरसीहंसस्त्वमुत्तंसकैः
कैर्भूपाल न धार्यसे गुणमणिस्त्रङ्मालिभिर्मौलिभिः॥20॥

अन्वयार्थ-(**भूपाल**) हे जगत्पालक! (**त्वम्**) आप (**धर्मोदय-तापसाश्रमशुकः**) धर्म के अभ्युदयरूपी तपोवन के तोता हैं (**त्वम्**) आप (**काव्यबन्धक्रमक्रीडानन्दनकोकिल**) काव्य रचना की क्रमक्रीड़ा रूप नन्दनवन के कोकिल हैं। (**त्वम्**) आप (**पुन्नागकथारबिन्दसरसीहंसः**) श्रेष्ठ पुरुषों की कथा रूपी कमल सरोवर के हंस हैं और (**त्वम्**) आप (**उत्तंसकैः**) अपने आपको भूषित करने-सजाने वाले (**कैः**) किन पुरुषों के द्वारा (**गुणमणिस्त्रङ्मालिभिः**) गुण रूप मणियों की माला के समूह से उपलक्षित (**मौलिभिः**) मुकुटों के द्वारा (**न धार्यसे**) धारण नहीं किये जाते? अर्थात् सभी के द्वारा किये जाते हैं?

भावार्थ-हे भगवन्! जिस प्रकार तोता तपोवन की शोभा बढ़ाता है उसी प्रकार आप भी धर्म के उदय की शोभा बढ़ाते हैं। जिस प्रकार कोयल अपनी मीठी आवाज से नन्दनवन की शोभा बढ़ा देती हैं उसी प्रकार आप भी अपने चरित्र से काव्य-रचना की शोभा बढ़ा देते हैं। अर्थात् जिस काव्य-रचना में आपका चरित्र लिखा जाता है, वह बहुत सुन्दर हो जाता है। जिस प्रकार भौंरा मालती के फूलों का रसास्वादन करता है, उसी प्रकार आप भी अनन्तचतुष्टय रूपी लक्ष्मी का रसास्वाद करते हैं। जिस प्रकार हंस कमलों के वन की शोभा बढ़ाते हैं उसी तरह आप भी श्रेष्ठ पुरुषों की कथाओं की शोभा बढ़ाते हैं। और जिस प्रकार अपने आपको अलंकृत करने वाले पुरुष मालाओं से शोभायमान मुकुटों को अपने शिर पर धारण करते हैं, उसी प्रकार अपने आपको उत्तम बनाने वाले मनुष्य आपको अपने मस्तक से धारण करते हैं अर्थात् शिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।।20।।

जगतपाल! धर्मोदय बन शुक, आप काव्य क्रम क्रीड़ा रूप।
नन्दन वन के पिक सुजनों की, चर्चा सर को हंस अनूप॥
गुण मणिमाला से उपलक्षित, कौन गुणीजन गुण के धाम।
अपने मंजुल मुकुट झुकाकर, चरणों में ना करें प्रणाम॥20॥

(मालनी छन्द)

शिवसुखमजरश्रीसङ्गमं चाभिलष्य
स्वमभिनियमयन्ति क्लेशपाशेन केचित्।
वयमिह तु वचस्ते भूपतेर्भावयन्त-
स्तदुभयमपि शश्वल्लीलया निर्विशामः॥21॥

अन्वयार्थ-(**केचित्**) कितने ही मनुष्य (**शिवसुखम्**) मोक्षसुख (**च**) और (**अजरश्रीसंगमम्**) देवों की लक्ष्मी के संगम को (**अभिलष्य**) चाहकर (**स्वम् अभि**) अपने आपको (**क्लेशपाशेन**) दुःखों के समूह से (**नियमयन्ति**) नियमित करते हैं-अर्थात् तरह-तरह के तपस्याओं और व्रत आदि के कठिन नियमों से अपने आपको दुःखी करते हैं (**तु**) किन्तु (**वयम्**) हम लोग (**शश्वत्**) हमेशा (**इह**) इस संसार में (**ते भूपतेः**) आप जगत्पालक के (**वचः भावयन्तः**) वचनों की भावना करते हुए (**लीलया**) अनायास ही (**तदुभयम् अपि**) उन दोनों अर्थात् मोक्ष और स्वर्ग को (**निर्विशामः**) प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ-हे प्रभो! जो मनुष्य आपके सिद्धान्तों से परिचित नहीं हैं-वे स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति के लिए तरह-तरह के नियम करते हैं-कठिन तपस्याओं के क्लेश उठाते हैं, फिर भी उन्हें प्राप्त नहीं कर पाते, पर हम लोग आपके उपदेश का रहस्य समझकर अनायास ही उन दोनों को प्राप्त कर लेते हैं। आपके वचनों की महिमा अपार है।।21।।

कोइ नर मोक्ष और देवों की, लक्ष्मी का भी चाहें संग।
निज को दुख समूह से नियमित, करते रहते अपने अंग॥
हे जग पालक! किन्तू हम सब, पाकर तव पावन उपदेश।
अनायास ही स्वर्ग मोक्ष हम, पा लेते हैं हे तीर्थेश!॥21॥

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

देवेन्द्रास्तव मज्जनानि विदधुर्देवाङ्गना मङ्गला-
न्यापेठुः शरदिन्दुनिर्मलयशो गन्धर्वदेवा जगुः।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

शेषाश्चापि यथानियोगमखिलाः सेवां सुराश्चक्रिरे
तत् किं देव वयं विदध्म इति नश्चित्तं तु दोलायते॥22॥

अन्वयार्थ-(**देव**) हे देव! (**देवेन्द्राः**) इन्द्रों ने (**तव**) आपका (**मज्जनानि विदधुः**) अभिषेक किया, (**देवाङ्गनाः मंगलानि आपेठुः**) देवांगनाओं ने मंगलपाठ पढ़े, (**गन्धर्वदेवाः**) गन्धर्व देवों ने (**शरदिन्दुनिर्मलयशः जगुः**) शरदृतु के चन्द्रमा की तरह उज्ज्वल यश गाया, (**च**) और (**शेषाः अखिलाः सुराः**) बाकी बचे हुए समस्त देवों ने (**यथानियोगम्**) अपने कर्तव्य के अनुसार (**सेवाम् चक्रिरे**) सेवा की (**तत् वयं तु किं विदध्मः**) अब हम लोग क्या करें? (**इति**) इस प्रकार (**नः**) हमारा (**चित्तम्**) मन (**दोलायते**) चंचल हो रहा है।

भावार्थ-हे प्रभो! करने योग्य जो सेवाएँ थीं उन्हें सब देव-देवियाँ कर चुकीं, अब हम लोग आपकी कौन-सी सेवा करें? इस तरह हमारा चित्त निरन्तर विचारों के हिंडोले में झूलता रहता है।।22।।

इन्द्र किए अभिषेक देव! तव, किया देवियों ने शुभगान।
गन्धर्वों ने शरच्चन्द सम, यश गाया शुभ महति महान॥
शेष सभी इन्द्रों ने सेवा, की अपने योगों अनुसार।
हम क्या करें सोचकर मन ये, चंचल होता बारम्बार॥22॥

देव त्वज्जननाभिषेकसमये रोमांचसत्कंचुकैर्-
देवेन्द्रैर्यदनर्ति नर्तनविधौ लब्धप्रभावैः स्फुटम्।
कश्चान्यत्सुरसुन्दरीकुचतटप्रान्तावनद्धोत्तम-
प्रेङ्खद्वल्लकिनादझङ्कृतमहो तत्केन संवर्ण्यते॥23॥

अन्वयार्थ-(**देव**) हे देव! (**त्वज्जननाभिषेकसमये**) आपके जन्माभिषेक के समय (**नर्तनविधौ**) नृत्य कार्य में (**लब्धप्रभावैः**) प्राप्त किया है प्रभाव जिन्होंने ऐसे (**देवेन्द्रैः**) इन्द्रों ने (**रोमांचसत्कंचुकैः**) रोमांचरूप कंचुक वस्त्र को धारण करते हुए (**यत् स्फुटम् अनर्ति**) जो स्पष्ट नृत्य किया गया था (**किं च अन्यत्**) और जो (**सुरसुन्दरीकुचतटप्रान्ता-वनद्धोत्तमप्रेङ्खद्वल्ल-किनादझङ्कृतम्**) देवांगनाओं के स्तन तट के समीप बंधी हुई उत्तम शब्द करती हुई वीणा के शब्द की झंकार हुई थी (**अहो तत् केन वर्ण्यते**) आश्चर्य है कि उस सबका वर्णन किससे हो सकता है? अर्थात् किसी से नहीं।

भावार्थ-हे भगवन्! जन्माभिषेक के समय इन्द्र ने जो नृत्य किया था और देवांगनाओं ने वीणा बजाई थी उसका वर्णन कोई नहीं कर सकता।।23।।

तव जन्माभिषेक में हे जिन!, नृत्य किए सुर भली प्रकार।
शुभ रोमांच कंचुकी धारण, कर जो नृत्य किया शुभकार॥
और देवियों की वीणा से, पावन हुई मधुर झंकार।
उन सबका वर्णन ना कोई, कर सकता है कई भव धार॥23॥

देव त्वत्प्रतिबिम्बमम्बुजदलस्मेरेक्षणं पश्यतां
यत्रास्माकमहो महोत्सवरसो दृष्टोरियान् वर्तते।
साक्षात्तत्र भवन्तमीक्षितवतां कल्याणकाले तदा
देवानामनिमेषलोचनतया वृत्तः सः किंवर्ण्यते॥24॥

अन्वयार्थ-(**देव**) हे देव! (**अम्बुजदलस्मेरेक्षणम्**) कमल की पांखुड़ी की तरह विकसित हैं नेत्र जिसमें ऐसे (**त्वत्प्रतिबिम्बम्**) आपके प्रतिबिम्ब-प्रतिमा को (**पश्यताम्**) देखने वाले (**अस्माकम्**) हम लोगों की (**दृष्टेः**) आँखों को (**यत्र**) जहाँ (**अहो**) आश्चर्यकारक (**इयान्**) इतना (**महोत्सवरसः**) महान् आनन्द (**वर्तते**) हो रहा है (**तत्र**) वहाँ (**तदा**) उस समय (**कल्याणकाले**) पंचकल्याणकों के काल में (**अनिमेषलोचनतया**) टिमकार रहित नेत्रों से (**भवन्तम्**) आपको (**साक्षात्**) साक्षात् रूप से (**ईक्षितवताम्**) देखने वाले (**देवानाम्**) देवों के (वृत्तः) प्रकट हुआ (**सः**) वह आनन्द (**किम्**) क्या (**वर्ण्यते**) वर्णित किया जा सकता है अर्थात् नहीं किया जा सकता।

भावार्थ-हे भगवन्! जब हमें आपकी जड़ प्रतिमा के दर्शन करने से

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

इतना अपार आनन्द होता है तब कल्याणकों के समय आपके दर्शन करने वाले देवों को जो आनन्द होता होगा उसका कौन वर्णन कर सकता है?।।24।।

खिले कमल दल सम नयनों युत, तव प्रतिमा का दर्शन देव!।
हम सबके नयनों को अनुपम, इतना सुख मिलता स्वमेव।।
कल्याणक के समय एक टक, नयनों से जो रूप अपार।
देख मिला सुख इन्द्रों को जो, जिसका वर्णन है दुष्वार।।24।।

दृष्टं धाम रसायनस्य महतां दृष्टं निधीनां पदं
दृष्टं सिद्धरसस्य सद्म सदनं दृष्टं च चिन्तामणेः।
किं दृष्टैरथवानुषङ्गिकफलैरेभिर्मयाद्य ध्रुवं
दृष्टं मुक्तिविवाहमंगलगृहं दृष्टे जिनश्रीगृहे।।25।।

अन्वयार्थ-(**जिनश्रीगृहे**) जिनमन्दिर अथवा जिनेन्द्र रूप लक्ष्मी गृह के (**दृष्टे 'सति'**) देखे जाने पर (**मया**) मैंने (**रसायनस्य धाम दृष्टम्**) रसायन का घर देख लिया, (**महतां निधीनाम् पदं दृष्टम्**) बड़ी-बड़ी निधियों का स्थान देख लिया, (**सिद्धरसस्य**) सिद्ध हुए रसऔषधि विशेष का (**सद्म दृष्टम्**) घर देख लिया, (**च**) और (**चिन्तामणेः**) चिन्तामणि रत्न का (**सदनम् दृष्टम्**) घर देख लिया। (**अथवा दृष्टैः एभिः आनुषङ्गिकफलैः किम्**) अथवा देखे हुए इन गौण फलों से क्या लाभ है? (**ध्रुवम्**) निश्चय से (**अद्य**) आज (**मया**) मैंने (**मुक्तिविवाहमंगलगृहम् दृष्टम्**) मुक्ति रूपी कन्या के विवाहमंगल का घर देख लिया है।

भावार्थ-हे भगवन्! आपका दर्शन, रसायन, निधि, सिद्धरस, और चिन्तामणि की तरह उपकारी तो है ही परन्तु मुक्ति प्राप्ति का भी कारण है।।25।।

श्री जिन श्री गृह देख रसायन, का गृह देखा हे जिनदेव!।
देखा निधियों का निवास गृह, सिद्ध रसालय देखा एव।।
देखा चिंतामणि गृह पावन, अथवा इनसे है क्या लाभ।

आज मुक्ति का परिणय मंगल, गृह मैंने देखा अमिताभ।।25।।

दृष्टस्त्वं जिनराजचन्द्र-विकसद्भूपेन्द्रनेत्रोत्पले
स्नातं त्वन्नुतिचन्द्रिकाम्भसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे
नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शान्तिं मया गम्यते
देव! त्वद्गतचेतसैव भवतो भूयात् पुनर्दर्शनम्।।26।।

अन्वयार्थ-(**जिनराजचन्द्र**) हे जिनेन्द्रचन्द्र! (**मया त्वम् दृष्टः**) मैंने आपके दर्शन किये तथा (**विकसद्भूपेन्द्रनेत्रोत्पले**) जिसमें राजाओं के नेत्र रूपी कुमुद फूल रहे हैं ऐसे तथा (**भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे**) जिसमें विद्वान् रूप-चकोर पक्षियों को आनन्द हो रहा है ऐसे (**त्वन्नुतिचन्द्रिकाम्भसि**) आपकी स्तुति रूप जल में (**स्नातम्**) स्नान किया (**च**) और (**अद्य**) आज (**निदाघजः**) सन्ताप से उत्पन्न हुआ (**क्लमभरः**) खेद का समूह (**शान्तिम् नीतः**) शान्ति को प्राप्त कराया (**देव**) हे देव! (**त्वद्गतचेतसा एव मया गम्यते**) अब मैं आपमें ही चित्त लगाता हुआ जाता हूँ (**भवतः दर्शनम् पुनः भूयात्**) आपके दर्शन फिर से हों।

भावार्थ-हे भगवन्! मैंने आपके दर्शन किये और स्तुति भी की। तथा मन का समस्त सन्ताप भी दूर किया। अब मैं जाता हूँ, पर मेरा चित्त आप में ही लग रहा है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझे आपके 'विशद' दर्शन फिर से प्राप्त होवें।।26।।

किया दर्श जिन चंद आपका, औ भूपति दृग कुमुद ललाम।
सुखप्रद विज्ञ चकोरों को तव, संस्तुति जल में है अभिराम।।
किया गया स्नान आज ही, शांत किए संतापी क्लेश।
अब ये चित्त आपके दर्शन, में ही 'विशद' लगाऊँ जिनेश!।।26।।

।।श्री चतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो नमः।।

श्री भद्रबाहुविरचितम् उवसग्गहरं स्तोत्रम्

"श्री भद्रबाहु स्वामिप्रसादात् एषः योगः फलतु"

उवसग्गहरं पासं, पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं।
विसहर-विसणिण्णासं, मंगल कल्लाण-आवासं॥1॥

अन्वयार्थ-(कम्मघणमुक्कं-घातिया कर्मों से विमुक्त, **उवसग्गहरं**-उपसर्गजयी, **पासं**-पारसनाथ जी, **विसहर**-विषधर के, **विसणिण्णासं**-विष को निर्विष करने वाले हैं, **मंगल श्रेष्ठ कल्याण**-कल्याण के **आवासं**-आवास हैं ऐसे, **पासं वंदामि**-पार्श्वप्रभु की वंदना करता हूँ।।1।।

अर्थ-मैं घातिया कर्मों से विमुक्त उपसर्ग विजयी भगवान श्री पार्श्वनाथ स्वामी की वन्दना करता हूँ। भगवान् विषधर के विष को निर्विष करने वाले है तथा मंगल एवं कल्याण के निवास हैं ऐसे पार्श्वप्रभू की मैं वन्दना करता हूँ।

गाढ़ कर्म के जो समूह से, पूर्ण रूप से मुक्त रहे।
विषधर जो हैं उनके सारे, विष के नाशी आप रहे॥
मंगल अरु कल्याणों के गृह, करते हैं उपसर्ग शमन।
ऐसे श्री जिन पार्श्वनाथ के, पद में बारम्बार नमन्॥1॥

विसहर-फुलिंगमंतं, कंठे धारेदि जो सया मणुओ।
तस्य गह-रोय-मारी, दुट्ठ जरा जंति उवसामं॥2॥

अन्वयार्थ-विषहर फुलिंग मंतं-जो विषधर शक्ति से, दीप्तिमान मंत्र, **कंठे धारेदि**-कंठ में धारता है, **तस्स**-उसके, **गह**-ग्रह, **रोय**-रोग, **मारी**-महामारी, **दुट्ठ जरा**-बुढ़ापा की व्याधियाँ, **उवसामं**-उपशांत, **जंति**-हो जाती हैं।।2।।

अर्थ-विसहरण शक्ति से स्फुलिंग के समान दीप्तिमान् इस स्तोत्र को जो मनुष्य नित्य कण्ठ में धारण करता है (कण्ठस्थ रखता है, कण्ठ द्वारा उच्चारण करता है) उसके ग्रहपीड़ा, रोग, महामारी तथा वार्धभ्य

(बुढ़ापा) से उत्पन्न दुष्ट व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं।

विष को हरने वाला पावन, मंत्र रूप शुभ ज्योती पुंज।
जो नर कण्ठ में धारण करता, जिनवाणी का श्रेष्ठ निकुंज।
रोग दुष्ट ग्रह शत्रू सारे, उनके हो जाते उपशांत।
वृद्धावस्था के भी दुख सब, विशद शीघ्र हो जाते शांत॥2॥

चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होई।
णर-तिरिएसु वि जीवा, पावंति ण दुक्ख-दोगच्चं॥3॥

अन्वयार्थ-मंतो दूरे चिट्ठउ-मंत्र तो दूर की बात है, **तुज्झ पणामोवि**-आपको प्रणाम करने मात्र से ही, **बहु फलो होई**-बहुत विशेष फल प्राप्त होता है, **णरतिरिएसु वि जीवा**-नर तिर्यंच जीव भी, **दुक्ख दोगच्चं**- दुःख और दुर्गति, **ण पावंति**-नहीं प्राप्त करते हैं।।3।।

अर्थ-हे भगवन्! मंत्रोपचार तो दूर की बात है, उसे रहने दें तो भी आपको एक श्रद्धाभक्ति से किया गया प्रणाम भी बहु फलदायी होता है। नर और तिर्यंच गति में उत्पन्न जीव आपकी भक्ति से दुःख तथा दुर्गति नहीं पाते।

नाथ! आपके विषहारी इस, मंत्र की महिमा दूर रहे।
मात्र चरण में वन्दन का फल, बहुत बड़ा वह कौन कहे।
इससे मानव और पशू गति, में जो रहने वाले जीव।
दुर्गति को वह प्राप्त ना होते, प्राप्त करें वे पुण्य अतीव॥3॥

तुह सम्मत्ते लद्धे, चिंतामणि कप्प-पावयसरिसे।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं।।4।।

अन्वयार्थ-चिंतामणि-चिंतामणि रत्न, **कप्पपावयसरिसे**-कल्पतरु के समान, **सम्मते**-सम्यक्त्व को, **लहे**-प्राप्त कर, **जीवा**-जीव, **अविग्घेणं**-निर्विघ्न, **अयरामरं**-अजर अमर, **ठाणं**-स्थान को, **पावंति**-प्राप्त करते हैं।।4।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अर्थ–चिन्तामणि और कल्पवृक्ष के समान, सम्यक्त्व को प्राप्त कर जीव निर्विघ्न अजर-अमर स्थान प्राप्त कर लेते हैं।

नाथ! आपको भली भाँति वह, पा लेते हैं जीव महान।
मानो चिंतामणि पा लेते, या कल्पतरु पाएँ प्रधान॥
और जीव वे बिना किसी भी, विघ्न के पाते मंगलकार।
अजर अमर पद मोक्ष रहा जो, वह पद पा हों भव से पार॥4॥

इह संथुअदो महायस! भत्तिब्भर णिब्भेरेण हिदएण।
ता देव! दिज्ज बोहिं, भवे-भवे पास! जिणचंदं!॥5॥

अन्वयार्थ-इह संथुअदो महायश–हे महान् यशस्विन!, **पास जिणचंदं**–हे पार्श्व जिनेन्द्र! **भत्तिब्भर**–भक्ति की अतिशयता, **हिदएण**–हृदय में, **णिब्भेरेण**–भरने से, **भवे-भवे**–भव भव में, **ता देव**–हे जिनेन्द्र!, **दिज्ज बोहि लाभं**–मुझे बोधि लाभ दो ऐसी मेरी प्रार्थना है॥5॥

अर्थ–हे महान् यशस्विन्! भक्ति की अतिशयता से भरे हृदय से, मैं आपकी स्तुति करता हूँ। हे पार्श्व जिनचन्द्र! मुझे बोधिलाभ प्राप्त हो-ऐसी प्रार्थना है।

महायशस्वी नाथ! आप हो, अनन्त-चतुष्टय वैभववान।
भक्ती भरे हृदय से करता, प्रभू आपका मैं गुणगान॥
पार्श्वनाथ जिनचन्द्र देव हो! करो शीघ्र मेरा कल्याण।
आप मुझे प्रत्येक भवों में, करना प्रभु जी बोधि प्रदान॥5॥

ॐ अमरतरु-कामधेणु-चिंतामणि कामकुंभमाइया।
सिरि-पासणाह-सेवाग्गहणे, सव्वे वि दासत्तं॥6॥

अन्वयार्थ-सिरि पासणाह–श्री पारसनाथ भगवान की, **सेवाग्गहणे**- सेवा का आश्रय लेने से, **ॐ**–ओम्, **अमरतरु**–कल्पवृक्ष, **कामधेणु**- कामधेनु, **चिंतामणि**–चिंतामणि रत्न, **कामकुंभमादिया**–इच्छा पूर्ति कारी कलश आदि, **सव्वे**–सभी, **वि**–उसके, **दासत्तं**–दासत्व को प्राप्त होते हैं॥6॥

अर्थ–श्री पार्श्वनाथ भगवान् की सेवा का आश्रय कर लेने पर ओम्, कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि रत्न, इच्छापूर्ति करने वाला कलश आदि सभी सुखप्रदाता कारण उस व्यक्ति के दासत्व को प्राप्त हो जाते हैं।

तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ की, सेवा को जो करें ग्रहण।
ॐ कल्पतरू कामधेनु अरु, चिन्तामणि को करें वरण॥
इच्छापूर्ती करने वाले, कलश आदि सुख के साधान।
उस व्यक्ती के दास बनें जो, भाव सहित करते अर्चन॥6॥

उवसग्ग-हरं त्थोतं, कादूणं जेण संघकल्लाणं।
करुणायरेण विहिदं, स भद्रबाहु गुरु जयदु॥7॥

अन्वयार्थ-करुणायरेण–करुणाकर आचार्य, **भद्रबाहु गुरु**–भद्रबाहु स्वामी, **विहिदं**–के द्वारा, **संघ कल्लाणं**–संघ के कल्याण कारण, **उवसग्गहरं त्थोतं**–उपसर्गहर स्तोत्र, **कादूण**–किया गया है, रचा गया है, **जयदु**–वे गुरु भद्रबाहु स्वामी जयवंत हों।

अर्थ–जिन करुणाकर आचार्य भद्रबाहु गुरु के द्वारा संघ का कल्याणकारक यह 'विशद' उपसर्ग हर स्तोत्र निर्मित किया गया है, वे भद्रबाहु सदा जयवन्त हों।

करुणाकर कहलाए हैं जो, भद्रबाहु आचार्य प्रधान।
उनके द्वारा लिखा गया यह, उपसग्गहर स्तोत्र महान॥
है कल्याण कारक संघों का, 'विशद' लोक में मंगलकार।
भद्रबाहु जयवन्त रहें गुरु, जिन पद वन्दन बारम्बार॥7॥

॥ इति उवसग्गहरं ॥

जय पार्श्व जिनेन्द्र शतेन्द्र सुपूजित, मेरू पे सुर न्हवन कराए।
जय पार्श्व जिनेश सुरेश कहे, सुर इन्द्र 'विशद' जयकार लगाए॥
कंकण कुण्डल आदिक सचि ने, रुचि से बालक को पहराए।
जप पार्श्व प्रभो! जय पार्श्व प्रभो!, गृह शांति करें सब दोष नशाए॥

अन्वयार्थकर्त्ता- प. पू. आचार्य
श्री विशद सागर जी महाराज

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

श्री परमेश्वर-स्तोत्र

जगदीश!सुधीश!भवेश!विभो! परमेश! परात्पर पूत पितः।
प्रणतं पतितं हत बुद्धि बलं, जन तारण तारय तापतिकम्॥1॥

अन्वयार्थ- जगदीश!-हे जगत के ईश!, **सुधीश!**-हे श्रेष्ठ बुद्धि वाले!, **भवेश!**-हे भव के ईश!, **विभो!**-हे प्रभो!, **परमेश!**-हे परम ईश!, **परात्पर**-हे परम पावन, **पूत**-हे पवित्र, **पितः**-हे पिता, **जन तारण**-हे! जीवों के निस्तारक, **प्रणतं**-शरणागत, **पतितं**-पतित, **हत बुद्धि बलं**-बुद्धि बल से हीन, **तापतिकम्**-संतप्त दास का **तारय**-आप उद्धार करें।

अर्थ- हे जगदीश! हे सुमतिओं के स्वामी! हे विश्वेश! हे परमेश! हे प्रकृति आदि से अतीत! हे परम पावन! हे पितः, हे जीवों का निस्तार करने वाले। इस शरणागत्, पतित और बुद्धि-बल से हीन संसार में सन्तप्त दास का उद्धार कीजिए।

(विष्णु पद छन्द)

हे जगदीश! सुमति के स्वामी, हे भावेश प्रभो!
हे परमेश! परम पावन हे प्रकृति! अतीत विभो!
पिता परम पावन निस्तारक, इस शरणागत को।
पतित बुद्धि बल हीन तप्त का, प्रभु उद्धार करो॥1॥

गुणहीन सुदीन मलीन मतिं, त्वयि पातरि दातरि चापरतिम्।
तमसा रजसावृत वृत्तिमिमं, जन तारण तारय तापतिकम्॥2॥

अन्वयार्थ- गुणहीन-जो गुणों से हीन, **सुदीन**-अत्यन्त दीन है, **मलीन मतिं**-मलिन मति हैं, **त्वयि**-आप अपने, **पातरि**-रक्षक **च**-और **दातरि**-दाता से **आपरतिम**-पराङ्‌गमुख है, **इमं**-इस संसार में **तापतिकम्**-संतप्त, **तमसा**-तामस, **रजसावृत**-राजस स्वरूप, **वृत्ति**-वृत्ति वाले **जन**-दास का, **तारण**-भव तारक, **तारय**-आप उद्धार करें।

अर्थ-जो सर्वथा गुणहीन,अत्यन्त दीन और मलिनमति हैं तथा अपने रक्षक और दाता आपसे पराङ्‌गमुख हैं, हे जीवों का निस्तार करने वाले!

इस संसार से सन्तप्त उस तामस-राजस वृत्ति वाले दास का आप उद्धार कीजिये। यह मेरी भावना है।

जो गुणहीन अदीन मलिन मति, अपने रक्षक औ।
दाता आपसे रहे पराङ्‌गमुख, जन निस्तारक जो।
इस संसार तप्त उस तामस, राजस वृत्ती को।
दास खड़ा है शरण आपकी, प्रभु उद्धार करो॥2॥

मम जीवन मीनमिमं पतितं, मरु घोर भुवीह सुवीह-महो।
करुणाब्धि चलोर्मिजला नयनं, जन तारण तारय तापतिकम्॥3॥

अन्वयार्थ-जन-जीवों का, **तारण**-निस्तार करने वाले, **इमं**-इस, **घोर**-भयानक, **मरु भुवीह**-मरु भूमि में, **सुवीह पतितं**-बीज रूप पड़े, **तापतिकम**-सन्तप्त दास का, **मम जीवन**-मेरे जीवन रूपी, **मीनम्**-मीन का, **अहो!**-आप अपने, **करुणाब्धि**-करुणा वारिधि की, **चलोर्मि**-चंचल लहरों का, **जला**-जल, **आनयनं**-लाकर, **तारण**-तारक, **तारय**-आप उद्धार करें।

अर्थ-हे जीवों! का निस्तार करने वाले इस भयानक मरुभूमि में पड़कर नितान्त (निश्चेष्ट) हुए मेरे इस अति सन्तप्त जीवनरूप मीन का अपने करुणा वारिधि की चंचल तरंगों का जल लाकर उद्धार कीजिए।

हे जीवों के निस्तारक! इस, मरुभूमी में जो।
पड़कर हुए नितान्त निश्चेष्टक, मेरे जीवन को॥
अति सन्तप्त रूप मछली का, करुणा वारिधि से।
चंचल हुई तरंगों का जल, ले उद्धार करें॥3॥

भव वारण कारण कर्म ततौ, भव सिन्धु जले मम मग्न मतः।
कारुण्य समर्प्य तरि त्वरितं, जन तारण तारय तापतिकम्॥4॥

अन्वयार्थ-भव वारण-संसार से निर्वृत्ति कारक, **कर्म कारण**-कर्म कारण के विस्तार रूप, **भव सिन्धु जले**-संसार समुद्र में डूबे, **मग्न मतः**-मेरा मन मग्न है, **कारुण्य तरि**-करुणा रूपी नौका, **समर्प्य**-(समर्पण) प्रदान करके, **त्वरितं**-शीघ्र ही, **जन**-हे जीवों के, **तापतिकम्**-सन्तप्त दास का **तारण**-तारक, **तारय**-आप उद्धार करें।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अर्थ-अतः हे संसार की निवृत्ति कराने वाले! हे कर्म विस्तार के कारणरूप! हे कल्याणमय! हे जीवों का निस्तार करने वाले! संसार समुद्र के जल में डूबकर सन्तप्त होते हुए इस दास को अपनी करुणारूपी नौका समर्पण करके यहाँ तुरन्त उद्धार कीजिए।

हे संसार! रुचे निवृत्ति कर, कर्म के विस्तारक।
हे कल्याणमयी! जीवों के, हे प्रभु! निस्तारक!॥
इस संसार सिन्धु के जल में, डूब रहें हैं जो।
अपनी करुणा की नौका से, अब उद्धार करो॥4॥

अतिनाश्य जनुर्मम पुण्य रुचे, दुरितौघभरैःपरिपूर्ण भुवः।
सुजघन्य-मगण्यम पुण्यरुचिं, जन तारण तारय तापतिकम्॥5॥

अन्वयार्थ- **पुण्य रुचे**-हे पुण्य रुचि! हे जीवोद्धारक!, **दुरितौघभरैः**-जिसकी पाप राशि के भार से, **भुवापरिपूर्णः**-पृथ्वी परिपूर्ण है, **सुजघन्य**-ऐसे मुझ अधम, **जनुर्मम**-मेरे जन्म को, **अतिनाश्य**-सदा के लिए गिराकर, अत्यन्त **अगण्यम्**- (अगणित) नागण्य, **अपुण्य रुचि**-पाप में रुचि रखने वाले, **जन**-लोगों का, **तापतिकम्**-संसार के दुखों से, **तारण**-तारक, **तारय**-उद्धार करो।

अर्थ-हे पुण्यरुचे! हे जीवोद्धारक! जिसकी पाप राशि के भार से पृथ्वी परिपूर्ण है,ऐसे मुझ नीच के जन्म को सदा के लिये गिराकर मुझ अत्यन्त निन्दनीय, नागण्य, पाप में रुचि रखने वाले और संसार के दुःखों से दुःखित का हे नाथ! उद्धार कीजिए।

पुण्य सुरुचि हे जीवोद्धारक! पाप राशि भारी।
जिससे पृथ्वी पूर्ण है ऐसे, नीच जन्म धारी॥
मुझ अत्यन्त नगण्य निन्दनीय, पाप रुची वाले।
भव दुःखों से दुखित जनों का, दुख हरने वाले॥5॥

भवकारक नारक हारक हे!, भवतारक! पातक दारक हे!
सर्वज्ञ हर किंकर कर्मचयं, जन तारण तारय तापतिकम्॥6॥

अन्वयार्थ- **भव तारक**-हे भव से तारने वाले, **नारक हारक**-नारकीय दुखों को हरने वाले, **हे पातक दारक**-हे पाप समूह को विदारण करने वाले, **सर्वज्ञ**-हे सर्वपदार्थों के ज्ञाता, **किंकर**-इस दास की, **कर्मचयं**-कर्म राशि को, **हरः**-हरण कीजिए, **हे जन तारण!**-हे जीव के निस्तारक, **तापतिकम्**-संसार संतप्त जन का, **तारय**-उद्धार करो।

अर्थ- हे नाथ! हे नारकीय! यंत्रणाओं का अपहरण करने वाले, हे संसार! से उद्धार करने वाले, हे पाप! राशि को विदीर्ण करने वाले, हे सर्वज्ञ! इस दास की कर्म राशि हरण कीजिये और हे जीवों! का निस्तार करने वाले इस संसार से सन्तप्त जन का उद्धार कीजिये।

नाथ! नारकीय सर्व दुखों के, आप हो उपहारी।
हे भव! से उद्धारक पापों, के प्रभु परिहारी॥
हे सर्वज्ञ! दास अपने की कर्म राशि हर लो।
हे जीवों! के निस्तारक, संतप्त को पार करो॥6॥

तृषितश्चिरमस्मि सुधां हितम्, ऽच्युत चिन्मयदेहि वदान्य वरं।
अति मोह वशेन विनष्ट कृतं, जन तारण तारय तापतिकम्॥7॥

अन्वयार्थ- **चिन्मय देहि**-हे चिन्मय! स्वरूप, **ऽच्युत**-हे अच्युत, **वदान्यवरं**-हे उदार चूड़ामणि **सुधां-हितम्**-कल्याण! स्वरूप, **चिरमस्मि**-मैं चिर काल से **तृषितः**-अत्यन्त तृषित हूँ, **अतिमोह वशेन**-मैं अत्यन्त मोह के वश होकर, **विनष्टकृतं**-नष्ट हो रहा, **जन तारण**-हे जीवों के निस्तारक, **तापतिकम्**-संसार में संतप्त जीवों का, **तारय**-उद्धार करो।

अर्थ-हे अच्युत! हे चिन्मय! हे उदार चूड़ामणि! हे कल्याण-स्वरूप! मैं चिर काल से अत्यन्त तृषित हूँ, मुझे ज्ञानरूप अमृत का पान कराइये। मैं अत्यन्त मोह के वशीभूत होकर नष्ट हो रहा हूँ। हे जीवों! का उद्धार करने वाले मुझ संसार सन्तप्त को पार लगाइये।

हे उदार! चूड़ामणि अच्युत! कल्याण रूप चिन्मय।
मैं अत्यन्त तृषित हूँ ज्ञानामृत का दो प्रभु पय॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

मैं अत्यन्त मोह के वश हो, नष्ट हुआ स्वामी॥
मुझ संतप्त को पार करो हे, प्रभु! अन्तर्यामी!॥7॥

प्रणमामि नमामि नमामि भवं, भव जन्म कृति प्रणिदूषनकम्।
योगीन्द्र मनन्त-मितं शरणं, जन तारण तारय तापतिकम्॥8॥

अन्वयार्थ-भव जन्म कृति-संसार में जन्म प्राप्ति के कारण भूत, **प्रणिदूषनकम्**-कर्मों के नाशक आपको, **प्रणमामि**-प्रणाम हो, **नमामि-नमामि**-आपको नमस्कार हो-2, **योगीन्द्रं**-हे योगीन्द्र! **इतंशरणं**-आपकीशरण को प्राप्त हैं, **अनन्तं**-अनन्त, **जन तारण**-जीवों के निस्तारक, **तापतिकम्**-संसार में संतप्त 'विशद' जीवों का, **तारय**-उद्धार करो।

अर्थ-संसार में जन्म प्राप्ति के कारणभूत कर्मों का नाश करने वाले आपको मैं बारम्बार प्रणाम और नमस्कार करता हूँ। हे जीवों! के उद्धार करने वाले! योगीन्द्र जो आपकी 'विशद' शरण को प्राप्त हुए हैं उन संसार सन्तप्त का उद्धार कीजिये।

जन्म प्राप्ति के कारण जग में, कर्म नाशकारी।
बारम्बार प्रणाम आपको, नमस्कार भारी।
हे जीवों! के उद्धारक, योगीन्द्र शरण पाए।
भव संतप्त जीव उद्धारक, 'विशद' चरण आए॥8॥

इंदसह वंदियाणं तिहुअण हिद मधुर विसद वक्काणं।
अंतातीद गुणाणं णमो जिणाणं जिद भवाणं॥1॥

सम्मद्दंशण णाणं चरियं तवो अणंत विरियं च।
पञ्चाचार धराणां णमो विशद गुरु आइरियाणं॥2॥

नमः जिनेशं श्री शांति नाथं, अनन्तसिद्धं सर्वज्ञ देव।
उपसर्ग जेता श्री पार्श्ववीरं, नमो नमः त्व चरणारविन्दं॥3॥

नमो नमः श्री आचार्य देव, प्रज्ञा श्रमण गुरुवर बालयोगी।
आचार धारी आचार दाता, नमो नमः त्व चरणारविन्दं॥4॥

जिनेन्द्र-शरणजिन-स्तोत्र

न ताते न माता न बंधुर्न दाता, न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव, गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका जिनेन्द्रः॥1॥

अन्वयार्थ- जिनेन्द्रः-हे जिनेन्द्र!, **न ताते न माता**-ना पिता ना माता, **न बंधुर्न दाता**-ना बन्धु ना दाता, **न पुत्रो न पुत्री**-ना पुत्र ना पुत्री, **न भृत्यो न भर्ता**-ना नौकर ना स्वामी, **न जाया न विद्या**-ना स्त्री ना विद्या, **वृत्तिर्ममैव**- और वृत्ति यह मेरे नहीं हैं, **त्वमेका**-एक मात्र आप ही मेरी, **गतिस्त्वं गतिस्त्वं**-गति हो, गति हो।

अर्थ- हे वीतराग जिनेन्द्र परमात्मा! पिता, माता, भाई, बन्धु दाता, पुत्र-पुत्री, भृत्य (नौकर), स्वामी, स्त्री, विद्या और वृत्ति-इनमें से कोई भी मेरा नहीं है। हे भगवन्! एक मात्र तुम्हीं मेरी गति हो,तुम्हीं मेरी गति हो।

(विष्णुपद छन्द)

हे जिनेन्द्र! माता पितु भाई, स्वामी ना दाता।
पुत्री पुत्र भृत्य स्त्री सब, स्वारथ का नाता॥
विद्या और वृत्ति ना कोई, मेरा हे स्वामी!।
एक मात्र हो सुगति आप ही, हे अन्तर्यामी!॥1॥

भवाब्धाव-पारे, महादुःख भीरुः, प्रपात प्रकामी प्रलोभी प्रमातः।
कु संसार पाश प्रबद्ध सदाऽहं, गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका जिनेन्द्रः॥2॥

अन्वयार्थ-भवाब्धाव पारे-अपार भव सागर में, **प्रपात**-पड़ा, **महादुःख भीरुः**-महादुखों से भयभीत, **प्रकामी**-अतिकामी, **प्रलोभी**-अतिलोभी, **प्रमातः**-मतवाला, **कु संसार पाश**-खोटे संसार पास के, **प्रबद्ध**-बन्धन में बंधा हूँ, **सदाऽहं**-मैं सदा ही, **जिनेन्द्रः**-हे जिनेन्द्र! **त्वमेका**-एक मात्र आप ही मेरी **गतिस्त्वं गतिस्त्वं**-गति हो गति हो।

अर्थ- मैं अपार भवसागर में पड़ा हूँ, महान् दुःखों से भयभीत हूँ, कामी,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

लोभी, मतवाला तथा घृणायोग्य संसार के बंधनों में बँधा हुआ हूँ। हे भगवान्! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो।

पड़ा हुआ हूँ भव सागर में,है अपार स्वामी।
महादुख से भयभीत हुआ मैं, लोभी हूँ कामी॥
घृणा योग्य मतवाला भव के, बन्धन में स्वामी।
बँधा हुआ जिसमें गति हो तुम, गति अन्तर्यामी॥2॥

न जानामि दानं न च ध्यान योगं, न जानामि तंत्रं न च स्तोत्र मंत्रम्।
न जानामि पूजां न च न्यास योगम्, गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका जिनेन्द्रः॥3॥

अन्वयार्थ- न जानामि दानं-मैं न दान देना जानता हूँ, **न च ध्यान योगं**-ना ध्यान और योग जानता हूँ, **न जानामि तंत्रं न च स्तोत्र मंत्रम्**-ना तंत्र और स्तोत्र मंत्र का ज्ञान है, **न जानामि पूजां न च न्यास योगम्**-पूजा और योग की क्रियाओं से अनभिज्ञ हूँ, **जिनेन्द्र!**-हे भगवान!, **त्वमेका**-एक मात्र आप ही मेरी, **गतिस्त्वं-गतिस्त्वं**-गति हो, गति हो।

अर्थ- मैं न तो दान देना जानता हूँ और ध्यान मार्ग का ही मुझे पता नहीं है। तंत्र और स्तोत्र-मंत्रों का भी मुझे ज्ञान नहीं है। पूजा तथा न्यास आदि की क्रियाओं से तो मैं एकदम कोरा हूँ। हे भगवन्! एक तुम्हीं मेरी गति हो,तुम्हीं मेरी गति हो।

दान नहीं देना मैं जानू, ध्यान योग नामी।
तंत्र स्तोत्र मंत्र ना जानू, हे अन्तर्यामी!॥
पूजा और न्यासादिक की क्रिया नहीं स्वामी।
सुगति आप हो सुगति आप हो मेरी शिवगामी॥3॥

न पुण्यं जानामि न जानामि तीर्थं, न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित्।
न जानामि भक्तिं व्रतं वापि देवः, गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका जिनेन्द्रः॥4॥

अन्वयार्थ-जिनेन्द्रः-हे जिनेन्द्र! **न जानामि पुण्यं**-मैं ना पुण्य जानता हूँ, **न जानामि तीर्थं**-ना तीर्थ जानता हूँ, **ना जानामि मुक्तिं**-ना मुक्ति का ज्ञान है, **लयं वा कदाचित्**-ना लय का पता है, **न जानामि भक्तिं**-ना भक्ति जानता हूँ, **व्रतं वापि देवः**-हे देव! न मैं व्रत जानता हूँ, **जिनेन्द्रः**-हे जिनेन्द्र! **त्वमेकाः**-एक मात्र आप ही मेरी, **गतिस्त्वं-गतिस्त्वं**-गति हो, गति हो।

अर्थ- न पुण्य जानता हूँ, न तीर्थ जानता हूँ, न मुक्ति कुछ का ज्ञान है न लय का पता है। हे जिनेन्द्र परमात्मा! भक्ति और व्रत भी मुझे ज्ञात नहीं है। अब केवल तुम्हीं मेरा सहारा हो, तुम्हीं मेरी गति हो।

नहीं जानता पुण्य नहीं मैं, तीर्थ नहीं स्वामी!।
मुक्ती का ना ज्ञान ना लय का, हे अन्तर्यामी!॥
भक्ती और सुव्रत मुझको कुछ, ज्ञान नहीं स्वामी।
एक सुगति हो आप सुगति हो, हे अन्तर्यामी!॥4॥

कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः, कुलाचार हीनः कदाचार लीनः।
कुदृष्टिः कुवाक्य प्रबन्ध सदाऽहम्, गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका जिनेन्द्रः॥5॥

अन्वयार्थ- सदा अहं-मैं हमेशा, **कुकर्मी**-कुकर्मी, **कुसङ्गी**-कुसंगी, **कुबुद्धिः**-दुर्बुद्धी, **कुदासः**-दुष्ट दास, **कुलाचार हीनः**-कुलाचार हीन, **कदाचार लीनः**-दुराचार में लीन, **कुदृष्टिः**-कुदृष्टिवान, **कुवाक्य प्रबन्ध**-दुर्वचन बोलने वाला, **सदा**-हमेशा रहा, **जिनेन्द्रः**-हे जिनेन्द्र!, **त्वमेका**-एक मात्र आप ही मेरी, **गतिस्त्वं गतिस्त्वं**-गति हो, गति हो।

अर्थ- मैं कुकर्मी, बुरी संगति में रहने वाला, दुर्बुद्धि, दुष्ट दास, कुलोचित सदाचार से हीन, दुराचार परायण, कुत्सित दृष्टि रखने वाला और सदा दुर्वचन बोलने वाला हूँ। हे जिनेन्द्र भगवान्! मुझ अधम की एकमात्र तुम्हीं गति हो, तुम्हीं गति हो।

रहा कुकर्मी खोटी संगति, वान कदाचारी।
दुष्ट दास दुर्बुद्धी हूँ मैं, नहीं कुलाचारी॥
कुत्सित दृष्टी रखने वाला,दुर्वाची स्वामी।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

एक सुगति हो आप सुगति हो हे अन्तर्यामी!॥5॥

प्रजेशं 'रमेशं' महेशं सुरेशं, दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित्।
न जानामि चान्यत् सदाऽहं शरण्ये, गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका जिनेन्द्रः॥6॥

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र!ः- हे जिनेन्द्र! **अहं**-मैं, **प्रजेशं**-ब्रह्मा, **रमेशं**-विष्णु, **महेशं**-शिव, **सुरेशं**-इन्द्र **दिनेशं**-सूर्य, **निशीथेश्वरं**-चन्द्रमा, **वा**-अथवा, **कदाचित्नाचान्यत**-कहीं भी किसी को भी, **ना जानामि**-नहीं जानता, **शरण्ये सदाऽहं**-हे शरण दाता प्रभू, **त्वमेका**-आप ही **गतिस्तवं-गतिस्तवं**-मेरी गति हो, गति हो।

अर्थ- मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य किसी भी मिथ्यादृष्टि देव को नहीं जानता, नहीं मानता। हे शरण देने वाले परमात्मा! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो।

मैं ब्रह्मा विष्णु महेश या, इन्द्र सूर्य कोई।
चन्द्र तथा हो अन्य कोई भी, मिथ्यात्वी सोई॥
नहीं जानता नहीं मानता, रहे कोइ स्वामी।
एक सुगति हो आप सुगति हो, हे अर्न्तयामी!॥6॥

विवादे विषादे प्रमादे प्रदेशे, जले चानले पर्वते शत्रु मध्ये।
अरण्ये शरण्ये सदा मां त्रपाहि, गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका जिनेन्द्रः॥7॥

अन्वयार्थ- जिनेन्द्रः-हे जिनेन्द्र! **विवादे**-आप विवाद में, **विषादे**-विषाद में, **प्रमादे**-प्रमाद में, **प्रदेशे**-परदेश में, **जले**-जल में, **चानले**-अनल में, **पर्वते**-पर्वत में, **शत्रु मध्ये**-शत्रुओं के मध्य, **अरण्ये शरण्ये सदा मां त्रपाहि**-वन तथा शत्रुओं के मध्य आप ही रक्षक हो, **त्वमेका**-एक मात्र आप ही मेरी, **गतिस्त्वं-गतिस्त्वं**-गति हो, गति हो।

अर्थ-हे शरणभूत भगवान्! तुम विवाद, विषाद, प्रमाद, परदेश, जल, अनल, पर्वत, वन तथा शत्रुओं के मध्य में सदा ही मेरी रक्षा करो। हे प्रभु! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, एक तुम्हीं मेरी गति हो।

शरणभूत हे जिन! विवाद या जल विषाद वन में।
अग्नि प्रदेश प्रमाद सुगिरि या शत्रू के दल में॥
रक्षा करो सदा मेरी हे, जिन अन्तर्यामी!।
एक सुगति हो, आप सुगति हो, मुक्ती पथ गामी॥7॥

अनाथो दरिद्रो जरा रोग युक्तो, महा क्षीण दीनः सदा जाड्य वक्त्र।
येयोगीन्द्रसागर प्रभो! दीन हीनं, गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका जिनेन्द्रः॥8॥

अन्वयार्थ-जिनेन्द्र!ः-हे जिनेन्द्र! **अनाथो**-मैं अनाथ हूँ, **दरिद्रो**-दरिद्र हूँ, **जरा रोग युक्तो**-जीर्ण रोगी हूँ, **महा क्षीण दीनः**-अत्यन्त दुर्बल हूँ, **सदा जाड्य वक्त्र**-जड़ प्रलापी हूँ, **प्रभो!**-हे जिन! **दीन हीनं**-दीन हीन, **येयोगीन्द्रसागर**-यह योगीन्द्रसागर आपकी शरण है, **त्वमेका**-एक मात्र आप ही, **गतिस्त्वं गतिस्त्वं**-गति हो, गति हो।

अर्थ- हे परमात्मा! वीतराग सर्वज्ञ प्रभु! मैं सदा से ही अनाथ, दरिद्री, जरा, जीर्ण, रोगी, अत्यन्त दुर्बल, दीनहीन यह योगीन्द्रसागर आपकी शरण है। आप ही एकमात्र 'विशद' शरण व मेरी गति हो, मेरी गति हो।

रहा अनाथ सदा मैं हे जिन! और दरिद्री भी॥
दुर्बल हूँ अत्यन्त प्रभो! मैं, जरा जीर्ण रोगी।
शरण 'विशद' योगीन्द्र सागर ये, दीन हीन स्वामी॥
एक सुगति हो, आप सुगति हो, हे अर्न्तयामी!॥8॥

आपके इशारों पर ही चल रहे हैं हम।
आपके ही विशद रंग में ढल रहे हैं हम।
आपके आशीष की छाँव रहे मेरे सिर पर,
आपकी करुणा के सहारे ही पल रहे हैं हम॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

वैराग्याष्टक

(शिखरणी-छन्द)

गृहे पर्यन्तस्थे द्रविणकणमोषं श्रुतवता,
स्ववेश्मन्यारक्षा क्रियत इति मार्गोऽयमुचितः।
नरानोद्वाद्गेहात् प्रतिदिनं समाकृष्यनयतः,
कृतान्तात् किं शङ्का न हि भवति रजाग्रत जनाः॥1॥

अन्वयार्थ-गृहे पर्यन्तस्थे-गृह पर्यंत पड़ौसी के घर, **द्रविणकणमोषं**-धन चोरी होने की, **श्रुतवता**-बात सुनकर, **स्ववेश्मन्यारक्षा**- निज गृह की रक्षा, **क्रियत**- की जाती है, **इति**- इस प्रकार **मार्गोऽयमुचितः**-यह कार्य उचित ही है, **गेहात् नरानोद्वाद्**-घर-घर में मनुष्यों को, **प्रतिदिनं**-प्रतिदिन **समाकृष्यनयतः**- पकड़कर ले जाते हुए, **कृतान्तात्**-काल से, **किं शङ्का**-क्या शंका, **न हि**- नहीं होती, **जनाः**- हे! मानव, **अजाग्रतभवतिः**- अब जागृत हो जाओ, सावधान हो जाओ।

अर्थ- पड़ौस के घर में चोरी होने की बात सुनकर अपने घर का प्रबन्ध किया जाता है, यह उचित ही है। किन्तु घर-घर से प्रतिदिन मनुष्यों को पकड़कर ले जाते हुए काल से क्या कुछ भी भय नहीं होता? अतएव हे मनुष्य! अब भी सावधान हो जाओ।

(विष्णुपद छन्द)

चोरी की सुनकर पड़ौस में, निज घर में भाई।
करें प्रबन्ध सभी इस जग में, बात उचित गाई।
किन्तू घर-घर से मानव को, प्रतिदिन ले जावे।
काल से क्या कुछ भय नहिं होता? ना सतर्क होवे॥1॥

क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्त कलहः,
क्वचिद्वीणावादः क्वचिदऽपि च हा हेतिरुदितम्।
क्वचिद्रम्यारामा क्वचिदऽपि जराजर्जरतनुर्।
न ज्ञातं (जाने) संसारः किममृतमयः किं विषमयः॥2॥

अन्वयार्थ- संसारः-इस संसार में, **क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी**-कहीं विद्वानों की सभा है, **क्वचिदपि सुरामत्त कलहः**-कहीं मदिरा पाई जीवों का कलह है, **क्वचिद्वीणावादः**-कहीं वीणा वादन का सुर हो रहा है, **क्वचिद्रम्यारामा**-कहीं सुन्दर स्त्रियाँ हैं, **क्वचिदपि जराजर्जरतनुर्**-कहीं **जरा**-जर्जरित शरीर दिखते हैं, **न ज्ञातं (जाने) संसारः**-पता नहीं यह संसार, **किममृतमय**-अमृतमय है या **विषमयः**-विषमय है, अतः छोड़ने योग्य है।

अर्थ- इस संसार में कहीं विद्वानों की सभा है तो कहीं मदिरा पीने वालों का कोलाहल हो रहा है, कहीं वीणा का मधुर स्वर है तो कहीं रोने का हा-हाकार हो रहा है, कहीं सुन्दर स्त्रियाँ हैं तो कहीं जरा-जर्जरित शरीर देखने में आते हैं। नहीं जान पड़ता कि यह संसार अमृतमय है या विषमय इसलिए इसका त्याग करो।

विद्वानों की सभा कहीं है, वीणा ध्वनी कहीं ।
मदिरा पायी का कोलाहल, हा-हा रुदन कहीं।
कहीं रम्य स्त्री दिखती है, जर्जर देह कहीं।
अमृतमय या विषमय है जग, समझ में आए नहीं॥2॥

वपुः कुब्जीभूतः गतिरपि तथा यष्टि शरणा,
विशीर्णा दन्तालिः श्रवण विकलं श्रोत्रयुगलम्।
शिरः शुक्लं चक्षुस्तिमिर पटलैरावृत - महो,
मनो मे निर्लज्जं तदपि विषयेभ्यः स्पृहयति॥3॥

अन्वयार्थ- अहो!-आश्चर्य है, **वपुः कुब्जीभूतः**-यह शरीर कुबड़ा हो गया, **गतिरपि**-चलते समय **तथा**-और, **यष्टि शरणा**-लाठी का सहारा लेना पड़ता है, **विशीर्णा दन्तालिः**-दाँत टूट गये हैं, **श्रवण विकलं श्रोत्रयुगलम**-कर्ण युगल बहरे हो गये हैं, **शिरः शुक्लं**-सिर के बाल श्वेत हो गये हैं, **चक्षुस्तिमिर पटलैरावृतम्**-चक्षु अंधकार समूह से आवृत्त हो गये, **तदपि**-फिर भी, **अहो**-आश्चर्य है **मे निर्लज्जं**-मेरा निर्लज्ज, **मनः**-मन, **विषयेभ्यः**-विषयों की, **स्पृहयति**-इच्छा करता रहता है।

अर्थ- शरीर कुबड़ा हो गया,चलते समय छड़ी टेकनी पड़ती है, दाँत

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

टूट गये हैं, दोंनों कान भी बहरे हो गये, शिर श्वेत हो गया, नेत्र अंधकार समूह से आवृत्त हो गये फिर भी मेरा निर्लज्ज मन विषयों की इच्छा करता है।

चलते हुए छड़ी से टेकें, टूटे दाँत सभी।
कुबड़ी हुई है देह कान भी, बहरे हुए तभी।
श्वेत हुआ सिर अंधकार से, आवृत नेत्र भये।
मन मेरा निर्लज्ज विषय ये, माँगे नये-नये॥3॥

अजानन्दाहात्म्यं पततिशलभो दीप दहने,
समीनोऽप्यज्ञानाद्-वडिशयुत-मश्नाति पिशितम्।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जाल जटिलान्,
नमुंचया कामान्नहो गहनं मोह महिमा॥4॥

अन्वयार्थ-शलभो दीप दहने-पतंगा दीप के दाह स्वरूप को, **अजानन्दाहात्म्यं**-ना जानने के कारण, **पतति**-गिरता है, **समीनोऽप्य**-मीन भी, **अज्ञाना-द्वडिशयुत**-अज्ञानतावश हो, **पिशितम्**-माँस खण्ड को, **अश्नाति**-निगलती है, खाती है, **ऐते**-इस प्रकार, **वयमिह**-हम भी, **विपज्जाल जटिलान्**-विपत्ती समूह से, **विजानन्तोऽप्येते**-ना जानते हुए, **नमुंचया**-छोड़ नहीं पाते, **अहो**-आश्चर्य है, **कामान**-मोह की महिमा, **गहनं**-बड़ी प्रबल है, **मोह**-मोह से जीव दुःख भोगता है।

अर्थ- पतंगा दीपक के दाहकस्वरूप को न जानने के कारण ही उस पर गिरता है, मत्स्य भी अज्ञानतावश ही माँस खण्ड को निगलता है किन्तु हम कामनाओं को विपत्समूह से संकीर्ण जानकर भी उन्हें नहीं त्यागते। अहो! मोह की महिमा भी बड़ी प्रबल ही है, मोह से हमेशा जीव दुःख ही भोगता है।

गिरे पतंगा दीप का दाहक, रूप नहीं जाने।
मछली अज्ञानी हो भागे,माँस खण्ड खाने।
इच्छाएँ आकीर्ण विपति से,जान भी ना छोड़े
मोह की महिमा प्रबल बड़ी है, मोह से मुख मोड़े॥4॥

(शार्दूल विक्रीडित-छन्द)

आदित्यस्यगता गतैरह रहः संक्षीयते जीवतं,
व्यापारैर्बहु कार्यभार गुरुभिः कालो न विज्ञायते।
दृष्ट्वा जन्म जरा विपत्ति मरणं, त्रासं च नोत्पद्यते,
पीत्त्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरामुन्मत्त भूतं जगत्॥5॥

अन्वयार्थ- आदित्यस्यगता गतैरह रहः-सूर्य के उदय और अस्त से, **जीवतं संक्षीयते**-जीवन क्षीण हो रहा है, **बहुव्यापारै**-बहुत प्रकार से, **गुरुभिः**-गुरु (भारी), **कार्यभार**-कार्यभार से, **कालो**-काल, न **विज्ञायते**-जाता हुआ ज्ञात नहीं होता, **जन्म जरा विपत्ति मरणं**-जन्म जरा विपत्ति और मरण को, **दृष्ट्वा**-देखकर भी, जानकर, **त्रासं च**-खेद को भी, **नोत्पद्यते**-उत्पन्न नहीं होता, **जगत्**-यह संसार, **प्रमाद मोहमयीं**-प्रमाद व मोहमयी **मदिरा**-मदिरा **पीत्त्वा**-पीकर, **उन्मत्त भूतं**-उन्मत्त हो रहा है।

अर्थ-सूर्य के उदय और अस्त से जीवन क्षीण हो रहा है, विविध कार्यो के भार से गुरुतर प्रतीत होने वाले, नाना प्रकार के व्यापारों से समय जाता मालूम ही नहीं होता, जन्म, जरा, मरण को देखकर भी खेद को प्राप्त नहीं होता। संसार मोहमयी मदिरा व प्रमादरूपी मदिरा पीकर उन्मत्त हो गया है।

सूर्योदय अरु अस्त से जीवन, क्षीण होय जानो।
विविध कार्य के भार से गुरुतर, हो प्रतीत मानो।
नाना व्यापारों से जाता, ज्ञात नहीं होवे।
मोह प्रमाद की मदिरा पी, उन्मत समय खोवे॥5॥

निः स्वोवष्टि शतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो,
लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वांछति।
चक्रेशः सुरराजतां सुरपतिर्ब्रह्मास्पदं वांछति,
ब्रह्मा शैव पदं शिवो व हरिपदं ह्याशावधिं को गतः॥6॥

अन्वयार्थ- **निः स्वोवष्टि**-निर्धन जिसके पास कुछ नहीं है वह, **शतं**-सौ, **शती**-सौ वाला, **दशशतं**-हजार, **सहस्राधिपो**-हजार वाला, **लक्षं**-लाख, **लक्षेशः**-लाख वाला, **क्षितिपालतां**- पृथ्वीपति, **क्षितिपतिः**-पृथ्वीपति, **चक्रेशतां**-चक्रवर्ती की, **पद चक्रेशः**-चक्रवर्ती, **सुरराजतां**-इन्द्र पद,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

सुरपति-इन्द्र पद वाला, **ब्रह्मास्पदं**-ब्रह्म पद, **वांछति**-की इच्छा करता है, **ब्रह्मा**-ब्रह्मपद वाला, **शैव पदं**-शिवपद, **शिवो**-शिवपद वाला, **व**-और **हरिपदं**-और विष्णु पद की, **ह्याशावधिं**-आशा करता है, **को गतः**-आशा की गति को किसने पार किया है?

अर्थ-जिसके पास कुछ नहीं है वह सौ रुपये चाहता है, सौ वाला हजार, हजार वाला लाख, लाख वाला पृथ्वी का आधिपत्य, पृथ्वीपति चक्रवर्ती होना, चक्रवर्ती इन्द्र पद, इन्द्र ब्रह्म पद, ब्रह्मा शिवपद और शिव विष्णु पद की इच्छा करते हैं। फिर बताओ आशा की सीमा को किसने पार किया है?

जिसके पास नहीं कुछ है वह सौ रुपया चाहे।
सौ वाला हज्जार लाख फिर,राज्य सुपद चाहे।
राजा चक्री इन्द्र ब्रह्म पद, शिव विष्णू पद भी।
आशा की सीमा का किसने, पाया पार कभी॥6॥

जीर्णो एव मनोरथाः स्वहृदये स्यातं जरा यौवनं,
हन्ताङ्गेषु गुणाश्च वन्ध्य फलतां यातागुणज्ञैर्विना।
किंयुक्तं सहसाम्युपैति बलवान् काल कृतान्तोऽक्ष्मी,
ह्याज्ञात स्मर जिनेन्द्राघ्रि युगलं मुक्त्वास्ति नान्यागति॥7॥

अन्वयार्थ- **मनोरथाः**-मनोरथ, **स्वहृदये**-मन में ही, **जीर्णो**-जीर्ण हो गये, **यौवनं**-जवानी, **जरा**- बुढ़ापे में परिणत हो गयी, **हन्ताङ्गेषु**-खेद है, **गुणज्ञैर्विना**-गुणग्राही के बिना, **गुणाश्च**-गुण भी, **वन्ध्य**-निष्फल हो जाते, **अक्ष्मी**-क्षमा न करने वाला, **बलवान् काल**-बलवान कालरूपी, **सहसाम्युपैति**-यम सहसा आ रहा है, **किंयुक्तं**-अब क्या करना चाहिए, **जिनेन्द्राङ्घ्रियुगलं**-जिनेन्द्र प्रभू के चरण युगल को, **मुक्त्वास्ति नान्यागति**-छोड़कर अन्य कोई गति नहीं है।

अर्थ-सभी मनोरथ मन में ही जीर्ण हो गये, यौवन बुढ़ापे में परिणत हो गया। खेद है कि गुणग्राहकों के बिना गुण भी शरीर के अन्दर निष्फल हो गये। क्षमा न करने वाला बलवान् कालरूपी यम सहसा आ रहा है, अब क्या करना चाहिए? हाँ, अब समझ में आया कि जिनेन्द्र परमात्मा के चरणों को छोड़कर अन्य कोई गति नहीं है।

जीर्ण मनोरथ मन में हो गये, यौवन बीत गया।
खेद है गुण ग्राहक बिन गुण भी तन में अफल भया।
अक्षम काल रूप यम सहसा आए-जाए कहाँ।
जिनपद छोड़ अन्य गति कोई ना स्थान यहाँ ॥7॥

आशा नाम नदी मनोरथ जलं, तृष्णा तरङ्गाकुला,
राग ग्राहवती वितर्क विहगा धैर्य द्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुङ्ग् चिन्ता तरी,
तस्याः पारगता विशुद्ध मनसो नन्दंति योगीश्वराः॥8॥

अन्वयार्थ-आशा नाम नदी-आशा नाम की नदी है, **मनोरथ जलं**-मनोरथ रूप जल, **तृष्णा तरङ्गाकुला**-तृष्णारूप तरंगों से युक्त हैं, **राग ग्राहवती**-रागरूप ग्रह से युक्त है, **वितर्क**-संकल्प-विकल्प, **विहगा**-पक्षी हैं, **धैर्य द्रुमध्वंसिनी**-धैर्यरूप तटों के वृक्ष को उखाड़ने वाली है, **मोहावर्त**-मोह के भँवरे हैं, **सुदुस्तरातिगहना**-अति गम्भीर और दुरस्त, **प्रोत्तुङ्ग् चिन्ता तरी**-चिंतारूपी ऊँची-ऊँची करारें हैं, **तस्याः**-उसके, **पारगता**-उस पार गये, **विशुद्ध मनसो**-विशुद्ध चित्त वाले, **योगीश्वराः**- योगीश्वर, **नन्दंति**-'विशद' आनन्दित होते हैं।

अर्थ-आशा नाम की नदी विशाल है, जिसमें मनोरथ रूपी जल की तृष्णारूपी तरंगें हैं, रागरूपी ग्रह है, संकल्प-विकल्प रूपी पक्षी हैं और जो धैर्यरूपी तट के वृक्ष को उखाड़ देने वाली है तथा जिसकी अति गम्भीर और दुरस्त मोहरूपी भँवरे हैं तथा जिसके चिंतारूपी ऊँची-ऊँची करारे हैं, उसके उस पार गये हुए विशुद्ध चित्त योगीश्वर भी ''विशद'' आनन्दित होते हैं।

आशा नदी मनोरथ जल मय, तृष्णा रूप तरंगोंवान।
तृष्णा लहरें राग रूप ग्रह, धैर्य तरू विध्वंशी जान।
दुस्तर गहन मोह भँवरों युत, चिंता उच्च करारें धार।
शुद्ध चित्त धारी योगीश्वर, आनन्दित हैं पाए पार॥8॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

आचार्य श्री भद्रबाहु रचित नवग्रह शांति स्तोत्रम्

प्रातःकाल श्री भद्रबाहु कृत नवग्रह स्तोत्र का पाठ करने से क्रूरग्रह अपना असर नहीं करते। किसी ग्रह के असर होने पर 27 दिन तक प्रतिदिन 21 बार पाठ करने से अवश्य शान्ति होगी।

जगद्गुरुं नमस्कृत्य, श्रुत्त्वा सद्गुरुभाषितै।
ग्रहशांतिं प्रवक्ष्यामि, लोकानां सुखहेतवे।।1।।

अन्वयार्थ-जगद्गुरुं-तीन लोक के नाथ को, **नमस्कृत्य**-नमस्कार करके, **सद्गुरुभाषितै**-सद्गुरुओं के द्वारा कहा गया, **श्रुत्त्वा**-गुरु वाणी सुनकर, **लोकानां**-लोक में, **सुख हेतवे**-सुख के लिए, **ग्रहशांतिं**-नवग्रह शांति स्तोत्र, **प्रवक्ष्यामि**-कहूँगा।

अर्थ-तीन लोक के अर्थात् ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक के नाथ को नमस्कार करके, सद्गुरुओं के द्वारा कहा गया, लोक में सुख के लिए, नवग्रहों की शांति के लिए मैं आचार्य भद्रबाहु स्वामी नवग्रह शांति स्तोत्र का कथन करूँगा।

जगत गुरु को नमस्कार मम्, सद्गुरु भाषित जैनागम्।
ग्रहशांती के हेतु कहूँ मैं, सर्व लोक सुख का साधन।।1।।

जिनेन्द्राः खेचरा ज्ञेया, पूजनीया विधिक्रमात्।
पुष्पैर्विलेपनैर्धूपैर्, नैवेद्यैस्तुष्टि हेतवे।।2।।

अन्वयार्थ-खेचरा-आकाश स्थित, **जिनेन्द्राः**-जिनेन्द्र बिम्ब, **ज्ञेयः**-जाने गये हैं, **विधि क्रमात**-विधि पूर्वक, **पुष्पै**-पुष्प, **विलेपन**-केसर लेपन, **नैवेद्यैः**-नैवेद्य, **धूप**-धूप से तुष्टि हेतवे-आत्मशांति के लिए, **विधिक्रमात्**-विधि के क्रम से, **पूजनीया**-पूजा करता हूँ।

अर्थ-जिनेन्द्र देव के बिंब आकाश में स्थित जाने गये हैं, उनकी भक्ति के लिए मैं भद्रबाहु स्वामी पुष्प, केसर, नैवेद्य, धूप से विधिपूर्वक आत्मशांति के लिए पूजन करता हूँ।

नभ में अधर जिनालय में जिन, बिम्बों को शत् बार नमन्।
पुष्प विलेपन सुचरु धूप युत, करता हूँ विधि से पूजन।।2।।

पद्मप्रभस्य मार्तण्डश्चन्द्रश्चन्द्रप्रभस्य च।
वासुपूज्यस्य भूपुत्रो, बुधश्चाष्टजिनेशिनां।।3।।

अन्वयार्थ-मार्तण्डश्-सूर्यग्रह, **पद्मप्रभस्य**-पद्मप्रभु को, **चन्द्रस्य**-चन्द्रग्रह, **चन्द्रप्रभस्य**-चन्द्रप्रभ को, **भूपुत्रो**-मंगल गृह, **वासुपूज्य**-वासुपूज्य को, **च**-और, **बुधः**-बुधग्रह, **अष्टजिनेशिनां**-अष्ट जिनेन्द्र को।

अर्थ-पद्मप्रभु भगवान को सूर्यग्रह की शांति के लिए, चन्द्रप्रभू भगवान को चन्द्रग्रह की शांति के लिए, वासुपूज्य भगवान को मंगलग्रह की शांति के लिए और अष्ट जिनेन्द्र भगवान को बुध ग्रह की शांति के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

रवि अरिष्ट ग्रह होय निवारण,पद्म प्रभु के अर्चन से।
चन्द्र भौम ग्रह चन्द्र प्रभू अरु, वासुपूज्य के वन्दन से।।3।।

विमलानन्तधर्मेश-शांतिकुन्थ्वरहनमि।
वर्द्धमानजिनेन्द्राणां, पादपद्मं बुधो नमेत्।।4।।

अन्वयार्थ-विमलानन्तधर्मेश शांतिकुन्थ्वरहनमि-विमल, अनन्त, धर्म, शांति कुन्थु, अरह, नमि और **वर्धमान जिनेन्द्रणां**-वर्धमान स्वामी **पादपद्मं**-के पाद पद्म में, **बुधो**-बुधग्रह, **नमेत्**-नमन् करते हैं।

अर्थ- आचार्य भगवन् कहते है कि बुधग्रह की शांति के लिए विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ, नमिनाथ और वर्धमान के श्री चरणों में नमस्कार करते हैं।

बुध ग्रह अरिष्ट निवारक वसु जिन, विमलानन्त धर्म जिनदेव।
शांति कुन्थु नमि वर्द्धमान जिन, के चरणों में नमन सदैव।।4।।

ऋषभाजितसुपार्श्वाः, साभिनन्दनशीतलौ।
सुमतिः सम्भवस्वामी श्रेयांसेषु बृहस्पतिः।।5।।

अन्वयार्थ-बृहस्पतिः-गुरु ग्रह की शांति के लिए, **अहं**-मैं,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

ऋषभाजितसुपार्श्वाः साभिनन्दनशीतलौ सुमतिः सम्भवस्वामी श्रेयांसेषु–ऋषभ अजित सुपार्श्वनाथ सहित अभिनन्दन शीतलनाथ सुमतिनाथ सम्भवनाथ एवं श्रेयांसनाथ के पद में झुकता हूँ।

अर्थ– आचार्य भगवन् कहते हैं कि गुरुग्रह की शांति के लिए आदिनाथ, अजितनाथ, सुपार्श्वनाथ, अभिनंदननाथ, सुमितनाथ, संभवनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, भगवान के श्री चरण कमल में माथ झुकाता हूँ।

गुरु ग्रह की शांती हेतू हम, वृषभाजित सुपार्श्व जिनराज।
अभिनन्दन शीतल श्रेयांस जिन, सम्भव सुमति पूजते आज॥5॥

सुविधिः कथितः शुक्रे, सुव्रतश्च शनैश्चरै।
नेमिनाथो भवेद्राहोः, केतुः श्रीमल्लिपार्श्वयोः॥6॥

अन्वयार्थ– **शुक्रे**-शुक्रग्रह, **सुविधिः**-पुष्पदन्त, **च**-और, **शनैश्चरै**- शनिग्रह, **सुव्रतः**-मुनिसुव्रत, **राहो**-राहूग्रह, **नेमिनाथो**-नेमिनाथ के, **केतुः**-केतु ग्रह, **जिनान्**-जिनेन्द्र **श्रीमल्लिपार्श्वयो**-मल्लिपार्श्व को, **नमेत**-नमता है।

अर्थ– आचार्य भगवन् कहते हैं कि शुक्रग्रह की शांति के लिए पुष्पदन्त भगवान को, शनि ग्रह की शांति के लिए मुनिसुव्रतनाथ भगवान को, राहु ग्रह की शांति के लिये नेमिनाथ भगवान को और केतु ग्रह की शांति लिए मल्लिनाथ और पारसनाथ को नमस्कार करता हूँ।

शुक्र अरिष्ट निवारक जिनवर, पुष्पदंत के गुण गाते।
शनिग्रह की शांती हेतू प्रभु, मुनिसुव्रत को हम ध्याते।
राहू ग्रह की शांति हेतु प्रभु, नेमि का ध्यान करें।
केतू ग्रह की शांति हेतु प्रभु, मल्लि पार्श्व गुणगान करें।6॥

जन्मलग्नं च राशिं च, यदि पीडयन्ति खेचराः।
तदा संपूजयेद् धीमान्-खेचरान् सह तान् जिनान्॥7॥

अन्वयार्थ-**जन्मलग्नं**-जन्मलग्न में, **च**-और, **राशिं च**-अथवा राशि में, **खेचरा**-आकाश के ग्रह, **यदि पीडयन्ति**-पीड़ित करें, **तदा**-तव, **धीमान्**-बुद्धिमान जन, **खेचरान् सह**-ग्रहों में स्थित जिनेन्द्र **तान**-उन, **जिनान्**-जिनेन्द्र! को, **संपूजयेत्**-पूजा करें।

अर्थ-आचार्य भगवन् कहते हैं कि आकाश में ग्रह स्थित है जो जन्मलग्न, राशि में, यदि पीड़ित करके दुखी करते है किंतु बुद्धिमान जन इन ग्रहों की उनमें स्थित जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ।

जन्म लग्न राशी के संग ग्रह, प्राणी को पीड़ित करते।
बुद्धिमान ग्रह नाशक जिनकी, अर्चा कर पीड़ा हरते॥7॥

भद्रबाहुगुरुर्वाग्मी, पंचमः श्रुतकेवली।
विद्याप्रसादतः पूर्वं ग्रहशांतिविधिः कृता॥8॥

अन्वयार्थ-**पूर्वं**-पूर्व में कहीं गई, **ग्रहशांतिविधि**-ग्रहशांति की विधि, **श्रुतकेवली**-श्रुतकेवली, **भद्रबाहुगुरु**-गुरु भद्रबाहु स्वामी द्वारा, **वाग्मी**-बोली गयी, **विद्याप्रसादतः**-विद्या के प्रसाद से, **कृता**-की गई है (रची गई है)।

अर्थ– ग्रह शांति की विधि जो पहले श्रुतकेवली गुरु भद्रबाहु स्वामी द्वारा बोली गयी है वह विद्या के प्रसाद से रची गई है।

पंचम युग के श्रुत केवली, अन्तिम भद्रबाहु मुनिराज।
नवग्रह शांति सु विधि दाता पद, 'विशद' वन्दना करते आज॥8॥

यः पठेत् प्रातरुत्थाय, शुचिर्भूत्त्वा समाहितः।
विपत्तितो भवेच्छांतिः क्षेमं तस्य पदे पदे॥9॥

अन्वयार्थ– **यः**-जो, **प्रातरुत्थाय**-प्रातः उठकर, **शुचिर्भूत्त्वा**-शुद्धी पूर्वक, **समाहिता**-यह पाठ पढ़ता है, **विपत्तितो**-विपति में शांति पाता है, **तस्य**-उसको, **पदे-पदे**-पद-पद पर, **क्षेमं**-कुशलता प्राप्त होती है।

अर्थ– जो जीव प्रातः उठकर शुद्धीपूर्वक इस पाठ को पढता है वह विपत्ति में शंति पाता है और पग-पग पर कुशलता को प्राप्त करता हुआ 'विशद' सुख का अनुभव करता है।

दोहा– प्रातः उठकर भाव से, पाठ करें जो लोग।
पग-पग पर हो कुशलता, मिले शांति का योग॥

वृहद्स्वयम्भू-स्तोत्रम्

श्री ऋषभजिन-स्तवनम्

(वंशस्थ छन्दः)

स्वयम्भुवा भूत-हितेन भूतले, समञ्ज-सज्ञान-विभूति-चक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः, क्षपा-करेणेव गुणोत्करैः करैः।।१।।

अन्वयार्थः-(स्वयम्भुवा) जो अनेक उपदेश के बिना दीक्षित हुये थे, **(भूतहितेन)** भव्य जीवों के लिये हित करने वाले थे, **(समञ्जसज्ञान)** सम्यग्ज्ञान के **(विभूति)** वैभवरूपी **(चक्षुषा)** नेत्र से युक्त थे तथा **(येन)** जो **(भूतले)** पृथ्वीतल पर **(गुणोत्करैः करैः)** गुणों से युक्त किरणों के द्वारा **(तमः)** अन्धकार को **(विधुन्वता)** नष्ट करते हुए **(क्षपाकरेणेव)** चन्द्रमा के समान **(विराजितम्)** सुशोभित होते थे।

भावार्थ- जो स्वयंभू थे, दूसरे के उपदेश के बिना मोक्षमार्ग को जानकर तथा उस रूप आचरण कर, अनन्तचतुष्टय स्वरूप हुये थे। प्राणियों के लिए हितकारक थे। सम्यग्ज्ञान की विभूति रूप नेत्र से युक्त थे और स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति में कारणभूत गुणों के समूह से युक्त, वचनों के द्वारा ज्ञानावरणादि कर्म रूप अज्ञान को नष्ट करते हुए जो पृथ्वीतल पर अर्थ प्रकाशकत्व आदि गुणों से युक्त किरणों के द्वारा अंधकार को नष्ट करते हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित होते थे।

सत्त्व हितैषी स्वयंभूत है, जिनका नेत्र समंजस ज्ञान।
वस्तु तत्त्व के निर्णायक शुभ, जिस विभूति से हैं अम्लान॥
अन्धकार नाशी किरणों युत, जैसे सोहे निशि में चन्द।
गुण समूह युत उसके जैसा, सदा विराजित वसुधानन्द॥1॥

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषूः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्ध-तत्त्वःपुनरद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः।।२।।

अन्वयार्थ-(यः) जो **(प्रजापतिः)** प्रजा-जनता के स्वामी थे। जिन्होंने **(प्रथमं)** कर्मभूमि के प्रारम्भ में **(प्रबुद्धतत्त्वः)** लोगों के कर्म तथा उनके फलों को जानकर **(जिजीविषुः)** जीवित रहने की इच्छुक

(प्रजाः) जनता को **(कृष्यादिषु)** खेती आदि **(कर्मसु)** कार्यों में **(शशास)** शिक्षित किया था और **(पुनः)** फिर **(प्रबुद्धतत्त्वः)** हेय-उपादेय तत्त्व को अच्छी तरह जानकर **(अद्भुतोदयः)** आश्चर्यकारी वैभव को प्राप्त होते हुये जो **(ममत्वतः)** परिग्रह विषयक आसक्ति से **(निर्विविदे)** विरक्त हो गये थे तथा जो **(विदांवरः)** श्रेष्ठ ज्ञानी थे।

भावार्थ- जो तीन लोक की समस्त जनता के स्वामी थे, जिन्होंने कर्म भूमि के प्रारंभ में मति श्रुत और अवधिज्ञान के द्वारा लोगों के कर्म तथा उनके फलों को जानकर जीवित रहने की इच्छुक जनता को खेती आदि आजीविका के उपयोगी छह कार्यों में शिक्षित किया था और फिर हेय-उपादेय तत्त्व को अच्छी तरह जानकर इन्द्र आदि के द्वारा की हुई आश्चर्यकारी विशिष्ट विभूति को प्राप्त होते हुए जो ममता भाव से परिग्रह विषयक आसक्ति से विरक्त हो गये थे तथा इन सब कारणों से जो श्रेष्ठ ज्ञानी हुए थे।

कृषि आदिक का प्रजा जनों को, दिया जीविकोचित उपदेश।
अतः आप कहलाए जग में, प्रथम प्रजा स्वामी परमेश॥
तत्त्व बोध को पाने वाले, अद्भुत उदयी हे धी मान!।
त्याग ममत्व हुए वैरागी, पाए उज्ज्वल केवल ज्ञान॥2॥

विहाय यः सागर-वारि-वाससं, वधूमिवेमां वसुधा-वधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकु-कुलादि-रात्मवान्, प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णु-रच्युतः।।३।।

अन्वयार्थः-(यः) जो **(मुमुक्षुः)** मोक्षके इच्छुक थे, **(आत्मवान्)** जितेन्द्रिय थे, **(प्रभुः)** सामर्थ्यवान् अथवा स्वतन्त्र थे, **(सहिष्णुः)** परीषह आदि की बाधाओं को सहन करने वाले थे, **(अच्युतः)** अपने व्रतों में दृढ थे, **(इक्ष्वाकुकुलादि)** इक्ष्वाकुकुल में सर्वप्रथम थे और जिन्होंने **(सतीम)** पतिव्रता **(इमाम्)** इस **(सागर)** समुद्र के **(वारि)** जल रूप **(वाससम्)** वस्त्र को धारण करने वाली **(वसुधा)** पृथ्वीरूपी **(वधूम्)** स्त्री को **(सती)** पतिव्रता **(वधूमिव)** स्त्री के समान **(विहाय)** छोड़कर **(प्रवव्राज)** दीक्षा धारण की थी।

भावार्थ- जो मोक्ष के अभिलाषी अथवा संसार समुद्र से पार उतरने के

इच्छुक थे, जितेन्द्रिय थे, सामर्थ्यवान् अथवा स्वतन्त्र थे, परीषह आदि की बाधाओं को सहन करने वाले थे गृहीतव्रत से अविचलित रहने वाले थे। इक्ष्वाकुकुल अथवा समस्त राजवंशों में आदिपुरुष थे और जिन्होंने किसी अन्य राजा के द्वारा अमुक्त होने से पतिव्रता इस समुद्र के जल रूप वस्त्र को धारण करने वाली-समुद्रान्त धनधान्य से परिपूर्ण पृथ्वी रूपी स्त्री को पतिव्रता स्त्री के समान छोड़कर दीक्षा धारण की थी।

जिन इक्ष्वाकू कुलाग्रणी ने, किया बन्धु जन का ज्यों त्याग।
सागर वसना वसुधा का भी, त्याग किए हैं त्यों अनुराग॥
सहनशील वे अच्युत जिनवर, दीक्षा ले सन्यास लिए।
आत्मभाव उन शिवगामी को, सभी पुनीत प्रशस्त किए॥3॥

स्व-दोष-मूलं स्व-समाधि-तेजसा, निनाय यो निर्दय-भस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा, बभूव च ब्रह्म-पदा-मृतेश्वरः।।४।।

अन्वयार्थः-(**यः**) जिन्होंने (**स्वदोषमूलम्**) अपने समस्त दोषों के मूल कारण को अर्थात् घातिया कर्मों को (**स्वसमाधितेजसा**) निर्विकल्प समाधि के द्वारा-परमशुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा (**निर्दय**) निर्दयतापूर्वक (**भस्मसात्क्रियाम्**) समूल नष्ट (**निनाय**) कर दिया था तथा जिन्होंने (**अर्थिने**) तत्त्वज्ञान के इच्छुक (**जगते**) जीवों के लिये (**अञ्जसा**) यथार्थ (**तत्त्वं**) जीवादि तत्त्वों का स्वरूप (**जगाद**) कहा (**च**) और अन्त में जो (**ब्रह्मपदामृतेश्वरः**) मोक्षस्थान के अविनाशी-अनन्त सुख के स्वामी (**बभूव**) हुए।

भावार्थ-जिन्होंने अपने काम क्रोध आदि समस्त दोषों के मूल कारण चार घातिया कर्मों को परमशुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा निर्दयता पूर्वक भस्मभाव को प्राप्त कराया है-समूल नष्ट कर दिया तथा जिन्होंने तत्त्वज्ञान के अभिलाषी प्राणिसमूह के लिए वास्तविक जीवादि तत्त्वों का स्वरूप कहा और अंत में जो मोक्षस्थान के 'विशद' अविनाशी अनंतसुख के स्वामी हुए॥

ज्वाला में झौंके समाधि की, निज दोषों के कारण सर्व।
जलकर भस्म हुए जो निर्मम, कर्म निषेक सभी निर्गर्व॥

जिज्ञासू जीवों के जग में दिए, तत्त्व का जो उपदेश।
हुए दयामय आप स्वयं ही, परम ब्रह्मधारी सर्वेश॥4॥

स विश्व-चक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां, समग्र-विद्याऽऽत्म-वपुर्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो, जिनोऽजित-क्षुल्लक-वादि-शासनः।।५।।

अन्वयार्थः-(**विश्वचक्षुः**) जिनके केवलज्ञान रूपी नेत्र समस्त पदार्थों को विषय करने वाले हैं, जो (**सताम्**) इन्द्र आदि सत्पुरुषों से (**अर्चितः**) पूजित हैं, (**समग्रविद्यात्मवपुः**) समस्त पदार्थों को विषय करनेवाली बुद्धि ही जिनकी आत्मा का स्वरूप है, (**निरञ्जनः**) जो निर्मल हैं, (**नाभिनन्दनः**) जो नाभिराज के पुत्र हैं, (**जिनः**) कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं और (**जितक्षुल्लकवादिशासनः**) जिन्होंने क्षुद्रवासियों के शासन को जीत लिया है अथवा (**अजितक्षुल्लकवादिशासनः**) जिनका शासन क्षुद्रवासियों के द्वारा नहीं जीता जा सका है (**सः**) वे (**वृषभः**) वृषभनाथ भगवान् (**मम**) मेरे (**चेतः**) चित्त को (**पुनातु**) पवित्र करें।

भावार्थ-जिनका केवलज्ञान रूपी चक्षु समस्त पदार्थों को विषय करने वाला है, जो इन्द्र आदि सत्पुरुषों के द्वारा पूजित हैं, जीवाजीवादि समस्त पदार्थों को विषय करने वाली बुद्धि ही जिनकी आत्मा का स्वरूप है, ज्ञानावरणादि कर्ममल से रहित होने के कारण जो निर्मल हैं, चौदहवें कुलकर नाभिराज के पुत्र हैं, कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं और जिन्होंने क्षुद्र वादियों के शासन को जीत लिया है अथवा जिनका शासन क्षुद्र वादियों के द्वारा नहीं जीता जा सका है, वे धर्म से सुशोभित रहने वाले अथवा धर्म को सुशोभित करने वाले वृषभनाथ भगवान मेरे चित्त को पवित्र करें-रागादि विकारी भावों से रहित कर निर्मल बनावें।

विश्व नेत्र हे वृष के कर्त्ता!, सत्पुरुषों में पूज्य प्रधान।
विविधामय तन के धारी प्रभु, परम निरंजन हे भगवान!॥
क्षुद्र वादियों के शासन का, विजयी जिनका है सद्ज्ञान।
करें नाभिनन्दन वे मेरा, चित्त पुनीत "विशद" अम्लान॥5॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

श्री अजितजिन-स्तवनम्

(उपजाति छन्द)

यस्य प्रभावात् त्रिदिवच्युतस्य, क्रीडास्वपि क्षीवमुखारविन्दः।
अजेय-शक्तिर्भुवि बन्धुवर्गश्-चकार नामाऽजित इत्यबंध्यम्।।६।।

अन्वयार्थः- (**त्रिदिवच्युतस्य**) स्वर्ग से अवतरित हुए (**यस्य**) जिनके (**प्रभावात**) प्रभाव से (**तस्य**) उनका (**बन्धुवर्गः**) कुटुम्बी समूह (**क्रीडास्वपि**) बालक्रीडाओं में भी (**क्षीवमुखारविन्दः**) हर्षोन्मत्तमुख कमल से युक्त हो जाता था तथा (**यस्य प्रभावात्**) जिनके प्रभाव से (**सः बन्धुवर्गः**) वह कुटुम्बी समूह (**भुवि**) पृथ्वी पर (**अजेयशक्तिः**) जिसको कोई जीत नहीं पाता हो ऐसी शक्ति को धारण करते थे और इसलिए उस कुटुम्बी समूह ने (**यस्य**) जिनका (**अजितः**) अजित (**इति**) यह (**अबन्ध्यम्**) सार्थक (**नाम**) नाम (**चकार**) रखा था।

भावार्थ- स्वर्ग से अवतीर्ण हुए जिनके प्रभाव से उनका कुटुम्बी समूह बालक्रीड़ाओं में भी हर्षोन्मत्तमुख कमल से युक्त हो जाता था तथा जिनके प्रभाव से वह बन्धु वर्ग पृथ्वी पर अजेय शक्ति का धारक रहता था। इसीलिए उस बन्धुवर्ग ने जिनका अजित यह सार्थक नाम रखा था।

जिन स्वामी का स्वर्ग समागत, क्रीड़ाओं में देख प्रभाव।
मुख पर तत्क्षण बन्धु वर्ग के, आ जाता है विस्मय भाव॥
जिनकी शक्ति अजेय जानकर, अजितनाथ अन्वर्थक नाम।
बाल्यकाल में दिया भाव से, बन्धु वर्ग ने सौम्य ललाम॥6॥

अद्यापि यस्याऽजितशासनस्य, सतां प्रणेतुः प्रतिमंगलार्थम।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं, स्वसिद्धि-कामेन जनेन लोके।।७।।

अन्वयार्थः-(**अजितशासनस्य**) पर वादियों-अन्य मतवालों के द्वारा अविजित अनेकान्तमत से युक्त तथा (**सतां प्रणेतु**) सत्पुरुषों के प्रधान नायक (**यस्य**) जिन अजितनाथ भगवान् का (**परं पवित्रं**) अत्यन्त पवित्र (**नाम**) नाम (**अद्यापि**) आज भी (**स्वसिद्धिकामेन**) अपने मनोरथों की सिद्धि के इच्छुक (**जनेन**) जनसमूह के द्वारा (**प्रतिमंगलार्थम्**) प्रत्येक मंगल के लिये (**प्रगृह्यते**) सादर ग्रहण किया जाता है।

भावार्थ- पर वादियों के द्वारा अविजित अनेकांतमत से युक्त तथा सत्पुरुषों के प्रधान नायक जिन अजितनाथ भगवान का अत्यंत पवित्र नाम आज भी अपने मनोरथों की सिद्धि के इच्छुक जन समूह के द्वारा प्रत्येक मङ्गल के लिए सादर ग्रहण किया जाता है।

अपने मन में जिन जीवों की, सिद्धि कामना करे निवास।
उन प्रभु का आलम्बन है शुभ, करने वाला दिव्य प्रकाश॥
मंगलमय है नाम आपका, परम पवित्र चित्रपुट पेय।
नेता हैं जो भव्यजनों के जिनका शासन रहा अजेय॥7॥

यः प्रादुरासीत् प्रभु-शक्ति-भूम्ना, भव्याऽऽ शयालीन-कलंक-शान्त्यै।
महामुनिर्मुक्त-घनोपदेहो, यथाऽरविन्दाभ्युदयाय भास्वान्।।८।।

अन्वयार्थः-(**मुक्तघनोपदेहः**) कर्म रूप सघन आवरण से रहित (**यः**) जो (**महामुनिः**) गणधरादि देवों में प्रधान ऐसे अजितनाथ भगवान् (**भव्याशयालीन**) भव्यजनों के हृदय में संलग्न (**कलंकशान्त्यै**) कर्म रूप कलंक की शान्ति के लिये (**प्रभुशक्तिभूम्ना**) जगत् का उपकार करने में समर्थ वाणी के माहात्म्य से (**तथा प्रादुरासीत्**) उस तरह प्रकट हुए थे (**यथा**) जिस तरह कि (**मुक्तघनोपदेहः**) मेघरूप आच्छादन से मुक्त सूर्य (**अरविन्दाभ्युदयाय**) कमलों के विकास रूप अभ्युदय के लिये प्रकट होता है।

भावार्थ- ज्ञानावरणादि कर्म रूप सघन आवरण से रहित जो गणधरादि देवों में प्रधान अथवा प्रत्यक्षज्ञानी अजितनाथ भगवान् भव्यजनों के हृदय में संलग्न अज्ञान अथवा उसके कारणभूत ज्ञानावरणादि कर्म रूप कलङ्क की शांति के लिए जगत का उपकार करने में समर्थ वाणी के माहात्म्य विशेष अथवा प्रभुत्व शक्ति की प्रचुरता से उस तरह प्रकट हुए थे जिस तरह कि मेघरूप आच्छादन से मुक्त सूर्य कमलों के विकास रूप अभ्युदय के लिए प्रकट होता है।

मेघ पटल से होकर जैसे, प्रकट होय रवि बिम्ब महान।
कर देता अरविन्द वृन्द को, वैभव और विकाश प्रदान॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भव्यों के मन का कलंक जो, करने हेतू अति उद्धार।
महा शक्ति के धारी प्रगटे, अजितेश्वर जग में आधार॥8॥

येन प्रणीतं पृथु धर्म-तीर्थं, ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गांगं ह्रदं चन्दन-पंक-शीतं, गज-प्रवेका इव घर्म-तप्ताः।।६।।

अन्वार्थः-(येन) जिन अजितनाथ भगवान् के द्वारा **(प्रणीतं)** प्रकाशित धर्म के प्रतिपादक श्रुत को **(प्राप्य)** पाकर **(जनाः)** भव्यजीव **(दुःखं)** संसारपरिभ्रमणरूप क्लेश को उस तरह **(जयन्ति)** जीत लेते हैं जिस तरह कि **(घर्मतप्ताः)** सूर्य के आताप से पीड़ित **(गजप्रवेकाः)** बड़े-बड़े हाथी **(चन्दनपंकशीतं)** चन्दन के द्रव के समान शीतल **(गांगं ह्रदं)** नदी के ह्रद-'अगाध जल को पाकर सूर्य के संताप से उत्पन्न दुःख को जीत लेते हैं।

भावार्थ- जिन अजितनाथ भगवन् के द्वारा प्रकाशित अत्यन्त विस्तृत एवं श्रेष्ठ धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म के प्रतिपादक श्रुत को पाकर भव्यजीव संसार परिभ्रमण रूप क्लेश को उस तरह जीत लेते हैं जिस तरह कि सूर्य के आताप से पीड़ित बड़े बड़े हाथी चन्दन के द्रव के समान शीतल गंगा नदी के द्रह अगाध जल को पाकर सूर्य के संताप से उत्पन्न दुःख को जीत लेते हैं।

जिन स्वामी ने किया प्ररूपित, धर्म तीर्थ अतिदिव्य ललाम।
करते जो अवगाहन उसमें, वे पाते दुख से विश्राम॥
तीक्ष्ण ताप से ज्यों निदाघ के, क्लेशित होके वन गज वृन्द।
अवगाहन शीतल गंगा के, जल में पाते हैं आनन्द॥9॥

स ब्रह्मनिष्ठः सम-मित्र-शत्रु-र्विद्या-विनिर्वान्त-कषाय दोषः।
लब्धात्मलक्ष्मी-रजितोऽजितात्मा, जिनः-श्रियं मे भगवान् विधत्ताम्।।१०।।

अन्वयार्थः-(विद्याविनिर्वान्तकषायदोषः) जिन्होंने परमागम के ज्ञान और उसमें प्रतिपादित मोक्षमार्ग के अनुष्ठान रूप विद्या के द्वारा कषाय रूपी दोषों को बिल्कुल नष्ट कर दिया है, जो **(ब्रह्मनिष्ठः)** शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हैं, **(सममित्रशत्रुः)** जिन्हें मित्र और शत्रु समान हैं, **(लब्धात्मलक्ष्मीः)** जो आत्मा की अनन्त ज्ञानादिरूप लक्ष्मी को प्राप्त कर चुके हैं और **(जितात्मा)** जिन्होंने अपने आप को जीत लिया है अर्थात् जो इन्द्रियों के अधीन नहीं हैं **(सः)** वे **(अजितः भगवान्)** अजितनाथ भगवान् **(मे)** मेरे लिये **(जिनश्रियम)** आर्हन्त्य लक्ष्मी-अनन्त ज्ञानादि विभूति **(विधत्ताम्)** प्रदान करें।

भावार्थ- जिन्होंने परमागम के ज्ञान और उसमें प्रतिपादित मोक्षमार्ग के अनुष्ठान रूप विद्या के द्वारा कषाय रूपी दोषों को अथवा द्रव्यक्रोधादिरूप कषाय और भाव क्रोधादि रूप दोषों को बिल्कुल नष्ट कर दिया है, जो शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हैं। जिन्हें मित्र और शत्रु समान हैं, जो आत्मा की अनन्त ज्ञानादिरूप लक्ष्मी को प्राप्त कर चुके हैं और जिन्होंने अपने आप को जीत लिया है अर्थात् जो इन्द्रियों के अधीन नहीं हैं, वे अंतरंग बहिरंग शत्रुओं के द्वारा अपराजित अजितनाथ भगवान मेरे लिए 'विशद' आर्हन्त्यलक्ष्मी-अनंत ज्ञानादि विभूति प्रदान करें।

आत्म निष्ट जिन प्रभु को भाई, शत्रु मित्र है उभय समान।
ज्ञान ध्यान के द्वारा जिनने, किया कषायों का अवशान॥
आत्म सम्पदा पाने वाले, लोकजयी जिनराज महान।
स्वात्म सम्पदा विशद दिलाएँ, ऐसे अजित नाथ भगवान॥10॥

श्री सम्भवजिन-स्तवनम्

(इन्द्रवज्रा छन्द)

त्वं सम्भवः संभव-तर्ष-रोगैः, संतप्यमानस्य जनस्य लोके।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो, वैद्यो यथाऽनाथरुजां प्रशान्त्यै।।११।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! **(त्वं)** आप से भव्य जीवों को **(संभवः)** सुख प्राप्त हैं। इसलिए, **(सम्भव-तर्ष)** आप सम्भव हैं। आप **(इह लोके)** इस संसार में **(सतप्यमानस्य)** पीड़ित **(जनस्य)** प्राणियों के लिये। तथा= उस तरह। **(आकस्मिक एव)** फल की अपेक्षा से रहित **(वैद्यः)** वैद्य **(आसीः)** हुए थे **(यथा)** जिस तरह कि **(अनाथरुजाम्)** अशरण मनुष्यों के रोगों की **(प्रशान्त्यै)** शान्ति के लिये **(वैद्यः)** धनादि की इच्छा से रहित वैद्य होता है।

भावार्थ- हे भगवन्! आप से भव्य जीवों को सुख प्राप्त होता है

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

इसीलिए आप 'संभव' इस सार्थक नाम को धारण करने वाले हैं। आप इस संसार में सांसारिक भोग तृष्णा रूप रोगों से अतिशय पीड़ित जन समूह के लिए उस तरह फल की अपेक्षा से रहित वैद्य हुए थे जिस तरह कि अशरण जनों के रोगों की शांति के लिए धनादि की इच्छा से रहित वैद्य होता है।

परम शांति सम्पन्न आप हो, आकस्मिक जिन वैद्य महान।
विषय तृषा के दुख जो पाते, उनके आप रहे भगवान॥
इस संसार क्षेत्र में जैसे, रोगी पीड़ित जन समुदाय।
वैद्यवरों से पा लेते हैं, रोग शांति के श्रेष्ठ उपाय॥11॥

अनित्यमत्राणमहंक्रियाभिः, प्रसक्त-मिथ्याऽध्यवसाय-दोषम्।
इदं जगज्जन्म-जराऽन्तकार्तं निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम्।।१२।।

अन्वयार्थः-हे भगवान! **(अनित्यम्)** नश्वर **(अत्राणम्)** रक्षक रहित, **(अहं क्रियाभिः)** मैं ही सब पदार्थों का कर्त्ता धर्त्ता हूँ, इस प्रकार अहंकार ममकार की क्रियाओं से **(प्रसक्त)** संलग्न **(मिथ्याध्यवसायदोषम्)** मिथ्या मतिज्ञान रूप दोष से दूषित तथा **(जन्मजरान्तकार्तम्)** जन्म बुढ़ापा और मृत्यु से पीड़ित **(इदं जगत्)** इस जगत को **(त्वम्)** आपने **(निरञ्जनां)** कर्म कलंक से रहित मुक्ति रूप **(शान्तिम्)** शान्ति को **(अजीगम्)** प्राप्त कराया है।

भावार्थ- हे भगवन्! विनश्वर रक्षक रहित 'मैं' ही सब पदार्थों का कर्ता धर्ता हूँ" इस प्रकार अहंकार, ममकार की क्रियाओं से संलग्न मिथ्या अभिनिवेश रूप दोष से दूषित तथा जन्म बुढ़ापा और मृत्यु से पीड़ित इस जगत को आपने कर्म कलङ्क से रहित मुक्ति रूप शांति को प्राप्त कराया है।

यह संसार विनाश शील है, यहाँ ना रक्षक है कोई मित्र।
अहंकार मय मिथ्या श्रम से, बढ़ते दोष यहाँ अपवित्र॥
जन्म बुढ़ापा और मरण का, छाया रहता है आतंक।
किन्तु शांति का मार्ग आपने, यहाँ बताया हे अकलंक!॥12॥

शतहृदोन्मेष-चलं हि सौख्यं, तृष्णामयाऽप्याऽऽयन-मात्र-हेतुः।
तृष्णाऽभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं, तापस्तदाऽयासयतीत्यवादीः।।१३।।

अन्वयार्थः-**(हि)** निश्चय से **(सौख्यं)** इन्द्रियजन्य सुख **(शतहृदोन्मेषचलम्)** बिजली की कोंद के समान चञ्चल है तथा **(तृष्णामयाऽप्याऽऽयनमात्रहेतुः)** तृष्णा रूपी रोग की पुष्टि मात्र का कारण है। **(च)** और **(तृष्णाभिवृद्धिः)** तृष्णा की चौमुखी वृद्धि **(अजस्रं)** निरन्तर **(तपति)** ताप उत्पन्न करती है, एवं वह **(तापः)** ताप **(तत्)** उस जगत् को **(आयासयति)** क्लेशों की परम्परा द्वारा दुःखी करता है **(इति अवादीः)** ऐसा आपने कहा था।

भावार्थ- निश्चय से इन्द्रियजन्य सुख बिजली की कोंद के समान चञ्चल है तथा तृष्णा रूपी रोग की पुष्टि मात्र का कारण है और तृष्णा की चौमुखी वृद्धि निरन्तर ताप उत्पन्न करती है एवं वह ताप जगत को क्लेशों की परम्परा द्वारा दुखी करता है... ऐसा आपने कहा है।

सौख्य सभी इस जगती के हैं, चपला चमक तुल्य क्षण क्षीण।
तृष्णा रोग बढ़ाने में ही, हैं इस जग के सौख्य प्रवीण॥
मृगतृष्णा आताप बढ़ाती, अरु आताप बढ़ाए क्लेश।
सच्चे बोध हेतु प्रभु तुमने, दिया जगत को सद्उपदेश॥13॥

बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू, बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः
स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्तं, नैकान्तदृष्टस्त्वमतोऽसि शास्ता।।१४।।

अन्वयार्थः-**(हे नाथ!)** हे भगवन्! **(बन्धश्च)** बन्ध और **(मोक्षश्च)** मोक्ष, **(तयोर्हेतू च)** बन्ध और मोक्ष के हेतु **(बद्धश्च)** बद्ध आत्मा **(मुक्तश्च)** मुक्त आत्मा **(च)** और **(मुक्तेः)** मुक्ति का **(फलं)** फल यह सब **(स्याद्वादिनः)** अनेकान्तमत से निरूपण करने वाले **(तवैव)** आपके ही मत में **(युक्तं)** ठीक होता है **(एकान्तदृष्टेःन)** एकान्तदृष्टि रखने वाले के मत में ठीक नहीं होता **(अतः)** इसलिए **(त्वम्)** आप ही **(शास्ताऽसि)** तत्त्वोपदेष्टा हैं।

भावार्थ- हे स्वामिन्! बन्ध मोक्ष बंध और मोक्ष के हेतु बद्ध आत्मा मुक्त आत्मा और मुक्ति का फल यह सब अनेकांतमय से निरूपण करने वाले आपके ही मत में ठीक होता है एकांतदृष्टि रखने वाले बौद्ध अथवा सांख्य आदि के मत में ठीक नहीं होता इसीलिए आप ही तत्त्वोपदेष्टा हैं।

अष्ट कर्म के बन्ध मोक्ष में, कारण हैं जीवों के भाव।
बद्धमुक्त होते हैं कैसे, क्या होता है मुक्ति प्रभाव॥
स्याद्वाद औ अनेकान्तमय, दृष्टि आपकी रही पवित्र।
विशद विवेचन करने वाली, तत्त्वों की है जग में मित्र॥14॥

शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुत-पाद-पद्मो, ममार्य! देयाः शिवतातिमुच्चैः।।१५।।

अन्वयार्थः-**(आर्य)** हे आर्य! **(पुण्यकीर्तेः)** पुण्यवर्धक स्तुति से युक्त **(तव)** आपकी **(स्तुत्यां)** स्तुति में **(प्रवृत्तः)** प्रवृत्त हुआ **(शक्रः अपि)** इन्द्र भी जब **(अशक्तः)** असमर्थ रहा है तब **(मादृशः अज्ञः किमु)** मेरे जैसा अज्ञानी पुरुष कैसे समर्थ हो सकता है? यद्यपि यह बात है **(तथापि)** तो भी **(भक्त्या)** तीव्र अनुराग द्वारा **(स्तुतपादपद्म)** स्तुत चरण कमलों से युक्त आप **(मम)** मेरे लिये **(उच्चैः)** उत्कृष्ट **(शिवतातिम्)** यथार्थ सुख की सन्तति को **(देयाः)** प्रदान करें।

भावार्थ- गुणों अथवा गुणवानों के द्वारा सेव्य हे संभव जिनेन्द्र! पवित्र ख्याति, पवित्र वाणी अथवा पुण्यवर्धक स्तुति से युक्त आपकी स्तुति में प्रवृत्त हुआ अवधि ज्ञान और समस्त श्रुत का धारक इन्द्र भी जब असमर्थ रहा है तब मेरे जैसा अज्ञानी पुरुष कैसे समर्थ हो सकता है? यद्यपि यह बात है तो भी तीव्र अनुराग द्वारा स्तुत 'विशद' चरण कमलों से युक्त आप मेरे लिए उत्कृष्ट यथार्थ सुख की सन्तति को प्रदान करें।

हुआ प्रवृत्त सुरेन्द्र आपकी, स्तुति करने हे जिननाथ!।
रहा असक्त शक्ति शाली वह, मैं क्या स्तुति करूँ अनाथ॥
किन्तु भक्ति वश स्तुति करता, तव चरणों की हे जिनदेव!।
शक्ति मुझे दो नाथ! मिले अब, निज कल्याण मार्ग स्वमेव॥15॥

श्री अभिनन्दनजिन-स्तवनम्

(वंशस्थ छन्द)

गुणाऽभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षान्ति-सखीमशिश्रियत्।
समाधि-तन्त्रस्तदुपोपपत्तये, द्वयेन नैर्ग्रन्थ्य-गुणेनऽऽचाऽयुजत्।।१६।।

अन्वयार्थः-हे भगवन! **(गुणाभिनन्दात्)** अनन्तज्ञानादि गुणों की वृद्धि होने से **(अभिनन्दनः)** अभिनन्दन इस सार्थक नाम को धारण करने वाले **(भवान्)** आपने **(क्षान्तिसखीं)** क्षमारूप सखी से सहित **(दयावधूम्)** दया रूप स्त्री का **(अशिश्रियत्)** आश्रय लिया था **(च)** तथा **(समाधितन्त्रः)** धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान रूप समाधि को प्रधान लक्ष्य बना कर **(तदुपोपपत्तये)** उसकी सिद्धि के लिये आप **(द्वयेन)** अन्तरंग और बहिरंग के भेद से दोनों प्रकार के **(नैर्ग्रन्थ्यगुणेन)** निष्परिग्रहता रूप गुण से **(अयुजत्)** युक्त हुए थे।

भावार्थ-हे भगवन्! अनंतज्ञानादि अन्तरंग और सकल लक्ष्मी आदि बहिरंग गुणों की वृद्धि होने से अभिनंदन इस सार्थक नाम को धारण करने वाले आपने क्षमारूप सखी से सहित दया रूप स्त्री का आश्रय लिया था तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान रूप समाधि को प्रधान लक्ष्य बनाकर उसकी सिद्धि के लिए आप अंतरंग और बहिरंग के भेद से दोनों प्रकार के निष्परिग्रहता रूप गुण से युक्त हुए थे।

दया वधू का क्षमा सखीयुत, दिया आपने आश्रय दान।
पुनः प्रसन्न उसे करने को, त्याग आपने किया महान॥
निष्परिग्रहता दो प्रकार की, धारण हेतु समाधि संयुक्त।
गुण अभिनन्दन के कारण यों, अभिनन्दन प्रभु को उपयुक्त॥16॥

अचेतने तत्कृत-बन्धजेऽपि च, ममेदमित्याऽभिनिवेशिक-ग्रहात्।
प्रभंगुरे स्थावर-निश्चयेन च, क्षतं जगत्-तत्त्वमजिग्रहद्भवान्।।१७।।

अन्वयार्थः-**(अचेतने)** अचेतन शरीर में **(च)** और **(तत्कृतबन्धजेऽपि)** उस अचेतन शरीर के द्वारा किये हुए कर्मबन्ध से उत्पन्न सुख दुःखादिक तथा स्त्री पुत्रादि पर पदार्थों में **(ममेदम्)** यह मेरा है मैं इसका स्वामी हूँ **(इति)** इस प्रकार के **(अभिनिवेशिकग्रहात्)** मिथ्या अभिप्राय को स्वीकार करने से **(च)** तथा **(प्रभङ्गुरे)** नष्ट होने वाले शरीरादिक पर पदार्थों में **(स्थावर निश्चयेन)** स्थायित्व के निश्चय से **(क्षतं)** नष्ट हुए **(जगत्)** जगत को **(भवान्)** आपने **(तत्त्वं)** जीवादि पदार्थों

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

का यथार्थ स्वरूप (**अजिग्रहत्**) ग्रहण कराया है समझाया है।

भावार्थ- अचेतन शरीर में और उस अचेतन शरीर के द्वारा किये हुए कर्मबन्ध से उत्पन्न सुख दुःखादिक तथा स्त्री पुत्रादि पर पदार्थों में यह मेरा है मैं इसका स्वामी हूँ इस प्रकार के मिथ्या अभिप्राय को स्वीकार करने से अथवा मिथ्या अभिप्राय रूप पिशाच से तथा विनश्वर शरीर पर पदार्थ में स्थायित्व के निश्चय से नष्ट हुए जगत को आपने जीवादि पदार्थों का यथार्थ स्वरूप ग्रहण कराया है-समझाया है।

नानाविधि कर्मों का होता, जड़ 'शरीर के द्वारा बन्ध।
सुख दुख फल में मोही होकर, समझ रहा भ्रम से सम्बन्ध॥
निश्चय क्षण भंगुर को स्थिर, मान दुखी हो विश्व महान।
तत्त्व कथन कर समझाया है, अतः आपने सम्यक ज्ञान॥17॥

क्षुधादि-दुःख-प्रतिकारतः स्थितिर्-न चेन्द्रियार्थ-प्रभवाऽल्प-सौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देह-देहिनो-रितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत्।।१८।।

अन्वयार्थः-(**क्षुधादिदुःखप्रतिकारतः**) क्षुधा तृषा आदि के दुःख का प्रतिकार करने से अर्थात् भोजन पान ग्रहण करने से (**च**) और (**इन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः**) स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न अल्प सुख से (**देहदेहिनोः**) शरीर और शरीरधारी आत्मा की (**स्थितिः**) सदा स्थिति नहीं रहती (**ततः**) इसलिए उसे उनका कुछ (**गुणः**) उपकार (**नास्ति**) नहीं है (**इत्थम्**) इस तरह (**इदम्**) इस जगत् को (**भगवान्**) अभिनन्दन भगवान ने (**इति**) यह परमार्थ तत्त्व (**व्यजिज्ञपत्**) बतलाया है।

भावार्थ- क्षुधा तृषा आदि के दुःख का प्रतिकार करने से भोजनपान ग्रहण करने से और स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न अल्प सुख से शरीर और शरीरधारी आत्मा की सदास्थिति नहीं रहती इसलिए उनसे उनका कुछ उपकार नहीं है इस तरह इस जगत को भगवान अभिनंदन जिनेन्द्र ने यह परमार्थ तत्त्व बतलाया है।

प्रतीकार से क्षुधा आदि के, यह शरीर ना होता पुष्ट।

इन्द्रिय जनित अल्प सुख पाके, चेतन कभी ना हो संतुष्ट॥
कर सकते हैं ये पदार्थ ना, इन दोनों का कुछ उपकार।
यही आपके उपदेशों का, हे अभिनन्दन! गाया सार॥18॥

जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो, भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते।
इहाऽप्यमुत्राऽप्यनुबन्धदोषवित्, कथं सुखे संसजतीति चाऽब्रवीत्।।१६।।

अन्वयार्थः-(**जनः**) मनुष्य (**अतिलोलः अपि सन्**) अत्यन्त आसक्त होता हुआ भी (**अनुबन्धदोषतः**) आसक्ति रूप दोष से (**भयात्**) राजा आदि के भय के कारण (**इह**) इस संसार में (**अकार्येषु**) अकरणीय कार्यों में न प्रवर्तते। प्रवृत्त नहीं होता है फिर (**इहापि अमुत्रापि**) इस लोक और पर लोक दोनों ही जगह (**अनुबन्धदोषवित्**) आसक्ति के दोष को जानने वाला मनुष्य (**सुखे**) विषय सुख में (**कथं संसजति**) कैसे आसक्त होता है यह आश्चर्य कीबात है (**इति च अब्रवीत्**) हे जिनेन्द्र! जगत् के जीवों को आपने यह भी बतलाया है।

भावार्थ- मनुष्य अत्यन्त आसक्त होता हुआ भी आसक्ति रूप दोष से राजा आदि के भय के कारण इस संसार में परस्त्री सेवन आदि अकरणीय कार्यो में प्रवृत्त नहीं होता है फिर इस लोक और परलोक दोनों ही जगह आसक्ति के दोष को जानने वाला मनुष्य विषय सुख में कैसे आसक्त होता है यह आश्चर्य की बात है हे अभिनंदन जिनेन्द्र! जगत के जीवों को आपने यह भी बतलाया है।

लम्पट प्राणी भी इस जग में, पापों से रहते भयभीत।
इसी भीति के कारण डरते, करते हुए अकार्य अनीति॥
जिनसे दोनों लोक बिगड़ते, ऐसे कार्यों का कर ज्ञान।
कैसे फॅसता है जग उनमें?, कहा आपने हे भगवान!॥19॥

स चाऽनुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत्, तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो! लोक-हितं यतो मतं, ततो भवानेव गतिः सतां मतः।।२०।।

अन्वयार्थः-(**सः अनुबन्धः**) वह आसक्तता (**च**) और आसक्तता से उत्पन्न होने वाली (**तृषोऽभिवृद्धिः**) उत्तरोत्तर तृष्णा की वृद्धि दोनों ही

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

(अस्य जनस्य) इस विषयातिसक्त मनुष्य के लिये **(तापकृत्)** संताप उत्पन्न करने वाली है **(सुखतः)** प्राप्त हुए अल्पमात्र विषय सुख से **(न च स्थितिः)** जीव की सुख से स्थिति नहीं होती अर्थात् अल्प सुख से जीव संतुष्ट नहीं होता **(इति)** इस तरह **(प्रभो!)** हे स्वामिन् **(यतः)** चूंकि **(मतं)** आपका मत **(लोकहितं)** लोक कल्याणकारी है **(ततः)** इसलिए **(भवानेव)** आप ही **(सतां)** विवेकशाली सत्पुरुषों के **(गतिः)** शरण **(मतः)** माने गये हैं।

भावार्थ- वह आसक्त और आसक्त से उत्पन्न होने वाली उत्तरोत्तर तृष्णा की वृद्धि दोनों ही इस विषयातिसक्त मनुष्य के लिए संताप उत्पन्न करने वाली है प्राप्त हुए अल्पमात्र विषय सुख से जीव की सुख से स्थिति नहीं होती अर्थात् अल्प सुख से जीव संतुष्ट नहीं होता इस तरह हे स्वामिन्! चूंकि आपका मत लोककल्याणकारी है इसलिए आप ही विवेक शाली सत्पुरुषों के 'विशद' शरण माने गये हैं।

विषया-वांछा जग जीवों को, उपजाती संताप महान।
तृष्णा सदा बढ़ाती जिससे, सुख को ना मिलता स्थान॥
लोक हितैषी नाथ! आपका, पावन गाया शुभ उपदेश।
अतः आपको संत मानते, जग उपकारी जिन तीर्थेश॥20॥

श्री सुमतिजिन-स्तवनम्

(उपजाति छन्द)

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं, स्वयं मतं येन सुयुक्ति-नीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति, सर्व-क्रिया-कारक-तत्त्व-सिद्धिः।।२१।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(मुनिः)** प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं तथा **(सुमतिः अन्वर्थसंज्ञः)** सुमति इस सार्थक संज्ञा से युक्त हैं **(येन)** क्योंकि आपने **(सुयुक्तिनीतम्)** उत्तम युक्तियों से युक्त **(तत्त्वं)** तत्त्व **(स्वयं मतं)** स्वयं स्वीकृत किया है **(च)** और **(शेषेषु मतेषु)** आपके मन से शेष अन्य मतों में **(सर्वक्रियाकारकत्त्वसिद्धिः)** सम्पूर्ण क्रियाओं तथा कर्त्ता कर्म करण आदि कारकों की तत्त्वसिद्धि **(नास्ति)** नहीं है।

भावार्थ- हे भगवन्! आप प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं तथा सुमति इस सार्थक संज्ञा से युक्त हैं-उत्तम बुद्धि से सहित होने के कारण आपका 'सुमति' नाम सार्थक है क्योंकि आपने उत्तम युक्तियों से युक्त तत्त्व स्वयं स्वीकृत किया है और आपके मत से शेष अन्य मतों में सम्पूर्ण क्रियाओं तथा कर्ता कर्म करण आदि कारणों की तत्त्वसिद्धि नहीं हैं।

क्षणिक नित्य सिद्धान्तों में ना, होय क्रिया कारक संबन्ध।
अतः सिद्ध ना होय वहाँ पर, तत्त्व सिद्धि का कहीं प्रबन्ध॥
किया आपने दृढ़ सुयुक्तियों, से तब निश्चित निज सिद्धान्त।
नाथ! आपका इसीलिए है, सुमति नाम अन्वर्थ नितान्त॥21॥

अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं, भेदाऽन्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम्।।२२।।

अन्वयार्थः-**(तदेव तत्त्वं)** वही युक्ति सहित तत्त्व **(अनेकं च एकं)** अनेक तथा एक रूप है। **(हि)** निश्चय से **(इदं भेदान्वयज्ञानं)** यह भेदज्ञान और अन्वयज्ञान अनेक को विषय करनेवाला यह भेदज्ञान और एक को विषय करने वाला अन्वयज्ञान **(सत्यम्)** यथार्थ है। इनमें से किसी एक को **(उपचारः)** उपचार रूप कल्पित मानना **(मृषा)** मिथ्या है, क्योंकि **(अन्यतरस्य)** दो में से किसी एक का **(लोपे)** अभाव होने पर **(तच्छेषलोपोऽपि)** उससे शेष अन्य धर्म का भी अभाव हो जाता है और **(ततः)** दोनों का अभाव हो जाने से तत्त्व **(अनुपाख्यम्)** स्वभाव नहीं होने से अवाच्य हो जाता है।

भावार्थ- वही सुयुक्तिनीत तत्त्व अनेक तथा एक रूप है निश्चय से अनेक को विषय करने वाला यह भेदज्ञान और एक को विषय करने वाला यह अन्वयज्ञान यथार्थ है। इनमें से किसी एक को उपचार रूप कल्पित मानना मिथ्या है क्योंकि दो में से किसी एक का लोप अभाव होने पर उससे शेष अन्य धर्म का भी अभाव हो जाता है और दोनों का अभाव हो जाने से तत्त्व निःस्वभाव होने से अवाच्य हो जाता है।

तत्त्व एक है एक दृष्टि से, एक दृष्टि से रहे अनेक।
इस प्रकार से भेद ज्ञान में, रहता सत्य और सुविवेक॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

यदि कर दे उपचरित मानकर, एक दृष्टि का कोई लोप।
शीघ्र दूसरी दृष्टी का भी, हो जाएगा शीघ्र विलोप॥22॥

सतः कथंचित् तदसत्त्व-शक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।
सर्व-स्वभाव-च्युतमप्रमाणं, स्व-वाग्-विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत्।।२३।।

अन्वयार्थः-(**सतः**) स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा सद्रूप जीवादि पदार्थ के (**कथञ्चित्**) किसी अपेक्षा-पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा (**असत्त्वशक्तिः**) असद्रूपता है जैसे कि (**पुष्पं**) फूल (**तरुषु**) वृक्षों पर (**प्रसिद्धम्**) प्रसिद्ध है (**खे**) आकाश में (**नास्ति**) नहीं है। यदि तत्त्व को (**सर्वस्वभावच्युतं**) सत्त्व और असत्त्व-दोनों प्रकार के स्वभाव से च्युत माना जायेगा तो वह (**अप्रमाणं**) प्रमाण रहित हो जायेगा। हे भगवन्! (**तव दृष्टितः अन्यत्**) तुम्हारे दर्शन के सिवाय अन्य सब दर्शन (**स्ववाग्विरुद्धं**) स्ववाणी से विरुद्ध हैं। अर्थात् स्ववचन-बाधित हैं।

भावार्थ- स्वद्रव्यक्षेत्र काल भाव की अपेक्षा सद्रूप जीवादि पदार्थ के किसी अपेक्षा पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा असद् रूपता है जैसे कि फूल वृक्षों पर प्रसिद्ध है और आकाश में नही है। यदि तत्त्व को सत्त्व और असत्त्व दोनों प्रकार के स्वभाव से च्युत माना जावेगा तो वह प्रमाण रहित हो जावेगा। हे भगवन्! तुम्हारे दर्शन के सिवाय अन्य सब दर्शन स्ववाणी से विरूद्ध है। अर्थात स्ववचनबाधित है।

किसी दृष्टि से सत् पदार्थ में, भी रहता है धर्म असत्त्व।
फूल वृक्ष में लगते लेकिन, नभ में उनका नहीं है सत्त्व॥
सत्यासत्य ना माने कोई, तो होगा वह शून्य प्रमाण।
स्व नयनों से बाधित होगा, नाथ! आपका जहाँ ना ज्ञान॥23॥

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रिया-कारकमत्र युक्तम्।
नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो, दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति।।२४।।

अन्वयार्थः-(**सर्वथा नित्यं**) सब प्रकार से नित्य वस्तु (**न उदेति**) न उत्पन्न होती है (**न अपैति**) न नष्ट ही होती है (**च न**) और

न (**अत्र**) इस मान्यता में (**क्रियाकारकं युक्तम्**) क्रिया कारक भाव ही संगत होता है। क्योंकि (**असतः**) असत्-अविद्यमान पदार्थ का (**नैव जन्म**) जन्म नहीं होता और (**सतो न नाशः**) विद्यमान पदार्थ का नाश नहीं होता यदि कहा जाये कि जलता हुआ दीपक बुझा देने पर उसमें क्या शेष रह जाता है यहाँ तो सत् का नाश मानना ही पड़ेगा तो उसका उत्तर यह है कि (**दीपः**) दीपक (**तमः पुद्गलभावतः अस्ति**) अन्धकार रूप पुद्गल द्रव्य के रूप में विद्यमान रहता है।

भावार्थ- सब प्रकार से नित्य वस्तु न उत्पन्न होती है न नष्ट ही होती है। और न इस मान्यता में क्रियाकारक भाव ही संगत होता है। क्योंकि असत् अविद्यमान पदार्थ का जन्म नहीं होता और सत् विद्यमान पदार्थ का नाश नहीं होता। यदि कहा जाय कि जलता हुआ दीपक बुझा देने पर उसमें क्या शेष रह जाता है, यहाँ तो सत् का नाश मानना ही पड़ेगा तो उसका उत्तर यह है कि दीपक अंधकार रूप पुदगल द्रव्य के रूप में विद्यमान रहता है।

तत्त्व सर्वथा नित्य कहें तो, व्यय उत्पाद ना होगा सिद्ध।
क्रिया और कारक ना होंगे, हो जाएगा कथन विरुद्ध॥
असद् तत्त्व उत्पाद ना होता, सत् का होता नहीं विनाश।
परिणत होते अन्धकार में, पुद्गल जो थे पूर्ण प्रकाश॥24॥

विधिर्निषेधश्च कथञ्चिदिष्टौ, विवक्षया मुख्य-गुण-व्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं, मति-प्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ!।।२५।।

अन्वयार्थः-(**विधिः**) अस्तित्त्व (**च**) और (**निषेधः**) नास्तित्त्व दोनों ही (**कथञ्चित्**) किसी अपेक्षा से (**इषौ**) इष्ट हैं (**विवक्षया**) वक्ता की इच्छा से उनमें (**मुख्यगुणव्यवस्था**) मुख्य और गौण की व्यवस्था होती है (**इति**) इस तरह (**इयं**) यह (**प्रणीतिः**) तत्त्वनिरूपण की पद्धति (**सुमतेः तव**) आप सुमतिनाथ स्वामी की है (**नाथ!**) हे स्वामिन्! (**त्वं स्तुवतः मे**) आपकी स्तुति करते हुए मुझे (**मतिप्रवेकः**) मति का उत्कर्ष प्राप्त होवे।

भावार्थ- अस्तित्त्व और नास्तित्त्व दोनों ही किसी अपेक्षा से इष्ट है।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

वक्ता की इच्छा से उनमें मुख्य और गौण की व्यवस्था होती है। इस तरह यह तत्त्व निरूपण की पद्धति आप सुमतिनाथ स्वामी की है। हे स्वामिन्! आपकी स्तुति करते हुए मुझे मति का 'विशद' उत्कर्ष प्राप्त होवे।

जिन शासन में दृष्टि भेद से, कहे गये हैं सुविधि निषेध।
इच्छा पर निर्भर करता कि, मुख्य गौण या पतनोत्सेध॥
इस प्रकार हे सुमति नाथ! है, विशद आपकी तात्त्विक नीति।
नाथ! आपके स्तोता की, बुद्धि प्रखर हो मिटे अनीति॥25॥

श्री पद्मप्रभजिन-स्तवनम्

(उपजाति छन्द:)

पद्म प्रभः पद्म-पलाश-लेश्यः पद्मालयाऽऽलिंगितचारुमूर्तिः।
बभौ भवान् भव्य-पयोरुहाणां, पद्माकराणामिव पद्म बन्धुः।।२६।।

अन्वयार्थ:-(पद्मपलाशलेश्यः) जिनके शरीर का वर्ण कमल पत्र के समान लाल रंग का था तथा **(पद्मालयाऽऽलिंगिंतचारुमूर्तिः)** जिनकी आत्मस्वरूप निर्मलमूर्ति अनन्तज्ञानादिरूप अन्तरंग लक्ष्मी से एवं जिनकी समस्त उत्तम लक्षणों से सहित शरीर रूप मूर्ति नि:स्वेदत्व आदि-पसीना के अभाव आदि रूप बाह्य लक्ष्मी से आलिंगित थी ऐसे **(पद्मप्रभः)** पद्मप्रभ जिनेन्द्र थे। हे जिनेन्द्र **(भवान्)** आप **(भव्यपयोरुहाणां)** भव्य जीव रूप कमलों के हितोपदेश रूप विकास के लिये उस तरह **(बभौ)** सुशोभित हुए थे जिस तरह की **(पद्माऽऽकराणामिव पद्मबन्धुः)** कमल समूह के विकास के लिये सूर्य सुशोभित होता है।

भावार्थ- जिनके शरीर का वर्ण कमल पत्र के समान लाल रंग का था तथा जिनकी आत्मस्वरूप निर्मलमूर्ति अनंतज्ञानादिरूप अंतरंग लक्ष्मी से एवं जिनकी समस्त उत्तम लक्षणों से सहित शरीर रूप मूर्ति नि:स्वेदत्व आदि पसीना के अभाव आदि रूप बाह्य लक्ष्मी से आलिङ्गित थी ऐसे पद्मप्रभ जिनेन्द्र थे। हे जिनेन्द्र! आप भव्य जीव रूप कमलों के हितोपदेश रूप विकास के लिए उस तरह सुशोभित हुए थे जिस तरह कि कमलसमूह के विकास के लिए सूर्य सुशोभित होता है।

पद्मप्रभु हैं जिनके तन की, पद्म पत्र सम सु सुन्दर कान्ति।
लेली जगह पद्मान्तर में, जिन पद्मांकित ने विश्रान्ति॥
दिनकर भर देता है जैसे, पद्मसरों में विमल विकाश।
उसी तरह भर देते हैं वे, भविकमलों में देव! प्रकाश॥26॥

बभार पद्मां च सरस्वतीं च, भवान् पुरस्तात् प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः।
सरस्वतीमेव समग्र-शोभां, सर्वज्ञ-लक्ष्मी-ज्वलितां विमुक्तः।।२७।।

अन्वयार्थ:-हे पद्मप्रभजिनेन्द्र! **(भवान्)** आपने **(प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः पुरस्तात्)** मोक्ष रूपी लक्ष्मी के पूर्व अर्थात् अरिहन्त अवस्था में **(पद्माम्)** अनन्तज्ञानादि रूप लक्ष्मी **(च)** और **(सरस्वतीं)** दिव्यवाणी- दिव्यध्वनि को **(बभार)** धारण किया था अथवा **(समग्रशोभां)** समस्त पदार्थों के प्रतिपादन रूप विभूति और समवशरणादि रूप समस्त शोभा से युक्त **(सरस्वतीमेव)** दिव्यवाणी को ही धारण किया था। पीछे **(विमुक्तःसन्)** समस्त कर्ममल से रहित होकर **(ज्वलितां)** दैदीप्यमान-सदा उपयोग रूप **(सर्वज्ञलक्ष्मीं)** सर्वज्ञता रूप लक्ष्मी को धारण किया था।

भावार्थ- हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र! आपने मोक्षरूपी लक्ष्मी के पूर्व अर्थात् अरहन्त अवस्था में अनन्तज्ञानादि रूप लक्ष्मी और दिव्यवाणी-दिव्यध्वनि को धारण किया था अथवा समस्त पदार्थों के प्रति पादन रूप विभूति और समवशरणआदि रूप समस्त शोभा से युक्त दिव्य वाणी को ही धारण किया था पीछे समस्त कर्मफल से रहित होकर दैदीप्यमान-सदा उपयोग रूप सर्वज्ञता रूप लक्ष्मी को धारण किया था।

पूर्वकाल में मोक्ष प्राप्ति के, पाई लक्ष्मी और गिरा।
त्यागे ना होकर विमुक्त जो, और बढ़ाया उसे जरा॥
कर समग्र शोभित वाणी को, लक्ष्मी को सर्वज्ञ रमा।
गिरा रमा के नाथ आप हो, और ना कोई आप समा॥27॥

शरीर-रश्मि-प्रसरः प्रभोस्ते, बालाऽर्क-रश्मिच्छविरालिलेप।
नराऽमराऽकीर्ण-सभां प्रभावच् छैलस्य पद्माऽऽभमणेः स्व-सानुम्।।२८।।

अन्वयार्थ:-(बालाऽर्करश्मिच्छविः) प्रात:कालीन सूर्य की किरणों के

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

समान कान्ति वाले **(तेः प्रभोः)** आप स्वामी के **(शरीररश्मिप्रसारः)** शरीर सम्बन्धी किरणों के समूह ने **(नराऽमराऽऽकीर्णसभां)** मनुष्य और देवों से व्याप्त समवशरण सभा को **(पद्माऽऽभमणेः शैलस्य प्रभावत् स्वसानुमिव आलिलेप)** उस तरह आलिप्त कर रक्खा था जिस तरह कि पद्मरागमणि के पर्वत की प्रभा अपने पार्श्वभाग को आलिप्त कर रखती है।

भावार्थ– प्रात:कालीन सूर्य की किरणों के समान कान्तिवाले आप स्वामी के शरीर सम्बन्धी किरणों के समूह ने मनुष्य और देवों से व्याप्त समवशरण सभा को उस तरह आलिप्त कर रखा था जिस तरह कि पद्मरागमणि के पर्वत की प्रभा अपने पार्श्वभाग को आलिप्त कर रखती है।

पद्मराग मणि गिरि का जैसे, सुन्दर दिखता लाल प्रकाश।
कर देता अनुरक्त प्रान्त को, करके अन्धकार का नाश॥
नाथ! बाल रवि किरणों जैसी, रही आपके तन की कांति।
नर सुर पूर्ण सभा में भरती, निज प्रकाश औ अनुपम शांति॥28॥

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं, सहस्रपत्राऽम्बुज-गर्भचारैः।
पादाऽम्बुजैः पातित मार-दर्पो, भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै।।२६।।

अन्वयार्थः–हे जिनेन्द्र! **(पातितमारदर्पः)** कामदेव के गर्व को नष्ट करने वाले **(त्वम्)** आपने **(सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः)** सहस्रदल कमलों के मध्य में चलने वाले अपने **(पादाम्बुजैः)** चरण कमलों के द्वारा **(नभस्तलं)** आकाश तल को **(पल्लवयन्निव)** पल्लवों से युक्त जैसा करते हुए **(भूमौ)** पृथ्वी पर स्थित **(प्रजानां विभूत्यै)** प्रजाजनों की विभूति के लिये **(विजह)** विहार किया था।

भावार्थ– हे जिनेन्द्र! कामदेव के गर्व को नष्ट करने वाले आपने सहस्त्रदल कमलों के मध्य में चलने वाले अपने चरण कमलों के द्वारा आकाश तल को पल्लवों से युक्त जैसा करते हुए पृथ्वी पर स्थित प्रजाजनों की विभूति के लिए विहार किया था।

ज्यों सहस्रदल कमलों के भी, ऊपर करें सुपद संचार।
नाथ! गगन तल शोभित करते, करें काम के मद को क्षार॥

इस भूतल के देश देश में, किया आपने नाथ विहार।
जन-जन को सुख शांती वैभव, अनुपम किया देव! उपकार॥29॥

गुणाऽम्बुधेर्विप्रुषमप्यजस्रं, नाऽऽखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव मादृक् किमुताऽति भक्तिर्मां बालमालाऽऽपयतीदमित्थम्।।३०।।

अन्वयार्थः–हे भगवन! **(इत्थं)** इस प्रकार **(ऋषेः)** समस्त ऋद्धियों के विधान स्वरूप **(तव)** आपके **(गुणाऽम्बुधेः)** गुण रूप सागर की **(विप्रुषमपि)** एक बूंद की भी **(अजस्रम्)** निरन्तर **(स्तोतुं)** स्तुति करने के लिये जब **(आखण्डलः)** इन्द्र **(प्रागेव)** पहले ही **(अलं न)** समर्थ नहीं हो सका है तब **(मादृक)** मेरे जैसा असमर्थ मनुष्य **(किमुत)** कैसे समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। **(अतिभक्तिः)** यह तीव्र भक्ति ही **(मां बालं)** मुझ अज्ञानी से (इत्थं) इस तरह **(इदं)** इस स्तवन को **(आलापयति)** कहला रही है।

भावार्थ– हे भगवन्! समस्त ऋद्धियों के निधान स्वरूप आपके गुण रूप सागर की एक बूंद की भी निरन्तर स्तुति करने के लिए जब इन्द्र पहले ही समर्थ नहीं हो सका है तब मेरे जैसा असमर्थ मनुष्य कैसे समर्थ हो सकता है? अर्थात नही हो सकता। यह तीव्र भक्ति ही मुझ अज्ञानी से इस तरह इस 'विशद' स्तवन को कहला रही है।

गुण सागर के बिन्दू का भी, स्तवन ना कर सके सुरेश।
किया निरन्तर पूर्व काल में, जिसने भाई प्रयत्न विशेष॥
हे ऋषि पुंगव! मेरे जैसा, क्या बतलावे इसमें शक्ति।
प्रेरित करती है मुझको हे, देव! आपकी अतिशय भक्ति॥30॥

श्री सुपार्श्वजिन-स्तवनम्

(उपजाति छन्दः)

स्वास्थ्यं यदाऽऽत्यन्तिकमेष पुंसां, स्वार्थो न भोगः परिभंगुराऽऽत्मा।
तृषोऽनुषंगान् न च तापशान्ति-रितीदमाख्यद् भगवान् सुपार्श्वः।।३१।।

अन्वयार्थः–**(यत् आत्यन्तिकं स्वास्थ्यम्)** जो अविनाशी स्वरूपलीनता है **(एष)** यही **(पुंसां)** जीवात्माओं का **(स्वार्थः)** निजी प्रयोजन है

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

(**परिभङ्गुरऽऽत्मा**) क्षणभंगुर (**भोगः**) भोग (**स्वार्थः न**) निजी प्रयोजन नहीं है। (**तृषः**) उत्तरोत्तर भोगाकाङ्क्षा की (**अनुषंगात्**) वृद्धि से (**न च तापशान्तिः**) ताप की शान्ति नहीं होती है (**इति इदम्**) इस प्रकार यह विवेक (**भगवान् सुपार्श्वः आख्यात्**) विशिष्टज्ञानी सुपार्श्वनाथ ने कहा है।

भावार्थ- जो अविनाशी स्वरूपलीनता है यही जीवात्माओं का निजी प्रयोजन है क्षणभंगुर भोग निजी प्रयोजन नहीं हैं। उत्तरोत्तर भोगाकाङ्क्षा की वृद्धि से ताप की शांति नहीं होती है इस प्रकार यह विवेक विशिष्ट ज्ञानी सुपार्श्वनाथ ने कहा है।

निज स्वरूप में रमण कहा है, सत् पुरुषों का सच्चा स्वार्थ।
क्षण भंगुर इन्द्रिय भोगों में, नहीं स्वार्थ हो सके यथार्थ॥
विषयों से तृष्णा की वृद्धी, होता नहीं ताप का नाश।
प्रकट किया है हे सुपार्श्व जिन!, तुमने निज में दिव्य प्रकाश॥31॥

अजंगमं जंगम-नेय-यन्त्रं, यथा-तथा जीव-धृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च, स्नेहो वृथाऽत्रेति हितं त्वमाख्यः।।३२।।

अन्वयार्थः-(**यथा**) जिस प्रकार (**जंगमनेययन्त्रं**) गतिशील मनुष्य के द्वारा चलाया जाने वाला यन्त्र स्वयं (**अजंगमम्**) गति रहित होता है (**तथा**) उसी तरह (**जीवधृतं**) जीव के द्वारा धारण किया हुआ (**शरीरं**) शरीर स्वयं (**अजंगमं**) गति से रहित है-जड़ है। साथ ही यह शरीर (**बीभत्सु**) घृणित, (**पूति**) दुर्गन्ध से युक्त, (**क्षयि**) विनश्वर (**च**) और (**तापकं**) संताप उत्पन्न करने वाला है इसलिए (**अत्र**) इस शरीर में (**स्नेह**) अनुराग करना (**वृथा**) व्यर्थ है (**इति**) यह (**हितं**) हितकारक वचन (**त्वम्**) हे सुपार्श्व जिन! आपने (**आख्यः**) कहा है।

भावार्थ- जिस प्रकार गतिशील मनुष्य के द्वारा चलाया जाने वाला यन्त्र स्वयं गतिरहित होता है उसी तरह जीव के द्वारा धारण किया हुआ शरीर स्वयं गति रहित है, जड़ है। साथ ही यह शरीर घृणित दुर्गन्ध से युक्त विनश्वर और संताप उत्पन्न करने वाला है इसलिए इस शरीर में अनुराग

करना व्यर्थ है। यह हितकारक वचन हे सुपार्श्व जिन! आपने कहा है।

परिचालक के द्वारा जैसे, चलते हैं जड़ यन्त्र विशेष।
वैसे ही चेतन के द्वारा, यह शरीर सब चलें अशेष॥
दुर्गन्धित है बहुत घृणास्पद, तापक बतलाया क्षय रूप।
है स्नेह व्यर्थ इस तन से, कहा आपने हे शिव भूप!॥32॥

अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं, हेतु-द्वयाऽऽविष्कृत-कार्य-लिंगा।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियाऽऽर्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः।।३३।।

अन्वयार्थः-(**हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा**) शुभ अशुभ कार्य अथवा बाह्य और आभ्यन्तर दोनों कारणों से उत्पन्न होने वाला कार्य ही जिसका लिङ्गज्ञापक है ऐसी (**इयं**) यह (**भवितव्यता**) भवितव्यता-होनहार (**अलङ्घ्यशक्तिः**) किसी भी तरह टाली नहीं जा सकती तथा भवितव्यता की अपेक्षा नहीं रखने वाला। (**अहंक्रियार्तः**) अहंकार से पीड़ित हुआ (**जन्तुः**) संसारी प्राणी (**संहत्य**) अनेक सहकारी कारणों से मिलकर भी सुख-दुःखादि (**कार्येषु**) कार्यों में (**अनीश्वरः**) असमर्थ है। हे सुपार्श्व जिनेन्द्र! आपने (**इति**) यह (**साधु**) ठीक ही (**अवादीः**) कहा है।

भावार्थ- शुभ अशुभ कर्म अथवा बाह्य और आभ्यन्तर दोनों कारणों से उत्पन्न होने वाला कार्य ही जिसका लिंग-ज्ञापक है ऐसी यह भवितव्यता-होनहार अलङ्घ्यशक्ति है किसी भी तरह टाली नहीं जा सकती तथा भवितव्यता की अपेक्षा नहीं रखने वाला अहंकार से पीड़ित हुआ संसारी प्राणी अनेक सहकारी कारणों से मिलकर भी सुख दःखादि कार्यों में असमर्थ है, हे सुपार्श्व जिनेन्द्र! आपने यह ठीक ही कहा है।

अन्तर्बाह्य हेतुओं द्वारा कर्मों का होता है बन्ध।
जो अलंघ्य फल दिए कभी भी, नहीं छोड़ता है सम्बन्ध॥
विकल जीव मद से मतवाला, होके करे कार्य असमर्थ।
करके उपसंहार आपने, तत्त्व बताए हैं अव्यर्थ॥33॥

बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो, नित्यं शिवं वाञ्छति नाऽस्य लाभः।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

तथाऽपि बालो भय-काम-वश्यो, वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः।।३४।।

अन्वयार्थः-यह जीव **(मृत्योः)** मरण से **(बिभेति)** डरता है परन्तु **(ततः)** उससे **(मोक्षः)** छुटकारा **(न अस्ति)** नहीं है **(नित्यं)** सदा **(शिवं)** कल्याण अथवा निर्वाण की **(वाञ्छति)** इच्छा करता है परन्तु **(अस्य लाभः न)** प्राप्ति नहीं होती **(तथापि)** फिर भी **(भयकामवश्यः)** भय और काम के वशीभूत हुआ **(बालः)** अज्ञानी प्राणी (स्वयं) ही (वृथा) निष्प्रयोजन **(तप्यते)** दुःखी होता है, हे भगवन् **(इति)** यह आपने **(अवादीः)** कहा है।

भावार्थ- यह जीव मरण से डरता है परन्तु उससे छूटता नही है सदा कल्याण अथवा निर्वाण की इच्छा करता है परन्तु इसकी प्राप्ति नहीं होती फिर भी भय और काम के वशीभूत हुआ अज्ञानी प्राणी स्वयं ही निष्प्रयोजन दुःखी होता है हे भगवन् यह आपने कहा है।

रहते हैं भयभीत अमंगल, से ना मिटता है भव रोग।
मिलता नहीं चाह करके भी, विशद पूर्ण आनन्दोपभोग॥
रहे भयातुर अज्ञानी यह, नहीं चाह का करता त्याग।
व्यर्थ रहे सन्तप्त जीव यह, कहा आपने हे गतराग!॥34॥

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता, मातेव बालस्य हिताऽनुशास्ता।
गुणाऽवलोकस्य जनस्य नेता, मयाऽपि भक्त्या परिणूयसेऽद्य।।३५।।

अन्वयार्थः-**(भवान्)** आप **(सर्वस्य तत्त्वस्य)** समस्त जीवादि पदार्थों के **(प्रमाता)** संशयादि रहित ज्ञाता हैं, **(बालस्य)** सन्तान को **(मातेव)** माता के समान **(बालस्य)** अज्ञानी जनों को **(हितानुशास्ता)** हित का उपदेश देनेवाले हैं और **(गुणाऽवलोकस्य जनस्य)** सम्यग्दर्शनादि गुणों का अन्वेषण करने वाले भव्यसमूह के **(नेता)** सन्मार्गदर्शक हैं अतः **(भवान्)** आप **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(परिणूयसे)** मन, वचन, काय से स्तुत हो रहे हैं **(मयाऽपि)** मैं मन से, वचन से, कर्म से आपकी स्तुति कर रहा हूँ।

भावार्थ- आप समस्त जीवादि पदार्थों के संशयादि रहित ज्ञाता हैं, सन्तान को माता के समान अज्ञानी जनों को हित का उपदेश देने वाले हैं और सम्यग्दर्शनादी गुणों का अन्वेषण करनेवाले भव्यसमूह के सन्मार्ग दर्शक हैं अतः आज मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी हे सुपार्श्व जिनेन्द्र! आप भक्तिपूर्वक मन वचन काय से स्तुत हो रहे हैं-मैं मनसा वाचा कर्मणा आपकी 'विशद' स्तुति कर रहा हूँ।

ज्ञाता और प्रमाता जग में, हो निःशेष तत्त्व के देव!।
शिशु को माँ सम हित उपदेशक, अनुशासन के आप सदैव॥
भव्य जनों के गुण अनुरागी, हे जगनायक! नेता आप।
नमन भक्ति से चरण आपके, कर्म शत्रु के जेता आप॥35॥

श्री चन्द्रप्रभजिन-स्तवनम्

(उपजाति छन्दः)

चन्द्रप्रभं चन्द्र-मरीचि-गौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं, जिनं जित-स्वान्त-कषाय-बन्धम्।।३६।।

अन्वयार्थः-**(अहं)** मैं **(चन्द्रमरीचिगौरं)** चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण, **(जगति)** संसार में **(द्वितीयं)** दूसरे **(चन्द्रं इव)** चन्द्रमा के समान **(कान्तं)** सुन्दर **(महतां)** इन्द्र आदि बड़े-बड़े जनों के **(अभिवन्द्यं)** वन्दनीय, **(ऋषीन्द्रं)** गणधरादि ऋषियों के स्वामी **(जिनं)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले **(जितस्वान्तकषायबन्धम्)** अपने विकारी भाव स्वरूप कषाय के बन्धन को जीतने वाले **(चन्द्रप्रभं)** चन्द्रमा के समान कान्ति के धारक चन्द्रप्रभु नामक अष्टम तीर्थंकर को **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

भावार्थ- मैं चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण संसार में दूसरे चन्द्रमा के समान सुंदर, इन्द्र आदि बड़े बड़े जनों के वंदनीय गणधरादि ऋषियों के स्वामी कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाले और अपने विकारी भाव स्वरुप कषाय के बंधन को जीतने वाले चन्द्रमा के समान कांति के धारक चन्द्रप्रभ नामक अष्टम तीर्थंकर की वंदना करता हूँ।

गौर वर्ण है चन्द्र किरण सम, कांति आपकी चन्द्र समान।
मुक्त कषायों के बन्धन से, इन्द्रिय जेता हे भगवान!॥

वन्दनीय तुम महाजनों से, ऋषि पुंगव तुम हे जिनराज!।
चन्द्र प्रभू तुम चरण कलल में, भक्त वन्दना करते आज॥36॥

यस्यांग-लक्ष्मी-परिवेष-भिन्नं तमस्तमोऽरेरिव रश्मिभिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च, ध्यान-प्रदीपाऽतिशयेन भिन्नम्।।३७।।

अन्वयार्थः-(**यस्य**) जिनके (**अंगलक्ष्मीपरिवेषभिन्नम्**) शरीर सम्बन्धी दिव्य प्रभामण्डल से विदारित (**बहु**) बहुत सारा (**बाह्यं तमः**) बाह्य अन्धकार (**च**) और (**ध्यानप्रदीपातिशयेन**) शुक्लध्यान रूपी श्रेष्ठ दीपक के अतिशय से (**भिन्नं**) विदारित (**बहु**) बहुत सारा। (**मानसं तमः**) मानसिक अज्ञानान्धकार (**तमोऽरेः**) सूर्य की (**रश्मिभिन्नं**) किरणों से विदारित (**तमः इव**) अन्धकार के समान (**ननाश**) नष्ट हो गया था।

भावार्थ- जिनके शरीर संबंधी दिव्य प्रभा मण्डल से विदारित बहुत सारा बाह्य अंधकार और शुक्लध्यान रूपी श्रेष्ठ दीपक के अतिशय से विदारित बहुत सारा मानसिक अज्ञानान्धकार सूर्य की किरणों से विदारित अन्धकार के समान नष्ट हो गया था।

अंग कांति मण्डल से जिनके, बाह्य सघनतम हुआ विनाश।
रवि की किरणों से होता ज्यों, रात्री का कालातम नाश॥
नव प्रकाश से ज्यों प्रदीप के, होवे ध्वान्त विमुक्त निशान्त।
अतिशय पूर्ण ध्यान के द्वारा, त्यों बिगलित हो अन्तर्ध्वान्त॥37॥

स्व-पक्ष-सौस्थित्य-मदाऽवलिप्ता, वाक्सिंह-नादैर्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदाऽऽर्द्रगण्डा, गजा यथा केसरिणो निनादैः।।३८।।

अन्वयार्थः-(**यथा**) जिस प्रकार (**केसरिणः**) सिंहकी (**निनादैः**) गर्जनाओं से (**मदाऽऽर्द्रगण्डाः**) मद से गीले गण्डस्थलों के धारक (**गजाः**) हाथी (**विमदाः**) मद से रहित हो जाते हैं (**तथा**) उसी प्रकार (**यस्य**) जिनके (**वाक्-स्हिंनादैः**) वचन रूप सिंहनादोंके द्वारा (**स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ताः**) अपने मत-पक्ष की सुस्थिति के घमण्ड से गर्वीले (प्रवादिनः) प्रवादी जन (**विमदाः**) गर्व रहित (**बभूवुः**) हो जाते थे।

भावार्थ- जिस प्रकार सिंह की गर्जनाओं से मद से गीले गण्डस्थलों के धारक हाथी मद से रहित हो जाते हैं उसी प्रकार जिनके वचन रूप सिंहनादों के द्वारा अपने मत-पक्ष की सुस्थिति के घमण्ड से गर्वीले प्रवादी जन गर्व रहित हो जाते थे।

गण्डस्थल मद से विलिप्त है, ऐसे उद्धत वन्य गजेन्द्र।
उच्च गर्जना से करता है, जिनको निर्मद महा मृगेन्द्र॥
इस प्रकार निज पक्ष प्रबलता, मद से जिनका बढ़ा प्रवाद।
शीघ्र नष्ट हो जाता सुनकर, जिन वाणी का सुनकर नाद॥38॥

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः, पदं बभूवाऽद्भुत-कर्मतेजाः।
अनन्त-धामाऽक्षर-विश्वचक्षुः, समन्तदुःख-क्षय-शासनश्च।।३६।।

अन्वयार्थः-(**यः**) जो (**सर्वलोके**) समस्त संसार में (**परमेष्ठितायाः**) परमाप्तपना के (**पदं**) स्थान (**बभूव**) थे (**अद्भुतकर्मतेजाः**) तीव्रतपश्चरण रूप कार्य से जिनका तेज अद्भुत अचिन्त्य था, (**अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः**) अनन्त केवलज्ञान ही जिनका लोकालोक को प्रकाशित करने वाला अविनाशी चक्षु था (**च**) और (**समन्तदुःखक्षयशासनश्च**) जिनका शासन चतुर्गति के दुःखों का क्षय करने वाला था।

भावार्थ- जो समस्त संसार में परमाप्तपना के स्थान थे, तीव्रतपश्चरण रूप कार्य से जिनका तेज अद्भुत अचिन्त्य था अथवा समस्त प्राणी समूह को प्रतिबोधित करने रूप कार्य में जिनका केवल ज्ञान रूपतेज आश्चर्य कारक था, अनंत केवल ज्ञान ही जिनका लोकालोक को प्रकाशित करने वाला अविनाशी चक्षु था और जिनका शासन चतुर्गति के दुःखों का क्षय करने वाला था।

परम पुरुषता के पदधारी, इस जग में जो हैं आसीन।
तेज विश्व में कर्म योग का, विस्मयकारी रहा नवीन॥
विश्व चक्षु अविनाशी हे जिन!, तुम अनन्त धामी स्वमेव।
दुःख क्षीण हो जाते जग के, तुम शासन में हे जिनदेव!॥39॥

स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां, विपन्न-दोषाऽभ्र-कलंक-लेपः।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

व्याकोश-वाङ्-न्याय-मयूख-मालः, पूयात् पवित्रो भगवान् मनो मे।।४०।।

अन्वयार्थः-जो (**भव्यकुमुद्वतीनां चन्द्रमाः**) भव्यजीव रूप कुमुदनियों को विकसित करने के लिये चन्द्रमा हैं, (**विपन्नदोषाऽभ्रकलंकलेपः**) जिनका रागादि दोष रूप मेघकलंक का आवरण नष्ट हो गया है, (**व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः**) जो अत्यन्त स्पष्ट वचनों के न्याय रूप किरणों की माला से युक्त हैं तथा (**पवित्रः**) कर्ममल से रहित (**सः**) वे चन्द्रप्रभ भगवान् (**मे**) मेरे (**मनः**) मन को (**पूयात्**) पवित्र करें।

भावार्थ- जो भव्यजीव रूप कुमुदनियों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा हैं, जिनका रागादि दोष रूप मेघकलङ्क का आवरण नष्ट हो गया है, जो अत्यन्त स्पष्ट वचनों के न्यायरूप किरणों की माला से युक्त हैं तथा कर्ममल से रहित होने के कारण जो अत्यंत विशुद्ध हैं वे चन्द्रप्रभ भगवान मेरे 'विशद' मन को पवित्र करें।

हृदय कुमुदनियों का होता है, शशिसम जिनसे भव्य विकाश।
मेघ निशा लक्षण से दूषित, नहीं है जिनका शुभ्र प्रकाश॥
अनेकान्त मय दिव्य देशना, का है किरण बितान महान।
'विशद' चित्त पावन पवित्र अब, कर दो चन्द्रनाथ भगवान॥40॥

श्री सुविधिनाथजिन-स्तवनम्

(उपजाति छन्दः)

एकान्तदृष्टि-प्रतिषेध तत्त्वं, प्रमाण-सिद्धं तदतत्-स्वभावम्।
त्वया प्रणीतं सुविधे! स्वधाम्ना, नैतत्समालीढ-पदं त्वदन्यैः।।४१।।

अन्वयार्थः-(**सुविधे**) हे सुविधिनाथ भगवन्! (**त्वया**) आपके द्वारा (**स्वधाम्ना**) अपने ज्ञानरूप तेज से (**प्रणीतं**) प्रतिपादित (**तत्त्वं**) जीवादि पदार्थ (**एकान्तदृष्टिप्रतिषेध**) एकान्त दर्शन का निषेध करने वाला है, (**प्रमाणसिद्धं**) प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध है तथा (**तदतत्स्वभावम्**) तत् और अतत् स्वभाव के लिए है अर्थात् विधि निषेध रूप है। हे भगवन् (**एतत्**) यह तत्त्व (**त्वदन्यैः**) आपसे भिन्न सुगत आदि के द्वारा (**समालीढपदं न**) अनुभूत स्थान वाला नहीं है, सुगतादि के द्वारा ऐसा तत्त्व प्रतिपादित नहीं हो सकता है।

भावार्थ- हे सुविधिनाथ भगवान्! आपके द्वारा अपने ज्ञानरूप तेज से प्रतिपादित जीवादि पदार्थ एकान्त दर्शन का निषेध करने वाला है, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है तथा तत् और अतत् स्वभाव को लिए है अर्थात विधि निषेध रूप है। हे भगवन् यह तत्त्व आपसे भिन्न सुगत आदि के द्वारा अनुभूत स्थान वाला नहीं है सुगतादि के द्वारा ऐसातत्त्व प्रतिपादित नहीं हो सका है।

किसी रूप है तत्त्व कथंचित, और कथंचित अन्य स्वरूप।
दृष्टि नहीं एकान्त रूप शुभ, स्याद्वाद है दृष्टि अनूप॥
बात आपने यही प्रमाणिक, कही ज्ञान से हे सुविधीश!।
समझ ना पाए श्रेष्ठ कथन ये, नाथ! अन्य जग के वागीश॥41॥

तदेव च स्यान् न तदेव च स्यात्, तथाप्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित्।
नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च, विधेनिर्षेधस्य च शून्य-दोषात्।।४२।।

अन्वयार्थ-हे सुविधि जिनेन्द्र! (**तव**) आपका (**तत्**) वह तत्त्व (**कथञ्चित्**) किसी अपेक्षा से (**तदेव**) तद्रूप है (**च**) और किसी अपेक्षा से (**तदेव न स्यात्**) तद्रूप नहीं है क्योंकि (**तथा प्रतीतेः**) उस प्रकार की प्रतीति होती है। (**विधेः**) विधि (**च**) और (**निषेधस्य**) निषेध में (**अत्यन्तं**) सर्वथा (**न अन्यत्वम्**) न भिन्नता है (**च**) और (**न अनन्यता**) न अभिन्नता है क्योंकि ऐसा मानने से (**शून्यदोषात्**) शून्यता का दोष लगता है।

भावार्थ- हे सुविधि नाथ जिनेन्द्र! आपका वह तत्त्व किसी अपेक्षा से तद्रूप ही है और किसी अपेक्षा से तद्रूप नहीं है क्योंकि उस प्रकार की प्रतीति होती है। विधि और निषेध में सर्वथा न भिन्नता है और न अभिन्नता है क्योंकि ऐसा मानने से शून्यता का दोष आता है।

जो पदार्थ है निज स्वभाव के, दृष्टिकोंण अस्ति स्वरूप।
वही प्रमाणित पर स्वभाव से, दृष्टिकोंण से नास्ति स्वरूप॥
विधि निषेध यह वस्तु तत्त्व में, नहीं अन्य हैं नहीं अनन्य।
शून्य होयगा सब कुछ ही यदि, माने कोइ एकान्तिक जन्य॥42॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

नित्यं तदेवेदमिति प्रतीतेर्-न नित्यमन्यत्-प्रतिपत्ति-सिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरंग-, निमित्त-नैमित्तिक-योगतस्ते।।४३।।

अन्वयार्थ–हे भगवन! **(इदं तदेव)** यह वही है **(इति)** इस प्रकार **(प्रतीतेः)** प्रतीति होने से तत्त्व **(नित्यं)** नित्य है और **(अन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः)** यह अन्य है इस प्रकार प्रतीति होने से **(नित्यं न)** नित्य नहीं है तथा **(ते)** आपके मत में **(बहिरन्तरंग)** बहिरंग व अन्तरंग **(निमित्त)** कारण और **(नैमित्तिक)** कार्य के **(योगतः)** योग से **(तद्)** वह नित्यानित्यात्म तत्त्व **(विरुद्धं न)** विरुद्ध भी नहीं है।

भावार्थ– हे भगवन्! यह वही है इस प्रकार प्रतीति होने से तत्त्व है और यह अन्य है इस प्रकार प्रतीति होने से नित्य नहीं है तथा आपके मत में बहिरंग अंतरंग कारण और कार्य के योग से वह नित्यानित्यात्म तत्त्व विरूद्ध भी नहीं हैं।

यह है वही वस्तु ऐसा जो, नित्य बताता है सद्ज्ञान।
"रहा नहीं वह" यह प्रतीत का, तत्त्व अनित्य बताए मान॥
है विरोध उसमें ना क्योंकि, मिलते अन्तर्बाह्य निमित्त।
उस पदार्थ को ही परिवर्तित, मान लिया करता है चित्त॥43॥

अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं, वृक्षा इति प्रत्ययवत् प्रकृत्या।
आकाङ्क्षिणः स्यादिति वै निपातो, गुणाऽन-पेक्षे नियमेऽपवादः।।४४।।

अन्वयार्थः–हे भगवन्! **(पदस्य)** सुबन्त तिङन्त रूप शब्द का **(वाच्यं)** अभिधेय-प्रतिपाद्य विषय **(प्रकृत्या)** स्वभाव से ही **(वृक्षा इति प्रत्ययवत्)** वृक्ष इस ज्ञान की तरह **(अनेकं)** अनेक **(च)** और **(एकं)** एक दोनों रूप होता है। **(आकाङ्क्षिणः)** विरोधी धर्म के प्रतिपादन की इच्छा रखने वाले पुरुष के **(स्यात् इति निपातः)** कथञ्चित् अर्थ का प्रतिपादक स्यात् यह शब्द **(गुणानपेक्षे)** गौण अर्थ की अपेक्षा न रखने वाले **(नियमे)** सर्वथा एकान्त रूप कथन में **(वै)** निश्चय से **(अपवादः)** बाधक हैं।

भावार्थ– हे भगवन्! सुबन्ततिङ्त रूपशब्द का अभिधेय-प्रतिपाद्य विषय स्वभाव से ही वृक्ष इस ज्ञान की तरह अनेक और एक दोनों रूप होता है। विरोधी धर्म के प्रतिपादन की इच्छा रखने वाले पुरुष के कथंचित् अर्थ का प्रतिपादक स्यात् यह शब्द गौण अर्थ की अपेक्षा न रखने वाले सर्वथा एकान्त रूप कथन में निश्चय से बाधक है।

वृक्ष कथन से हो जाता है, जैसे वृक्ष वस्तु का ज्ञान।
वैसे एकानेक कथन से, एकानेक की हो पहिचान॥
होय विवक्षा द्वारा किन्तू, किसी वस्तु का मुख्य विचार।
गौण दृष्टि भी होय साथ ही, हो ना उपेक्षित किसी प्रकार॥44॥

गुण-प्रधानाऽर्थमिदं हि वाक्यं, जिनस्य ते तद् द्विषता-मपथ्यम्।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां, ममापि साधोस्तव पादपद्मम्।।४५।।

अन्वयार्थ–हे भगवन् **(जिनस्य)** कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाले **(ते)** आपका **(इदम्)** यह जो **(गुणप्रधानार्थम्)** गौण और प्रधान अर्थ से युक्त **(वाक्यं)** वाक्य है **(तद्)** वह **(हि)** निश्चय से **(द्विषताम्)** द्वेष रखने वाले सर्वथा एकान्तवादियों के लिये **(अपथ्यम्)** अनिष्ट है **(ततः)** इसलिए **(साधोः)** समस्त कर्मों का क्षय करने के लिये प्रयत्नशील **(तव)** आपके **(पादपद्मं)** चरणकमल **(जगदीश्वराणां)** तीनों जगत् के स्वामी इन्द्र चक्रवर्ती तथा धरणेन्द्र के और **(ममापि)** मुझ समन्तभद्र के भी **(अभिवन्द्यं)** वन्दनीय हैं।

भावार्थ– हे भगवन्! कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाला आपका यह जो गौण और प्रधान अर्थ से युक्त वाक्य है वह निश्चय से द्वेष रखने वाले सर्वथा एकान्तवादियों के लिए अनिष्ट है। इसलिए समस्त कर्मों का क्षय करने के लिए प्रयत्नशील आपके चरणकमल तीनों जगत् के स्वामी इन्द्र, चक्रवर्ती तथा धरणेन्द्र के और मुझ समन्तभद्र के भी 'विशद' वंदनीय हैं।

गौण प्रधान अर्थ युत पावन, नाथ! आपका कथन यथार्थ।
रहे विरोधी वादि जनों के, कथन में जो भी आएँ पदार्थ॥
वन्दन करते इसीलिए इस, जगती के ऐश्वार्याधीश।
नाथ! आपके चरण कमल में, हम भी झुका रहे हैं शीश॥45॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

श्री शीतलजिन-स्तवनम्

(वंशस्थ छन्दः)

न शीतलाश्चन्दन चन्द्ररश्मयो, न गांगमम्भो न च हारयष्ट्यः।
यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयः, शमाऽम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम्।।४६।।

अन्वयार्थ–हे भगवन! **(मुनेः ते)** चराचर को प्रत्यक्ष जानने वाले आप शीतल जिनेन्द्र की **(शमाऽम्बुगर्भाः)** शान्तिरूप जल से मिश्रित **(अनघवाक्यरश्मयः)** निर्दोष वचन रूप किरणें **(विपश्चितां)** हेयोपादेय तत्त्व को जानने वाले विद्वानों के लिये **(यथा)** जिस प्रकार **(शिशिराः)** शीतल है। संसार संताप को नष्ट कर शान्ति पहुँचाने वाली हैं। तथा उसी प्रकार **(चन्दनचन्द्ररश्मयः)** चन्दन और चन्द्रमा की किरणें **(न शीतलाः)** शीतल नहीं हैं **(गांगमम्भः)** गंगा नदी का जल **(न शीतलाः)** शीतल नहीं हैं **(च)** और **(हारयष्ट्यो न शीतलाः)** मोतियों की मालाएँ शीतल नहीं हैं।

भावार्थ– हे भगवन्! चराचर को प्रत्यक्ष जानने वाले आप शीतल जिनेन्द्र की शांतिरूप जल से मिश्रित निर्दोष वचन रूप किरणें हेयोपादेय तत्त्व को जानने वाले विद्वानों के लिए जिस प्रकार शीतल हैं संसार ताप को नष्ट कर शांति पहुँचाने वाली हैं उस प्रकार चन्दन और चन्द्रमा की किरणें शीतल नहीं है गंगा नदी का जल शीतल नहीं है और मोतियों की मालाएँ शीतल नही हैं।

नाथ! आपका वीतरागमय, रसपूरित सम वचन प्रसाद।
भवि जीवों को 'शांति प्रदायक, और मिटाए खेद विषाद॥
शाँति ना देते वैसी, चंदन चन्द्र किरण गंगा का नीर।
सब अशक्त हैं हे शीतल जिन!, मुक्तामाला मलय समीर॥46॥

सुखाऽभिलाषाऽनल-दाह-मूर्च्छितं, मनो निजं ज्ञानमयाऽमृताम्बुभिः।
व्यदिध्यपस्त्वं विष-दाह-मोहितं, यथा भिषग्मन्त्र-गुणैः स्व-विग्रहम्।।४७।।

अन्वयार्थः–**(यथा)** जिस प्रकार **(विषदाहमोहितं)** विष रूपी दाह से मूर्च्छित **(स्वविग्रहं)** अपने शरीर को **(भिषक्)** वैद्य **(मन्त्रगुणैः)** मन्त्र के गुणों के द्वारा शान्त करता है उसी प्रकार हे भगवन्! **(त्वं)** आपने **(सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं)** वैषयिक सुखों की अभिलाषा रूप अग्नि की दाह से मूर्च्छित **(निजं)** अपने **(मनः)** मन को **(ज्ञानमयामृताम्बुभिः)** ज्ञानामृतरूप जल के द्वारा **(व्यदिध्यपः)** शान्त किया था।

भावार्थ– जिस प्रकार विष रूपी दाह से मूर्च्छित अपने शरीर को वैद्य मन्त्र के गुणों के द्वारा शान्त करता है उसी प्रकार हे भगवन्! आपने वैषयिक सुखों की अभिलाषा रूप अग्नि की दाहसे मूर्च्छित अपने मन को ज्ञानामृत रूप जल के द्वारा शांत किया था।

सांसारिक सुख की आकांक्षा, की चिन्गारी से मन क्लान्त।,
आत्म ज्ञान अमृत के द्वारा, किया आपने उसको शान्त॥
विष की ज्वाला से जलता हो, जिस प्रकार से आत्म शरीर।
कुशल वैद्य निर्विषकर देता, उसे डालकर मंत्रित नीर॥47॥

स्व-जीविते काम-सुखे च तृष्णया, दिवा-श्रमाऽऽर्ता निशि शेरते प्रजाः।
त्वमार्य! नक्तं-दिवमप्रमत्तवा-नजागरेवाऽऽत्म-विशुद्ध-वर्त्मनि।।४८।।

अन्वयार्थ–**(प्रजाः)** लौकिक जन **(स्वजीविते)** अपने जीवन **(च)** और **(कामसुखे)** स्त्री आदि की अभिलाषा से उत्पन्न काम सुख की **(तृष्णया)** तृष्णा से **(दिवा)** दिन में **(श्रमार्ताः)** सेवाकृषि आदि के श्रम से दुखी रहते हैं और **(निशि)** रात्रि में **(शेरते)** सो जाते हैं परन्तु **(हे आर्य)** हे शीतलनाथ! **(त्वम्)** आप **(नक्तंदिवम्)** रातदिन **(अप्रमत्तवान्)** प्रमाद रहित हो **(आत्मविशुद्धवर्त्मनि)** आत्मा को अत्यन्त शुद्ध करने वाले सम्यग्दर्शनादि रूप मार्ग में **(अजागः एव)** जागते ही रहे हैं।

भावार्थ– लौकिक जन अपने जीवन और स्त्री आदि की अभिलाषा से उत्पन्न काम सुख की तृष्णा से दिन में सेवा कृषि आदि के श्रम से दुखी रहते हैं और रात्रि में सो जाते हैं परन्तु हे पूज्य शीतल जिनेन्द्र! आप रातदिन प्रमादरहित हो आत्मा को अत्यंत शुद्ध करनेवाले सम्यग्दर्शनादि रूपमार्ग में जागते ही रहे हैं।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

उदर भरण या इन्द्रिय सुख के, साधन में तृष्णातुर जीव।
रात और दिन सोकर खोते, हो जाते हैं श्रान्त अतीव॥
शुद्धातम के शुद्ध मार्ग में, नाथ! आप रहते हो लीन।
अहोरात्रि दोनों में जागृत, निस्प्रमाद होकर स्वाधीन॥48॥

अपत्य-वितोत्तर-लोक-तृष्णया, तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते।
भवान् पुनर्जन्म-जरा-जिहासया, त्रयीं प्रवृत्तिं समधीरवारुणत्॥४६॥

अन्वयार्थः-(**केचन**) कितने ही (**तपस्विनः**) अग्निहोतृ आदि, दयनीय प्राणी अथवा व्रतीजन (**अपत्यवितोत्तरलोकतृष्णया**) सन्तान धन तथा उत्तरलोकपरलोक या उत्कृष्ट लोक की तृष्णा से (**कर्म**) अग्निहोम आदि कार्य (**कुर्वते**) करते हैं (**पुनः**) किन्तु (**भवान्**) आपने (**समधीः**) समबुद्धि होकर (**जन्मजराजिहासया**) जन्म और जरा को छोड़ने की इच्छा से (**त्रयीं प्रवृत्तिं**) मन, वचन और कार्य की प्रवृत्ति को (**अवारुणत्**) रोका है।

भावार्थ- कितने ही अग्नि होतृ आदि, दयनीय प्राणी अथवा व्रती जन सन्तान, धन तथा उत्तरलोक-परलोक या उत्कृष्टलोक की तृष्णा से अग्निहोम आदि कार्य करते हैं किंतु आपने सम बुद्धि होकर जन्म और जरा को छोड़ने की इच्छा से मन वचन काय की प्रवृत्ति को रोका है अथवा सम्यग्दर्शन सम्यकज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप भेद रत्नत्रय को दूरकर शुद्ध आत्म स्वरूप की लीनता रूप अभेद रत्नत्रय को अङ्गीकृत किया है।

द्रव्य-पुत्र पर लोकाकांक्षी, हैं इस जग में सारे जीव।
क्रिया काण्ड अज्ञानी होकर, जप तप आदिक करें अतीव॥
नाथ! आपने लक्ष्य बनाया, करना जन्म जरा का नाश।
द्रव्य-पुत्र पर लोकाकांक्षा, की भी छोड़ चुके हो आश॥49॥

त्वमुत्तम-ज्योतिरजः क्व निर्वृतः क्व ते परे बुद्धि-लवोद्धवक्षताः।
ततः स्व निःश्रेयस-भावनापरै-र्बुध-प्रवेकैर्जिन-शीतलेड्यसे॥५०॥

अन्वयार्थः-हे शीतल जिना हे शीतलनाथ जिनेन्द्र! (**उत्तम ज्योतिः**) केवल ज्ञानरूप उत्कृष्ट ज्योति से सहित (**अजः**) पुनर्जन्म से रहित

और (**निर्वृतः**) सुखीभूत (**त्वम्**) आप (**क्व**) कहाँ और (**बुद्धिलवोद्धवक्षताः**) ज्ञान के लेशमात्र से उत्पन्न गर्व से नष्ट (**ते परे**) वे हरि हर आदि अन्य देवता (**क्व**) कहाँ? दोनों में महान् अन्तर है (**ततः**) इसलिए (**स्व-निःश्रेयसभावनापरैः**) आत्मकल्याण की भावना में तत्पर (**बुधप्रवेकैः**) श्रेष्ठविद्वानों- गणधरादिक श्रेष्ठ ज्ञानियों के द्वारा (**ईड्यसे**) आप स्तुत हो रहे हैं-आपकी स्तुति की जा रही है।

भावार्थ- हे शीतल जिनेन्द्र! केवलज्ञान रूप उत्कृष्ट ज्योति से सहित पुनर्जन्म से रहित और सुखी भूत आप कहाँ और ज्ञान के लेशमात्र से उत्पन्न गर्व से नष्ट वे हरिहर हिरण्यगर्भ आदि अन्य देवता कहाँ? दोनों में महान् अंतर है इसीलिए आत्मकल्याण की भावना में तत्पर श्रेष्ठ विद्वानों-गणधरादिक श्रेष्ठ ज्ञानियों के द्वारा आप स्तुत हो रहे हैं-आपकी 'विशद' स्तुति की जा रही है।

आत्म गुणों का क्षुद्र बुद्धि से, उद्धत होकर करें विनाश।
वे अज्ञानी कहाँ औ स्वामी, कहाँ आपका विमल प्रकाश॥
जन्म जरा मृत्यू से विरहित, हे निर्वाण धाम के ईश!।
शिव साधक विद्वानों द्वारा, पूज्य आप हो हे जगदीश!॥50॥

श्री श्रेयोजिन-स्तवनम्

(उपजाति छन्दः)

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः, श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः।
भवांश्चकासे भुवनत्रयेऽस्मिन्-नेको यथा वीतघनो विवस्वान्॥५१॥

अन्वयार्थः-(**अजेयवाक्यः**) अबाधित वचनों से युक्त (**श्रेयान् जिनः**) हे श्रेयोजिन! (**इमाः प्रजाः**) इन संसारी जनों की (**श्रेयसि वर्त्मनि**) कल्याणकारी मोक्षमार्ग में (**श्रेयः शासत्**) हित का उपदेश देते हुए (**भवान्**) आप (**अस्मिन् भुवनत्रये**) इन तीनों लोकों में (**एकः**) अकेले ही (**वीतघनः**) मेघों के आवरण से रहित (**विवस्वान् यथा**) सूर्य के समान (**चकासे**) प्रकाशमान हुए हैं।

भावार्थ- अबाधित वचनों से युक्त हे श्रेयो जिन! इन संसारी जनों को कल्याणकारी मोक्षमार्ग में हित का उपदेश देते हुए आप इन तीनों लोकों

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

में अकेले ही मेघों के आवरण से रहित सूर्य के समान प्रकाशमान हुए हैं।

मुक्ती पथ के पथिक जनों को, दिया आपने सद्उपदेश।
निर्बाधित हैं वचन आपके, जग में हे श्रेयांस!जिनेश!॥
पथिक गमन करते प्रकाश में, मेघ रहित रवि का हो खास।
तीन लोक में नाथ! आपका, त्यों ही फैला हुआ प्रकाश॥51॥

विधिर्विषक्त-प्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम्।
गुणोऽपरो मुख्य-नियामहेतुर्नयः स दृष्टान्तसमर्थनस्ते।।५२।।

अन्वयार्थः-हे श्रेयोजिन! **(ते)** आपके मत में **(विषक्तप्रतिषेधरूपः)** जिसमें कथंचित् पर चतुष्टय की अपेक्षा नास्तित्त्व रूप भी तादात्म्यसम्बन्ध से सम्बद्ध है ऐसा **(विधिः)** स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तित्त्व **(प्रमाणं)** प्रमाण का विषय है। **(अत्र)** इन विधि और प्रतिषेध में **(अन्यतरत्)** एक **(प्रधानम्)** प्रधान है और **(अपरः)** दूसरा **(गुणः)** अप्रधान है। यहाँ **(मुख्यनियामहेतुः)** मुख्य के नियम का जो हेतु है **(नयः)** वह नय है तथा **(सः)** वह नय **(दृष्टान्तसमर्थनः)** दृष्टान्त का समर्थन करने वाला होता है।

भावार्थ- हे श्रेयोजिन! आपके मत में जिसमें कथंचित् पर चतुष्ट्य की अपेक्षा नास्तित्त्व रूप भी तादात्म्यसम्बन्ध से सम्बद्ध है ऐसा स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तित्त्व प्रमाण का विषय है। इन विधि और प्रतिषेध में एक प्रधान है और दूसरा अप्रधान है। यहाँ मुख्य के नियम का जो हेतु है वह नय है तथा वह नय दृष्टान्त का समर्थन करने वाला है।

विधि निषेध धर्मात्म वस्तु को, जाने सो है ज्ञान प्रमाण।
सर्वदेश यह रहा नयों के, द्वारा होता भेद विधान॥
विधि निषेध में मुख्य गौणता, का नय से हो नियम विचार।
पुनः समर्थन दृष्टान्तों से, रहा देव कथनी का सार॥52॥

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो, गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते।
तथाऽरिमित्राऽनुभयादि-शक्तिः द्वयाऽवधिः कार्यकरं हि वस्तु।।५३।।

अन्वयार्थः-हे भगवन! **(ते)** आपके मत में **(विवक्षितः)** विवक्षित

पदार्थ **(मुख्य इतीष्यते)** मुख्य कहलाता है और **(अन्यः)** दूसरा अविवक्षित पदार्थ **(गुणः)** गौण कहलाता है। **(अविवक्षः)** जो पदार्थ अविवक्षित हैं वह रज **(निरात्मकः न)** अभावरूप नहीं है **(तथा)** मुख्य और गौण की इस विधि से **(वस्तु)** पदार्थ **(अरिमित्राऽनुभयादिशक्तिः)** शत्रु मित्र और अनुभय आदि शक्तियों से युक्त होती है **(हि)** निश्चय से समस्त पदार्थों की **(द्वयावधिः)** भाव अभाव अथवा द्रव्य और पर्याय रूप मर्यादा है और उसी मर्यादा का आश्रय कर वस्तु **(कार्यकरं)** कार्यकारी होती है।

भावार्थ- हे भगवन्! आपके मत में विवक्षित पदार्थ मुख्य कहलाता है और दूसरा- अविवक्षित पदार्थ गौण कहलाता है। जो पदार्थ अविवक्षित है वह अभावरूप नहीं है मुख्य और गौण की इस विधि से पदार्थ शत्रु मित्र और अनुभय आदि शक्तियों से युक्त होते हैं निश्चय से समस्त पदार्थों की भाव अभाव अथवा द्रव्य और पर्याय रूप मर्यादा है और उसी मर्यादा का आश्रयकर वस्तु कार्यकारी होती है।

धर्म विवक्षा मुख्य कहाए, अविवक्षित कहलाए गौण।
रहित विश्व में उभय धर्म से, है पदार्थ बतलाओ कौन॥
मित्र किसी का एक व्यक्ति है, वही किसी का शत्रु विशेष।
शत्रुमित्र ना कोई किसी का, दोनों रूप पदार्थ अशेष॥53॥

दृष्टान्त-सिद्धावुभयोर्विवादे, साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगस्ति।
यत्सर्वथैकान्त-नियामिदृष्टं, त्वदीय-दृष्टिर्विभवत्यशेषे।।५४।।

अन्वयार्थः-**(उभयोः)** वादी और प्रतिवादी के **(विवादे)** विवाद में **(दृष्टान्तसिद्धौ)** उदाहरणकी सिद्धि होने पर **(साध्यं)** साध्य **(प्रसिध्येत्)** अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है **(तु)** परन्तु **त्वदीय**-आपकी **(तादृक् न दृष्टं अस्ति)** वैसी दृष्टान्तभूत कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं है **(यत्)** जो **(सर्वथैकान्तनियामि)** सर्वथा अनेकान्त मत **(अशेषे)** समस्त-साध्य, साधन और दृष्टान्त में **(विभवति)** अपना प्रभाव डाले हुए है।

भावार्थ- वादी और प्रतिवादी के विवाद में उदाहरण की सिद्धि होने पर साध्य अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है परन्तु वैसी दृष्टान्त भूत कोई वस्तु

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

दृष्टिगोचर नही है जो सर्वथा एकांतवाद का नियमन करने वाली हो क्योंकि आपका अनेकान्त मत समस्त-साध्य, साधन और दृष्टान्त में अपना प्रभाव डाले हुए है।

जग व्यापी सिद्धान्त आपका, अनेकान्तमय प्रभो! अबाध्य।
विशद सिद्ध दृष्टान्त देखकर, सिद्ध शीघ्र होते हैं साध्य॥
वादी प्रतिवादी दोनों को, जिसके बिना ना हो सन्तोष।
अतः सदा एकान्त दृष्टि में, बने रहा करते हैं दोष॥54॥

एकान्त-दृष्टि-प्रतिषेध-सिद्धि-र्न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य।
असि स्म कैवल्य-विभूति-सम्राट्, ततरस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवाऽर्हः।।५५।।

अन्वयार्थः- हे श्रेयो जिनेन्द्र! **(एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिः)** एकान्तदृष्टि के निषेध की सिद्धि **(न्यायेषुभिः)** न्याय रूप बाणों के द्वारा होती है अर्थात् आपने न्याय रूप बाणों के द्वारा सर्वथा एकांत वादियों का निराकरण कर उन पर विजय प्राप्त की है और **(यतः)** जिस कारण आप **(मोहरिपुं)** अज्ञानरूपी शत्रु अथवा मोहनीय आदि कर्मों को **(निरस्य)** नष्ट कर **(कैवल्यविभूतिसम्राट्)** केवलज्ञान रूप विभूति अथवा समवशरणादि रूप लक्ष्मी के सम्राट् **(असि स्म)** हुए हैं **(ततः)** इस कारण **(अर्हन्)** हे अर्हन्त! **(त्वम्)** आप **(मे)** मेरे **(स्तवार्हः)** स्तवन के योग्य **(असि)** हैं अर्थात् मैं आपकी स्तुति करता हूँ।

भावार्थ- हे श्रेयो जिनेन्द्र! एकान्तदृष्टि के निषेध की सिद्धि न्याय रूप वाणों के द्वारा होती है अर्थात् आपने न्याय रूपी वाणी के द्वारा सर्वथा एकान्त वादियों का निराकरण कर उन पर विजय प्राप्त की है और जिस कारण आप अज्ञानरूपी शत्रु अथवा मोहनीय कर्म से युक्त ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों को नष्ट कर केवल ज्ञानरूप विभूति अथवा समवशरणादि रूप लक्ष्मी के सम्राट हुए हैं इस कारण हे अर्हन्त आप मेरे स्तवन के योग्य हैं अर्थात मैं आपकी 'विशद' स्तुति करता हूँ।

अनेकांत की सिद्धि प्रदायक, न्याय दृष्टि के लेकर बाण।

शत्रु मोह अज्ञान आत्म के, हरण किए हैं उनके प्राण॥
आत्म बोध वैभव की स्वामी, आप दिखाए अनुपम राह।
अतः आपकी स्तुति करने, की है मेरे मन में चाह॥55॥

श्री वासुपूज्यजिन-स्तवनम्

(उपजाति छन्दः)

शिवासु पूज्योऽभ्युदय-क्रियासु, त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्र-पूज्यः।
मयाऽपि पूज्योऽल्प-धिया मुनीन्द्र, दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः।।५६।।

अन्वयार्थः-हे मुनीन्द्र! हे गणधरादि मुनियों के स्वामिन्। **(शिवासु)** कल्याणकारिणी **(अभ्युदयक्रियासु)** स्वर्गावतरण आदि कल्याणकों की क्रियाओं में **(पूज्यः)** पूज्य **(वासुपूज्यः)** वासुपूज्य नाम को धारण करने वाले **(त्वम्)** आप चूंकि **(त्रिदशेन्द्रपूज्यः)** इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि के द्वारा पूज्य हैं अतः **(अल्पधिया)** अल्पबुद्धि के धारक **(मयापि)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी **(पूज्य)** पूज्य हैं **(किं)** क्या **(दीपार्चिषा)** दीपशिखा के द्वारा **(तपनः)** सूर्य **(न पूज्यः)** पूजनीय नहीं होता?

भावार्थ- हे गणधरादि मुनियों के स्वामी! कल्याणकारिणी स्वर्गावतरण आदि कल्याणकों की क्रियाओं में पूज्य वासुपूज्य नाम को धारण करने वाले आप चूंकि इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि के द्वारा पूज्य हैं अतः अल्पबुद्धि के धारक मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी पूज्य हैं क्या दीपशिखा के द्वारा सूर्य पूजनीय नहीं होता?

मंगलमय कल्याण क्रियाओं, में हो पूज्य आप हे नाथ!।
वसूपूज्य नृप के सुत तुम पद, पूजें इन्द्र झुकाएँ माथ॥
हम जैसे अल्पज्ञों द्वारा, पूज्य आप हो हे जिननाथ!।
पूजा जाता दीप शिखा से, दीप्तिमान रवि ज्यों दिननाथ!॥56॥

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ! विवान्त-वैरे।
तथापि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः।।५७।।

अन्वयार्थः-(नाथ!) हे स्वामिन्! यद्यपि **(वीतरागे)** राग से रहित **(त्वयि)** आप में **(पूजया)** पूजा के द्वारा **(अर्थःन)** प्रयोजन नहीं

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

है और **(विवान्तवैरे)** बैर से रहित आप में **(निन्दया)** निन्दा के द्वारा **(अर्थः न)** मतलब नहीं है **(तथापि)** तो भी **(ते)** आपके **(पुण्यगुणस्मृतिः)** प्रशस्त गुणों का स्मरण **(नः)** हमारे **(चित्तं)** मन को **(दुरिताञ्जनेभ्यः)** पापरूपी अञ्जन से **(पुनातु)** पवित्र करें-दूर रखें।

भावार्थ- हे स्वामिन्! यद्यपि राग से रहित आप में पूजा के द्वारा प्रयोजन नहीं है और वैर से रहित आपमें निन्दा के द्वारा मतलब नहीं है तो भी आपके प्रशस्त गुणों का स्मरण हमारे मन को पापरूपी अञ्जन से पवित्र करें-दूर रखें।

नहीं प्रयोजन पूजा से है, वीतराग हैं आप महान।
द्वेष रहित हो अतः नहीं है, रोष बुद्धि निन्दन का ध्यान॥
नाथ! आपके पुण्य गुणों का, फिर भी स्मरण होय पवित्र।
दूर हटाकर दुरित वासना, करता पावन चित्त परित्र॥57॥

पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य, सावद्य-लेशो बहु-पुण्य-राशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीत-शिवाऽम्बुराशौ।।५८।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! **(पूज्यं)** इन्द्र आदि के द्वारा पूजनीय तथा **(जिनं)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले **(त्वा)** आपकी **(अर्चयतः)** पूजा करने वाले **(जनस्य)** मनुष्य के जो **(सावद्यलेशः)** सराग परिणति अथवा आरम्भादि जनित थोड़ा सा पाप का लेश होता है वह **(बहुपुण्यराशौ)** बहुत भारी पुण्य की राशि में **(दोषाय)** दोष के लिये **(अलं न)** समर्थ नहीं है, क्योंकि **(विषस्य)** विष की **(कणिका)** अल्पमात्रा **(शीतशिवाम्बुराशौ)** शीतल एवं आह्लादकारी जल से युक्त समुद्र में **(दूषिका न)** दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है।

भावार्थ-हे भगवन्! इन्द्र आदि के द्वारा पूजनीय तथा कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले आपकी पूजा करने वाले मनुष्य के जो सरागपरिणति अथवा आरम्भादिजनित थोड़ा सा पाप का लेश होता है वह बहुत भारी पुण्य की राशि में दोष के लिए समर्थ नहीं है क्योंकि विष की अल्पमात्रा शीतल एवं आह्लादकारी जल से युक्त समुद्र में दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है।

नाथ! आपकी अर्चा करते, हैं इस जग के सारे जीव।
दूषण होते हैं पूजा में, उनके द्वारा अल्प अतीव॥
हे स्वामी! कर सकें नहीं वे, विशद पुण्य में जरा विकार।
सागर के जल में विष का कण, क्या हो सकता दूषणकार॥58॥

यद्वस्तु बाह्यं गुण-दोष-सूतेर्, निमित्तमभ्यन्तर-मूलहेतोः।
अध्यात्म-वृत्तस्य तदंगभूत-मभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते।।५६।।

अन्वयार्थः- **(यद् वस्तु)** जो पुण्यादिक पदार्थ **(गुणदोषसूतेः)** पुण्य और पाप की उत्पत्ति के **(बाह्यं)** बहिरंग **(निमित्तं)** कारण हैं **(तद्)** वह **(अध्यात्मवृत्तस्य)** आत्मा में प्रवर्तने वाले **(अभ्यन्तरमूलहेतोः)** अन्तरंग-उपादानरूप मूलकारण का **(अंगभूतं)** सहकारी कारण है। हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(अभ्यन्तरं)** अन्तरंग कारण **(केवलमपि)** बाह्य वस्तु से निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों ही प्रकार का **(अलं)** गुण दोष की उत्पत्ति में समर्थ है।

भावार्थ- जो पुण्यादिक पदार्थ पुण्य और पाप की उत्पत्ति के बहिरङ्ग कारण हैं वह आत्मा में प्रवर्तने वाले अंतरङ्ग-उपादानरूप मूलकारण का सहकारी कारण है। हे भगवन्! आपके मत में अंतरङ्ग कारण बाह्य वस्तु से निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों ही प्रकार के गुण दोष की उत्पत्ति में समर्थ है।

बाह्य वस्तु है गुण दोषों की, उत्पत्ती में मात्र निमित्त।
इनका सम्बल पाकर क्योंकि, अन्तर्गति करता है चित्त॥
सच्चे फल कारक होते हैं, जीवों के अभ्यन्तर भाव।
अंग भूत हैं वे भी उनके, जिनका है आध्यात्म स्वभाव॥59॥

बाह्येतरोपाधि-समग्रतेयं, कार्येषु ते द्रव्य-गतः स्वभावः।
नैवाऽन्यथा मोक्ष-विधिश्च पुंसां, तेनाऽभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम्।।६०।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! **(कार्येषु)** घर आदि कार्यों में **(इयं)** यह जो **(बाह्येतरोपाधिसमग्रता)** बाह्य और आभ्यन्तर कारणों की पूर्णता है वह **(ते)** आपके मत में **(द्रव्यगतः)** जीवादि द्रव्यगत **(स्वभावः)** स्वभाव

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

है **(अन्यथा)** अन्य प्रकार से घटादि की विधि ही नहीं किन्तु **(पुंसां)** मोक्षाभिलाषी पुरुषों के **(मोक्षविधिश्च)** मोक्षकी विधि भी **(नैव)** घटित नहीं होती है **(तेन)** इसलिए **(ऋषिः)** परम ऋद्धियों से युक्त **(त्वम्)** आप **(बुधानां)** गणधरादिक जीवों के **(अभिवन्द्यः)** वन्दनीय हैं।

भावार्थ- हे भगवन्! घट आदि कार्यों में यह जो बाह्य और आभ्यन्तर कारणों की पूर्णता है वह आपके मत में जीवादि द्रव्य गत स्वभाव है अन्य प्रकार से घटादि की विधि ही नहीं किन्तु मोक्षाभिलाषी पुरुषों के मोक्ष की विधि भी घटित नहीं होती है इसीलिए पर ऋद्धियों से युक्त आप गणधरादि 'विशद' बुधजनों के वंदनीय हैं।

बाह्य और अन्तर कारण के, मिलने पर होता है कार्य।
है स्वभाव द्रव्य का ऐसा, जो है आवश्यक अनिवार्य॥
मोक्ष मार्ग ना हो सकता है, इसके बिना कहें तीर्थेश।
अतः आपके चरणों करते, नमन लोकवर्ती विबुधेश॥60॥

श्री विमलजिन-स्तवनम्

(वंशस्थ छन्दः)

य एव नित्य-क्षणिकादयो नया, मिथोऽनपेक्षाः स्व-पर-प्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः, परस्परेक्षाः स्व-परोपकारिणः।।६१।।

अन्वयार्थः-**(ये एव)** जो ही **(नित्यक्षणिकादयः नया)** नित्य अथवा क्षणिक आदि नय **(मिथोऽनपेक्षाः)** परस्पर में निरपेक्ष होकर अन्य मतों में **(स्वपरप्रणाशिनः)** निज और पर का नाश करने वाले हैं **(ते एव नया)** वे ही नय **(परस्परेक्षाः)** परस्पर की अपेक्षा रखते हैं **(स्वपरोपकारिणः)** निज और पर का उपकार करनेवाले होकर **(मुनेः)** प्रत्यक्षज्ञानी **(ते)** आप **(विमलस्य)** विमल जिनेन्द्र के मत में **(तत्त्वं)** वस्तु स्वरूप **(भवन्ति)** होते हैं।

भावार्थ- जो भी नित्य अथवा क्षणिक आदि नय परस्पर में निरपेक्ष होकर अन्यमतों में निज और पर का नाश करने वाले हैं वे ही नय परस्पर की अपेक्षा रखते हुए निज और पर का उपकार करने वाले होकर प्रत्यक्षज्ञानी आप विमल जिनेन्द्र के मत में वस्तु स्वरूप होते हैं।

क्षणिक नित्य आदिक नय जब तक, नहीं परस्पर हों सम्बद्ध।
मिथ्या कहलाएँगे तब तक, और परस्पर रहें विरुद्ध॥
होकर के सापेक्ष करेंगे, एक दूसरे का उपकार।
सम्यक् तत्त्व तभी होंगे यह, प्रभु विमलेश बताए सार॥61॥

यथैकशः कारकमर्थ-सिद्धये, समीक्ष्य शेषं स्व-सहाय-कारकम्।
तथैव सामान्य-विशेष-मातृका, नयास्तवेष्टा गुण-मुख्य-कल्पतः।।६२।।

अन्वयार्थः-**(यथा)** जिस प्रकार **(एकशः)** एक-एक **(कारकम्)** उपादान कारण या निमित्तकारण **(स्वसहायकारकं)** अपनी सहायता करने वाले **(शेषं)** अन्य कारक की **(समीक्ष्य)** अच्छी तरह अपेक्षा करके **(अर्थसिद्धये)** कार्य की सिद्धि के लिये समर्थ होता है **(तथैव)** उसी प्रकार **(सामान्यविशेष-मातृका)** सामान्य और विशेष से उत्पन्न अथवा सामान्य और विशेष को जानने वाले एवं **(गुणमुख्यकल्पतः)** गौण और मुख्य की कल्पना **(तव)** आपको **(इष्टाः)** अभिप्रेत **(नयाः)** नय **(अर्थसिद्धये)** कार्य की सिद्धि के लिये समर्थ हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार एक एक उपादान कारण या निमित्त कारण अपनी सहायता करने वाले अन्यकारक की अच्छी तरह अपेक्षा करके कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ होता है उसी प्रकार सामान्य और विशेष से उत्पन्न अथवा सामान्य और विशेष को जानने वाले एवं गौण और मुख्य की कल्पना से आपको अभिप्रेतनय कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ है।

कारक में होता है जैसे, एक दूसरे का आधार।
अर्थ सिद्ध तब ही होता है, ऐसा कहते जिन अनगार॥
मुख्य रूप से गुण वैसे ही, कहे गये सामान्य विशेष।
यही रहा तत्त्वों का शाधक, हे जिनेन्द्र! सम्यक् उपदेश॥62॥

परस्परेक्षाऽन्वय-भेद-लिंगतः, प्रसिद्ध-सामान्य-विशेषयोस्तव।
समग्रताऽस्ति स्व-पराऽवभासकं, यथा प्रमाणं भुवि बुद्धि-लक्षणम्।।६३।।

अन्वयार्थ-हे भगवन्! **(यथा)** जिस प्रकार **(भुवि)** पृथिवी पर **(स्व-पराऽवभासकं)** स्व और पर को प्रकाशित करने वाला **(बुद्धिलक्षणं)** ज्ञानरूप लक्षण से युक्त **(प्रमाणं)** प्रमाण प्रसिद्ध है (तथा) उसी प्रकार **(तव)** आपके मत

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

में **(परस्परेक्षान्वयभेदलिंगतः)** परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले अभेद और भेद के ज्ञान से **(प्रसिद्धसामान्यविशेषयोः)** प्रसिद्ध सामान्य और विशेष की **(समग्रता)** पूर्णता **(अस्ति)** विद्यमान है।

होता रहा सामान्य विशेषों, में जब देव! समन्वय ज्ञान।
उसमें तभी पूर्णता आती, तब ही होती है पहिचान॥
देव! लोक यह जिस प्रकार से, सच्चा कहलाए वह ज्ञान।
स्व-पर दोनों तत्त्वों को जो, करे प्रकाशित बने प्रमाण॥63॥

विशेष्य-वाच्यस्य विशेषणं वचो, यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत्।
तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते, विवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम्।।६४।।

अन्वयार्थ-हे भगवन! **(विशेषवाच्यस्य)** वाच्यभूत विशेष का **(तत्)** वह **(वचः**) वचन **(यतः)** जिससे **(विशेष्यं)** विशेष्य **(विनियम्यते)** नियमित किया जाता है **(विशेषणं)** विशेषण कहलाता है **(च)** और **(यत्)** जो **(विनियम्यते)** नियमित होता है **(तत्)** वह **(विशेष्यं)** विशेष्य कहलाता है **(च)** और **(तयोः)** उन विशेषण और विशेष्य में यद्यपि **(सामान्यमतिप्रसज्यते)** सामान्य का प्रसंग आता है परन्तु **(ते)** आपके मत में **(स्यादिति)** कथंचित् अर्थ के वाचक स्यात् पद के द्वारा **(विवक्षितात्)** विवक्षित विशेषण विशेष्य से **(अन्यवर्जनम्)** अविवक्षिता विशेषण विशेष्य का परिहार हो जाता है।

भावार्थ- हे भगवन्! जिस प्रकार पृथ्वी पर स्व और पर को प्रकाशित करने वाला ज्ञानरूप लक्षण से युक्त प्रमाणप्रसिद्ध हैं उसी प्रकार आपके मत में परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले अभेद और भेद के ज्ञान से प्रसिद्ध सामान्य और विशेष की पूर्णता विद्यमान् है।

निज विशेषता जिन शब्दों में, बतलाता है जहाँ विशेष।
बनते वे ही शब्द विशेषण, और विशेष्य व वही विशेष॥
जो सामान्य कहा जाता है, जिन शब्दों में इसी प्रकार।
बनते वे ही शब्द विशेषण, और सामान्य विशेष्य विचार॥64॥

नयास्तव स्यात्पद-सत्य-लाञ्छिता, रसोपविद्धाः इव लोह-धातवः।

भवन्त्यभिप्रेत-गुणा यतस्ततो, भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः।।६५।।

अन्वयार्थ-हे भगवन! **(यतः)** चूंकि **(स्यात्पदसत्यलाञ्छिता)** स्यात्पदरूपी सत्य से चिह्नित **(तव)** आपके **(नयाः)** नय **(रसोपविद्धाः)** रस से अनुलिप्त **(लोहधातवः इव)** लोह-धातुओं के समान **(अभिप्रेतगुणाः)** इष्ट गुणों से युक्त पक्ष में सुवर्ण आदि इष्ट पदार्थ के गुणों से युक्त **(भवन्ति)** होते हैं **(ततः)** इसलिए **(हितैषिणः)** हित के इच्छुक **(आर्याः)** गणधर आदि उत्तम पुरुष **(भवन्तं)** आपके प्रति **(प्रणताः)** नम्रीभूत हैं।

भावार्थ- हे भगवन्! वाच्यभूत विशेष का वह वचन जिससे विशेष्य नियमित किया जाता है विशेषण कहलाता है और जो नियमित होता है वह विशेष्य कहलाता है और उन विशेषण और विशेष्य में यद्यपि सामान्य का प्रसङ्ग आता है परन्तु आपके मत में कथंचित् अर्थ के वाचक स्यात् पद के द्वारा विवक्षित विशेषण विशेष्य से अविवक्षित विशेषण विशेष्य का परिहार हो जाता है।

लोह धातु भी जिस प्रकार से, प्राप्त रसायन का संयोग।
इष्ट गुणोंयुत हो जाता है, नष्ट अनेकों करता रोग॥
नाथ! स्यात् पद संयुत वे नय, उसी तरह करते हैं काम।
अभिप्राय के शाधक बनते, अतः आपके चरण प्रणाम॥65॥

श्री अनन्तजिन-स्तवनम्

(वंशस्थ छन्दः)

अनन्त-दोषाशय-विग्रहो ग्रहो, विषंगवान् मोहमयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता, त्वया ततोऽभूर्भगवाननन्तजित्।।६६।।

अन्वयार्थ- **(भगवान्)** हे भगवन् **(अनन्तदोषाशयविग्रहः)** जिसका शरीर अनन्त रागादि दोषों का आधार तथ जो **(चिरं)** चिरकाल से **(हृदि)** हृदय में **(विषंगवान्)** संलग्न था अथवा ममता भाव से सहित था। ऐसा **(मोहमयः)** मोहरूप **(ग्रहः)** पिशाच **(तत्त्वरुचौ)** तत्त्वश्रद्धा में **(प्रसीदता)** प्रसन्न रहने वाले **(त्वया)** आपके द्वारा **(यतः)** क्योंकि **(अनन्तजित्)** अनन्तजित् इस सार्थक नाम को धारण करने वाले **(अभूः)** हुए हैं।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भावार्थ- हे भगवन्! चूंकि स्यात्पदरूपी सत्य से चिह्नित आपके नय रस से अनुलिप्त लोहधातुओं के समान इष्ट गुणों से युक्त पक्ष में सुवर्णआदि इष्ट पदार्थ के गुणों से युक्त होते हैं इसलिए हित के इच्छुक गणधर आदि उत्तम पुरुष आपके प्रति नम्रीभूत हैं।

दोष अनन्त गर्भ में पलते, जिसके ऐसा मोह पिशाच।
हृदय निवासी बन अनादि से, नचा रहे हैं जग को नाच॥
किया तत्त्व विज्ञान के द्वारा, नाथ! आपने उसे समाप्त।
आप नाम पाए अन्वर्थक, देव अनन्त जिनेश्वर! आप्त॥66॥

कषाय-नाम्नां द्विषतां प्रमाथिना-मशेषयन्नाम भवानशेषवित्।
विशोषणं मन्मथ दुर्मदाऽऽमयं, समाधि-भैषज्य-गुणैर्व्यलीनयत्।।६७।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! **(भवान्!)** आप **(प्रमाथिनाम्)** दुःख देने वाले **(कषायनाम्नां)** कषाय नामक **(विद्षताम्)** शत्रुओं के **(नाम)** नाम को हृदय में **(अशेषयन्)** समाप्त करते हुए **(अशेषवित्)** सर्वज्ञ हुए हैं तथा आपने **(समाधिभैषज्यगुणैः)** ध्यानरूप औषधि के गुणों के द्वारा **(विशोषणं)** संताप कारक **(मन्मथदुर्मदामयं)** कामदेव के दुष्ट दर्प रूपी रोग को **(व्यलीनयत्)** विलीन किया है-नष्ट किया है।

भावार्थ- जिसका शरीर अनंत रागादि दोषों का आधार तथा जो चिरकाल से हृदय में संलग्न था अथवा ममता भाव से सहित था ऐसा मोहरूप पिशाच तत्त्वश्रद्धा में प्रसन्न रहने वाले आपके द्वारा क्योंकि जीत लिया गया था इसलिए आप भगवान अनन्तजित इस सार्थक नाम को धारण करने वाले हुए हैं।

दुष्ट कषाय नाम का शत्रू, कलुषित करता आत्म स्वभाव।
किया आपने हे अशेषवित!, उस कषाय का पूर्ण अभाव॥
सदा आत्म शोषण करता है, रोग दर्प मन्मथ हे देव!
नाथ! समाधी रूपी औषधि, से वह नष्ट हुआ स्वमेव॥67॥

परिश्रमाऽम्बुर्भय-वीचि-मालिनी, त्वया स्वतृष्णा-सरिदाऽऽर्य! शोषिता।
असंग-घर्माऽर्क-गभस्ति-तेजसा, परं ततो निर्वृति-धाम तावकम्।।६८।।

अन्वयार्थ-**(परिश्रमाम्बुः)** जिसमें परिश्रम रूप जल भरा है और **(भयवीचिमालिनी)** भयरूप तरंगों की मालाएँ उठ रही हैं, ऐसी **(स्वतृष्णासरित्)** अपनी भोगाकांक्षारूप नदी **(हे आर्य)** हे पूज्य! **(त्वया)** आपके द्वारा **(असंगघर्माऽर्कगभस्तितेजसा)** निष्परिग्रहतारूप ग्रीष्मकालीन सूर्य की किरणों के तेज से **(शोषिता)** सुखा दी गई है **(ततः)** इसलिए **(परम्)** उसके आगे विद्यमान **(निर्वृतिधाम)** निर्वाणस्थान **(तावकम्)** आपका ही है अथवा आपका अनन्तज्ञानादि तेज अत्यन्त उत्कृष्ट है।

भावार्थ- जिसमें परिश्रम रूप जल भरा है और भयरूप तरङ्गों की मालाएँ उठ रही हैं, ऐसी अपनी भोगाकांक्षारूप नदी हे पूज्य आपके द्वारा निष्परिग्रहतारूप ग्रीष्मकालीन सूर्य की किरणों के तेज से सुखा दी गई है इसलिए उसके आगे विद्यमान निर्वाणस्थान आपका ही है अथवा आपका अनन्त ज्ञानादितेज अत्यन्त उत्कृष्ट है।

तृष्णा की सरिता है जिसमें, भरा परिश्रम जल हे धीर!।
तरल तरंगे उठतीं भय की, जो करती है चित्त अधीर॥
त्याग सूर्य की किरणावलि का, डाल आपने प्रखर प्रताप।
उसको शोषित करके पहुँचे, निवृति धाम स्वयं प्रभु आप॥68॥

सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते, द्विषस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि, प्रभो! परं चित्रमिदं तवेहितम्।।६९।।

अन्वयार्थः-हे भगवन! **(त्वयि सुहृद्)** आप में उत्तम हृदय को रखने वाला भक्त पुरुष **(श्रीसुभगत्वम्)** लक्ष्मी के बल्लभपने को **(अश्नुते)** प्राप्त होता है और **(त्वयि द्विषन्स्)** आपमें द्वेष रखने वाला-अभक्त पुरुष **(प्रत्ययवत्)** व्याकरण के प्रसिद्ध क्विप् आदि प्रत्ययों अथवा क्षायोपशमिक ज्ञान के समान **(प्रलीयते)** नष्ट हो जाता है-चतुर्गति के दुःखों का अनुभव करता है परन्तु **(भवान्)** आप **(तयोरपि)** उन दोनों भक्त और अभक्त पुरुषों के विषय में **(उदासीनतमः)** अत्यन्त उदासीन हैं-रागद्वेष से रहित हैं **(प्रभो!)** हे स्वामिन! **(तव)** आपकी **(इदम् ईहितं)** यह चेष्टा **(परं चित्रम्)** अत्यन्त आश्चर्यकारी हैं।

भावार्थ- हे भगवन्! आप में उत्तम हृदय को रखने वाला-भक्तपुरुष

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

लक्ष्मी के वल्लभपने को प्राप्त होता है और आपमें द्वेष रखने वाला-अभक्त पुरुष व्याकरण के प्रसिद्ध क्विप् आदि प्रत्ययों अथवा क्षायोपशमिक ज्ञान के समान नष्ट हो जाता है- चतुर्गति के दुःखों का अनुभव करता है परन्तु आप उन दोनों-भक्त और अभक्त पुरुषों के विषय में अत्यन्त उदासीन है-रागद्वेष से रहित हैं। हे स्वामिन्! आपकी यह चेष्टा अत्यन्त आश्चर्यकारी हैं।

सत्य उपाशक नाथ! आपका, पाता है सम्पत्ति अनेक।
और स्वयं मिटता दुर्बुद्धी, आलोचक जो हो अविवेक॥
किन्तु आपका दोनों में ही,उदासीन अनपेक्षित भाव।
विस्मयकारी है स्वामी यह, परम आपका चरित स्वभाव॥69॥

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम, प्रलाप-लेशोऽल्प-मतेर्महामुने।
अशेष-माहात्म्यमनीरयन्नपि, शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः।।७०।।

अन्वयार्थः-(**महामुने**) हे समस्त पदार्थों के जानने वाले! (**त्वम्**) आप (**ईदृशः**) ऐसे हैं (**तादृशः**) वैसे हैं (**इति**) इस प्रकार का (**अयं**) यह (**मम अल्पमतेः**) मुझ अल्पबुद्धि का (**प्रलापलेशः**) थोड़ा सा प्रलाप (**अशेषमाहात्म्यं**) आपकी समस्त महिमा को (**अनीरयन् अपि**) न कहता हुआ भी (**अमृताम्बुधेः**) अमृत रूप समुद्र के (**संस्पर्शः इव**) समीचीन स्पर्श के समान (**शिवाय**) मोक्ष के लिये है। मोक्ष सुख की प्राप्ति का कारण है।

भावार्थ- हे समस्त पदार्थों को जानने वाले मुनिनाथ! आप ऐसे हैं वैसे हैं इस प्रकार का यह मुझ अल्पबुद्धि का थोड़ा सा प्रलाप आपकी समस्त महिमा को न कहता हुआ भी सुधासागर के समीचीन स्पर्श के समान मोक्ष के लिए है 'विशद' मोक्ष सुख की प्राप्ति का कारण है।

परम पुरुष हो नाथ! आप तो, ऐसे भी वैसे भी आप।
मन्द बुद्धि मैं इस प्रकार से, करता रहता रहा प्रलाप॥
महिमा वर्णन में समर्थ ना, रहा आपकी हे आदर्श!
सुधा सिन्धु का सुखप्रद जैसे, सुख कारक मानो स्पर्श॥70॥

श्री धर्मजिन-स्तवनम्

(रथोद्धता छन्दः)

धर्म-तीर्थमनघं प्रवर्तयन्, धर्म इत्यनुमतः सतां भवान्।
कर्म-कक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शंकरः।।७१।।

अन्वयार्थ-हे भगवन्! (**अनघं**) निर्दोष (**धर्मतीर्थं**) धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म का प्रतिपादन करने वाले आगम को (**प्रवर्तयन्**) प्ररूपित करते हुए (**भवान्**) आप (**सतां**) गणधरदेवादि विद्वानों के द्वारा (**धर्मः**) धर्म इस सार्थक नाम से युक्त (**अनुमतः**) माने गये हैं। आपने (**तपोऽग्निभिः**) तप रूपी अग्नियों के द्वारा (**कर्मकक्षम्**) कर्मरूपी वन को (**अदहत्**) जलाया है तथा (**शाश्वतं**) अविनाशी (**शर्म**) सुख (**अवाप**) प्राप्त किया है इसलिए आप सत्पुरुषों के द्वारा (**शंकरः**) शंकर इस नाम से युक्त (**अनुमतः**) माने गये हैं।

भावार्थ- हे भगवन्! निर्दोष धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म का प्रतिपादन करने वाले आगम को प्रवरताते हुए आप गणधरदेवादि विद्वानों के द्वारा धर्म इस सार्थक नाम से युक्त माने गये हैं। आपने तपरूपी अग्नियों के द्वारा कर्मरूपी वन को जलाया है तथा अविनाशी सुख प्राप्त किया है इसलिए आप सत्पुरूषों के द्वारा शंकर इस नाम से युक्त माने गये हैं।

धर्म तीर्थ शुभ दोष रहित है, दिया आपने यह उपदेश।
सज्जन पुरुषों ने इस कारण, कहा आपको धर्म जिनेश॥
भष्म किया तप की ज्वाला से, कर्मों के वन को हे देव!
शाश्वत सुख जग में सुखकारी, पाया फिर तुमने स्वमेव॥71॥

देव-मानव-निकाय-सत्तमै रेजिषे परिवृत्तो वृतोबुधैः।
तारका-परिवृतोऽतिपुष्कलो व्योमनीवशश-लाञ्छनोऽमलः।।७२।।

अन्वयार्थः-हे धर्मजिन! (**देवमानवनिकायसत्तमैः**) देव समूह और मनुष्य समूह में अत्यन्त श्रेष्ठ भव्य जीवों के द्वारा (**परिवृतः**) चारों ओर से वेष्टित तथा (**बुधैः**) गणधरादि विद्वानों से (**वृत्त**) घिरे हुए आप (**व्योमनि**) आकाश में (**तारकापरिवृतः**) ताराओं से परिवेष्टित (**अमलः**) घनपटलादि

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

मल से रहित **(अतिपुष्कलः)** संपूर्ण **(शशलाञ्छनः इव)** चन्द्रमा के समान **(रेजिषे)** सुशोभित हुए थे।

भावार्थ– हे धर्मजिन! देवसमूह और मनुष्य समूह में अत्यंत श्रेष्ठ भव्य जीवों के द्वारा चारों ओर से वेष्टित तथा गणधरादि विद्वानों से घिरे हुए आप आकाश में ताराओं से परिवेष्टित घनपटलादि मल से रहित संपूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित हुए थे।

महा सभा में समवशरण की, हुए विराजित हे जिन नाथ!।
बैठे देव विमल तनधारी, और मनुज बुधजन भी साथ॥
तारागण से वेष्टित जैसे, अति सुन्दर सम्पूर्णाकार।
शोभित होता है अम्बर में, विमल चन्द्र ज्योत्सना भण्डार॥72॥

प्रातिहार्य-विभवैः परिष्कृतो, देहतोऽपि विरतो-भवानभूत्।
मोक्षमार्गमशिषन्नराऽमरान्, नाऽपि शासन-फलैषणाऽऽतुरः।।७३।।

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(भवान्)** आप **(प्रातिहार्यविभवैः)** सिंहासनादि प्रातिहार्यों तथा समवशरणादि विभूतियों से **(परिष्कृतः)** विभूषित होते हुए भी न केवल उनसे किन्तु **(देहतोऽपि)** शरीर से भी **(विरतः)** ममत्व रहित **(अभूत्)** थे तथा आपने **(नरामरान्)** मनुष्यों और देवों को **(मोक्षमार्गम्)** मोक्षमार्ग का **(अशिषत्)** उपदेश दिया था। फिर भी आप **(शासनफलैषणाऽऽतुरः)** उपदेश के फल की इच्छा से आतुर–व्यग्र **(नापि अभूत्)** नहीं हुए थे।

भावार्थ– हे भगवन्! आप सिंहासनादि प्रातिहार्यों तथा समवशरणादि विभूतियों से विभूषित होते हुए भी न केवल उनसे किन्तु शरीर से भी ममत्व रहित थे तथा आपने मनुष्यों और देवों को मोक्षमार्ग का उपदेश दिया था फिर भी आप उपदेश के फल की इच्छा से आतुर–व्यग्र नहीं हुए थे।

प्रातिहार्य वैभव हे स्वामी, प्राप्त आपको है शुभकार।
आप देह से भी विरक्त हैं, किन्तु नाथ! महिमा भण्डार॥
यद्यपि जग में मोक्ष मार्ग का, किए प्ररूपण प्रभो! महान।
किन्तु ना शासन फल की वांछा, रही आपको हे भगवान!॥73॥

काय-वाक्य-मनसां प्रवृत्तयो, नाऽभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया।
नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो, धीर तावकमचिन्त्यमीहितम्।।७४।।

अन्वयार्थः–हे नाथ! **(तव)** आप **(मुनेः)** प्रत्यक्षज्ञानी के **(कायवाक्यमनसां)** काय, वचन और मन की **(प्रवृत्तयः)** चेष्टाएँ **(चिकीर्षया)** करने की इच्छा से **(न अभवन्)** नहीं हुई तथा **(भवतः)** आपकी **(प्रवृत्तयः)** प्रवृत्तियाँ/चेष्टाएँ **(असमीक्ष्य)** वस्तुस्वरूप को ज्यों का त्यों जाने बिना **(न अभवन्)** नहीं हुईं। **(हे धीर!)** हे धीर धर्म जिनेन्द्र! **(तावकम्)** आपका **(ईहितं)** चरित **(अचिन्त्यं)** अचिन्तनीय है–आश्चर्य करने वाला है।

भावार्थ– हे नाथ! आप प्रत्यक्षज्ञानी के काय वचन और मन की चेष्टाएँ करने की इच्छा से नहीं हुई तथा आपकी प्रवृत्तियाँ चेष्टाएँ वस्तुस्वरूप को ज्यों का त्यों जाने बिना नहीं हुई परीषहादिक तथा अन्यमतावलम्बियों के प्रश्न आदि से चित्त को क्षुभित न करने वाले हे धीर वीर धर्मजिनेन्द्र! आपका चरित अचिन्तनीय है आश्चर्य करने वाला है।

बाह्य पदार्थों से विरक्त हो, हुए स्वयं में अन्तर्लीन।
चेष्टाएँ मन वचन काय की, होती थी पर इच्छा हीन॥
जरा नहीं असमीक्ष्य-कारिता, का उनमें फिर भी था लेश।
चेष्टाएँ सारी अचिन्त्य हैं, धीर! वीर धारी धर्मेश॥74॥

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्, देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ! परमाऽसि देवता, श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः।।७५।।

अन्वयार्थः–हे भगवन्! **(यतः)** चूंकि आप **(मानुषीं प्रकृतिं)** मानव स्वभाव को **(अभ्यतीतवान्)** अतिक्रान्त कर गये हैं **(च)** और **(देवतास्वपि)** इन्द्र, चन्द्र आदि देवों में भी **(देवता)** देवता हैं/पूज्य हैं **(तेन)** इसलिए **(हे नाथ!)** हे स्वामिन्! आप **(परम देवता असि)** उत्कृष्ट देवता हैं **(हे जिनवृष)** हे जिनेन्द्र! **(नः)** हमारे **(श्रेयसे)** कल्याण के लिये **(प्रसीद)** प्रसन्न होइये।

भावार्थ– हे भगवन्! चूंकि आप मानव स्वभाव को अतिक्रान्त कर गये

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

हैं और इन्द्र चन्द्र आदि देवों में भी देवता हैं, पूज्य हैं इसलिए हे स्वामिन! आप उत्कृष्ट देवता हैं। हे जिनेन्द्र! हमारे 'विशद' कल्याण के लिए प्रसन्न होइये।।

निर्बलताएँ नर जीवन की, जिसका पाए प्रभु जी पार।
विशद दिव्यता नाथ! आपको, भी तो कहती देव पुकार।।
परम देवता धर्मनाथ जी, अतः आप हैं वृष की खान।
नाथ! आपका आशिष पाकर, हम भी करें आत्म कल्याण।।75।।

श्री शान्तिजिनस्तवनम्

(उपजाति छन्दः)

विधाय रक्षां परतः प्रजानां, राजा चिरं योऽप्रतिम-प्रतापः।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्तिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाऽघशान्तिम्।।७६।।

अन्वयार्थः-(**यः**) जो शान्तिजिनेन्द्र (**परतः**) शत्रुओं से (**प्रजानां**) प्रजाजनों की (**रक्षां विधाय**) रक्षा कर (**चिरं**) चिरकाल तक पहले (**अप्रतिमप्रताप**) अतुल्य पराक्रमी (**राजा**) राजा हुए और (**पुरस्तात्**) फिर (**स्वत एव**) स्वयं ही (**मुनिः**) मुनि होकर जिन्होंने (**दयामूर्तिरिव**) दया की मूर्ति की तरह (**अघशान्तिं**) पापों की शान्ति (**व्यधात्**) की।

भावार्थ- जो शांतिजिनेन्द्र शत्रुओं से प्रजाजनों की रक्षाकर चिरकाल तक पहले अतुल्य पराक्रमी राजा हुए और फिर स्वयं ही मुनि होकर जिन्होंने दया की मूर्ति की तरह पापों की शांति की।

जिन स्वामी ने राज्य काल में, अमित तेज बल से चिरकाल।
प्रजावर्ग की शत्रू दल से, रक्षा की बनकर प्रतिपाल।।
दयामूर्ति न किया आपने, पापों का भी काम तमाम।
आत्म शांति संयुक्त आपने, शांतिनाथ शुभ पाया नाम।।76।।

चक्रेण यः शत्रु भयंकरेण, जित्त्वा नृपः सर्व-नरेन्द्र-चक्रम्।
समाधि-चक्रेण पुनर्जिगाय, महोदयो दुर्जय-मोह-चक्रम्।।७७।।

अन्वयार्थ-(**महोदयः**) गर्भावतरण आदि कल्याणकों की परम्परा से युक्त (**भयंकरेण**) भयंकर उत्पन्न करने वाले (**शत्रु**) शत्रु (**चक्रेण**) सुदर्शन चक्र के द्वारा (**सर्वनरेन्द्रचक्रं**) समस्त राजाओं के समूह को (**जित्त्वा**) जीतकर (**नृपः**) चक्रवर्ती हुए और (**पुनः**) पश्चात् वीतरागावस्था में जिन्होंने (**समाधिचक्रेण**) ध्यानरूप चक्र के द्वारा (**दुर्जयमोहचक्रं**) कठिनाई से जीतने योग्य मोहनीय कर्म की मूल तथा उत्तर प्रकृतियों के समूह को (**जिगाय**) जीता था।

भावार्थ-गर्भावतरण आदि कल्याणकों की परम्परा से युक्त जो शांति जिनेन्द्र गृहस्थावस्था में शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाले सुदर्शन चक्र के द्वारा समस्त राजाओं के समूह को जीतकर चक्रवर्ती हुए और पश्चात् वीतरागावस्था में जिन्होंने ध्यान रूप चक्र के द्वारा कठिनाई से जीतने योग्य मोहनीय कर्म की मूल तथा उत्तरप्रकृतियों के समूह को जीता था।

चक्र भयंकर धारण करके, जीते शत्रूदल जिन नाथ!
भूपचक्र को धर्मचक्र से, चक्रित किया शौर्य के साथ।।
नाथ! समाधी चक्र के द्वारा, कर्मशत्रु जय किए महान।
दुर्जय मोहचक्र को जीते, आप महोदय बन श्रीमान।।77।।

राज-श्रिया राजसु राज-सिंहो, रराज यो राजसुभोग-तन्त्रः।
आर्हन्त्य-लक्ष्म्या पुनरात्म-तन्त्रो, देवाऽसुरोदार-सभे रराज।।७८।।

अन्वयार्थः-(**राजसिंहः**) राजाओं में श्रेष्ठ तथा (**राजसु भोगतन्त्रः**) राजाओं के उत्तम भोगों के अधीन अथवा राजाओं के उत्तम भोगों को स्वाधीन रखने वाले (**यः**) जो शान्तिनाथ सराग अवस्था में (**राजसु**) राजाओं के बीच (**राजश्रिया**) नौ निधियाँ तथा चौदह रत्नों से युक्त राजलक्ष्मी के द्वारा (**रराज**) सुशोभित हुए थे और (**पुनः**) पश्चात् वीतरागअवस्था में (**आत्मतन्त्रः**) आत्माधीन होते हुए (**देवासुरोदारसभे**) देव और धरणेन्द्रादिकों की महती सभा में (**आर्हन्त्यलक्ष्म्या**) अष्ट प्रातिहार्य रूप बाह्य तथा अनन्तज्ञानादिक रूप अन्तरंग विभूति से (**रराज**) सुशोभित हुए थे।

भावार्थ- राजाओं में श्रेष्ठ तथा राजाओं के उत्तम भोगों के अधीन अथवा राजाओं के उत्तम को स्वाधीन रखने वाले जो शांतिजिनेन्द्र सराग अवस्था

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

में राजाओं के बीच नौनिधि तथा चौदह रत्नों से युक्त राजलक्ष्मी के द्वारा सुशोभित हुए थे और पश्चात् वीतरागावस्था में आत्माधीन होते हुए देव और धरणेन्द्रादिकों की महती सभा में अष्ट प्रातिहार्य रूप बाह्य तथा अनन्तज्ञानादिरूप अंतरङ्ग विभूति से सुशोभित हुए थे।

दिव्य राज्य लक्ष्मी से मण्डित, हो नरेश परिषद के नाथ।
हुए सुशोभित पाकर अतिशय, दिव्य राज्य भोगों के साथ॥
स्वात्म तंत्र होकर परिषद में, आप सुरासुर की हे देव!।
नाथ! दिव्य कैवल्य लक्ष्मी, से भी मण्डित हुए स्वमेव॥78॥

यस्मिन्नभूद्राजनि राज-चक्रं, मुनौ दया-दीधिति-धर्म-चक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देव-चक्रं, ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्त-चक्रम्।।७६।।

अन्वयार्थः-(**यस्मिन्**) जिन शान्तिनाथ भगवान् के (**राजनि**) राजा होने पर (**राजचक्रं**) राजाओं का समूह (**प्राञ्जलि**) बद्धाञ्जलि (**अभूत्**) हुआ था, जिन शान्तिनाथ भगवान् के (**मुनौ**) मुनि होने पर (**दयादीधिति**) दयारूप किरणों से युक्त (**धर्मचक्रं**) उत्तम क्षमा आदि धर्मों का समूह (**प्राञ्जलि**) अपने अधीन हुआ था, (**पूज्ये**) जिन शान्तिनाथ भगवान् के पूज्य होने पर-समवशरण में स्थित होकर धर्मोपदेशक होने पर (**देवचक्रं**) देवों का समूह (**मुहुः**) बार-बार (**प्राञ्जलि**) बद्धाञ्जलि हुआ था और जिन पर (**ध्वंसि**) क्षय को प्राप्त होता हुआ (**कृतान्तचक्रं**) कर्मों का समूह (**प्राञ्जलि**) शरण की भिक्षा के लिये 'विशद' बद्धाञ्जलि हुआ था।

भावार्थ- जिन शांति नाथ भगवान् के राजा होने पर राजाओं का समूह बद्धाञ्जलि हुआ था जिन शांतिनाथ भगवान् के मुनि होने पर दयारूप किरणों से युक्त अथवा दया को प्रकाशित करने वाला उत्तम क्षमा आदि धर्मों का समूह अपने आधीन हुआ था अथवा जिन शांतिनाथ भगवान के समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने वाले केवलज्ञानी होने पर दयारूप किरणों से युक्त देवरचित धर्मचक्र अपने आधीन हुआ था, जिन शांतिनाथ भगवान् के पूज्य होने पर समवशरण में स्थित होकर धर्मोपदेशक होने पर देवों का समूह बारबार बद्धाञ्जलि हुआ था और जिन शांतिनाथ भगवान् के व्युपरतक्रियानिर्वृति नामक चतुर्थ शुक्ल ध्यान के सन्मुख होने

पर क्षय को प्राप्त होता हुआ कर्मों का समूह शरण की भिक्षा के लिए बद्धाञ्जलि हुआ था।

राज्य काल में प्रभो! आपके, वश में हुआ नृपति समुदाय।
तंत्रित था मुनि धर्म काल में, दया युक्त शुभ धर्म निकाय॥
विशद पूज्य केवल्य काल में, प्रांजल हुआ सुरासुर चक्र।
ध्यान काल में उग्र सुतप से, भस्म हुआ विधि वर्ग कुवक्र॥79॥

स्वदोष-शान्त्या-विहितात्मशान्तिः, शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भव-क्लेश-भयोपशान्त्यै, शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः।।८०।।

अन्वयार्थ-(**स्वदोषशान्त्या**) अपने रागादि, दोषों की शांति से (**विहितात्मशान्तिः**) जिन्हें आत्मशान्ति की प्राप्ति हुई है, जो (**शरणं गतानां**) शरण में आये जीवों को (**शान्तेर्विधाता**) शान्ति के करने वाले हैं, जो (**जिनः**) कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं, (**भगवान्**) विशिष्ट ज्ञान से सहित हैं तथा (**शरण्यः**) शरण देने में निपुण हैं (**सः**) वे (**शान्तिः**) शान्तिनाथ जिनेन्द्र (**मे**) मेरे (**भवक्लेशभयोपशान्त्यै**) संसार परिभ्रमण, क्लेशों और भयों की शान्ति के लिये (**भूयात्**) हों।

भावार्थ-अपने रागादि दोषों की शांति से जिन्हें आत्मशांति की प्राप्ति हुई है, जो शरण में आये हुए जीवों को शांति के करने वाले हैं जो कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं, विशिष्टज्ञान अथवा लोकोत्तर ऐश्वर्य से सहित हैं तथा शरण देने में निपुण हैं वे शांतिनाथ जिनेन्द्र मेरे संसारपरिभ्रमण, क्लेशों और भयों की शांति के लिए हों।

निज दोषों की शाँती करके, किया आत्म शांती को प्राप्त।
शांति विधाता शरणागत के, बनकर संकट किए समाप्त॥
भव क्लेश उपशान्त कार्य में, हे श्री शांतिनाथ भगवान!।
शरणभूत बनकर दो मुझको, परम आत्म बल दिव्य महान॥80॥

श्री कुन्थुजिन-स्तवनम्

(वसन्ततिलका छन्दः)

कुन्थु-प्रभृत्यखिल-सत्त्व-दयैकतानः कुन्थुर्जिनो ज्वर-जरा-मरणोपशान्त्यै।
त्वं धर्म-चक्रमिह वर्तयसि स्म भूत्यै, भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वर-चक्रपाणिः।।८१।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थ-(**कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः**) कुन्थु आदि समस्त जीवों पर एक-मुख्य विस्तार करने वाले (**कुन्थुः जिनः**) कुन्थुनाथ जिनेन्द्र थे। हे भगवन्! (**त्वं**)आपने (**पुरा**) पहले गृहस्थावस्था में (**भूत्यै**) राजविभूति के निमित्त (**क्षितिपतीश्वरचक्रपाणिः**) राजाधिराज चक्रवर्ती (**भूत्त्वा**) होकर पश्चात् (**इह**) इस संसार में (**ज्वरजरामरणोपशान्त्यै**) समस्त रोग, बुढ़ापा और मरण के विनाश से युक्त (**भूत्यै**) मोक्ष लक्ष्मी के लिये (**धर्मचक्रं**) धर्म के समूह को अथवा देवरचित धर्मचक्रनामक अतिशय विशेष को (**वर्तयसि स्म**) प्रवर्तित किया है।

भावार्थ- कुन्थु आदि समस्त जीवों पर एक-मुख्य विस्तार करने वाले कुन्थुनाथ जिनेन्द्र थे। हे भगवन्! आपने पहले गृहस्थावस्था में राजविभूति के निमित्त राजाधिराज चक्रवर्ती होकर पश्चात् इस संसार में समस्तरोग, बुढ़ापा और मरण के विनाश से युक्त मोक्ष लक्ष्मी के लिए धर्म के समूह को अथवा देवरचित धर्मचक्रनामक अतिशय विशेष को प्रवर्तित किया है।

दिव्य चक्र के स्वामी होकर, क्षिति पतियों के बनकर नाथ!।
छोटे बड़े सभी जीवों के, बने दयालू कुन्थूनाथ॥
जरा रोग मरणोपशांति के, हेतु बने जिनवर जयरूप।
धर्मचक्र का किए प्रवर्तन, सुखकर हुए आप शिवरूप॥81॥

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा-,
मिष्टेन्द्रियार्थ-विभवैः परिवृद्धिरेव।
स्थित्यैव काय-परिताप-हरं निमित्त-,
मित्यात्मवान् विषयसौख्य- पराङ्मुखोऽभूत्॥८२॥

अन्वयार्थः-(**तृष्णार्चिषः**) विषयाकांक्षा रूप अग्नि की ज्वालायें (**परिदहन्ति**) इस जीव को सब ओर से जला रही हैं, (**इष्टेन्द्रियार्थविभवैः**) इष्ट इन्द्रियों के विषयों से (**आसां**) इन विषयाकांक्षा रूप अग्नि की ज्वालाओं की (**न शान्तिः**) शान्ति नहीं होती किन्तु (**परिवृद्धिरेव**) सब ओर से वृद्धि ही होती है। यह वृद्धि (**स्थित्यैव**) इन्द्रिय विषयों के स्वभाव से ही होती है (**निमित्तं**) निमित्त कारण (**कायपरितापहरं**) मात्र शरीर के संताप को हरने वाला होता है विषयाकांक्षा रूप अग्निज्वालाओं का उपशमन करने वाला नहीं होता। हे भगवन्! (**इति**) यह सब विचार कर ही (**आत्मवान्**) जितेन्द्रिय होते हुए आप (**विषयसौख्यपराङ्मुखः**) विषयजन्य सुख से पराङ्मुख (**अभूत्**) हुए हैं।

भावार्थ- विषयाकांक्षा रूप अग्नि की ज्वालाएँ इस जीव को सब ओर से जला रही हैं। इष्ट इन्द्रियों के विषयों से इन विषयाकांक्षा रूप अग्नि की ज्वालाओं की शांति नहीं होती किन्तु सब ओर से वृद्धि ही होती है। यह वृद्धि इन्द्रिय विषयों के स्वभाव से ही होती है। निमित्त कारण मात्र शरीर के संताप को हरने वाला होता है विषयाकांक्षा रूप अग्निज्वालाओं का उपशमन करने वाला नहीं होता। हे भगवन् यह सब विचार कर ही

सदा जलाए तृष्णा ज्वाला, नहीं जरा हो इसकी शांति।
वैभव पा इन्द्रिय भोगों से, वृद्धी पावे और अशान्ति॥
अल्प काल के लिए काय का, भोग हरण करते संताप।
हुए पराङ्मुख विषय सुखों से, इसीलिए हे जिनवर! आप॥82॥

बाह्यं तपः परम-दुश्चरमाचरंस्त्व,माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्।
ध्यानंनिरस्य कलुष-द्वय मुत्तरेस्मिन् ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने॥८३॥

अन्वयार्थः-हे भगवन्! (**त्वम्**) आपने (**आध्यात्मिकस्य**) अन्तरंग (**तपसः**) तप को (**परिबृंहणार्थम्**) वृद्धि के लिये (**परमदुश्चरं**) अत्यन्त कठिन (**बाह्य तपः**) अनशनादि बाह्य तप का (**आचरन्**) आचरण किया था तथा (**कलुषद्वयं**) आर्त्त-रौद्र रूप दो खोटे (**ध्यानं**) ध्यानों को (**निरस्य**) छोड़कर आप (**अतिशयोपपन्ने**) उत्कृष्ट अतिशय से युक्त अथवा अपने अवान्तर भेदों से सहित (**उत्तरेस्मिन्**) आगे के (**ध्यानद्वये**) धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान इन दो ध्यानों में (**ववृतिषे**) स्थिर हुये थे।

भावार्थ- हे भगवन्! आपने अन्तरङ्ग तप की वृद्धि के लिए अत्यंत कठिन अनशनादि बाह्य तप का आचरण किया था तथा आर्त्त रौद्र रूप दो खोटे ध्यानों को छोड़कर आप उत्कृष्ट अतिशय से युक्त अथवा अपने अवान्तर भेदों से सहित आगे के धर्मध्यान और शुक्लध्यान इन दो ध्यानों में स्थिर हुए थे।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

उग्र बाह्य तप धारण करके, अमित आत्म साहस के साथ।
अन्तरंग तप की वृद्धी को, किया आपने हे जिननाथ!॥
कलुषित आर्त्त रौद्र दोनों ही, किए निरुद्ध आप दुर्ध्यान।
उत्तम ध्यान किए धारण द्वय, धर्म शुक्ल जो अतिशय वान॥83॥

हुत्वा स्व-कर्म-कटुक-प्रकृतिश्चतस्रो, रत्नत्रयाऽतिशय-तेजसि जात-वीर्यः।
बभ्राजिषे सकल-वेद-विधेर्विनेता, व्यभ्रे यथा वियति दीप्त- रुचिर्विवस्वान्।।८४।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! **(चतस्रः स्वकर्मकटुकप्रकृतिः)** अपने कर्मों की चार कटुक प्रकृतियों को **(रत्नत्रयातिशयतेजसि)** सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की प्रकृष्टता रूप अग्नि में **(हुत्त्वा)** होमकर **(जातवीर्यः)** आप सामर्थ्यवान् अनन्तवीर्य से युक्त तथा **(सकलवेदविधेः)** समस्त लोकालोक विषयक ज्ञान के विधायक परमागम के **(विनेता)** प्रणेता होकर **(तथा)** उस तरह **(बभ्राजिषे)** दैदीप्यमान हुए तथा जिस तरह कि **(व्यभ्रे)** मेघरहित **(वियति)** आकाश में **(दीप्तरुचिः)** दैदीप्यमान किरणों से युक्त **(विवस्वान्)** सूर्य है।

भावार्थ-हे भगवन्! अपने कर्मों की चार कटुक प्रकृतियों को सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की प्रकृष्टता रूप अग्नि में होम कर आप सामर्थ्यवान् अनन्तवीर्य से युक्त हुए तथा समस्त लोकालोक विषयक ज्ञान के विधायक परमागम के प्रणेता होकर उस तरह दैदीप्यमान हुए यथा जिस तरह कि मेघ रहित आकाश में देदीप्यमान किरणों से युक्त सूर्य है।

रत्नत्रय के प्रखर तेज से, घाति कर्म चउ कटु फलकार।
मार्ग प्रदर्शक सत्य ज्ञान के, नाथ! शोभते अपरम्पार॥
निज बल से हे नाथ! आपने, तत्क्षण होम किए कर क्षार।
दीप्त किरण से 'शोभित रवि ज्यों, नभ में शोभित हो शुभकार॥84॥

यस्मान् मुनीन्द्र! तव लोक-पितामहाद्या, विद्या-विभूति-कणिकामपि नाप्नुवन्ति।
तस्माद् भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्व-हितैकतानाः।।८५।।

अन्वयार्थः-**(हे मुनीन्द्र)** हे यतिनाथ! **(यस्मात्)** चूंकि **(लोकपितामहाद्याः)** ब्रह्मा आदि लौकिक देवता **(तव)** आपकी **(विद्याविभूतिकणिकामपि)** केवलज्ञानरूप विद्या और समवशरण रूप विभूति के एकमात्रा (एक कण) को भी **(न आप्नुवन्ति)** नहीं प्राप्त करते हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(सुधियः)** उत्तम बुद्धि के धारक **(स्वहितैकतानाः)** एक आत्महित में निमग्न मोक्ष के अभिलाषी **(आर्याः)** गणधरादिदेव **(अजं)** जन्म से रहित, **(अप्रतिमेयम्)** परिमितअनंत तथा **(स्तुत्यं)** स्तुति के योग्य **(भवन्तं)** आपकी **(स्तुवन्ति)** स्तुति करते हैं

भावार्थ-हे यतिनाथ! चूंकि ब्रह्मा आदि लौकिक देवता आपकी केवलज्ञान रूप विद्या और समवशरण रूप विभूति के एक कण मात्र को भी नहीं प्राप्त करते हैं इसलिए उत्तम बुद्धि के धारक एक आत्महित में निमग्न मोक्ष के अभिलाषी गणधरादि देव जन्म से रहित अपरिमित-अनंत तथा स्तुति के योग्य आपकी 'विशद' स्तुति करते हैं।

लौकिक पिता महर्द्धिक जिनसे, हुए आप हे प्रभु! उत्पन्न।
ज्ञानादिक वैभव के कुछ भी, नहीं आपके वे आसन्न॥
अतः आपको अज कह करके, करते आर्य आप का गान।
बुद्धिमान हैं जिनसे अपने, हित की रही विशद पहिचान॥85॥

श्री अरजिन-स्तवनम्

(पथ्यावक्त्रं छन्दः)

गुण-स्तोकं सदुल्लङ्घ्य, तद्बहुत्त्व-कथा स्तुतिः।
आनन्त्याते गुणा वक्तु मशक्यास्त्वयि सा कथम्।।८६।।

अन्वयार्थः-**(सद्)** विद्यमान **(गुणस्तोकं)** अल्प गुणों का **(अल्लङ्घ्य)** उल्लङ्घन कर **(तद्बहत्त्व-कथा)** उन गुणों की अधिकता का कथन करना **(स्तुतिः)** स्तुति कहलाती है परन्तु **(आनन्त्यात्)** अनन्त होने के कारण **(ते)** आपके **(गुणाः)** गुण **(वक्तुमशक्याः)** कहने के लिये अशक्य हैं अतः **(त्वयि)** आपके विषय में **(सा)** वह स्तुति **(कथं)** किस प्रकार संभव है?

भावार्थ- विद्यमान अल्प गुणों का उल्लंघन कर उन गुणों की अधिकता का कथन करना स्तुति कहलाती है परन्तु अनन्त होने के कारण आपके गुण कहने के लिए अशक्य है अतः आपके विषय में वह स्तुति किस प्रकार संभव है?

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

विस्तृत करके अल्पगुणों को, बहुतर कहना स्तुति गान।
गुणानन्त हैं नाथ! आपके, कैसे हम कर सकें बखान॥86॥

तथाऽपि ते मुनीन्द्रस्य, यतो नामापि कीर्तितम्।
पुनाति पुण्य-कीर्तेर्नस्ततो, ब्रूयाम किञ्चन।।८७।।

अन्वयार्थः-यद्यपि आपके गुणों की स्तुति अशक्य है **(तथापि)** तो भी **(पुण्यकीर्तेः)** प्रशस्त यशवाणी अथवा ख्याति के धारक तथा **(मुनीन्द्रस्य)** गणधरादि मुनियों के स्वामी **(ते)** आपका **(कीर्तितं)** उच्चरित **(नामापि)** नाम भी **(यतः)** चूंकि **(नः)** हमें **(पुनाति)** पवित्र करता है **(ततः)** इसलिए **(किञ्चन)** कुछ **(ब्रूयाम)** कहते हैं।

भावार्थ- यद्यपि आपके गुणों की स्तुति अशक्य है तो भी प्रशस्त यश वाणी अथवा ख्याति के धारक तथा गणधरादि मुनियों के स्वामी आपका उच्चरित नाम भी चूंकि हमें पवित्र करता है इसलिए कुछ कहते हैं।

नाम आपका फिर भी मुनिवर, कीर्तन करने से सुख धाम।
चित्त पुनीत हमारा होवे, इसीलिए करते गुणगान॥87॥

लक्ष्मी-विभव-सर्वस्वं, मुमुक्षोश्चक्र-लाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते, जरत्-तृणमिवाऽभवत्।।८८।।

अन्वयार्थः-हे भगवन् **(लक्ष्मीविभवसर्वस्वं)** लक्ष्मी की विभूति रूप सर्वस्व से युक्त तथा **(चक्रलाञ्छनं)** सुदर्शनचक्र रूप चिह्न से सहित **(सार्वभौमं)** समस्त पृथिवी सम्बन्धी जो **(ते)** आपका **(साम्राज्यं)** साम्राज्य था वह **(मुमुक्षोः)** मोक्ष के इच्छुक होने पर आपके लिये **(जरत्तृणमिव)** जीर्ण तृण के समान **(अभवत्)** हो गया था।

भावार्थ- हे भगवन्! लक्ष्मी की विभूति रूप सर्वस्व से युक्त तथा सुदर्शनचक्र रूप चिन्ह से सहित समस्त पृथिवी सम्बन्धी जो आपका साम्राज्य था वह मोक्ष के इच्छुक होने पर आपके लिए जीर्ण तृण के समान हो गया था।

सार्वभौम साम्राज्य चक्रधर, लक्ष्मी के प्रत्यक्ष निवास।
हो विरक्त सब त्याग किए प्रभु, जैसे सड़ा पुराना घास॥88॥

तव रूपस्य सौन्दर्यं, दृष्ट्वा तृप्ति-मनापिवान्।
द्वयक्षः शक्रः सहस्राक्षो, बभूव बहु-विस्मयः।।८९।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! **(तव)** आपके **(रूपस्य)** शरीर सम्बन्धी रूप की **(सौन्दर्यम्)** सुन्दरता को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(तृप्तिम्)** सन्तोष को **(अनापिवान्)** प्राप्त न होने वाला **(द्वयक्षः)** दोनों नेत्रों का धारक **(शक्रः)** इन्द्र **(बहुविस्मयः)** बहुत भारी आश्चर्य से युक्त **(सहस्राक्षः)** एक हजार नेत्रों का धारक **(बभूव)** हुआ था।

भावार्थ- हे भगवन्! आपके शरीर संबंधी रूप की सुंदरता को देखकर संतोष को प्राप्त न होने वाला दो नेत्रों का धारक इन्द्र बहुत भारी आश्चर्य से युक्त एक हजार नेत्रों का धारक हुआ था।

तृप्त नहीं होतीं दो आँखें, देख आप का रूप अपार।
दो नेत्रों के विस्मित होकर, किए इन्द्र ने नेत्र हजार॥89॥

मोहरूपो रिपुः पापः, कषाय-भट-साधनः।
दृष्टि-संपदुपेक्षाऽस्त्रैस्त्वया धीर! पराजितः।।९०।।

अन्वयार्थः-**(हे धीर)** परीषहादि से जिनका चित्त कभी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता ऐसे हे अर जिनेन्द्र! **(त्वया)** आप ने **(पापः)** पाप रूप तथा **(कषायभटसाधनः)** कषायरूप योद्धाओं की सेना से रहित **(मोहरूपो रिपुः)** मोहनीय कर्मरूपी शत्रु को **(दृष्टिसंपदुपेक्षास्त्रैः)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप अस्त्रों के द्वारा **(पराजितः)** पराजित किया है।

भावार्थ- परीषहादि से जिनका चित्त कभी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता ऐसे हे अर जिनेन्द्र! आपने पाप रूप तथा कषायरूप योद्धाओं की सेना से सहित मोहनीय कर्मरूपी शत्रु को सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप शस्त्रों के द्वारा पराजित किया है।

पापी मोह रूप शत्रू है, साधक जिनके सुभट कषाय।
किया आपने उनको हत बल, दर्श ज्ञान चारित्रोपाय॥90॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस्त्रैलोक्य-विजयाऽर्जितः।
हेपयामास तं धीरे, त्वयि प्रतिहतोदयः।।६१।।

अन्वयार्थः-(**त्रैलोक्य**) तीनों लोकों की (**विजयार्जितः**) विजय से उपार्जित (**कंदर्पस्य**) कामदेव के (**उद्धरः**) बहुत भारी (**दर्प**) गर्व ने (**धीरे**) धीर वीर (**त्वयि**) आपके विषय में (**प्रतिहतोदयः**) खण्डित प्रसर हो (**तं**) कामदेव को (**ह्रेपयामास**) लज्जित किया था।

भावार्थ- तीनों लोकों की विजय से उपार्जित कामदेव के उत्कट बहुत भारी गर्व ने धीर वीर आपके विषय में खण्डित प्रसर हो कामदेव को लज्जित किया था।

तीन लोक पर विजय प्राप्त कर, बढ़ा काम का दर्प महान।
देख आपको धीर हुआ वह, लज्जित हतप्रभ हुआ था क्लान॥91॥

आयत्यां च तदात्वे च, दुःख-योनिर्दुरुत्तरा।
तृष्णा-नदी त्वयोत्तीर्णा, विद्या-नावा विविक्त्या।।६२।।

अन्वयार्थ-हे भगवन्! (**आयत्यां च तदात्वे च**) जो परलोक तथा इस लोक दोनों ही जगह (**दुःखयोनिः**) दुःखों की उत्पत्ति का कारण है तथा (**दुरुत्तरा**) जिसका पार करना अत्यन्त कठिन है ऐसी (**तृष्णानदी**) तृष्णारूपी नदी (**त्वया**) आपने (**विविक्त्या**) निर्दोष (**विद्यानावा**) विद्या-सम्यग्ज्ञान रूपी नौका के द्वारा (**उत्तीर्णा**) पार की है।

भावार्थ- हे भगवन्! जो परलोक तथा इस लोक दोनों ही जगह दुःखों की उत्पत्ति का कारण है तथा जिसका पार करना अत्यन्त कठिन है ऐसी तृष्णा रूपी नदी आपने निर्दोष विद्या-सम्यग्ज्ञान रूपी नौका के द्वारा पार की है।

इह पर लोक वास में दुस्तर, दुख दायक मानो जल धार।
की विराग विज्ञान नाव से, तृष्णा नदी आपने पार॥92॥

अन्तकः क्रन्दको नृणां, जन्म-ज्वर-सखा सदा।
त्वा-मन्त-कान्तकं प्राप्य, व्यावृत्तः काम-कारतः।।६३।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! (**जन्मज्वरसखा**) पुनर्जन्म तथा ज्वर आदि रोगों का मित्र और (**सदा**) हमेशा (**नृणां**) मनुष्यों को (**क्रन्दकः**) रुलाने वाला (**अन्तकः**) यम (**अन्तकान्तकं**) यम का अन्त करने वाले (**त्वाम्**) आपको (**प्राप्य**) प्राप्त कर (**कामकारतः**) अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति से (**व्यावृत्तः**) उपरत हुआ है।

भावार्थ- हे भगवन्! पुनर्जन्म तथा ज्वर आदि रोगों का मित्र और हमेशा मनुष्यों को रुलाने वाला यम का अंत करने वाले आपको प्राप्त कर अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति से उपरत हुआ है।

जग जन को यम दुख देता है, जन्म रोग मित्रों के साथ।
निज का शत्रू निज को पाके, स्वेच्छ क्रिया से हुआ अनाथ॥93॥

भूषा-वेषाऽऽयुध-त्यागि, विद्या-दम-दया-परम्।
रूपमेव तवाचष्टे, धीर! दोष-विनिग्रहम्।।६४।।

अन्वयार्थः-(**धीर!**) हे धीर वीर अरनाथ! (**भूषावेषायुधत्यागि**) आभूषणों, वेषों तथा शस्त्र का त्याग करने वाला तथा (**विद्यादमदयापरम्**) ज्ञान, इन्द्रिय, दमन और दया में तत्पर (**तव**) आपका (**रूपमेव**) रूप ही (**दोषविनिग्रहं**) रागादि दोषों के अभाव को (**आचष्टे**) कहता है।

भावार्थ- हे धीर! अरजिनेन्द्र! आभूषणों, वेषों, तथा शस्त्र का त्याग करने वाला तथा ज्ञान इन्द्रिय दमन और दया में तत्पर आपका रूप ही रागादि दोषों के अभाव को कहता है।

शस्त्र रहित औ वस्त्राभूषण, ज्ञान दया शम दम आगार।
रूप आपका नाथ! बताए, निर्दोषत्त्व स्वयं साकार॥94॥

समन्ततोऽगभासां ते, परिवेषेण भूयसा।
तमो बाह्यमपाकीर्णमध्यात्म ध्यान-तेजसा।।६५।।

अन्वयार्थः-हे भगवन! (**समन्ततः**) सब ओर फैलनेवाले (**ते**) आपके (**अंगभासां**) शरीर सम्बन्धी प्रभाओं के (**भूयसा**) विशाल (**परिवेषेण**) मण्डल के द्वारा (**बाह्यं**) बाह्य (**तमः**) अन्धकार (**अपाकीर्णम्**) नष्ट हुआ है और (**ध्यानतेजसा**) ध्यान रूप तेज के द्वारा (**अध्यात्म**) कर्मरूप अन्तरंग का अन्धकार (**अपाकीर्णम्**) नष्ट हुआ है।

भावार्थ- हे भगवन्! सब और फैलने वाले आपके शरीर संबंधी प्रभाओं

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

के विशाल मण्डल के द्वारा बाह्य अन्धकार नष्ट हुआ है और ध्यान रूप तेज के द्वारा ज्ञानावरणादि कर्म रूप अन्तरङ्ग का अंधकार नष्ट हुआ है।

बिखरी हुई अंग आभा से, बाह्य ध्वान्त का किए विनाश।
ध्यान ज्योति से नाथ! आपने, प्राप्त किया आध्यात्म प्रकाश॥95॥

सर्वज्ञ-ज्योतिषोद्भूतस्तावको महिमोदयः।
कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते, सत्त्वं नाथ! सचेतनम्।।९६।।

अन्वयार्थः-(**नाथ!**) हे अरनाथ! (**सर्वज्ञज्योतिषा**) समस्त पदार्थों को जानने वाली केवलज्ञान रूपी ज्योति से (**उद्भूतः**) उत्पन्न हुआ (**तावकः**) आपकी (**महिमोदयः**) महिमा का उत्कर्ष (**कं**) किस (**सचेतनं**) गुणदोष के विचार में चतुर (**सत्त्वं**) प्राणी को (**प्रणम्रं**) नम्रीभूत (**न कुर्यात्**) नहीं कर देता है? अर्थात् सब को कर देता है।

भावार्थ- हे अरनाथ जिनेन्द्र! समस्त पदार्थों को जानने वाली केवलज्ञान रूपी ज्योति से उत्पन्न हुआ आपकी महिमा का उत्कर्ष किस गुणदोष के विचार में चतुर प्राणी को नम्रीभूत नही कर देता है? सबको कर देता है।

अखिल वस्तु तत्त्वज्ञ आपका, महिमामय देखे जो ज्ञान।
नाथ! आपके श्री चरणों में, नहीं झुकेगा कौन पुमान॥96॥

तव वागमृतं श्रीमत्, सर्व-भाषा-स्वभावकम्।
प्रीणयत्यमृतं यद्वत्, प्राणिनो व्यापि संसदि।।९७।।

अन्वयार्थः- हे भगवन! (**श्रीमत्**) पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने रूप लक्ष्मी सहित, (**सर्वभाषास्वभावकम्**) समस्त भाषाओं रूप परिणमन करने वाले स्वभाव से युक्त तथा (**संसदि**) समवशरण सभा में (**व्यापि**) व्याप्त होने वाला (**तव**) आपका (**वागमृतं**) वचन रूप अमृत (**अमृतं यद्वत्**) अमृत के समान (**प्राणिनः**) प्राणियों को (**प्रीणयति**) संतुष्ट करता है।

भावार्थ- हे भगवन्! पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने रूप लक्ष्मी सहित, समस्त भाषाओं रूप परिणमन करने वाले स्वभाव से युक्त तथा समवशरण सभा में व्याप्त होने वाला आपका वचन रूप अमृत

अमृत के समान प्राणियों को संतुष्ट करता है।

अखिल सभा में व्याप्त आपकी, वचन सुधा अनुपम श्री मान।
प्राणी मात्र को प्रमुदित करती, ज्यों अमृतका कर रसपान॥97॥

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते, सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्व मृषोक्तं स्यात्, तदयुक्तं स्वघाततः।।९८।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! (**ते**) आपकी (**अनेकान्तात्मदृष्टि**) अनेकान्त रूप दृष्टि (**सती**) सत्यार्थ है उससे (**विपर्ययः**) विपरीत एकान्तमत (**शून्यः**) शून्यरूप असत् है (**ततः**) इसलिए (**तदयुक्तं**) उस अनेकान्त दृष्टि से रहित (**सर्व**) सब (**उक्तम्**) कथन (**स्वघाततः**) स्वघातक होने से (**मृषा**) मिथ्यारूप है। अथवा (**ततः**) एकान्तमत के आश्रय से (**उक्तम्**) कहा हुआ (**सर्व**) समस्त वस्तुस्वरूप (**मृषा**) असत्य है तथा (**स्वघाततः**) स्वघातक होने से (**तद्**) वह (**अयुक्तं**) अनुचित है।

भावार्थ- हे भगवन्! आपकी अनेकांत रूप दृष्टि सत्यार्थ है उससे विपरीत एकान्तमय शून्यरूप असत् है इसलिए उस अनेकांत रूप दृष्टि से रहित सब कथन स्वघातक होने से मिथ्यारूप है अथवा एकांतमत के आश्रय से कहा हुआ समस्त वस्तु स्वरूप असत्य है तथा स्वघातक होने से वह अनुचित है।

सत्य आपकी अनेकांतमय, दृष्टि शेष है मिथ्याज्ञान।
तत्त्व कथित जो इसके द्वारा, करते वे अपना अवशान॥98॥

ये परस्खलितोन्निद्राः स्व-दोषेभ-निमीलिनः।
तपस्विनस्ते किं कुर्यु-रपात्रं त्वन्मत-श्रियः।।९९।।

अन्वयार्थः-(**ये**) जो एकान्तवादी (**परस्खलितोन्-निद्राः**) पर-अनेकान्त मत में स्खलित-विरोध आदि दोषों के देखने में (**उन्निद्र**-)जागृत रहते हैं और (**स्वदोषेभनिमीलिनः**) स्व-अपने सदैकान्त आदि एकान्त में दोष-स्वघातत्त्व आदि दोषों के विषय में गज निमीलन से युक्त हैं अर्थात् उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते हैं (**ते**) वे (**तपस्विनः**) तपस्वी (**किं कुर्युः**) क्या करें-स्वपक्ष सिद्धि और पर पक्ष के निराकरण में वे असमर्थ

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

हैं तथा **(त्वन्मतश्रियः)** आपके मत रूपी लक्ष्मी पर पक्ष के निराकरण में वे असमर्थ हैं तथा **(त्वन्मतश्रियः)** आपके मत रूपी लक्ष्मी के **(अपात्रं)** अपात्र हैं।

भावार्थ- जो एकान्तवादी पर अनेकांतमत में स्खलित विरोध आदि दोषों के देखने में उन्निद्र-जागृत रहते हैं और स्व अपने सदेकान्त आदि एकान्त में दोष-स्वघाततत्त्व आदि दोषों के विषय में इभ निमीलन से युक्त है अर्थात् उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते हैं वे बेचारे क्या करें- स्वपक्ष सिद्धि और परपक्ष के निराकरण में वे असमर्थ हैं तथा आपके मत रूपी लक्ष्मी के अपात्र है।

खण्डित करते अनेकांत जो, जिनको दिखते ना निज दोष।
दीन अपात्र सत्य पथ क्या वे, तापस पा सकते निर्दोष?॥99॥

ते तं स्वघातिनं दोषं, शमीकर्तुमनीश्वराः।
त्वद्द्विषः स्वहनो बालास्तत्त्वाऽवक्तव्यतांश्रिताः।।१००।।

अन्वयार्थः-**(ते)** वे एकान्तवादी **(तं)** उस पूर्वोक्त **(स्वघातिनंदोषं)** स्वघाती दोष को **(शमीकर्तुं)** शमन करने के लिये **(अनीश्वराः)** अपने आपका घात करते हैं **(त्वद्‌विषा)** आप अनेकांतवादी से **(बालाः)** कहानी **(स्वहृनो)** द्वेष रखते हैं इसलिए **(तत्त्वावक्तव्यतां श्रितां)** तत्त्व की अवक्तव्यता का आश्रय लेते हैं।

भावार्थ- वे एकान्तवादी उस पूर्वोक्त स्वघाती दोष को शमन करने के लिए असमर्थ हैं, आप अनेकान्तवादी से दोष रखते हैं अपने आपका घात करने वाले हैं, यथावद्वस्तुस्वरूप से अनभिज्ञ हैं और इसीलिए तत्त्व की अवक्तव्यता का आश्रय लेते हैं।

दोष दूर करने में अपने, वे अशक्त वादी अज्ञान।
कहते होकर श्रान्त अन्त में, अवक्तव्य है तत्त्व विधान॥100॥

सदेक-नित्य-वक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति, पुष्यन्ति स्यादितीह ते।।१०१।।

अन्वयार्थः-**(सदेक-नित्य)** सद् एक नित्य, **(वक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च)** वक्तव्य और इनसे विपरीत असत्, अनित्य अनेक, अवक्तव्य **(ये)** ये **(नयाः)** जो नय हैं वे **(सर्वथेति)** इस जगत् में सर्वथा **(प्रदुष्यन्ति)** वस्तु तत्त्व को अत्यधिक विकृत करते हैं **(स्यादितीह)** सदोष बनाते हैं **(पुष्यन्ति ते)** और कथंचित् वस्तु तत्त्व को पुष्ट करते हैं।

भावार्थ- सद्, एक, नित्य, वक्तव्य और इनसे विपरीत असत्, अनित्य अनेक, अवक्तव्य ये जो नय हैं वे इस जगत् में सर्वथा रूप से वस्तु तत्त्व को अत्यधिक विकृत करते हैं-सदोष बनाते हैं और कथंचित् रूप से वस्तु तत्त्व को पुष्ट करते हैं।

वस्तु सर्वथा कहते जो नय, नित्य एक वक्तव्य स्वरूप।
वही अनेक अशाश्वत अथवा, अवक्तव्य ऐकान्तिक रूप॥101॥

सर्वथानियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्म विद्विषाम्।।१०२।।

अन्वयार्थः-**(सर्वथानियमत्यागी)** सर्वथारूप नियम का त्याग करने वाला **(यथादृष्टमपेक्षकः)** तथा यथादृष्ट प्रमाण **(स्याच्छब्दः)** सिद्धवस्तुस्वरूप की अपेक्षा रखने वाला **(तावकेन्याये)** स्यात् शब्द आपके न्याय में है **(आत्मविद्विषाम्)** अपने आपके वैरी **(अन्येषां)** अन्य एकांतवादियों के न्याय **(न)** में नहीं है।

भावार्थः- सर्वथारूप नियम का त्याग करने वाला तथा यथादृष्ट प्रमाण सिद्धवस्तुस्वरूप की अपेक्षा रखने वाला स्यात् शब्द आपके न्याय में है अपने आपके वैरी अन्य एकांतवादियों के न्याय में नहीं है।

न्याय आपका स्यात् शब्दमय, सर्वथत्त्व करता परिहार।
कहता है जैसे को वैसा, है अन्यत्र नहीं यह सार॥102॥

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः, प्रमाण-नय-साधनः।
अनेकान्तःप्रमाणात् ते, तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्।।१०३।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(अनेकान्तोऽपि)** अनेकान्त भी **(प्रमाणनयसाधनः)** प्रमाण और नय रूप साधनों से युक्त होने

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

के कारण **(अनेकान्तः)** अनेकान्त स्वरूप है और **(अर्पितात् नयात्)** विवक्षित नय से **(तदेकान्तः)** अनेकान्त में एकान्त स्वरूप है।

नय प्रमाण साधन जिसमें वह, अनेकांत भी है ऽनैकान्त।
अनेकांत है जो प्रमाण से, अर्पित नय से वह एकान्त॥103॥

इति निरुपम-युक्ति-शासनः, प्रिय-हित-योग-गुणाऽनुशासनः।
अरजिन! दम-तीर्थ-नायक-स्त्वमिव सतां प्रतिबोधनाय कः।।१०४।।

अन्वयार्थ-**(इति)** इस तरह **(अरजिन)** हे अर जिनेन्द्र! आप **(निरुपमयुक्तिशासनः)** उपमा रहित-प्रत्यक्षादि प्रमाणों से युक्त शासन से सहित हैं, **(प्रियहितयोगगुणानुशासनः)** सुखदायक तथा फलकाल में हितकारक, मन, वचन, काय के प्रशस्त व्यापार रूप योग और सम्यग्दर्शनादि गुणों का उपदेश देने वाले हैं तथा **(दमतीर्थनायकः)** इन्द्रिय विजय को सूचित करने वाले आगम के **नायक** हैं। हे नाथ! **(त्वमिव)** आपके समान **(सतां प्रति-बोधनाय)** विद्वज्जनों को प्रतिबोध देने के लिए **(अन्यः कः)** दूसरा कौन है? कोई नहीं है।

भावार्थ- इस तरह हे अर जिनेन्द्र! आप उपमा रहित प्रत्यक्षादि प्रमाणों से युक्त शासन से सहित हैं, सुखदायक तथा फलकाल में हितकारक मन वचन काय के प्रशस्त व्यापार रूप योग और सम्यग्दर्शनादि गुणों का उपदेश देने वाले हैं तथा इन्द्रिय विजय को सूचित करने वाले आगम के नायक हैं। हे नाथ! आपके समान विद्वज्जनों को प्रतिबोध देने के लिए दूसरा कौन है? कोई नहीं है।

अनुपम शासन देव! आपका, इस प्रकार है युक्ति प्रमुक्त।
योग्य गुणों की जिसमें प्रियहित, सर्व व्यवस्था है उपयुक्त॥
शांतितीर्थ के नायक हे अर!, स्वामी आप जिनेन्द्र अनन्य।
प्रतिबोधक को भवि जीवों के, आप समान कौन है अन्य॥104॥

मति-गुण-विभवाऽनुरूपत-स्त्वयि-वरदाऽऽगम-दृष्टिरूपतः
गुण-कृशमपि किञ्चनोदितं, मम भवताद् दुरिताऽसनोदितम्।।१०५।।

अन्वयार्थः-**(हे वरद)** हे वर को देने वाले अर जिनेन्द्र! मैंने

(मतिगुणविभवाऽनुरूपतः) अपनी बुद्धि के गुणों की सामर्थ्य के अनुरूप तथा **(आगमदृष्टि रूपतः)** आगम से प्राप्त हुई दृष्टि के अनुसार **(त्वयि)** आपके विषय में **(गुणकृशमपि)** आपके गुणों का जो कुछ थोड़ा सा **(उदितं)** वर्णन किया है वह वर्णन **(मम)** मेरे **(दुरिताऽसनोदितम्)** पापों के नष्ट करने में समर्थ **(भवतात्)** होवे।

भावार्थ-हे वर को प्रदान करने वाले अरजिनेन्द्र! मैंने अपनी बुद्धि के गुणों की सामर्थ्य के अनुरूप तथा आगम से प्राप्त हुई दृष्टि के अनुसार आपके विषय में आपके गुणों का जो (किंचित्) कुछ थोड़ा सा वर्णन किया है 'विशद' वह वर्णन मेरे पापों के नष्ट करने में समर्थ होवे।

निज मति गुण वैभव से जो कुछ, मैने आगम के अनुसार।
हे वरदायक! कथन किया है, पूर्ण रूप वह है साकार॥
यद्यपि कथन आपका स्वामिन! वह गुण है अत्यल्प प्रमाण।
किन्तु आपकी कृपा से मेरे, होवे पापों का अवशान॥105॥

श्री मल्लिनाथजिन-स्तवनम्

(श्रीछन्दः अथवा सान्द्रपदं छन्दः)

यस्य महर्षेः सकल-पदार्थ-प्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
साऽमर-मर्त्यं जगदपि सर्वं, प्राञ्जलि भूत्त्वा प्रणिपतति स्म।।१०६।।

अन्वयार्थः-**(यस्य महर्षेः)** जिन महर्षि के **(सकलपदार्थप्रत्यवबोधः)** जीवादि समस्त पदार्थों को सब ओर से अशेषविशेषता के साथ जानने वाला केवलज्ञान **(साक्षात्)** स्पष्ट रूप से **(समजनि)** उत्पन्न हुआ और इसलिए जिन्हें **(सामरमर्त्यं)** देवों तथा मनुष्यों से सहित **(सर्वमपि जगत्)** सभी संसार ने **(प्राञ्जलि भूत्त्वा)** बद्धाञ्जलि होकर **(प्रणिपततिस्म)** प्रणाम किया उन मल्लिनाथ जिनेन्द्र की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

भावार्थ- जिन महर्षि के जीवादि समस्त पदार्थों को सब ओर से अशेष विशेषता के साथ जानने वाला केवल ज्ञान स्पष्ट रूप से उत्पन्न हुआ और इसलिए जिन्हें देवों तथा मनुष्यों से सहित सभी संसार ने बद्धांजली होकर प्रणाम किया। उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

विमल ज्ञान में लक्षित होते, जिन महर्षि के सकल पदार्थ।
सब प्रत्यक्ष तत्त्व जगती के, विशद हुए हैं जिनको स्वार्थ॥
जिनके चरणों में तब आया, मानव देव अखिल संसार।
किया प्रणाम भक्ति युत नत हो, अंजलि बाँधे बारम्बार॥106॥

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव, स्व-स्फुरदाऽऽभा-कृत-परिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पद-पूर्वा रमयति साधून्।।१०७।।

अन्वयार्थ:-(**कनकमयीव**) सुवर्ण से निर्मित के समान (**स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा**) अपनी दैदीप्यमान आभा से समस्त शरीर में व्याप्त भामण्डल को करने वाली (**यस्य मूर्तिः**) जिनकी मूर्ति शरीराकृति (**च**) और (**तत्त्वं कथयितुकामा**) वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने की इच्छुक एवं (**स्यात्पूर्वा**) स्यात्पद से सहित (**यस्य**) जिनकी (**वागपि**) वाणी भी (**साधून**) भव्य जीवों को (**रमयति**) प्रसन्न करती है। उन मल्लिनाथ जिनेन्द्र की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

भावार्थ-सुवर्ण से निर्मित के समान अपनी दैदीप्यमान आभा से समस्त शरीर में व्याप्त भामण्डल को करने वाली जिनकी मूर्ति शरीराकृति और वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने की इच्छुक एवं स्यात्पद से सहित जिनकी वाणी भी भव्यजीवों को प्रसन्न करती है। उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

मल्लिनाथ स्वामी का पावन, कनक रूप कमनीय शरीर।
भामण्डल आभामय सुन्दर, कहता जिन्हे धीर गम्भीर॥
जिनकी वाणी तत्त्व कथन में, रही प्रबल बलवती उदार।
स्यात् पद गर्भित करने वाली, रंजित साधुवर्ग संसार॥107॥

यस्य पुरस्तात् विगलित-माना, न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासी-ज्जात-विकोशाम्बुज-मृदु-हासा।।१०८।।

अन्वयार्थ:-(**यस्य**) जिनके (**पुरस्तात्**) आगे (**विगलितमानाः**) गलित मान हुए (**प्रतितीर्थ्याः**) एकान्तवादी जन (**भुवि**) पृथ्वी पर (**न विवदन्ते**) विवाद नहीं करते थे और जिनके विहार के समय (**भूरपि**) पृथ्वी भी (**प्रतिपदं**) डगडग पर (**जातविकोशाऽम्बुजमृदुहासा**) विकसित कमलों से कोमल हास को धारण करती हुई (**रम्या**) मनोहर (**आसीत्**) हुई थी उन मल्लिनाथ की शरण को (**जात**) मैं प्राप्त हुआ हूँ।

भावार्थ-जिनके आगे गलितमान हुए एकान्तवादी जन पृथिवी पर विवाद नहीं करते थे और जिनके विहार के समय पृथिवी भी पद पद पर विकसित कमलों से कोमल हास को धारण करती हुई मनोहर हुई थी मैं उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

प्रतिवादी जन जिनके आगे, होकर जग के विगलित मान।
छोड़ के अपना शांत हो रहे, सब पाण्डित्य और व्याख्यान॥
पृथ्वी भी पाकर जिन स्वामी, का निर्मलतम पद संचार।
कमल समानरम्य वन विकशित, करती हृदय हास्य विस्तार॥108॥

यस्य समन्ताज्जिन-शिशिरांशोः शिष्यक-साधु-ग्रह-विभवोऽभूत।
तीर्थमपि स्वं जनन-समुद्र-त्रासित-सत्त्वोत्तरण-पथोऽग्रम्।।१०६।।

अन्वयार्थ:-(**यस्य जिनशिशिरांशोः**) जिन मल्लिनाथ जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा के (**समन्तात्**) चारों ओर (**शिष्यकसाधुग्रहविभवः**) शिष्य-साधु रूप ग्रहों का-ताराओं का विभव (**अभूत्**) विद्यमान था और जिनका (**स्वं**) अपना (**तीर्थमपि**) शास्त्र भी (**जननसमुद्रत्रासितसत्त्वोत्तरणपथः अग्रम्**) संसाररूपी समुद्र से भयभीत प्राणियों के पार उतरने का प्रधान मार्ग था उन मल्लिनाथ जिनेन्द्र की शरण को मैं प्राप्त हुआ हूँ।

भावार्थ-जिन मल्लि जिनेन्द्र रूपी चन्द्रमा के चारों ओर शिष्यसाधु रूप गृहों का ताराओं का विभव विद्यमान था और जिनका अपना शास्त्र भी संसार रूपी समुद्र से भयभीत प्राणियों के पार उतरने का प्रधान मार्ग था उन मल्लि जिनेन्द्र की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

हैं जिनेन्द्र जो शीत किरण शशि, तुल्य जिन्हों के चारों ओर।
शिष्य वर्ग नक्षत्रों जैसे, रहते हों आनन्द विभोर॥
जो सज्जन संसार वास में, होकर के रहते भयभीत।
सच्चे उद्धारक हैं उनके, स्वयं नाथ! जो तीर्थ पुनीत॥109॥

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्निर्-ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्।
तं जिन-सिंहं कृतकरणीयं, मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि।।११०।।

अन्वयार्थः-(**च**) और (**यस्य**) जिनके (**शुक्लं ध्यानं**) शुक्लध्यान रूप (**परमतपोऽग्निः**) उत्कृष्ट तप रूपी अग्नि ने (**अनन्तं**) अन्त को प्राप्त न होने वाले (**दुरितं**) अष्ट कर्मरूप पाप को (**अधाक्षीत्**) दग्ध किया था (**तं**) उन (**जिनसिंहं**) जिनश्रेष्ठ (**कृतकरणीयं**) कृतकृत्य (**अशल्यं**) माया मिथ्यात्वादि शल्यों से रहित (**मल्लिं**) मल्लिनाथ जिनेन्द्र की (**शरणमितोऽस्मि**) शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

भावार्थ- जिनके शुक्लध्यान रूप उत्कृष्ट तपोग्नि ने अंत को प्राप्त न होने वाले अष्ट कर्म रूप पाप को दग्ध किया था उन जिनश्रेष्ठ कृतकृत्य माया मिथ्यात्वादि शल्यों से रहित मल्लि जिनेन्द्र की 'विशद' शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

ज्वाला परम तपस्या की शुभ, शुक्ल ध्यान है जिसका नाम।
कर डाला है पाप अनन्तों, को जिनने उससे निर्नाम॥
हैं अशल्य जिन सिंह मल्लिजिन, वे कृत्कृत्य नाथ! निष्काम।
करते हैं हम निशदिन उनके, चरणाम्बुज में "विशद" प्रणाम॥110॥

श्री मुनिसुव्रतजिन-स्तवनम्

(वैतालीयं छन्दः)

अधिगत-मुनि-सुव्रत-स्थितिर्-मुनि-वृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनि-परिषदि निर्बभौ भवा-, नुडु-परिषत्परिवीत-सोमवत्।।१११।।

अन्वयार्थः-(**अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिः**) जिन्होंने मुनियों के उत्तम व्रतों की स्थिति को अधिगत-सुनिश्चित अथवा प्राप्त कर लिया है, जो (**मुनि वृषभः**) मुनियों में श्रेष्ठ हैं और जो (**अनघः**) चार घातिया कर्म रूपी पाप से रहित हैं ऐसे (**भवान्**) आप (**मुनिसुव्रतः**) 'मुनिसुवत' इस सार्थक नाम को धारण करने वाले जिनेन्द्र (**मुनिपरिषदि**) समवशरण के बीच मुनियों की सभा में (**उडुपरिषत्परिवीतसोमवत्**) नक्षत्रों के समूह से घिरे हुए चन्द्रमा के समान (**निर्बभौ**) सुशोभित हुए थे।

भावार्थ-जिन्होंने मुनियों के उत्तम व्रतों की स्थिति को सुनिश्चित अथवा प्राप्त कर लिया है, जो मुनियों में श्रेष्ठ हैं, और जो चार घातिया कर्म रूपी पाप से रहित हैं ऐसे आप मुनिसुव्रत इस सार्थक नाम को धारण करने वाले जिनेन्द्र समवशरण के बीच मुनियों की सभा में नक्षत्रों के समूह से घिरे हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित हुए थे।

अधिगत कर चारित्र धर्म को, जिन मुनियों के हे मुनिनाथ!।
अनघ श्री मुनिसुव्रत स्वामी, नाम आपका रहा यथार्थ॥
शोभा मुनियों की परिषद में, नाथ! आपकी रही अनूप।
शोभित होता तारागण से, वेष्टित जैसे सोम स्वरूप॥111॥

परिणत-शिखि-कण्ठ-रागया, कृत-मद-निग्रह-विग्रहाऽऽभया।
तव जिन! तपसः प्रसूतया, गृह-परिवेष-रुचेव शोभितम्।।११२।।

अन्वयार्थः-(**कृतमदनिग्रह**) काम अथवा अहंकार का निग्रह करने वाले (**जिन**) हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! (**परिणतशिखिकण्ठरागया**) तरुण मयूर के कण्ठ के समान वर्णवाली (**तपसः प्रसूतया**) तप से उत्पन्न (**तव विग्रहाभया**) आपके शरीर की आभा-चारों ओर फैलने वाली दीप्ति (**ग्रहपरिवेषरुचेव**) चन्द्रमा के परिवेष-परिमण्डल की दीप्ति के समान (**शोभितम्**) सुशोभित हुई थी।

भावार्थ-काम अथवा अहंकार का निग्रह करने वाले हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! तरुण मयूर के कण्ठ के समान वर्णवाली तप से उत्पन्न आपके शरीर की आभा- चारों ओर फैलने वाली दीप्ति चन्द्रमा के परिवेष-परिमण्डल की दीप्ति के समान सुशोभित हुई थी।

मोर कण्ठ सम कान्तिमान है, नाथ! आपका रम्य शरीर।
तप से हुए कान्तिमय जिनने, किया काम को अबल अधीर॥
प्रभू आपके तन की आभा, सुन्दर दिखती है जिननाथ!।
बैठे गोलाकार बनाकर, जैसे तारागण सब साथ॥112॥

शशि-रुचि-शुचि-शुक्ल-लोहितं, सुरभितरं विरजो निजं वपुः।
तव शिवमऽतिविस्मयं यते! यदपि च वाङ्मनसीयमीहितम्।।११३।।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

अन्वयार्थः- **(यते)** हे महामुनिराज! **(शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं)** चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल एवं सफेद खून से युक्त **(सुरभितरं)** अत्यन्त सुगन्धित और **(विरजः)** रज रहित-मल रहित जो **(तव)** आपका **(निजं वपुः)** अपना शरीर था वह **(शिवं)** अत्यन्त शुभ तथा **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य करने वाला **(च)** और **(वाङ्मनसीयम् अपि)** वचन तथा मन की भी **(यत् ईहितं)** जो चेष्टा **(तदपि)** वह भी **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य करने वाली है।

भावार्थ-हे महामुनिराज! चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल एवं सफेद खून से युक्त अत्यंत सुगन्धित और रज रहित मल रहित जो आपका अपना शरीर था वह अत्यन्त शुभ तथा अत्यन्त आश्चर्य करने वाला और वचन तथा मन की भी जो चेष्टा वह भी अत्यन्त आश्चर्य करने वाली है।

शुक्लवर्ण का रक्त देह में, चन्द्रकिरण सम परम पवित्र।
निर्मल तन है नाथ! आपका, लज्जित जिससे सुरभित इत्र॥
मंगलमय शिव रूप आपका, हे मतिवर! आश्चर्य निवास।
निश्चित है मेरे मन में यह, नाथ! आपका वचन विलास॥113॥

स्थिति-जनन-निरोध-लक्षणं, चर-मचरं च जगत् प्रतिक्षणम्।
इति जिन! सकलज्ञ-लाञ्छनं, वचनमिदं वदतांवरस्य ते।।११४।।

अन्वयार्थः-**(जिन)** हे जिनेन्द्र! **(चरं)** चेतन **(च)** और **(अचरं)** अचेतन रूप **(जगत्)** संसार **(प्रतिक्षणं)** क्षण-क्षण में **(स्थितिजनन-निरोधलक्षणं)** ध्रौव्य, उत्पाद और व्यय रूप लक्षण से युक्त है **(इति इदं)** इस प्रकार का यह जो **(वदतांवरस्य ते)** वक्तृप्रवर आपका **(वचनं)** वचन है **(तत्)** वह **(सकलज्ञलाञ्छनं)** सर्वज्ञ का चिह्न है-आपकी सर्वज्ञता का द्योतक है।

भावार्थ- हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! चेतन और अचेतनरूप संसार क्षण क्षण में ध्रौव्य उत्पाद और व्यय रूप लक्षण से युक्त है-इस प्रकार का यह जो वक्ताओं में श्रेष्ठ आपका वचन है वह सर्वज्ञ का चिन्ह है आपकी

सर्वज्ञता का द्योतक है।

विश्व चराचर अस्थिर है यह, सदा ना रहता एक समान।
इसमें व्यय उत्पाद ध्रौव्य का, चक्र सदा चलता गतिमान॥
श्रेष्ठ आपका हे उपदेशक!, अनुपम है ये वचन विलाश।
नाथ! आपका जो करता है, सर्व तत्त्व ज्ञातृत्य प्रकाश॥114॥

दुरित-मल-कलंकमष्टकं, निरुपम-योग-बलेन-निर्दहन्।
अभवदभव-सौख्यवान् भवान्, भवतु ममापि भवोपशान्तये।।११५।।

अन्वयार्थः-हे भगवन! **(निरुपमयोगबलेन)** अनुपम शुक्लध्यान के बल से **(अष्टकं)** आठ प्रकार के **(दुरितमलकलंकम्)** कर्म मल रूप कलंक को **(निर्दहन्)** जलाते हुए **(भवान्)** आप **(अभवसौख्यवान्)** मोक्ष सम्बन्धी अतीन्द्रिय सुख से युक्त **(अभवत्)** हुए हैं ऐसा आप **(ममापि)** मुझ समन्तभद्र के भी **(भवोपशान्तये)** संसार की उपशान्ति के लिये **(भवतु)** होवें।

भावार्थ-हे भगवन्! अनुपम शुक्लध्यान के बल से आठ प्रकार के कर्ममल कलङ्क को जलाते हुए आप मोक्ष सम्बन्धी अतीन्द्रियसुख से युक्त हुए हैं, ऐसे आप मुझ समन्त भद्र के भी 'विशद' संसार की उपशांति के लिए होवें।

किया आपने अष्ट कर्म के, मलकलंक का निर्मम दाह।
स्वामिन् योग शक्ति से अनुपम, जिसकी है सामर्थ्य अथाह॥
हे जिनवर! सुख मिले आपको, इसीलिए संसारातीत।
अब संसार शांति को मेरी, बनिए कारण आप पुनीत॥115॥

श्री नमिजिन-स्तवनम्

(शिखरणी छन्दः)

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशल-परिणामाय स तदा,
भवेन्मा वा स्तुत्यः, फलमपि ततस्तस्य च सतः।
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायस-पथे,

स्तुयान्न त्वां विद्वान्, सततमभिपूज्यं नमि-जिनम्।।११६।।

अन्वयार्थः-(**स्तुतिः**) भगवान् की स्तुति (**स्तोतुः**) स्तुति करने वाले (**साधोः**) भव्य पुरुष के (**कुशलपरिणामाय**) पुण्यसाधक-प्रशस्त परिणाम के लिये होती है (**तदा**) स्तुति के काल अथवा स्तुति के देश में (**सः स्तुत्यः**) वह स्तुति का पात्र आराध्यदेव (**भवेत् मा वा**) हो अथवा न हो (**च**) और (**ततः**) उस स्तुत्य से (**तस्य सतः**) उस स्तुति करने वाले भव्य पुरुष को (**फलमपि**) स्वर्गादि फल की प्राप्ति भी (**भवेत् मा वा**) हो अथवा न हो (**एवं**) इस प्रकार (**जगति**) संसार में (**स्वाधीन्यात्**) स्वाधीनता से (**श्रायसपथे**) कल्याण अथवा सम्यग्दर्शनादि मोक्ष सम्बन्धी मार्ग के (**सुलभे सति**) सुलभ रहने पर (**किं**) क्या (विद्वान्) विचारपूर्वक कार्य करने वाला विवेकीजन (**सततं**) सदा (**अभिपूज्यं**) इन्द्रादि के द्वारा पूज्य (**त्वानमिजिनं**) आप नमिनाथ जिनेन्द्र की (**न स्तुयात्**) स्तुति न करें? अवश्य करें।

भावार्थ-भगवान् की स्तुति, स्तुति करने वाले भव्य पुरुष के पुण्यसाधक-प्रशस्त परिणाम के लिये होती है स्तुति के काल अथवा स्तुति के देश में वह स्तुति का पात्र आराध्यदेव हो अथवा न हो और उस स्तुत्य से उस स्तुति करने वाले भव्य पुरुष को स्वर्गादि फल की प्राप्ति भी हो अथवा न हो इस प्रकार संसार में स्वाधीनता से कल्याण अथवा सम्यग्दर्शनादि मोक्ष सम्बंधी मार्ग के सुलभ रहने पर क्या विचार पूर्वक कार्य करने वाला विवेकी जन सदा इन्द्रादि के द्वारा पूज्य आप नमि जिन की स्तुति न करें? अवश्य करें।

साधु जनों का थुति विस्तारक, रहता लक्ष्य कुशल परिणाम।
हो स्तुत्य सामने या ना, फल उसको मिलता निष्काम॥
है कल्याण मार्ग इस जग में, सुलभ रहा जब कि स्वाधीन।
हे नमि जिन! स्तुती आपकी, क्यों न करें तब विज्ञ प्रवीण॥116॥

त्वया धीमन्! ब्रह्म-प्रणिधि-मनसा जन्म-निगलं,
समूलं निर्भिन्नं, त्वमसि विदुषां मोक्ष-पदवी।
त्वयि ज्ञान-ज्योतर्विभव-किरणैर्भाति भगवन्।

नभूवन् खद्योता, इव शुचिरवावन्यमतयः।।११७।।

अन्वयार्थः-(**हे धीमन्**) हे विशिष्ट बुद्धि से युक्त नमिनाथ जिनेन्द्र! (**ब्रह्मप्रणिधिमनसा**) शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थिर चित्त वाले (**त्वया**) आपके द्वारा (**जन्मनिगलं**) संसार रूपी बन्धन (**समूलं**) मूल-कारण सहित (**निर्भिन्नं**) नष्ट किया गया है इसलिए (**त्वम्**) आप (**विदुषां**) विद्वानों के लिये (**मोक्षपदवी**) मोक्षमार्ग स्वरूप (**असि**) हैं (**भगवन्**) हे भगवन्! (**त्वयि**) आपके (**ज्ञानज्योतिर्विभवकिरणैः**) केवलज्ञान ज्योति की सम्पदा रूप किरणों के द्वारा (**भाति**) सुशोभित होने पर (**अन्यमतयः**) सुगत, कपिल, ईश्वर आदि अन्यमतावलम्बी जन (**शुचिरवौ**) ग्रीष्मऋतु के सूर्य के दैदीप्यमान रहते (**खद्योता इव**) जुगनुओं के समान (**अभूवन्**) हो गये थे।

भावार्थ-हे विशिष्ट बुद्धि से युक्त नमि जिन! शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थिर चित्तवाले आपके द्वारा संसार रूपी बन्धन मूल कारण सहित नष्ट किया गया है इसलिए आप विद्वानों के लिए मोक्षमार्ग स्वरूप हैं। हे भगवन्! आपके केवलज्ञान ज्योति की संपदा रूप किरणों के द्वारा सुशोभित होने पर सुगत कपिल ईश्वर आदि अन्य मतावलम्बी जन ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के दैदीप्यमान रहने पर जुगनुओं के समान हो गये थे।

किया आपने आत्म ध्यान से, नाथ! जन्म बन्धन निर्मूल।
मुक्ति हेतु हो विद्वत जन के, लिए आप हे जिन! अनुकूल॥
नाथ! आपके अन्तर्वैभव, का प्रकाश है ज्ञानोद्योत।
है मति भिन्न प्रभू के आगे, खर रवि आगे ज्यों खद्योत॥117॥

विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तद्,
विशेषैः प्रत्येकं, नियम-विषयैश्चाऽपरिमितैः।
सदाऽन्योऽन्यापेक्षैः, सकल-भुवन-ज्येष्ठ-गुरुणा,
त्वया गीतं तत्त्वं, बहु-नय-विवक्षेतर-वशात्।।११८।।

अन्वयार्थः-हे भगवन! (**सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा**) समस्त संसार के महान् गुरु स्वरूप (**त्वया**) आपने (**बहुनयविवक्षेतरवशात्**) अनेक नयों की विवक्षा और अविवक्षा के वश (**प्रत्येकं**) विधि-निषेध,

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

मूर्त्त-अमूर्त्त, स्थूल सूक्ष्म आदि प्रत्येक धर्म का लक्ष्य कर **(नियमविषयैः)** नियम से 'भंग' सात ही होते हैं हीनाधिक नहीं इस नियम के विषय भूत और **(सदान्योन्यापेक्षैः)** सदा एक-दूसरे की अपेक्षा रखने वाले **(अपरिमितैः)** अनन्त **(विशेषैः)** त्रैकालिक धर्मों के द्वारा **(तत् तत्त्वं)** उस वस्तुस्वरूप को **(विधेयं)** विधिस्वरूप, **(वार्यं)** निषेध स्वरूप **(उभयं)** विधिनिषेध स्वरूप **(अनुभयं)** अवक्तव्य स्वरूप **(च)** और **(मिश्रमपि)** मिश्ररूप भी-अर्थात् स्यादस्ति अवक्तव्य स्यान्नास्ति अवक्तव्य, तथा स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य इस तरह सात भंग रूप **(गीतं)** कहा है।

भावार्थ-हे भगवन्! समस्त संसार के महान् गुरु स्वरूप आपने अनेक नयों की विवक्षा और अविवक्षता के वश विधि निषेध, मूर्त्त अमूर्त्त, स्थूलसूक्ष्म आदि प्रत्येक धर्म का लक्ष्य कर 'भङ्ग' सात ही होते हैं हीनाधिक नहीं इस नियम के विषय भूत और सदा एक दूसरे की अपेक्षा रखनेवाले अनन्त त्रैकालिक धर्मों के द्वारा उस वस्तु स्वरूप को विधि स्वरूप निषेध स्वरूप, विधि निषेध स्वरूप, अवक्तव्यस्वरूप और मिश्र रूप भी अर्थात् स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य तथा स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य इस तरह सात भङ्गरूप कहा है।

तत्त्व विवक्षित कहे आपने, अरु अविवक्षित नय अनुसार।
सदा परस्पर हे त्रिभुवन गुरु!, वे नय सभी अपेक्षा-कार॥
अस्ति नास्ति उभय अरु अनुभ, फिर अनुमय है अस्ति समेत।
अनुभय नास्ति उभय युत अनुभय, सप्त भंग ये हैं अभिप्रेत॥118॥

अहिंसा भूतानां, जगति विदितं ब्रह्म परमं,
न सा तत्राऽऽरम्भोऽ-स्त्यणुरपि च यत्राऽऽश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं, परम-करुणो ग्रन्थमुभयं,
भवानेवाऽत्याक्षीन्-न च विकृत-वेषोपधि-रतः।।११६।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! **(भूतानां)** प्राणियों की **(अहिंसा)** अहिंसा **(जगति)** संसार में **(परमं ब्रह्म)** परम ब्रह्म रूप से **(विदितं)** प्रसिद्ध है अर्थात् अहिंसा ही परम ब्रह्म है परन्तु **(सा)** वह अहिंसा **(तत्र)** उस **(आश्रमविधौ)** आश्रम विधि में **(न)** नहीं है **(यत्र)** जिसमें

कि **(अणुरपि)** थोड़ा भी **(आरम्भः)** आरम्भ होता है **(ततः)** इसलिए **(तत्सिद्ध्यर्थं)** उस अहिंसा धर्म की सिद्धि के लिये **(परमकरुणः)** परम दयालु होकर **(भवानेव)** आपने ही **(उभयं)** बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दोनों प्रकार के **(ग्रन्थं)** परिग्रह को **(अत्याक्षीत्)** छोड़ा है **(च)** और **(विकृतवेषोपधिरतः)** यथाजात लिंग के विरोधी वेष तथा परिग्रह में आसक्त **(न अभवत्)** नहीं हुए हैं।

भावार्थ- हे भगवन्! प्राणियों की अहिंसा जगत् में परम ब्रह्म है परन्तु वह अहिंसा उस आश्रम विधि में नहीं है जिसमें कि थोड़ा भी आरम्भ होता है इसलिए उस अहिंसा धर्म की सिद्धि के लिए परम दयालु होकर आपने ही बाह्य और आभ्यंतर के भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़ा है और यथाजात लिङ्ग के विरोधी वेष तथा परिग्रह में आसक्त नहीं हुए हैं।

जीवन विश्व प्राणियों का है, परम अहिंसा भूत महान।
जहाँ जरा आरम्भ है किन्तू, उस आश्रम में ना स्थान॥
त्यागें अन्तर्बाह्य परिग्रह, परम अहिंसा के सिद्ध्यर्थ।
नाथ! आपतो परम कारुणिक, विकृत वेष रहा फिर व्यर्थ॥119॥

वपुर्भूषा-वेष-व्यवधि-रहितं - शान्त-करणं,
यतस्ते - संचेष्टे - स्मर-शर-विषाऽऽतंक-विजयम्।
बिना - भीमैः, - शस्त्रै-रदय-हृदयाऽऽमर्ष-विलयं,
ततस्त्वं निर्मोहः, शरणमसि नः शान्ति-निलयः।।१२०।।

अन्वयार्थः-हे भगवन् **(भूषावेषव्यवधिरहितं)** आभूषण वेष तथा वस्त्रादिक के आवरण से रहित और **(शान्तकरणं**) अपने-अपने विषयों से निःस्पृह इन्द्रियों से युक्त **(ते)** आपका **(वपुः)** शरीर **(यतः)** चूंकि **(स्मरशरविषातंकविजयम्)** काम के बाणरूप विष से उत्पन्न व्याधि की विजय को तथा **(भीमैः शस्त्रैः विना)** भयंकर शस्त्रों के बिना **(अदयहृदयामर्षविलयं)** निर्दयहृदय सम्बन्धी क्रोध के विनाश को **(संचष्टे)** कह रहा है **(ततः)** इसलिए **(त्वं)** आप **(निर्मोहः)** मोह

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

रहित और **(शान्तिनिलयः)** कर्मक्षय से उत्पन्न होने वाली शान्ति के स्थान हैं तथा **(नः)** हमारे **(शरणम्)** शरणभूत-रक्षक **(असि)** हैं।
भावार्थ- हे भगवन्! आभूषण वेष तथा वस्त्रादिक के आवरण से रहित और अपने विषयों से निस्पृह इन्द्रियों से युक्त शरीर चूंकि काम के बाण रूप विष से उत्पन्न व्याधि की विजय को तथा भयंकर शस्त्रों के बिना निर्दयहृदय सम्बन्धी क्रोध के विनाश को कह रहा है इसलिए आप मोह रहित और कर्मक्षय से उत्पन्न होने वाली शांति के स्थान हैं तथा हमारे शरणभूत 'विशद' रक्षक हैं।

इन्द्रिय जयी वस्त्र आभूषण, विरहित रहा प्रशान्त शरीर।
बता रहा है नाथ! आपको, स्मर शर विष नाशक वीर॥
निर्दय मन का किया आपने, बिना अस्त्र के कोप विनाश।
हे निर्मोही शरणभूत हो, आप हमारे शांति निवास॥120॥

श्री अरिष्टनेमिजिन-स्तवनम्

(विषमजातावुग्दता छन्दः)

भगवानृषिः परम-योग-दहन-हुत-कल्मषेन्धनः।
ज्ञान-विपुल-किरणैः सकलं प्रतिबुद्ध्य बुद्ध-कमलायतेक्षणः।।१२१।।

अन्वयार्थः-**(भगवान्)** जो इन्द्रादि के द्वारा पूज्य हैं, **(ऋषिः)** जो परम ऋद्धियों से सम्पन्न हैं, **(परमयोगदहनहुतकल्मषेन्धनः)** उत्कृष्ट शुक्लध्यान रूपी अग्नि में जिन्होंने कर्मरूपी ईंधन को होम दिया है, **(बुद्धिकमलायतेक्षणः)** जिनके नेत्र खिले हुए कमल के समान विशाल हैं, **(हरिवंशकेतुः)** जो हरिवंश के प्रधान हैं **(अनवद्यविनयदमतीर्थनायकः)** जो निर्दोष विनय और इन्द्रिय दमन के प्रतिपादक शास्त्र के प्रवर्तक हैं, **(शीलजलधिः)** जो शील के समुद्र हैं और **(अजरः)** जो वृद्धावस्था से रहित हैं ऐसे **(त्वं)** आप **(अरिष्टनेमिजिनकुञ्जरः)** अरिष्टनेमि जिनेन्द्र **(ज्ञानविपुलकिरणैः)** ज्ञानरूप विस्तृत किरणों के द्वारा **(सकलं)** समस्त लोकालोक को **(प्रतिबुद्ध्य)** प्रकाशित कर अथवा जानकर **(विभव)** संसार से मुक्त **(अभवः)** हुए थे।

भावार्थ- जो विशिष्ट ज्ञानवान अथवा इन्द्रादि के द्वारा पूज्य हैं, जो परम ऋद्धियों से सम्पन्न हैं, उत्कृष्ट शुक्लध्यान रूपी अग्नि में जिन्होंने कर्मरूपी ईन्धन को होम दिया है, जिनके नेत्र खिले हुए कमल के समान विशाल हैं जो हरिवंश के प्रधान हैं, जो निर्दोष विनय और इन्द्रियदमन के प्रतिपादक शास्त्र के प्रवर्तक हैं, जो शील के समुद्र हैं, और जो वृद्धावस्था से रहित हैं ऐसे आप अरिष्टनेमि जिनेन्द्र ज्ञानरूप विस्तृत किरणों के द्वारा समस्त लोकालोक को प्रकाशित कर अथवा जानकर संसार से मुक्त हुए थे।

होमे परम ध्यान ज्वाला में, कर्म काष्ठ हे ऋषि! भगवान!।
जग को नाथ! जगाया तुमने, करके विशद प्रकाशित ज्ञान॥121॥

हरिवंश - केतुरनवद्य - विनय - दम - तीर्थ- नायकः।
शील-जलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमि-जिनकुञ्जरोऽजरः।।१२२।।

अन्वयार्थः-हे भगवन् **(स्वार्थनियतमनसः)** मोक्षरूप स्वार्थ में जिनके मन नियन्ति हैं **(सुधियः)** जो उत्तम बुद्धि से युक्त हैं और **(मन्त्रमुखराः)** जो मन्त्र से अथवा सामान्य स्तुति से वाचाल हैं ऐसे **(महर्षयः)** गणधरादि बड़े-बड़े ऋषि **(भवतः)** आपके **(तत्)** उस **(पादयुगलं)** चरणयुगल को **(प्रणमन्ति)** प्रणाम करते हैं **(यत्)** जो कि **(त्रिदशेन्द्रमौलिमणिरत्नकिरण विसरोपचुम्बितम्)** इन्द्रों के मुकुटों में लगे हुए मणियों और रत्नों की किरणों के समूह से चुम्बित हैं, **(अमलं)** निर्मल उज्जवल हैं, **(विकसत्कुशेशयदलारूणोदरम्)** जिनका तलभाग खिले हुए कमलदलके समान लाल वर्ण का है, तथा **(नखचन्द्ररश्मिकवचातिरु चिरशिखरांगुलिस्थलम्)** जिनकी अंगुलियों का स्थान नख रूपी चन्द्रमा की किरणों के परिवेष से अत्यन्त मनोहर अग्रभाग से सहित है।
भावार्थ- हे भगवन्! मोक्षरूपी स्वार्थ में जिनके मन नियंत्रित हैं जो उत्तम बुद्धि से युक्त हैं और जो णमोणेमिजिणाणं "इस सात अक्षर वाले मंत्र से अथवा सामान्य स्तुति से वाचाल हैं ऐसे गणधरादि बड़े बड़े ऋषि आपके उस चरणयुगल को प्रणाम करते हैं जो कि इन्द्रों के मुकुटों में लगे हुए

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

मणियों और रत्नों की किरणों के समूह से चुम्बित हैं निर्मल उज्ज्वल है जिनका तलभाग खिले हुए कमलदल के समान लालवर्ण का हैं तथा जिनकी अंगुलियों का स्थान नखरूपी चन्द्रमा की किरणों के परिवेष से अत्यंत मनोहर अग्रभाग से सहित है।

तीर्थ प्रणेता दोष रहित दमि, विनयी हे हरिकुल के केतु!।
अजर अमर जिन पुंगव नेमी, अरिष्ट शील सागर सुख सेतु॥122॥

पाद-युगलममलं भवतो, विकसत्कुशेशय-दलाऽरुणोदरम्।।१२३।।
नख-चन्द्र-रश्मि-कवचाऽति-रुचिर-शिखराऽङ्गुलि-स्थलम्।

त्रिदशेन्द्र-मौलि-मणि-रत्न-किरण-विसरोपचुम्बितम्।
स्वार्थ-नियत-मनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्र-मुखरा महर्षयः।।१२४।।

अन्वयार्थः-हे भगवन्! **(द्युतिमद्रथांगरविबिम्बकिरण-जटिलांशुमण्डलः)** कान्तिमान् सुदर्शन चक्ररूपी सूर्य बिम्ब की किरणों से जिनकी कान्ति का मण्डल व्याप्त हो रहा है **(नीलजलदजलराशिवपुः)** नील मेघ और समुद्र के समान जिनका श्याम शरीर है तथा **(ईश्वरः)** जो तीन खण्ड के स्वामी हैं ऐसे **(गरुडकेतुः)** श्रीकृष्ण, **(च)** और **(हलभृत्)** बलभद्र इस प्रकार **(स्वजनभक्तिमुदितहृदयौ)** आत्मबन्धु की भक्ति से जिनके चित्त प्रसन्न हो रहे थे, **(जिनेश्वरौ)** जो लोक के स्वामी थे और **(धर्मविनयरसिकौ)** जो धर्मार्थ विनय के रसिक थे-ऐसे दोनों भाईयों ने **(बन्धुभिः सह)** अपने अन्य भाईयों के साथ **(ते)** आपके **(चरणारविन्दयुगलं)** चरणकमलों के युगल को **(सुतरां)** बार-बार **(प्रणेमतुः)** प्रणाम किया था।

भावार्थ- हे भगवन्! कांतिमान सुदर्शनचक्र रूपी सूर्य बिम्ब की किरणों से जिनकी कांति का मण्डल व्याप्त हो रहा है नील मेघ और समुद्र के समान जिनका श्याम शरीर है अथवा नीलकमल के पत्रों के समान जिनका श्याम शरीर है तथा जो तीन खण्ड पृथिवी के स्वामी हैं ऐसे श्रीकृष्ण और बलभद्र इस प्रकार आत्मबंधु की भक्ति से जिनके चित्त प्रसन्न हो रहे थे जो लोक के स्वामी थे और जो धर्मार्थ विनय के रसिक

थे ऐसे दोनों भाईयों ने अपने अन्य भाईयों के साथ आपके चरणकमलों के युगल को बार बार प्रणाम किया था।

कमल पत्र सम नाथ! आपके, विकशित निर्मल चरण ललाम।
सुरपति मुकुट रत्न की किरणें, फैलाकर पद करें प्रणाम॥123॥

द्युतिमद्-रथांग-रवि-बिम्ब-किरण-जटिलांशुमण्डलः।
नील-जलद-जल-राशि-वपुः सह बन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः।।१२५।।

हलभृच्च ते स्वजनभक्ति-मुदित-हृदयौ जनेश्वरौ।
धर्म-विनय-रसिकौ सुतरां, चरणाऽरविन्द-युगलं प्रणेमतुः।।१२६।।

अन्वयार्थः-**(भुवः ककुदम्)** जो पृथ्वी की ककुद है, बैल के कन्धे के समान ऊँचा तथा शोभा उत्पन्न करने वाला है, **(खचरयोषिदुषितशिखरैः)** जो विद्याधरों की स्त्रियों से सेवित शिखरों के द्वारा **(अलंकृत)** सुशोभित हैं, **(मेघपटलपरिवीततटः)** जिसके तट मेघों के समूह से घिरे रहते हैं **(वज्रिणा लिखितानि)** जो इन्द्र के द्वारा लिखे हुए **(हे नेमिनाथ)** **(तव लक्षणानि वहति इति तीर्थं)** आपके चिह्नों को धारण करता है इसलिए तीर्थस्थान है, **(सततं अद्य च)** हमेशा तथा आज भी **(प्रीतिविततहृदयैः)** प्रीति से विस्तृत चित्तवाले **(ऋषभिः च)** ऋषियों के द्वारा जो **(परितः)** सब ओर से **(भृशं)** अत्यधिक **(अभिगम्यते)** सेवित **(इति)** ऐसा वह **(विश्रुतः)** अतिशय प्रसिद्ध **(ऊर्जयन्त अचलः)** ऊर्जयन्त नाम का पर्वत है (जिस पर जाकर कृष्ण और बलराम ने आपके चरण युगल को प्रणाम किया था।)

भावार्थ- जो पृथिवी का ककुद है, बैल के कन्धे के समान ऊँचा तथा शोभा उत्पन्न करने वाला है, जो विद्याधरों की स्त्रियों से सेवित शिखरों के द्वारा सुशोभित है, जिसके तट मेघों के समूह से घिरे रहते हैं जो इन्द्र के द्वारा लिखे हुए आपके चिन्हों को धारण करता है इसलिए तीर्थस्थान है, हमेशा तथा आज भी प्रीति से विस्तृतचित्तवाले ऋषियों के द्वारा जो सब ओर से अत्यधिक सेवित है ऐसा वह अतिशय प्रसिद्ध ऊर्जयन्त नाम का

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

पावन पर्वत है।

अतिसुन्दर नख शशि किरणों से, अंगुलि का है अग्रिम भाग।
ऋषि विद्वान स्वसाधक जिनको, नमते कर स्तुति अनुराग॥124॥

ककुदं भुवः खचरयोषि-दुषित-शिखरैरलङ्कृतः।
मेघ-पटल-परिवीत-तटस्त्व, लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा।।१२७।।

वहतीति तीर्थमृषिभिश्च, सततमभिगम्यतेऽद्य च।
प्रीति-वितत-हृदयैः परितो, भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः।।१२४।।

अन्वयार्थः-(**हे नाथ**) हे स्वामिन्! (**त्वं**) आप (**इदं अखिलं**) इस समस्त संसार को (**युगपत् च सदा**) एक साथ और सर्वदा (**तलामलकवत्**) हस्ततल पर रखे हुए स्फटिक के समान जानते हैं तथा आपके इस जानने में (**बहिः**) बाह्य और (**अन्तरपि**) अभ्यन्तर (**करणं**) इन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् (**च उभयता**) और दोनों प्रकार से (**अतएव**) इसलिए (**बुधनुतस्य**) विद्वानों के द्वारा स्तुत (**ते**) आपके (**अद्भुतोदयम्**) आश्चर्यकारक अभ्युदय से युक्त तथा (**न्यायविहितं**) न्याय सिद्ध-आगम ज्ञान से सिद्ध (**चरितगुणं**) स्वकार्य की प्रसाधकता का (**अवधार्य**) निश्चय कर (**वयं**) हम (**सुप्रसन्नमनसः**) अत्यन्त प्रसन्न चित्त होते हुए (**त्वयि जिने**) आप जिनेन्द्र में (**स्थिताः**) स्थित हुए हैं-आपके लिए कार्य साधक समझ आपकी शरण में आये हैं।

भावार्थ-हे स्वामिन्! आप इस समस्त संसार को एक साथ और सर्वदा हस्ततल पर रखे हुए स्फटिक के समान जानते हैं तथा आपके इस जानने में बाह्य और आभ्यन्तर इन्द्रियाँ पृथक् पृथक् और दोनों प्रकार से बाधक नहीं है एवं उपकारक भी नहीं है इसीलिए विद्वानों के द्वारा स्तुत आपके आश्चर्य कारक अभ्युदय से युक्त तथा न्याय सिद्ध-आगमज्ञान से सिद्ध स्वकार्य की प्रसाधकता का निश्चयकर हम अत्यंत प्रसन्नचित्त होते हुए आप जिनेन्द्र में स्थित हुए हैं अपने कार्य का साधक समझ आपकी 'विशद' शरण में आये हैं।

बहिरन्त-रप्युभयथा च, करणमविघाति नाऽर्थकृत्।
नाथ! युगपदखिलं च सदा, त्वमिदं तलाऽऽमलकवद्-विवेदिथ।।१२६।।

अतएव ते बुध-नुतस्य, चरित-गुणमद्भुतोदयम्।
न्याय-विहितमवधार्य जिने, त्वयि सुप्रसन्न-मनसः स्थिता वयम्।।१३०।।

रवि की किरणों सम हैं किरणें, जिसकी दिव्य सुदर्शन चक्र।
गरुण केतु श्यामल तन धारी, नारायण स्वामी नर शक्र॥125॥

श्री पार्श्वजिन-स्तवनम्

(वंशस्थ छन्दः)

तमाल-नीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्ण-भीमाऽशनि-वायु-वृष्टिभिः।
बलाहकैर्वैरि-वशैरुपद्रुतो, महामना यो न चचाल योगतः।।१३१।।

अन्वयार्थः-(**तमालनीलैः**) तमाल वृक्ष के समान नीलवर्ण, (**सधनुस्तडिदगुणैः**) इन्द्रधनुषों की बिजली रूप डोरियों से सहित, (**प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः**) भयंकर, वज्र, आँधी और वर्षा को बिखेरने वाले ऐसे (**वैरिवशैः**) शत्रु के वशीभूत (**बलाहकैः**) मेघों के द्वारा (**उपद्रुतः**) पीड़ित होने पर भी (**महामनाः**) उत्कृष्ट-धैर्य के धारक (**यः**) जो पार्श्वनाथ भगवान् (**योगतः**) शुक्लध्यान रूप योग से (**न चचाल**) विचलित नहीं हुये थे।

भावार्थ- तमाल वृक्ष के समान नीलवर्ण, इन्द्र धनुषों की बिजली रूप डोरियों से सहित, भयंकर वज्र आँधी और वर्षा को बिखेरने वाले ऐसे शत्रु के वशीभूत मेघों के द्वारा उपद्रव होने पर भी उत्कृष्ट धैर्य के धारक जो पार्श्वनाथ भगवान् शुक्लध्यान रूप योग से विचलित नहीं हुए थे।

बादल काले काले जिनमें, चमकें तीक्ष्ण बिजलियाँ जोर।
वज्र भयंकर नभ से कड़के, वायु चले बरसें घन घोर॥
किए उपद्रव घोर कमठ ने, किन्तू वे ऋषि महा महान।
हुए ना विचलित परमयोग से, जिनका ऐसा दुर्धर ध्यान॥131॥

बृहत्फणा-मण्डल-मण्डपेन यं, स्पफुरत्तडित्पिंग-रुचोपसर्गिणम्।
जुगूह नागो धरणो धराधरं, विराग-संध्या-तडिदम्बुदो यथा।।१३२।।

अन्वयार्थः-(**उपसर्गिणं**) उपसर्ग से युक्त (**यं**) जिन पार्श्वनाथ भगवान् को (**धरणो नागः**) धरणेन्द्र नामक नागकुमार देव ने (**स्फुरत्तडित्पिंगरुचा**)

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

चमकती हुई बिजली के समान पीली कान्ति से युक्त **(बृहत्फणामण्डलमण्डपेन)** बहुत भारी फणामण्डलरूपी मण्डल के द्वारा **(तथा)** उस तरह **(जुगूह)** वेष्टित कर लिया था **(यथा)** जिस तरह कि **(विरागसंध्यातडिदम्बुदः)** काली संध्या के समय बिजली से युक्त मेघ **(धराधरं)** पर्वत को वेष्टित कर लेता है।

भावार्थ– उपसर्ग से युक्त जिन पार्श्वनाथ भगवान् को धरणेन्द्र नामक नागकुमार देव ने चमकती हुई बिजली के समान पीली कांति से युक्त बहुत भारी फणामण्डल रूपी मण्डल के द्वारा उस तरह वेष्टित कर लिया था जिस तरह कि काली संध्या के समय बिजली से युक्त मेघ पर्वत को वेष्टित कर लेता है।

जिसका फण मण्डल विशाल था, आया नागदेव धरणेन्द्र।
ऊपर करके फण मण्डल को, किए सुरक्षित पार्श्व जिनेन्द्र॥
फण के नीचे हुए सुशोभित, विद्युत बिम्ब समन्वित ईश।
श्याम घटा से वेष्टित हो ज्यों, विद्युत युत पर्वत का शीश॥132॥

स्व-योग-निस्त्रिंश-निशात-धारया, निशात्य यो दुर्जय-मोह-विद्विषम्।
अवापदाऽऽर्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं, त्रिलोक-पूजाऽतिशयाऽऽस्पदं पदम्।।१३३।।

अन्वयार्थः–**(यः)** जिन्होंने **(स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया)** अपने शुक्लध्यान रूप खड्ग की तीक्ष्ण धार के द्वारा **(दुर्जयमोहविद्विषम्)** मोहरूपी दुर्जय शत्रु को **(निशात्य)** नष्ट कर **(अचिन्त्यं)** अचिन्तनीय, **(अद्भुतं)** आश्चर्यकारक गुणों से युक्त, **(त्रिलोकपूजातिशयास्पदं)** त्रिलोक की पूजा के अतिशय के स्थान **(आर्हन्त्यं पदम्)** अर्हत् पद को **(अवापत्)** प्राप्त किया था।

भावार्थ– जिन्होंने अपने शुक्लध्यानरूपखड्ग की तीक्ष्ण धारा के द्वारा मोह रूपी दुर्जयशत्रु को नष्ट कर अचिन्तनीय आश्चर्य कारक गुणों से युक्त त्रिलोक की पूजा के अतिशय के स्थान आर्हन्त्य पद को प्राप्त किया था।

विकट समय में आत्म योग की, लेकर आप प्रखर तलवार।
है दुर्जेय मोह अन्तर रिपु, जिस पर किया आपने बार॥

प्राप्त किया हे नाथ! शीघ्र ही, वह पद अद्भुत और अचिन्त्य।
अतिशय पूज्य रहा त्रिलोक में, कहते हैं जिनको आर्हन्त्य॥133॥

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूत-कल्मषं, तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः।
वनौकसः स्व-श्रम-वन्ध्य-बुद्धयः, शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे।।१३४।।

अन्वयार्थः–**(यं)** जिन पार्श्वनाथ भगवान् को **(ईश्वरं)** समस्त लोक के ईश्वर तथा **(विधूतकल्मषं)** घातिचतुष्क रूप पाप से रहित **(वीक्ष्य)** देखकर तथा **(बुभूषवः)** उन्हीं के समान होने के इच्छुक **(वनौकसः)** वनवासी **(ते तपोधनाः अपि)** वे तपस्वी भी **(स्वश्रमबन्ध्यबुद्धयः)** अपने प्रयास में निष्फल बुद्धि होते हुए **(शमोपदेशं)** मोक्षमार्ग अथवा शांति का उपदेश देने वाले भगवान् पार्श्वनाथ की **(शरणं प्रपेदिरे)** शरण को प्राप्त हुए थे।

भावार्थ–जिन पार्श्वनाथ भगवान् को समस्त लोक के ईश्वर तथा घातिचतुष्क रूप पाप से रहित देखकर उन्हीं के समान होने के इच्छुक वनवासी वे तपस्वी भी अपने प्रयास में निष्फल बुद्धि होते हुए मोक्ष मार्ग अथवा शांति का उपदेश देने वाले भगवान् पार्श्वनाथ की शरण को प्राप्त हुए थे।

बनवासी जो रहे तापसी, देखे जो जित कर्म जिनेश।
व्यर्थ परिश्रम से वे अपने जो, मन में हुए विरक्त विशेष॥
तत्क्षण पहुँचे बनने को वे, शरण आपकी आप समान।
शांती पथ का दिया आपने, सच्चा जिन उपदेश महान॥129॥

स सत्य-विद्या-तपसां प्रणायकः, समग्रधीरुग्रकुलाऽम्बरांशुमान्।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते, विलीन-मिथ्यापथ-दृष्टि-विभ्रमः।।१३५।।

अन्वयार्थः–**(सत्यविद्यातपसां)** जो सत्य विद्याओं तथा तपस्याओं के **(प्रणायक)** प्रणेता थे, **(समग्रधीः)** जो पूर्ण केवलज्ञान के धारक थे **(उग्रकुलाम्बरांशुमान्)** जो उग्र वंशरूपी कुल के चन्द्रमा थे और **(विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः)** जिन्होंने मिथ्यामार्ग सम्बन्धी कुदृष्टियों से उत्पन्न विभ्रमों को नष्ट कर दिया था **(सः)** वे **(पार्श्वजिनः)** पार्श्वनाथ जिनेन्द्र **(मया)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा **(सदा)** हमेशा **(प्रणम्यते)** प्रणत

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

किये जाते हैं।-मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ- जो सत्य विद्याओं तथा तपस्याओं के प्रणेता थे, जो पूर्ण केवल ज्ञान के धारक थे जो उग्र वंश रूपी कुल के चन्द्रमा थे और जिन्होंने मिथ्या मार्ग संबंधी कुदृष्टियों से उत्पन्न विभ्रमों को नष्ट कर दिया था वे पार्श्व जिनेन्द्र मुझ समन्तभद्र के द्वारा हमेशा प्रणत किये जाते हैं-मैं उन्हें 'विशद' प्रणाम करता हूँ।

दिनकर उग्रवंश के अंवर, पूर्ण अवस्थित जिनका ज्ञान।
मोह हटाकर मिथ्या पथ का, किया सत्य निर्दिष्ट प्रमाण॥
सत्य ज्ञान तप नायक हैं जो, जिनकी मूर्ति महा अभिराम।
ऐसे पार्श्व जिनेन्द्र सूर्यपद, करते हैं हम 'विशद' प्रणाम॥135॥

श्री वीरजिन-स्तवनम्

(स्कन्धक-छन्दः अथवा आर्यागीति छन्दः)

कीर्त्या भुवि भासि तया, वीर! त्वं गुण-समुच्छ्रया भासितया,
भासोडुसभाऽऽसितया, सोम इव व्योम्नि कुन्द-शोभासितया।।१३६।।

अन्वयार्थः-(**वे वीर**) हे वर्धमान जिनेन्द्र! (**त्वं**) आप (**भुवि**) पृथिवी पर (**गुणसमुत्छ्रया**) आत्मा और शरीर सम्बन्धी गुणों से उत्पन्न (**भासितया**) सुशोभित अथवा उज्ज्वल (**तया**) उस (**कीर्त्या**) ख्याति से (**उडुसभासितया**) नक्षत्रों की सभा में **आसित**-स्थित एवं (**कुन्दशोभासितया**) कुन्दकुसुम की शोभा के समान सफेद (**भासा**) कान्ति से (**व्योम्नि**) आकाश में (**सोम इव**) चन्द्रमा के समान (**भासि**) सुशोभित होते हैं।

भावार्थ- हे वर्धमान जिनेन्द्र! आप पृथिवी पर आत्मा और शरीर सम्बन्धी गुणों से उत्पन्न सुशोभित अथवा उज्ज्वल उस ख्याति से नक्षत्रों की सभा में आसित स्थित, एवं कुन्दकुसुम की शोभा के समान कांति से आकाश में चन्द्रमा के समान सुशोभित होते हैं।

कीर्ति विश्व में भासित जिनकी, गुण शोभाश्रित होकर व्याप्त।
सोहें ऋक्ष सभासित में ज्यों, सोम नभाश्रित शोभा प्राप्त॥136॥

तव जिन! शासन-विभवो जयति कलावपि गुणाऽनुशासन-विभवः।
दोष-कशाऽसनविभवः स्तुवन्ति चैनं प्रभा-कृशाऽऽसनविभवः।।१३७।।

अन्वयार्थः-(**हे जिन!**) हे वीर जिनेन्द्र! (**गुणानुशासनविभवः**) भव्य जीवों के भव को नष्ट करने वाला (**तव**) आपके (**शासनविभवः**) प्रवचन का यथावस्थित समस्त पदार्थों के प्रतिपादन रूप सामर्थ्य (**कलावपि**) कलिकाल में भी (**जयति**) जयवन्त है-सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान है (**च**) और (**प्रभाकृशासनविभवः**) प्रभा-ज्ञानादितेज से लोक के तथाकथित हरि हरादि स्वामियों को कृश-(महत्त्वहीन) करने वाले (**दोषकशासनविभवः**) दोष रूप चाबुकों के निराकरण करने में समर्थ गणधरादि देव (**एनं**) आपके इस शासन विभव की-प्रवचन सामर्थ्य की (**स्तुवन्ति**) स्तुति करते हैं।

भावार्थ- हे वीर जिनेन्द्र! भव्यजीवों के भव को नष्ट करने वाला आपके प्रवचन का यथावस्थित समस्त पदार्थों के प्रतिपादन रूप तुम्हारा शासन कलिकाल में भी जयवन्त है-सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान है और प्रभा-ज्ञानादितेज से आसनविभुओं-लोक के तथाकथित हरिहरादि स्वामियों को कृशमहत्वहीन करने वाले दोष रूप चाबुकों के निराकरण करने में समर्थ गणधरादि देव आपके इस शासन विभव की प्रवचन सामर्थ्य की स्तुति करते हैं।

शासन वैभव नाथ आपका, भवहर कलि में भी मनहार।
करे पराभव दोष राशि का, भव-भव में स्तुति विस्तार॥137॥

अनवद्यः स्याद्वाद-स्तव दृष्टेष्टाऽविरोधतः स्याद्वादः।
इतरो न स्याद्वादो स द्वितयविरोधान्मुनीश्वराऽस्याद्वादः।।१३८।।

अन्वयार्थः-(**हे मुनीश्वर!**) हे मुनियों के ईश्वर! (**स्याद्वादः**) "स्यात्" इस कथंचित् अर्थ के वाचक शब्द से सहित (**तव**) आपका (**स्याद्वादः**) स्यात् अस्ति इत्यादि अनेकान्त रूप कथन (**दृष्टेष्टाविरोधतः**) प्रत्यक्ष तथा आगम आदि प्रमाणों से विरोध न होने के कारण (**अनवद्यः**) निर्दोष है। इसके विपरीत (**अस्याद्वादः**) 'स्यात्' इस शब्द से रहित (**इतरः**) अन्य जो (**वादः**) एकांत रूप कथन है (**सः**) वह (**द्वितयविरोधात्**) दृष्ट और इष्ट-प्रत्यक्ष तथा आगम

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

आदि प्रमाणों से विरोध होने के कारण **(अनवद्यः)** निर्दोष **(न)** नहीं है।
भावार्थ– हे मुनिनाथ! स्यात् इस कथंचित् अर्थ के वाचक शब्द से सहित आपका स्यादस्तीत्यादि अनेकांत रूप कथन प्रत्यक्ष तथा आगम आदि प्रमाणों से विरोध न होने के कारण निर्दोष है। इसके विपरीत 'स्यात्' इस शब्द से रहित अन्य जो एकान्त रूप कथन है वह दृष्ट और इष्ट–प्रत्यक्ष तथा अनुमान आदि प्रमाणों से विरोध होने के कारण निर्दोष नहीं है।

स्याद्वाद निर्दोष आपका, करता अविरोधी स्याद्वाद।
स्याद्वाद और नहीं आपसे, जो विरुद्ध वह अस्याद्वाद॥138॥

त्वमसि सुराऽसुर-महितो, ग्रन्थिकसत्त्वाऽऽशयप्रणामाऽमहितः।
लोक-त्रय-परमहितो, ऽनावरणज्योतिरुज्ज्वलद्धाम-हितः।।१३६।।
अन्वयार्थः- हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(सुरासुरमहितः)** सुरों तथा असुरों से पूजित हैं, किन्तु **(ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामाऽमहितः)** मिथ्यादृष्टि प्राणियों के अभक्त हृदय से प्राप्त होने वाले प्रणाम से पूजित नहीं है, आप **(लोकत्रयपरमहितः)** तीनों लोकों के परम हितकारी हैं और **(अनावरणज्योतिरुज्ज्वलद्धामहितः)** केवलज्ञान से प्रकाशमान मुक्ति रूप स्थान को प्राप्त हैं।
भावार्थ– हे भगवन्! आप सुरों तथा असुरों से पूजित हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि प्राणियों के अभक्त हृदय से प्राप्त होने वाले प्रणाम से पूजित नहीं है, आप तीनों लोकों के परम हितकारी हैं, और केवलज्ञान से प्रकाशमान मुक्तिरूप स्थान को प्राप्त हैं।

महितल उज्ज्वल महति सुरासुर, नाथ! आप हो ज्ञानागार।
हित वंचित जन रहे अन्धसम, हे प्रभु! विश्व परम हितकार॥134॥

सभ्यानामभिरुचितं, दधासि गुण-भूषणं श्रिया चारु-चितम्।
मग्नं स्वस्यां रुचितं जयसि च मृगलाञ्छनं स्वकान्त्या रुचितम्।।१३५।।
अन्वयार्थः-हे भगवन्! आप **(सभ्यानां)** समवशरण सभा में स्थित भव्य जीवों के **(अभिरुचितं)** रुचिकर, तथा **(श्रिया)** अष्ट प्रातिहार्य रूप लक्ष्मी से **(चारुचितं)** सुन्दरतापूर्वक व्याप्त **(गुणभूषणं)** गुणों के भूषण

को अथवा गुणरूप आभूषण को **(दधासि)** धारण करते हैं **(च)** और **(स्वकान्त्या)** अपनी कान्ति के द्वारा **(स्वस्यां रुचिं)** स्वकीय कान्ति में **(मग्नं)** निमग्न **(रचितं)** सुन्दर **(तं मृगलाञ्छनं)** उस चन्द्रमा को **(जयसि)** जीतते हैं।
भावार्थ– हे भगवन्! आप समवशरण सभा में स्थित भव्यजीवों के रुचिकर, तथा अष्टप्रातिहार्य रूप लक्ष्मी से सुन्दरता पूर्वक व्याप्त गुणों के भूषण को अथवा गुणरूप आभूषण को धारण करते हैं, और अपनी कांति के द्वारा स्वकीय कांति में निमग्न सुंदर उस चन्द्रमा को जीतते हैं।

श्री के धारी रुचित सम्यजल, रुचित गुणों के धारी देवः!।
तमहर विजित चन्द्र हे गतमद!, तन्मय निज रुचि हो स्वयमेव॥140॥

त्वं जिन! गत-मद-माय-स्तव भावानां मुमुक्षु-कामद! मायः।
श्रेयान् श्रीमदमायस्-त्वया समादेशि सप्रयाम-दमाऽयः।।१४१।।
अन्वयार्थः-**(मुमुक्षुकामद)** मोक्षाभिलाषी जीवों के मनोरथ को देने वाले **(जिन)** हे वीर जिनेन्द्र! **(त्वं)** आप **(गतमदमायः)** गर्व और माया से रहित हैं तथा **(त्व)** आपका **(भावानां)** जीवादि पदार्थ विषयक **(मायः)** केवलज्ञान अथवा आगम रूप प्रमाण **(श्रेयान्)** अत्यन्त श्रेष्ठ अथवा प्रशंसनीय है। हे भगवन् **(त्वया)** आपने **(श्रीमदमायः)** लक्ष्मी के मद को नष्ट करने वाला अथवा स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त करानेवाली श्री लक्ष्मी से युक्त और माया से रहित **(स प्रयामदमायः)** श्रेष्ठ एवं प्रशस्त इन्द्रिय विजय का **(समादेशि)** उपदेश दिया है।
भावार्थ– हे मोक्षाभिलाषी जीवों के मनोरथ को देने वाले वीरजिनेन्द्र! आप गर्व और माया से रहित हैं तथा आपका जीवादि पदार्थ विषयक कैवलज्ञान अथवा आगम रूप प्रमाण अत्यन्त श्रेष्ठ अथवा प्रशंसनीय है। हे भगवान्! आपने लक्ष्मी के मद को नष्ट करने वाला अथवा स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कराने वाली श्री लक्ष्मी से युक्त और माया से रहित श्रेष्ठ एवं प्रशस्त इन्द्रिय विजय का उपदेश दिया है।

नाथ! आप हो गत मद माया, हे मुमुक्षु के मोक्षोपाय!।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

भव्य जनों के हित उपदेशी, श्रेयरूप हो सदा सहाय॥141॥

गिरिभित्त्यऽवदानवतः, श्रीमत दव दन्तिनः स्रवद्दानवतः।
तव शम-वाऽदानवतो, गतमूर्जितमपगत-प्रमादानवतः।।१४२।।

अन्वयार्थः-हे भगवन् (**गिरिभित्त्यवदानवतः**) जिस प्रकार पहाड़ की कटनियों में पराक्रम से युक्त अर्थात् उनका विदारण करने वाले (**श्रीमतः**) उत्तम जाति विशिष्ट तथा (**स्रवद्दानवतः दन्तिनः इव**) झरते हुए मद से सहित हाथी का (**ऊर्जितं**) बलशाली अर्थात् रुकावट से रहित (**गतं**) गमन होता है उसी तरह (**शमवादान् अवतः**) दोषों के उपशमन का उपदेश देने वाले शास्त्रों के रक्षक तथा (**अपगतप्रमादानवतः**) अभयदान से युक्त (**तव**) आपका (**गतं**) उत्कृष्ट गमन-विहार हुआ था।

भावार्थ- हे भगवन्! जिस प्रकार पहाड़ की कटनियों में पराक्रम से युक्त अर्थात् उनका विदारण करने वाले उत्तम जाति विशिष्ट तथा झरते हुए मद से सहित हाथी का बलशाली अर्थात् रूकावट से रहित गमन होता है उसी तरह दोषों के उपशमन का उपदेश देने वाले शास्त्रों के रक्षक तथा अभयदान से युक्त आपका उत्कृष्ट गमन-विहार हुआ था।

वर्षक दान वारि दन्तीसम, करता गिरि को घात प्रदान।
कर विहार प्रभु अभय दान युत, मुख से दिए शांति का दान॥142॥

बहुगुण-सम्पदऽसकलं, परमतमपि मधुर-वचन-विन्यास-कलम्।
नय-भक्त्यवतं-सकलं, तव देव! मतं समन्तभद्रं सकलम्।।१४३।।

अन्वयार्थः-(**हे देव**) हे वीर जिनदेव! (**परमतं**) अन्य एकान्त वादियों का शासन (**मधुरवचनविन्यासकलम् अपि**) कर्णप्रिय वचनों के विन्यास से मनोज्ञ होता हुआ भी (**बहुगुणसम्पदसकलं**) अत्यधिक गुण रूप सम्पत्ति से विकल है परन्तु (**तव**) आपका (**मतं**) शासन (**नयभक्त्यवतं सकलं**) नैगमादि नयों से उत्पन्न स्यात् अस्ति इत्यादि भंग रूप आभूषणों से मनोज्ञ है अथवा नयों की उपासना रूप कर्णाभरण को देनेवाला है (**समन्तभद्रं**) सब ओर से कल्याणकारक है और (**सकलं**) पूर्ण है।

भावार्थ- हे वीर जिन देव! अन्य एकान्तवादियों का शासन कर्णप्रिय

वचनों के विन्यास से मनोज्ञ होता हुआ भी अत्यधिक गुणरूप सम्पत्ति से विकल है परन्तु आपका शासन नैगमादि नयों से उत्पन्न स्यादस्तीत्यादि भङ्ग रूप आभूषणों से मनोज्ञ अथवा नयों की उपासना रूप कर्णाभरण को देने वाला है, सब ओर से 'विशद' कल्याण कारक है और पूर्ण है।

रहित मतान्तर सकल गुणान्वित, 'विशद' वचन संयुक्त महान।
'समन्तभद्र' स्वामी जी का है, पन्थ नयाक्षत भूषण वान॥143॥

चौबीस तीर्थंकर सुप्रभात स्त्रोत

श्री नाभिनन्दन! जिनाजित! संभवेश!,
देवाभिनंदनमुने! सुमते जिनेन्द्र!।
पद्मप्रभ! प्रणुतदेव सुपार्श्वनाथ!,
चन्द्रप्रभास्तु सततं मम सुप्रभातम्॥1॥
श्री पुष्पदंत! परमेश्वर शीतलेश!,
श्रेयान् जिनो विगतमान! सुवासुपूज्य!।
निर्दोषवाग्विमल! विश्वजनीनवृत्तिः,
श्रीमन्ननन्त! भवतान्मम सुप्रभातम्॥2॥
श्रीधर्मनाथ! गणभृन्नतशांतिनाथ!,
कुन्थो महेश परमार विभार मल्लिः।
सत्यव्रतेश! मुनिसुव्रत! सन्निमीश!
नेमिः पवित्र! सततं मम सुप्रभातम्॥3॥
श्री पार्श्वनाथ! परमार्थ विदां वरेण्य!,
श्रीवर्धमान! हतमान! विमानबोध!।
युष्मत्पदद्वयमिदं स्मरतो ममास्तु,
कैवल्य मस्तु विशदं मम सुप्रभातम्॥4

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

शान्तिनाथ स्तोत्रम्

श्री गुणभद्र स्वामी विरचित

नाना विचित्र बहु दुःख राशि नाना प्रकारंच मोहांध पासि।
पापानि दोषानि हरंतु देव, इह जन्म शरणं तव शान्तिनाथ॥1॥

संसार मध्ये मिथ्यात्व चिन्ता, मित्यात्वमध्ये कर्माणि बन्धः।
ते बन्ध छेदन्तु देवाधिदेव, इह जन्म शरणं तव शान्तिनाथ॥2॥

कामश्च क्रोधं चमायातिलोभं, चतुः कषायाः इह बन्ध बन्धः।
ते बन्ध छेदन्तु देवाधिदेव, इह जन्म शरणं तव शान्तिनाथ॥3॥

जातस्य मरणं ध्रुव तस्य वचनं, वहन्ति जीवा बहु जन्म दुक्खं।
ते बन्ध छेदन्तु देवाधिदेव, इह जन्म शरणं तव शान्तिनाथ॥4॥

चारित्रे-हीने नर जन्म मध्ये, सम्यक्त्वरत्न प्रति पालयन्ति।
ते बन्ध छेदन्तु देवाधिदेव, इह जन्म शरणं तव शान्तिनाथ॥5॥

मृदु-वाक्य-हीने कठिनस्य चिन्ता, पर जीव निन्दा मनसा च बन्ध।
ते बन्ध छेदन्तु देवाधिदेव, इह जन्म शरणं तव शान्तिनाथ॥6॥

पुत्राणि मित्राणि कलित्रतानि, बहु बन्ध मध्ये इह जन्म बन्ध।
ते बन्ध छेदन्तु देवाधिदेव, इह जन्म शरणं तव शान्तिनाथ॥7॥

पर द्रव्य चोरी परदार सेवा, हिंसादिकांक्षादनुवृत्य बन्ध।
ते बन्ध छेदन्तु देवाधिदेव, इह जन्म शरणं तव शान्तिनाथ॥8॥

जपति पठति नित्यं शांतिनाथदिना-सिद्धं।
स्तुवन् मृदुगिरा वा पापतापहंतुः॥
शिव सुख जन प्राप्त्यै सर्व सत्वांनुकंपा।
कृत गुण मणिभद्रं भद्रकार्येषु नित्यं॥9॥
जप तप दाने पठते, नित्यं श्रीगुणभद्र स्वामि वाक्यं ते।
लभते नर स्वर्ग-सुखं, पुनरपि निर्वाण-पंथानं॥
॥इति॥

स्तुति

देव! अनूपम आप विश्व में, रागद्वेष जेता सर्वज्ञ,
हित उपदेश दिया उन सबको, जो थे दुखी विश्व में अज्ञ;
लेकर आप विश्व में आए, जगदुद्धारक भाव उदार,
अपना लक्ष्यपूर्ण साधन कर, जाने आप विश्व के पार।
सिखलाया हे नाथ! आपने, पूर्ण स्वावलम्बन का पाठ,
दिखलाया इस मूढ़ात्मा को, आत्मशक्ति का शुभ भण्डार,
यह सद्बोध दानकर जग में, किया शान्ति सुख का सञ्चार।
अपनी शक्ति आप पहचानो, व्यर्थ में पाते हो क्यों क्लेश,
धनपति हो दारिद्रय न भोगो' दिया आपने यह उपदेश;
क्यों डरते हो अजर-अमर हो, समझो केवल आत्मस्वरूप,
मोह कालिमा को धो डालो, तुम हो आत्मनगर के भूप।'
आत्मबोध पाया जब ऐसा, हुआ प्रबुद्ध भव्य संसार,
आत्म शक्तियाँ जागृत होकर, करने लगी सुखद सञ्चार;
आत्म सौख्य साधन से निकला, विश्व सौख्य का अनुपम स्रोत,
आत्म विश्व में विश्व आत्म में, दिखने लगे सु ओतप्रोत।
जिसको दुख कहता था मानव, वह ही था सेवा का द्वार,
वह अब उन्नति का पथ होकर, करने लगा सौख्य सञ्चार;
जब सेवा-पथ की मृदु, पीड़ा देने लगी अन्तराह्लाद,
मिटने लगे आत्म पर सबके, इसी मार्ग से क्लेश विषाद।
जनसेवा ही कठिन तपस्या, जन सेवा ही शुद्ध चरित्र,
इसी मार्ग से जगने पाया, दुख मुक्ति का मार्ग पवित्र;
हे जिनेन्द्र! हे अमित! आपका, अखिल विश्व पर यह उपकार,
इसीलिए है चरणों में नत, "विशद" आपके सब संसार।

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

आचार्य गुरुवर श्री विशदसागर जी की आरती

ॐ जय विशद सिन्धु गुरुवर, स्वामी विशद सिन्धु गुरुवर।
तुम हो गुरु हमारे-2, हम तुमने अनुचर॥
ॐ जय विशद सिन्धु गुरुवर।टेक॥
ग्राम कुपी में जन्म लिया माँ, इन्दर उर आये-स्वामी इन्दर...।
धन्य पिताश्री नाथूराम जी-2, श्रेष्ठ पुत्र पाये॥
ॐ जय विशद सिन्धु गुरुवर॥1॥
तीर्थ वन्दना करने हेतु, सम्मेद शिखर आएँ-स्वामी सम्मेद...।
विमल सिन्धु के दर्शन करके-2, व्रत प्रतिमा पाएँ॥
ॐ जय विशद सिन्धु गुरुवर॥2॥
विजय प्राप्त करने कर्मों पर, परिजन तज आए-स्वामी परिजन...।
सिद्ध क्षेत्र श्रेयांश गिरि पर-2, ऐलक पद पाए॥
ॐ जय विशद सिन्धु गुरुवर॥3॥
गुरुवर श्री विराग सागर से, मुनिव्रत ग्रहण किए-स्वामी मुनि...।
द्रोणगिरि में दीक्षा लेकर-2, निज में लीन हुए॥
ॐ जय विशद सिन्धु गुरुवर॥4॥
भरत सिन्धु गुरुवर ने, पद आचार्य दिया-स्वामी पद...।
मालपुरा नगरी ने-2, पावन श्रेय लिया॥
ॐ जय विशद सिन्धु गुरुवर॥5॥
पूजा विधान अनेको लिखकर, प्रभु के गुण गाए-स्वामी प्रभु...।
विशाल आरती करके हमने-2, गुरु के गुण गाए॥
ॐ जय विशद सिन्धु गुरुवर॥6॥
ॐ जय विशद सिन्धु गुरुवर, स्वामी विशद सिन्धु गुरुवर।
तुम हो गुरु हमारे-2, हम तुमरे अनुचर॥
ॐ जय विशद सिन्धु गुरुवर।टेक॥

रचयिता-मुनि विशालसागर

आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज की आरती

(तर्ज:-माई री माई मुंडरे पर तेरे बोल रहा कागा...)

जय-जय गुरुवर भक्त पुकारें, आरति मंगल गावें।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे॥
गुरुवर के चरणों में नमन्....4 मुनिवर के....
ग्राम कुपी में जन्म लिया है, धन्य है इन्दर माता।
नाथूराम जी पिता आपके, छोड़ा जग से नाता॥
सत्य अहिंसा महाव्रती की...2, महिमा कही न जाये।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे॥
गुरुवर के चरणों में नमन्....4 मुनिवर के....
सूरज सा है तेज आपका, नाम रमेश बताया।
बीता बचपन आयी जवानी, जग से मन अकुलाया॥
जग की माया को लखकर के....2, मन वैराग्य समावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे॥
गुरुवर के चरणों में नमन्...4 मुनिवर के....
जैन मुनि की दीक्षा लेकर, करते निज उद्धारा।
विशद सिंधु है नाम आपका, विशद मोक्ष का द्वारा॥
गुरु की भक्ति करने वाला...2, उभय लोक सुख पावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे॥
गुरुवर के चरणों में नमन्....4 मुनिवर के....
धन्य है जीवन, धन्य है तन-मन, गुरुवर यहाँ पधारे।
सगे स्वजन सब छोड़ दिये हैं, आतम रहे निहारे॥
आशीर्वाद हमें दो स्वामी....2, अनुगामी बन जायें।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे॥
गुरुवर के चरणों में नमन्...4 मुनिवर के...जय...जय॥

*रचयिता : **श्रीमती इन्दुमती गुप्ता,** श्योपुर*

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

आचार्य श्री विशदसागर जी द्वारा रचित 175 विधानों की विशाल श्रृंखला पर्वों के दिनों में करने योग्य विधान

1. श्री आदिनाथ मण्डल विधान
2. श्री अजितनाथ मण्डल विधान
3. श्री सम्भवनाथ मण्डल विधान
4. श्री अभिनन्दननाथ मण्डल विधान
5. श्री सुमतिनाथ मण्डल विधान
6. श्री पद्मप्रभु मण्डल विधान
7. श्री सुपार्श्वनाथ विधान
8. श्री चन्द्रप्रभु विधान
9. श्री पुष्पदन्त विधान
10. श्री शीतलनाथ विधान
11. श्री श्रेयांसनाथ विधान
12. श्री वासुपूज्य विधान
13. श्री विमलनाथ विधान
14. श्री अनन्तनाथ विधान
15. श्री धर्मनाथ विधान
16. श्री शांतिनाथ विधान
17. श्री कुंथुनाथ विधान
18. श्री अरहनाथ विधान
19. श्री मल्लिनाथ विधान
20. श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान
21. श्री नमिनाथ विधान
22. श्री नेमिनाथ विधान
23. श्री पार्श्वनाथ विधान
24. श्री महावीर विधान
25. पंच परमेष्ठी विधान
26. णमोकार मण्डल विधान
27. भक्तामर मण्डल विधान
28. सम्मेद शिखर विधान
29. श्रुत स्कंध विधान
30. याग मण्डल विधान
31. पंचकल्याणक विधान
32. त्रिकाल चौबीसी विधान
33. कल्याण मंदिर विधान
34. लघु समवशरण विधान
35. सर्वदोष प्रायश्चित विधान
36. पंचमेरु विधान
37. लघु नन्दीश्वर विधान
38. श्री चंवलेश्वर पार्श्वनाथ विधान
39. जिनगुण सम्पत्ति विधान
40. एकीभाव स्तोत्र विधान
41. ऋषिमण्डल विधान
42. विषापहार स्त्रोत विधान
43. वृहदभक्तामर स्तोत्र विधान
44. वास्तु मण्डल विधान
45. लघु नवग्रह शांतिमण्डल विधान
46. सूर्य अरिष्ट निवारक श्री पदमप्रभु विधान
47. चौंसठ ऋद्धि विधान
48. कर्मदहन मण्डल विधान
49. लघु नवदेवतर विधान
50. सहस्त्रनाम विधान
51. चारित्र लब्धी विधान
52. अनन्त व्रतमण्डल विधान
53. कालसर्प योग निवारक विधान
54. शनि अरष्टि निवारक विधान
55. आचार्य परमेष्ठी विधान
56. सम्मेद शिखरकूट पूजन विधान
57. सरस्वती विधान
58. विशद महाअर्चना विधान
59. कल्याण मंदिर विधान (बड़ागांव)
60. अहिच्छत्र पार्श्वनाथ विधान
61. अर्हतनाम विधान
62. सम्यक् आराधना विधान
63. मृत्युंजय विधान
64. शांति प्रदायक शांति विधान
65. लघु मृत्युंजय विधान
66. जम्बूद्वीप विधान
67. चारित्र शुद्धीव्रत विधान
68. क्षायिक नव लब्धी विधान
69. लघु स्वयंभू स्तोत्र विधान
70. गोम्मटेश बाहुबली विधान
71. निर्वाण क्षेत्र विधान
72. तत्वार्थ सूत्र विधान (लघु)
73. त्रैलोक्य मण्डल विधान
74. पुण्यास्त्रव विधान
75. सप्तऋषि विधान
76. श्री शांति कुंथु अरहनाथ विधान
77. श्रावक व्रत दोष
78. तीर्थंकर पंचकल्याणक तीर्थ विधान
79. सम्यक् दर्शन विधान
80. श्रुत ज्ञान व्रत विधान
81. चारित्र शुद्धिव्रत विधान (जाप्य)
82. मनोकामना पूर्णशांति विधान
83. कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
84. तीर्थंकर पंचकल्याणक तिथि विधान
85. विजयश्री विधान
86. श्री आदिनाथ विधान (रानीला)
87. श्री शांतिनाथ विधान (सामोद)
88. श्री आदिनाथ पंचकल्याणक विधान
89. षट् खण्डागम विधान
90. दिव्य देशना विधान
91. श्री आदिनाथ विधान (रेवाड़ी)
92. नवग्रह शांति विधान
93. रक्षाबन्धन विधान
94. तीर्थंकर विधान
95. गणधरवलय विधान (लघु)
96. गिरनार गिरि विधान
97. श्री चन्द्रप्रभु विधान (तिजारा)
98. ऋषिमण्डल विधान (द्वितीय)
99. कालसर्प दोष निवारक कल्याण मंदिर
100. वास्तु विधान (द्वितीय)
101. भक्तामर विधान (चोपाई)
149. चौबीस तीर्थंकर निर्वाण भक्ति विधान (वृहद)
150. चौबीस तीर्थंकर विधान (द्वितीय) (वृहद)
151. कल्पद्रुम विधान
152. चौसठ ऋद्धि विधान (लघु)
153. (कांजीबारस) श्रावण द्वादशी विधान
154. चूलगिरि विधान
155. पंचपरमेष्ठी विधान
156. तीस चौबीस विधान
157. आकाश पंचमी विधान
158. पुष्पांजलि विधान
159. नवनिधि विधान
160. साप्ताहिक सप्त विधान
161. पल्य विधान
162. शांतिभक्ति विधान
163. आ. श्रीविराग सागर विधान
164. चैत्य भक्ति विधान
165. श्री ऋषभदेव विधान
166. रत्नत्रय विधान
167. रक्षाबन्धन विधान
168. ऋद्धि सिद्धि विधान
169. भरत केवली विधान
170. सर्वतोभद्र विधान
171. शांतिविधान (सर्वोदयतीर्थ)
172. आदिनाथ विधान (अष्टापद)
173. ऋषभदेव विधान (नजफगढ़)
174. सैंतालिश भक्ति विधान
175. शांति विधान (तिजारा)

F:\meenakshi\final book 2018\new folder 3\Stotra Bharti\31-12-2018

कृति : **विशद स्तोत्र संग्रह** (शब्दार्थ एवं पद्यानुवाद सहित)
पद्यानुवादकर्ता : प. पू. साहित्य रत्नाकर, क्षमामूर्ति
आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज
संस्करण : प्रथम-2018 * प्रतियाँ : 2000
संकलन : मुनि श्री विशालसागरजी महाराज,
सहयोग : आर्यिका श्री भक्तिभारती माताजी
सहयोगी : ऐलक विदक्षसागर जी, क्षु. श्री विसोमसागरजी,
क्षु. श्री वात्सल्यभारती माताजी
संपादन : ब्र. ज्योति दीदी 9829076085, ब्र. आस्था दीदी
9953877155, ब्र. सपना दीदी 9829127533
संयोजन : ब्र. सोनू दीदी, ब्र. आरती दीदी
प्राप्ति स्थल : 1. सुरेश सेठी, 958 शांतिनगर रोड़ नं. 3 दुर्गापुरा जयपुर (राज.) 9413336017
2. श्री राजेशकुमार जैन ठेकेदार
ए-107, बुध विहार, अलवर, मो. : 9414016566
3. विशद साहित्य केन्द्र
श्री दिगम्बर जैन मंदिर कुआँ वाला जैनपुरी रेवाड़ी (हरियाणा), 9812502062, 09416888879
4. विशद साहित्य केन्द्र, हरीश जैन जय अरिहन्त ट्रेडर्स, 6561 नेहरू गली नियर लाल बत्ती चौक, गांधी नगर, दिल्ली मो. 09818115971,
मूल्य : 100/- रु. मात्र

:: अर्थ सौजन्य ::

श्री उमेश जैन सुपुत्र श्री नरेन्द्र जैन

458, कमला नगर, बागपत रोड, मेरठ

मुद्रक : पारस प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली. फोन नं. : 09811374961, 09818394651
09811363613, E-mail : pkjainparas@gmail.com, kavijain1982@gmail.com

कृति : **विशद स्तोत्र संग्रह** (शब्दार्थ एवं पद्यानुवाद सहित)
पद्यानुवादकर्ता : प. पू. साहित्य रत्नाकर, क्षमामूर्ति
आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज
संस्करण : प्रथम-2018 * प्रतियाँ : 2000
संकलन : मुनि श्री विशालसागरजी महाराज,
सहयोग : आर्यिका श्री भक्तिभारती माताजी
सहयोगी : ऐलक विदक्षसागर जी, क्षु. श्री विसोमसागरजी,
क्षु. श्री वात्सल्यभारती माताजी
संपादन : ब्र. ज्योति दीदी 9829076085, ब्र. आस्था दीदी
9953877155, ब्र. सपना दीदी 9829127533
संयोजन : ब्र. सोनू दीदी, ब्र. आरती दीदी
प्राप्ति स्थल : 1. सुरेश सेठी, 958 शांतिनगर रोड़ नं. 3 दुर्गापुरा जयपुर (राज.) 9413336017
2. श्री राजेशकुमार जैन ठेकेदार
ए-107, बुध विहार, अलवर, मो. : 9414016566
3. विशद साहित्य केन्द्र
श्री दिगम्बर जैन मंदिर कुआँ वाला जैनपुरी रेवाड़ी (हरियाणा), 9812502062, 09416888879
4. विशद साहित्य केन्द्र, हरीश जैन जय अरिहन्त ट्रेडर्स, 6561 नेहरू गली नियर लाल बत्ती चौक, गांधी नगर, दिल्ली मो. 09818115971,
मूल्य : 100/- रु. मात्र

:: अर्थ सौजन्य ::

श्री निर्मल जैन (अध्यक्ष, महिला मण्डल), अशोक विहार फेस-2, दिल्ली
श्री अनिल जैन, शिप्रा जैन, आयुष जैन, दिल्ली
श्री श्रवण कुमार जैन आभा जैन, दिल्ली
श्री आदिश्वर जैन जयमाला जैन, दिल्ली
श्री सुरेश जैन 288, गगन विहार, दिल्ली

मुद्रक : पारस प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली. फोन नं. : 09811374961, 09818394651
09811363613, E-mail : pkjainparas@gmail.com, kavijain1982@gmail.com